हर्षचरित–एक सांस्कृतिक अध्ययन

वासुदेवशरण अग्रवाल
अध्यापक, भारती महाविद्यालय
काशी विश्वविद्यालय

१९५३
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
सम्मेलन-भवन, पटना–३

प्रथम संस्करण, वि० सं० २०१० सन् १९५३ ई०

मूल्य—८॥)   सजिल्द ६॥)

मुद्रक
श्री तारकेश्वर पाण्डेय
ज्ञानपीठ लिमिटेड,
पटना ४

वक्तव्य

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽलंकारे
कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णके ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
सचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पचानन ॥

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् को दो-तीन वर्ष मे ही जो थोडी घनी सफलता मिली है, वह इस बात का सिद्ध प्रमाण है कि साहित्य के निमित्त सरकारी संरक्षण प्राप्त होने पर, हिंदी मे मननशील मनस्वी विद्वान्, हिन्दी साहित्य के अभावों की पूर्ति के लिए, कितनी लगन और आस्था के साथ काम कर सकते है ।

बिहार-राज्य के शिक्षा-विभाग की छत्रछाया मे अपनी पूरी आतरिक स्वतंत्रता के साथ काम करते हुए परिषद् ने यह अनुभव किया है कि हिन्दी के विशेषज्ञ और अधिकारी विद्वानो को यदि सुअवसर दिया जाय और उन्हें हिन्दी-ससार के सर्वविदित प्रकाशकीय व्यवहारों का अनुभव न होने दिया जाय तो साहित्य मे ऐसे ग्रथो की सख्या-वृद्धि हो सकती है, जिनसे राष्ट्रभाषा का गौरव अक्षुण्ण रहे ।

परिषद् ने ग्रथ अथवा भाषण के चुनाव मे ग्रंथकार अथवा वक्ता की इच्छा को ही बराबर प्रधानता दी है। विद्वानों ने परिषद् के उद्देश्यों को समझकर, अपनी स्वतत्र रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार, परिषद् को अपने आधुनिकतम अनुशीलन और अनुसंधान का फल प्रदान करना चाहा है और परिषद् ने नि.सकोच उसका स्वागत और सदुपयोग किया है। यही कारण है कि परिषद् को साहित्य के उन्नयन मे हिन्दी-जगत् के सभी चोटी के विद्वानों का हार्दिक सहयोग क्रमश प्राप्त होता जा रहा है ।

परिषद् की ओर से प्रतिवर्ष दो-तीन विशिष्ट विद्वानो की भाषणमाला का आयोजन किया जाता है। प्रत्येक भाषण एक सहस्र मुद्रा से सादर पुरस्कृत होता है। भाषण के पुस्तकाकार में छपने पर वक्ता लेखक को रायल्टी भी दी जाती है। जिस समय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के महाकवि बाणभट्ट संबधी भाषण की घोषणा की गई थी—मार्च १९५१ मे, उस समय भाषण का शीर्षक था—'महाकवि बाणभट्ट और भारतीय सस्कृति'। यही शीर्षक समय-समय पर परिषद् की विज्ञप्तियों मे भी प्रकाशित होता रहा, किंतु ग्रथ की छपाई जब

समाप्त होने लगी तब विद्वान् लेखक ने ग्रंथ का नाम वर्तमान रूप में बदल देने की इच्छा प्रकट की। परिषद् ने लेखक की इच्छा का सम्मान करने में कोई असमंजस नहीं देखा, क्योंकि लेखक की 'भूमिका' में यह बात स्पष्ट है कि इस ग्रंथ में बाणभट्ट की एक ही कृति का केवल सांस्कृतिक अध्ययन उपस्थित किया गया है। और, महाकवि के समस्त साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन लेखक स्वयं कर रहे हैं और उनकी उस गम्भीर गवेषणा का फल किसी दूसरे ग्रंथ का विषय होगा।

संयोगवश, जिस समय डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल भाषण करने पटना आये थे, उसी समय आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी अपनी आदिकालीन हिंदी-साहित्य-संबंधी व्याख्यानमाला के लिए यहाँ पधारे हुए थे। परिषद् की ओर से दोनों विद्वानों के भाषण, लगातार पाँच दिनों तक, प्रतिदिन एक-एक घंटा, आगे-पीछे, हुए थे। उस समय स्वयं आचार्य द्विवेदी जी ने डाक्टर अग्रवाल साहब के भाषण पर आश्चर्य और संतोष प्रकट किया था। आश्चर्य उन्हें इस बात का हुआ कि डाक्टर अग्रवाल ने हर्षचरित की हीर टटोलकर उसमें से हीरे की कितनी कणियाँ निकाल डाली हैं और आजतक बहुत से विद्वानों ने हर्षचरित का अध्ययन किया, पर किसी को इतनी बारीकियाँ और खूबियाँ न सूझीं। और, संतोष उन्हें इस बात का हुआ कि डाक्टर अग्रवाल ने संस्कृत-काव्यों के अध्ययन के लिए शोध की एक नई दिशा सुझाई है तथा अग्रवाल साहब की यह सूझ उनकी ओर से साहित्य को एक नई देन है। आचार्य द्विवेदीजी ने उसी समय यह भी विचार प्रकट किया था कि मृच्छकटिक नाटक, पद्मावत आदि का अध्ययन-अन्वेषण डाक्टर अग्रवाल के प्रदर्शित मार्ग से ही होना चाहिए।

भारतीय वाङ्मय और पुरातत्त्व के अनुशीलन-परिशीलन में डाक्टर अग्रवाल ने जैसी विमल दृष्टि पाई है वैसी हिंदी-संसार में कहीं कोई आँख पर नहीं चढ़ती। आरंभ से ही उनका झुकाव इसी ओर रहा। सन् १९२९ ईसवी में लखनऊ-विश्वविद्यालय से एम० ए० पास करने के बाद, १९४० तक, मथुरा के पुरातत्त्व-संग्रहालय के अध्यक्ष-पद को उन्होंने सुशोभित किया। इसी समय उन्होंने सन् १९४१ में पी-एच० डी० और १९४६ में डी० लिट्० की सम्मानित उपाधि प्राप्त की। तदुपरांत १९४६ से १९५१ तक उन्होंने सेण्ट्रल एशियन एण्टिक्विटीज म्युजियम के सुपरिण्टेण्डेण्ट और भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के अध्यक्ष का काम बड़ी प्रतिष्ठा और सफलता के साथ किया। इसके बाद वे नवम्बर १९५१ से काशी विश्वविद्यालय के आर्ट ऐण्ड आरचिटेक्चर कालेज ऑफ इण्डोलॉजी (भारती महाविद्यालय) में प्रोफेसर रहे। सन् १९५२ में लखनऊ-विश्वविद्यालय में राधाकुमुद मुकर्जी व्याख्यान-निधि की ओर से व्याख्याता नियुक्त हुए थे। व्याख्यान का विषय 'पाणिनि' था। वे निम्नलिखित सुविख्यात और सुप्रतिष्ठित संस्थाओं के सभापति भी हो चुके हैं—भारतीय मुद्रा-परिषद् (नागपुर), भारतीय संग्रहालय परिषद् (पटना), इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, सेक्सन प्रथम (कटक) और आल इण्डिया ओरियेण्टल कांग्रेस, फाइन आर्ट सेक्सन (बम्बई)। हिंदी में उनके जो तीन निबंध संग्रह निकल चुके हैं, वे उनकी अद्भुत मेधा-शक्ति के परिचायक हैं। उक्त संग्रहों के नाम ये हैं—१ उरुज्योति (वैदिक निबंध), २. पृथ्वीपुत्र (जनपदीय निबंध) तथा ३. कला और संस्कृति (कला और संस्कृति-विषयक निबंध)। यह ग्रंथ उनकी चौथी कृति है।

हिंदी मे सस्कृत-साहित्य के इतिहास लिखने-वाले विद्वानो और सस्कृत-साहित्य के पारखी पाश्चात्य मनीषियो ने बाणभट्ट के व्यक्तित्व और कवित्व के सबध मे जो उद्गार व्यक्त किये है, उन सबका यदि सकलन कर दिया जाय, तो एक खासी प्रशस्तिमाला अवश्य बन जायगी और महाकवि की विशेषताओं की कुछ झलक भी मिल जायगी, पर वह बात पैदा न होगी जो डा० अग्रवाल ने पैदा की है। उन्होंने महाकवि का जो मर्मोद्घाटन किया है, जिस रूप मे महाकवि को हमारे सामने रखा है, वह अभूतपूर्व ही प्रतीत होता है। एक तरफ तो उनकी प्रतिभा के आलोक ने महाकवि के सघन गद्य-गगन को उद्भासित कर दिया है, दूसरी तरफ उनके मनश्चक्षु महाकवि के गहन गद्य-गह्वर में गहराई तक पैठकर सास्कृतिक कातिवाले अनूठे रत्न निकाल लाये है। वास्तव मे डाक्टर अग्रवाल ने महाकवि का अतःपट खोल दिया है। साथ ही, पुरातन प्रामाणिक चित्रों से अलकृत करके एकत्र ही काव्य के दोनों रूप उपस्थित कर दिये है। इस प्रकार यह ग्रथ हिन्दी पाठकों के लिए जहाँ एक नेत्र-महोत्सव है वहाँ चित्त-प्रसादकर भी।

परिषद् के प्रकाशनाधिकारी श्रीअनूपलाल मण्डल ने इस ग्रथ के चित्रो के तैयार कराने और उन्हे सजा कर पुस्तक के शीघ्र निकालने में जो अहर्निश तत्परता दिखलाई है, उसके हम कायल है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् को सतोष है कि उसके द्वारा बिहार के एक विश्वविख्यात महाकवि की रचना इतने रमणीय रूप मे प्रकाशित हो सकी। आशा है कि बाणभट्ट के साहित्य पर हमारे मननशील ग्रंथकार का जो गंभीर स्वाध्याय चल रहा है, उससे निकट-भविष्य में ही हिन्दी साहित्य को बहुमूल्य सास्कृतिक निधियाँ प्राप्त होंगी। तथास्तु।

श्रीरामनवमी
सं० २०१०

शिवपूजन सहाय
परिषद्-मत्री

विषय-सूची

प्रथम उच्छ्वास

(वात्स्यायन वंश-वर्णन) पृ० १-३०

दूसरा उच्छ्वास

(राजदर्शन) पृ० ३१-५०

तीसरा उच्छ्वास

(राजवंश-वर्णन) पृ० ५१-६२

चौथा उच्छ्वास

(चक्रवर्ति-जन्म-वर्णन) पृ० ६३-८६

पाँचवाँ उच्छ्वास

(महाराज-मरण-वर्णन) ८७-११४

छठा उच्छ्वास

(राजप्रतिज्ञा-वर्णन) पृ० ११५-१३५

सातवाँ उच्छ्वास

(छत्रलब्धि) १३६-१८४

आठवाँ उच्छ्वास

(विन्ध्याद्रि निवेशन) १८५-२०२

(परिशिष्ट १) २०३-२१६

(परिशिष्ट २) २१७-२२४

चित्र-सूची

फलक १

फलक २

फलक ५

फलक ६

फलक ७

फलक ८

फलक ९

चित्र ३७ (पृ० ६७)—तन्त्रीपटहिका जो डोरी से गले में लटकाकर बजाई जाती थी। कोटा के दरा नामक स्थान में गुप्तकालीन शिव-मंदिर के वास्तुखंड पर उत्कीर्ण मूर्ति से (उत्तरप्रदेश इतिहास-परिषद् की पत्रिका, १९५०, पृ० १९६, पर चित्र है)।

चित्र ३८ (पृ० ६७)—पदहंसक नूपुर या मुडे हुए बाँक कडे।

चित्र ३९ (पृ० ६८)—कंधों के दोनों ओर फहराते हुए उत्तरीय छोर (मथुरा स्मिथ, का जैन स्तूप, फलक १९)।

चित्र ४० (पृ० ६८)—बच्चे के गले में बघनख का कठुला (भारत-कलाभवन, काशी में गोवर्धनधारी कृष्ण की गुप्तकालीन मूर्ति से)।

फलक १०

चित्र ४१ (पृ० ६८)—बच्चों का काक-पक्ष केश-विन्यास।

चित्र ४२ (पृ० ६८)—हरिहर-मूर्ति का मस्तक। दाहिने आधे भाग में शिव का जटा-जूट और वामार्ध में विष्णु का किरीट अंकित है। (मथुरा से प्राप्त हरिहर-मस्तक, गुप्तकाल, मथुरा-संग्रहालय, सं० १३३६, उत्तरप्रदेश इतिहासपरिषद् की पत्रिका, १९३२, फलक १८)।

चित्र ४४ (पृ० ७१)—गुप्तकालीन मकरमुखी टोटी। (भारत कलाभवन में सुरक्षित)।

चित्र ४५ (पृ० ७४)—बाँधनू की रंगाई से तैयार की गई भाँत-भतीली चूनडी।

चित्र ४६ (पृ० ७५)—टेढी चाल के ठप्पों की छपाई से युक्त उत्तरीय। अजन्ता के चित्र से लिया गया। इसमें हंस की आकृति के ठप्पों का हंस-दुकूल दिखाया गया है। बाण ने पल्लव या फूल-पत्तियोंवाली छपाई (कुटिलक्रम-रूप-क्रिय-माणपल्लवपरभाग) का वर्णन किया है।

चित्र ४७ (पृ० ७६)—भंगुर उत्तरीय या भाँजा हुआ चुन्नटदार दोपट्टा, जो गोलिया कर तहाया जाता था और बेंत की करंडी में रक्खा जाता था। अहिच्छत्रा के गुप्तकालीन शिवमंदिर से प्राप्त मिट्टी की मूर्ति (सं०३०२) के परिधान को देखने से ही बाण का 'भंगुर उत्तरीय' पद स्पष्ट समझ में आता है।

फलक ११

चित्र ४३ (पृ० ६९)—कटिप्रदेश जिसके पार्श्वभाग मानो खराद पर चढाकर तराशे गए हैं (उल्लिखित पार्श्व से युक्त पतला और गोल मध्य भाग)। मथुरा से प्राप्त गुप्तकालीन विष्णुमूर्ति (ई० ६)। इसके मस्तक में बीच में पत्रभंग-मकरिका, नीचे पद्मराग मणि और ऊपर शेखर में मुक्तामाल का उद्गिरण करते हुए सिंहमुख आभूषण है (दे०चित्र २), गले में आमलकफलानुकारि मुक्ताफल की एकावली और नीचे छोटे मोतियों का अर्धहार, कंधे पर कनक यज्ञ सूत्र, भुजाओं पर केयूर, वैजयन्ती माला, कटिप्रदेश में तरंगित अधोवस्त्र के ऊपर कसा हुआ गोल नेत्रसूत्र या पटका है जिसका बाण ने हर्ष की वेश-भूषा में उल्लेख किया है (पृ०४६)। मूर्ति के कटिप्रदेश के दोनों पार्श्वभाग

छँटे हुए है, शरीर की अगलेट मानो खराद पर तराशी गई है। गुप्तकालीन मूर्तियो के ऊर्ध्वकाय या बदामा भाग की यह विशेषता कुषाणकालीन मूर्तियो से अलग पहचानी जाती है।

फलक १२

चित्र ४८ (पृ०८०)—मोतियो के झुग्गो से खचित स्तवरक नामक ईरानी वस्त्र। अहिच्छत्रा से प्राप्त सूर्य मूर्ति (स० १०२) का कोट और नर्तकी-मूर्ति (स० २८६) का घाघरा इसी वस्त्र के बने है (अहिच्छत्रा को मृण्मय मतिया, रेखाचित्र १६-१७)।

चित्र ४९ (पृ०८५—वर वधू के चतुर्थी कर्म के लिए सम्पादित वासगृह, चादर से ढका हुआ पलग, सिरहाने तकिया, गोल दर्पण, पार्श्व मे काचन आचामरुक (आचमनचरुक) और भृगार (अजन्ता चित्र, औध कृत अजन्ता फलक ५७)

फलक १३

चित्र ५० (पृ० ८६)—जालगवाक्षो (झरोखो से झाँकते हुए स्त्री मुख। गुप्तकालीन वास्तुकला।

चित्र ५१ (पृ० ९१)—धवलगृह के भीतर त्रिगुण तिरस्करिणी (तिहरी कनात से) तिरोहित वीथी मे बैठे हुए राजा और रानी। अजन्ता के चित्र से (औध-कृत, अजन्ता, फलक ६७)। पहली छोटी तिरस्करिणी राजा के ठीक पीछे डोरी पर लटकी है, दूसरी उसके पीछे खम्भो के भीतर उससे उँची है, और तीसरी खम्भो से बाहर है। अजन्ता के इस चित्र से ही धवलगृह के अन्तर्गत त्रिगुण तिरस्करिणी से तिरोहित सुवीथी का बाणकृत वर्णन स्पष्ट होता है। देखिए धवलगृह के चित्र मे चतु शाल के सामने पथ और बीच मे सुवीथियाँ। पथ और वीथियो के बीच मे कनात का पर्दा लगाया जाता था। पथ मे लोगो के आने जाने का मार्ग था, किन्तु सुवीथी मे राजाज्ञा से ही प्रवेश सम्भव था।

फलक १४

चित्र ५१ अ (पृ० ९१)--धवलगृह के भीतर वीथी मे प्रवेश करने के लिये पक्षद्वार। अजन्ता के चित्र से (औधकृत अजन्ता, फलक ७७)

चित्र५२ (पृ० ९६)—तरगित उत्तरीयाशुक (लहरिया दुपट्टा) देवगढ गुप्तकालीन मंदिर की मूर्ति से सातवी शती मे और उसके बाद की मूर्तियो के परिधान की यह विशेषता थी।

चित्र ५३ (पृ० ९६)--धम्मिल केशरचना या बालो को समेटकर एक साथ बाँधा हुआ जूडा। यह केशविन्यास दक्षिणभारत (तमिल द्रमिल धम्मिल) से लगभग गुप्त-काल मे उत्तर मे आया। अजन्ता चित्र से (औध-कृत अजन्ता, फलक ६९)।

फलक १५

चित्र ५४ (पृ० ९७)— पताका लगी हुई प्रास-यष्टि लिए हुए राजपूत अश्वारोही। मध्य-

कालीन राजपूत मुद्रा से ।

चित्र ५५ (पृ० ६६)—चाँदी का हंसाकृति पात्र (राजत-राजहंस) । तक्षशिला की खुदाई में प्राप्त ।

चित्र ५६ (पृ० ६६) --इस बुद्ध मूर्ति में गुप्तकालीन मग्नांशुक पट (शरीर से सटी हुई झीनी चादर और उसके अन्त भाग में छाती पर पतली डोरी (तनु लेखा) स्पष्ट दिखाई देती हैं । मूर्तियों में प्राप्त इन विशेषताओं से ही बाण के 'मग्नांशुक पटान्ततनु ताम्रलेखालाञ्छित लावण्य' पद का अर्थ स्पष्ट होता है ।

चित्र ५७ (पृ० १०२)--कुब्जिका (अष्टवर्षा) परिचारिका । मथुरा-महोली से प्राप्त 'मधुपान' दृश्य में अंकित घूर्णित स्त्री और उसकी कुब्जिका (मथुरा संग्रहालय की परिचय पुस्तिका, फलक ११) ।

फलक १६

चित्र ५६ (पृ० १२०)—अष्टमंगलकमाला । मथुरा से प्राप्त जैन आयागपट्ट से । शेष दो मंगलकमालाएँ साँची स्तूप के स्तम्भ पर अंकित हैं (मार्शलकृत साँची महास्तूप, भाग २, फलक ३७) ।

फलक १७

चित्र ५८ (पृ० ११७)—शशांक की स्वर्णमुद्रा । शिव और नन्दी, एवं शशांक मंडल की आकृति से अंकित (सी० जे० ब्राउन, क्वाइन्स ऑफ इंडिया, फलक ५, मुद्रा १२) ।

चित्र ६० (पृ १२१)—गजमस्तक से अलंकृत भुजाली का कोश । अजन्ता गुफा में चित्रित मारधर्षण चित्र से (औंधकृत अजन्ता, फलक ३१, और ७६) ।

चित्र ६१ (पृ० १२६)—हाथ में डंडा लिए हुए प्यादा । अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी की मूर्ति सं० १९३) ।

चित्र ६२ (पृ० १३०)—कर्पटी नामक हस्ति-परिचारक जिनके मस्तक पर प्रभुप्रसाद के प्राप्त चीरा या फीता (पटच्चरकर्पट) बँधा हुआ होता था । औंधकृत अजन्ता, फलक ३७) ।

चित्र ६३ (पृ० १३४)—कोटवी-संज्ञक नंगी स्त्री । अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी की मूर्ति (सं० २०३-२०४) ।

चित्र ६४ (पृ० १३६)—भद्रासन । (औंधकृत अजन्ता, फलक ४१)

फलक १८

चित्र ६५ (पृ० १३८)—हर्ष की वृषांकित मुद्रा, सोनीपत से प्राप्त (फ्लीट सम्पादित गुप्त-अभिलेख, फलक ३२ बी०) ।

चित्र ६६ (पृ० १४३)—घोड़ों की सजावट के लिये लवणकलायी नामक आभूषण । अमरावती स्तूप के शिलापट्ट से ।

चित्र ६७ (पृ० १४७, १८६)—भस्त्राभरण (धौंकनी की तरह चौड़े मुँह का शकदेशीय तरकश, अर्ली एम्पायर्स आफ सेन्ट्रल एशिया, पृ० १३९) ।

चित्र ६८ (पृ० १४८)—घोडे की काठी में आगे की ओर लगे हुए लकडी के दो डडे या नले। (औधकृत अजन्ता, फलक ३५, गुफा १७ विश्वन्तर जातक के दृश्य से)।

फलक १९

चित्र ६९ (पृ० १४८)—स्वस्थान (तग मोहरी का पाजामा)। देवगढ़ की मूर्ति से।

चित्र ७० (पृ० १४९)—पिंगा (चौडी मोहरी की पिडलियो तक लम्बी सलवार। अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी की मूर्ति स० २५२)।

चित्र ७१ (पृ० १५०)—सतुला (चौडी मोहरी का धारीदार घुटन्ना। अजन्ता गुफा १७ से। पुरुष और स्त्री दोनो रगीन नीली पट्टियो की सतुला पहने हैं। औधकृत अजन्ता, फलक ६८, पुरुष-मूर्ति, फलक ७३। स्त्री-मूर्ति) रंगीन फलक, २४

चित्र ७२ (पृ० १५०)—कचुक। नीले रग का कंचुक पहने स्त्री परिचारिका, अजन्ता गुफा १ (औंधकृत अजन्ता, फलक २६)। श्वेत रग का कचुकपहने स्त्री-परिचारिका, अजन्ता गुफा १७(औधकृत अजन्ता, फलक ६७)। रगीन फलक २४।

चित्र० ७३ (पृ० १५१)—वारबाण (घुटनो तक नीचा ईरानी कोट। मथुरा से प्राप्त की मूर्ति (मथुरा सग्रहालय स० १२५६)।

चित्र ७४ (पृ० १५२)—चीनचोलक, चीन देश का लम्बा चोगा, धुराधुर खुले गले का (कनिष्क की मूर्ति से), तिकोनिया गले का (मथुरा से प्राप्त चष्टन की मूर्ति से)।

फलक २०

चित्र ७५ (पृ० १५३)—कूर्पासक (कोहनी तक आधी बाँह की, विना बाँह की, और पूरी बाँह की फतुई)। विना बाह की (अजन्ता गुफा १७, यशोधरा का चित्र, औध कृत अजन्ता फलक ७२), आधी बाँह की (अजन्ता गुफा १७, औंध० फलक ५७), पूरी बाँह की (अजन्ता गुफा १, औंध० फलक ७५, ईरानी नर्तकी)।

चित्र ७६ (पृ० १५३)—आच्छादनक (कधो पर छोटी हल्की चादर, सामने छाती पर गठियाई हुई)। मथुरा से प्राप्त पिगल मूर्ति (सं०५१३) से, और अजन्ता गुफा १७ मे लाजवर्दी रग का धारीदार आच्छादनक ओढे हुए सासानी सैनिक (औधकृत अजन्ता, फलक ३३)।

चित्र ७७ (पृ० १५४)—बालपाश या केशो को यथास्थान रखने के लिये सिर पर बाँधने का सोने का पात नामक आभूषण। अजन्ता गुफा १ में नागराज-द्रविडराज (औधकृत अजन्ता, फलक ३३)।

चित्र ७८ (पृ० १५५)—पत्राकुर का कर्णपूर या भूम का कुंडल और कर्णोत्पल (औधकृत अजन्ता, फलक ३३)।

चित्र ७९ (पृ० ११५)—खोल या कुलह सज्ञक ईरानी टोपी। अजन्ता गुफा १, नागराज-द्रविडराज-दृश्य मे ईरानी परिचारक (औधकृत अजन्ता, फलक ३३)।

चित्र ८० (पृ० १५५)—केसरिया रंग के उत्तरीय से आच्छादित सिर, चीनी वेष-भूषा (रगीन फलक २४)।

फलक २१

चित्र ८१ (पृ० १५६)—मोर के पंखो की भाँति का शेखर। अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी की मूर्तियाँ सं० २२३, २२७।

चित्र ८२ (पृ० १५७)—कार्दरंग देश के चमड़े की बनी हुई ढाले, छोटा चारियो के घेरे से सुशोभित। अहिच्छत्रा मृण्मयमूर्ति स०१२३, देवगढ के मंदिर से प्राप्त मूर्ति पर ढाल की चौरिया अपेक्षाकृत बड़ी हैं।

चित्र ८३ (पृ० १५८)—महाहार (दोनो कन्धो पर फैला हुआ बडा हार)। अजन्ता गुफा १ में वज्रपाणि बोधिसत्त्व के चित्र में (औध कृत अजन्ता, फलक ७८)।

चित्र ८४ (पृ० १६१)—वठ (हाथी से लडनेवाले पट्ठे)। अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी की मूर्ति, स० २६१।

फलक २२

चित्र ८५ (पृ० १६७)—राजछत्र, मोतियो के बने हुए जाले का परिसर, चौरियो की किनारी और पंख फैलाए हुए हस के अलकरण से युक्त। औधकृत अजन्ता, फलक ७९ में छत्र के नीचे मौक्तिक जाल परिसर लगा हुआ है और किनारे पर छोटी चौरियो की गोट है।

चित्र ८६ (पृ० १७७)—शोकपट। मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित बुद्ध के परिनिर्वाण दृश्य से।

चित्र ८७ (पृ० १८०)—कटकित कर्करी (कटहल के फल जैसी छोटी गगरी, जिसकी जिल्द पर छोटे काँटे हैं) बिना पत्तो की, अहिच्छत्रा की खुदाई मे प्राप्त। पत्तो से ढकी हुई (इसके लिये मैं अपने मित्र श्री ब्रजवासीलालजी सुप्रिण्टेण्डेण्ट पुरातत्त्व-विभाग का अनुगृहीत हूँ)।

फलक २३

चित्र ८८ (पृ० १८२)—चोटकुट (चोट नामक अमृतबान) अजन्ता गुफा १ के चित्र से (औधकृत अजन्ता, फलक ३९)।

चित्र ८९ (पृ० १८४)—गडकुसूल (मिट्टी की गोल चकरियो को ऊपर नीचे जमाकर बना हुआ कुठिला या डेहरी। खैरागढ जिला बलिया के प्राचीन ढूह से (इस चित्र के लिये मै सारनाथ सग्रहालय के क्यूरेटर श्री अद्रीश बनर्जी का कृतज्ञ हूँ।

चित्र ९० (पृ० १८६)—शबर युवक का मस्तक अजन्ता, गुफा १ मे द्रविडराजनागराज चित्र से।

चित्र ९१ (पृ० १९०)—चैत्य (स्तूप) मूर्तियो से अ कित पकाई मिट्टी की लाल मुहरें (पाटलमुद्राचैत्यक मूर्ति)। भारतकला-भवन-सग्रह से।

चित्र ९२ (पृ० १९८)—मोतियो की एकावली माला जिसके बीच मे नीलम की गुरिया है (रगीन फलक २४)।

फलक २४

रंगीन चित्र ७१ (सतुला), चित्र ७२ (कंचुक), चित्र ८० केसरिया शिरोवस्त्र, चित्र ९२ (एकावली)।

फलक २५

हर्ष का स्कन्धावार (सैनिक छावनी)

फलक २६

हर्ष का राजकुल

फलक २७

धवलगृह का भूमितल—चतुःशाल या सजवन, एवं सुवीथियो का चित्रण ।

फलक २८

धवलगृह का ऊपरी तल—प्रग्रीवक, चन्द्रशाला और प्रासाद-कुक्षियां ।

भूमिका

ये व्याख्यान बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के आयोजन में १३–१७ मार्च १९५१ को दिए गए थे। इनमें सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से बाण के हर्षचरित का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

बाण के साथ मेरा प्रथम परिचय १९२० के लगभग हुआ। उनकी 'कादम्बरी' के अनेक गुणों से मेरा मन आकृष्ट हुआ। पीछे 'हर्षचरित' से भी परिचय हुआ। पर इन ग्रन्थों के बाहरी रूप से आकृष्ट हुए पाठक को शीघ्र ही इनकी भाषा के वज्रमय ठाठ से भी निपटना आवश्यक हो जाता है। अतएव मन के एक कोने में यह अभिलाषा पड़ी रही कि कभी अनुकूल अवसर मिलने पर डूबकर इन ग्रन्थों का अध्ययन करूँगा। सौभाग्य से वह चिर-प्रतीक्षित अवसर मुझे मिला जब बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् की ओर से उसके कर्मण्य मन्त्री ने पटना व्याख्यानों के लिये मुझे आमन्त्रित किया। मैंने बाण को अपने व्याख्यानों के लिये चुना और शीघ्र ही हिरण्यबाहु शोण की कछारभूमि के कल्पनाशील, मेधावी, पैनी आँखवाले, हँसतामुखी उस महान् पृथिवीपुत्र का चित्र मेरे साहित्यिक मानसलोक में भर गया। अजन्ता के एकाश्मक लयन-मण्डपों में लिखे चित्र अपने समकालीन भारत का जो समृद्ध रूप प्रस्तुत करते हैं, उससे कम रूप-सम्पत्ति शब्द और अर्थ के द्वारा बाण में नहीं है। बाण के ग्रन्थ भारतीय जीवन के चलचित्र हैं। राजाओं के अन्त पुर, बाह्यास्थान-मंडप (दरबार-आम), भुक्तास्थानमण्डप (दरबार खास), स्कन्धावार (छावनी), सैनिक-प्रयाण आदि से लेकर विन्ध्याटवी के जगली गाँवों मे रहनेवाले किसानों और आश्रमो के दिवाकरमित्र जैसे ज्ञान-साधकों के अनेक सूक्ष्म चित्र बाण ने खीचे है जिनकी सूची पृ० ९–१२ पर दी गई है। इन चित्रों के सम्पूर्ण अर्थ को समझने के लिये हमें अपने मन को पुन उसी युग में ले जाना होगा जहाँ बाण के अनेक शब्दो का अर्थ जो आज धुँधला हो गया है, निश्चित और सुस्पष्ट था। उन चित्रों की प्रत्येक रेखा विशेष-विशेष भाव की अभिव्यक्ति के लिये खींची गई थी। इस दृष्टिकोण के प्राप्त हो जाने पर कवि के लंबे वर्णनों से ठिठकने के स्थान मे हम उन्हें अर्थाकर पूरा रस लेना चाहेंगे। यही बाण को समझने का यथार्थ दृष्टिकोण है।

बाण के समग्र अध्ययन के लिये निम्नलिखित कार्य पूरा करना आवश्यक ज्ञात होता है—

१ कादम्बरी का प्रामाणिक संस्करण जिसमें हस्तलिखित प्रतियों और प्राचीन टीकाओं की सहायता से पाठ का संशोधन किया गया हो।

२ कादम्बरी का हिंदी-भाष्य जिसमें पूर्व टीकाओं की छानबीन करके श्लेषों मे छिपे हुए अर्थों को प्रकट किया जाय।

३ हर्षचरित का संख्या १ की भाँति तैयार किया गया प्रामाणिक संस्करण। इस विषय में काश्मीरी प्रतियों की सहायता से फ्यूहरर का सस्करण अच्छा है, पर प्रामाणिक और सुरुचि-सम्पन्न मुद्रण के साथ नया संस्करण तैयार करने की आवश्यकता है। ऐसे संस्करण में उच्छ्वासों को अलग-अलग अनुच्छेदों (पैराग्राफ) में बाँटकर अक और उपयुक्त पृष्ठ-शीर्षक देना उचित होगा जिससे ग्रन्थ का अभ्यास और उद्धरण देना सरल हो जाय।

४ हर्षचरित की विस्तृत टीका जिसमें शब्दों के श्लिष्ट अर्थ और पाठभेदों का विचार किया जाय।

५ कादम्बरी और हर्षचरित का सम्मिलित शब्दकोश जो बाण की शब्दानुक्रमणी (इडेक्स वरबोरम) का काम दे। इस प्रकार का कोश सस्कृत-शब्दावली के विकास का अध्ययन करने में सहायक होगा।

६ हर्षचरित और कादम्बरी के आधार पर बाण की सम्मिलित सास्कृतिक सामग्री का ऐतिहासिक विवेचन। इस प्रकार का कुछ कार्य हर्ष-चरित के लिये प्रस्तुत पुस्तक मे किया गया है। पर पूरे कार्य को एक विशिष्ट पुस्तक का ही विषय बनाना उचित है।

७ बाण का साहित्यिक अध्ययन जिसमें उनकी उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और वर्णनों की नवीनता का तुलनात्मक विवेचन किया जाय। भारतीय प्रकृति के पट-परिवर्तन मे बाण ने कितने प्रकार के रंगों को अपने शब्दों में उतारा है—अकेले इसका विचार भी कम रोचक न होगा। जब वे शीत ऋतु की प्रात कालीन धूप की उपमा चमचम करते फूल के बर्तनों से, अथवा हर्ष के द्वारा पिता के लिये दिए हुए प्रेत-पिण्डों के रग की उपमा मोम के गोलों से, अथवा प्रभाकरवर्द्धन की चिता के फूलों की उपमा चिरौटे के गले के रंग से देते है, तो ऐसा लगता है कि जानी-पहचानी वस्तुओं के निरीक्षण और वर्णन में वे कोई नया अध्याय जोड़ रहे हैं। विष्णु और शिव की कितनी लीलाओं का उन्होंने प्रसंगवश उल्लेख किया है, इसकी सूची पुराणों की लीलाओं के विकास को समझने में सहायक होगी। वृक्षों और पुष्पों के सम्बन्ध मे बाण की सामग्री भारतीय वनस्पति-जगत् का समृद्ध चित्र ही माना जा सकता है। मानवी सौन्दर्य का वर्णन और तद्वाची शब्दों की विकसित सामग्री का परिचय बाण और कालिदास के तुलनात्मक अध्ययन से ही सामने आ सकेगा। सर्वांगपूर्ण साहित्यिक अध्ययन के अन्तर्गत इस प्रकार के और भी दृष्टिकोण हो सकते है।

मेरा पहले विचार था कि ऊपर अक छ मे निर्दिष्ट कादम्बरी और हर्षचरित की पूरी सास्कृतिक सामग्री का ऐतिहासिक विवेचन तैयार करूँगा। किन्तु शीघ्र ही मुझे प्रतीत हुआ कि इस प्रकार के पुष्कल कार्य के लिये पहले दोनों ग्रन्थो का पृथक्-पृथक् अध्ययन आवश्यक है। अतएव हर्षचरितक की सास्कृतिक टीका के रूप में ही इस कार्य को सीमित किया गया। बाण के भावी अध्ययन के लिये मेरा यह प्रयत्न भूमि निराने के समान ही है। विचार है कि कादम्बरी के विषय में भी इस प्रकार की सास्कृतिक टीका पूरी हो। तभी दोनों ग्रन्थों की सम्पूर्ण सास्कृतिक सामग्री का एक साथ विवेचन सम्भव होगा। बाणकालीन सस्कृति के विविध अंगों का पूरा चित्र भी इसी प्रकार के अध्ययन से प्राप्त होगा। उदाहरण के लिये वेषभूषा को लें। क्षौम और अंशुक में क्या अन्तर था? अंशुक कितने प्रकार के होते थे? इन प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त रोचक है। जैसे, रंगों की दृष्टि से नीलांशुक की जाली मुँह पर डाली जाती थी (३२), नीलांशुक की चादर (प्रच्छद-पट) पलंग पर ढकने के काम आती थी (का० १८६), पाटल पट्टांशुक अनुमरण करनेवाली सती का मंगल-चिह्न माना जाता था (१६५), मन्दाकिनी के प्रवाह की भाँति सितांशुक व्रत पालनेवाली स्त्रियों का वेष था (६०), इन्द्रायुधजालवर्णांशुक (सतरगी इन्द्रधनुष की छटावाला वस्त्र) उस समय (का० १७६) श्रेष्ठ माना जाता था जो बहुधा अजन्ता के चित्रों में मिलता है जिसमें कई रंगों की पट्टियाँ डाल-

कर रँगाई की जाती थी, रक्तांशुक जिसका शिरोवगुंठन मालती और चण्डाल-कन्या के वेष में कहा गया है, वर्णांशुक के उदाहरण हैं। और भी कुचांशुक (११७), मुक्तांशुक (मोतियों का बना हुआ अंशुक, २४२), बिसतन्तुमय अंशुक (१०), सूक्ष्म-विमल-अंशुक (६), मग्नांशुक शरीर से सटकर 'डूबा हुआ' सूक्ष्म रेशमी अंशुक, सुकुमार चीनांशुक (३६), तरंगित उत्तरीयांशुक (१६३), आदि विभिन्न प्रकार के अंशुकों का अध्ययन उत्तर-गुप्त-कालीन संस्कृति का उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार पुरुषों की वेष-भूषा, स्त्री पुरुषों के आभूषण आदि के कितने ही अध्ययनों की सामग्री बाण के ग्रन्थों में विद्यमान है। आशा है, इन व्याख्यानों से उस प्रकार के विवेचन की कुछ आँख पाठकों को प्राप्त होगी। सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से भारतीय साहित्य का अध्ययन अभी बहुत-कुछ करना शेष है। अश्वघोष से श्रीहर्ष तक के एक सहस्र वर्षों का भारतीय सांस्कृतिक जीवन का अतिसमृद्ध चित्र संस्कृत के काव्य, नाटक, चम्पू और कथा-साहित्य से प्राप्त किया जा सकता है। यह ऐसी सामग्री है जो किसी शिलालेख या ताम्रपत्र में तो नहीं लिखी, पर शताब्दियों से हमारे सामने रही है। उसके पूरे संकेत और अर्थ को अब समझना उचित है। भारतीय इतिहास के चित्र में पूरा रंग भरने के लिये यह आवश्यक कर्तव्य है।

बाण के अप्रज्ञात और अस्फुट अर्थों को समझने में भारतीय कला की उपलब्ध सामग्री से अत्यधिक सहायता मिली है। यदि यह सामग्री सुलभ न होती तो बाण के कितने ही अर्थों को ठीक प्रकार से समझना कठिन होता। उदाहरण के लिये, 'दिङ्नागकुम्भकूट-विकटबाहुशिखर (पृ० १२०-१२१) का अर्थ उलझा हुआ था, अन्त में अजन्ता गुफा के 'मार-धर्षण' चित्र में हाथी के मस्तक से अलंकृत 'भुजाली' के मिल जाने से ही अर्थ ठीक-ठीक लग सका। बाहु शब्द का यह अर्थ किसी कोश में नहीं दिया गया, पर बाण के समय में अवश्य प्रयुक्त होता था। इसी प्रकार पृ० ६८-१०२ तक 'मग्नांशुकपटान्तनुताम्रलेखा' आदि १७ शब्दों के समास का अर्थ समझने में भी देर तक जूझना पड़ा और अन्त में तक्षशिला से प्राप्त हंसाकृति चाँदी के पात्र (राजत-राजहंस) की जानकारी से ही बाण के अर्थ के विषय में मैं आश्वस्त हो सका। इसका कारण स्पष्ट है। बाण ने समकालीन जीवन से अपने वर्णन लिए है। शिल्पी और चित्रकारों ने उसी जीवन को कला में स्थायी कर दिया है। अजन्ता की जिन शिल्पकृतियों और चित्रों को हम आज देख रहे है उन्हें ही कालिदास और बाण ने भी देखा था। काव्य और कला दोनों जीवन के समान सत्य से समृद्ध बनी हैं। वे एक दूसरे की व्याख्या करती है। मैं समझता हूँ, इस दृष्टि से भी भविष्य में भारतीय साहित्य का अध्ययन होना उचित है।

हर्षचरित के कई स्थल ऐसे हैं जो पहली बार ही यहाँ स्पष्ट मिलेंगे। मेरे सामने सदा यह प्रश्न टकराता था कि शब्द के बाहरी आडम्बर से ऊपर बाण ने वास्तविक जीवन की कौन सी बात कही है? शब्द तो ठीक है, पर बात क्या हुई, जबतक इसका स्पष्टीकरण न हो तबतक सन्तोष नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिये सैनिक प्रयाण के ७७ समासोंवाले लंबे वर्णन का अध्ययन करते हुए यह प्रश्न हुआ कि यह वर्णन क्रमबद्ध है या मनमाने ढंग से है। पहली बात ही ठीक ज्ञात हुई, और इस दृष्टिकोण से छावनी में अति सवेरे ३ बजे बाजे बजने से लेकर क्रम-क्रम से होनेवाली सैनिक तैयारी का चित्र स्पष्ट होने लगा। इसी वजन पर 'व्यवहारिन्' पद का अर्थ लग सका। कणे और कावेल ने 'व्यापारी'

या 'सरकारी अधिकारी' अर्थ किया है, पर सोती हुई सेना में सबसे पहले व्यापारियों के पहुँचने की बात जमती नहीं। इसीसे 'व्यवहारिन्' का 'बुहारी लगानेवाला' यह कोश-सम्मत अर्थ हाथ लगा। प्रकरण-सगति या वजन के आधार पर ही पृ० १४२ पर कीमती सवारियों के वर्णन में 'कुप्रयुक्त' (=घुड़े) इस शब्द को अपपाठ मानते हुए उसके स्थान पर '*कुप्ययुक्त' (=पीतल की जड़ाऊ, बहली आदि) इस बुद्धिगम्य अन्य पाठ का सुझाव दिया गया है। पाठों के सम्बन्ध में इस प्रकार के निजी सुझाव बहुत ही कम दिए जाते हैं, पर प्रामाणिक सम्पादनविधि के अन्तर्गत यह मान्य शैली अवश्य है, जैसा पूना से प्रकाशित होनेवाले महाभारत के संस्करण में भी कुछ स्थलों पर किया गया है। फिर भी यह लिखना आवश्यक है कि अधिकांश स्थलों में जो क्लिष्ट पाठ थे उनसे ही बाण का वास्तविक अर्थ ठीक-ठीक मिल सका। क्लिष्ट पाठों को सरल करने के लिये ही बाद में पाठान्तर कर दिए जाते हैं। वे मूल अर्थ से दूर हटते चले जाते हैं और उनमें कवि या लेखक की अभिमत व्यंजना फीकी पड़ जाती है। उदाहरण के लिये 'भद्राढ्यभविष्यति भुक्तास्थाने दास्यति दर्शनं परमेश्वर निष्पतिष्यति वा बाह्या कक्ष्याम्' (६०) वाक्य में 'आढ्यभविष्यति' (आढ्य भविष्यति) मूल पद का चमत्कारपूर्ण अर्थ यह था—'भाई', क्या सजाए जाते हुए भुक्तास्थानमण्डप (दरबार खास) में सम्राट् दर्शन देंगे, या बाह्यास्थानमण्डप (बाह्यकक्ष्या=दरबार आम) में निकलकर आएँगे? किन्तु 'आढ्यभविष्यति' इस क्लिष्ट पद को बदल कर 'अद्य भविष्यति' पाठ कर दिया गया—'क्या आज सम्राट् से भेंट हो सकेगी?' इत्यादि वाक्य में 'भविष्यति' और 'दास्यति' दो क्रियाएँ हो जाने से 'भविष्यति' पद निरर्थक हो जाता है। एवं भुक्तास्थान और बाह्यकक्ष्या की परिभाषाओं का भेद न समझने से मूल के अर्थ का घोटाला हो गया। काश्मीरी संस्करण में 'भुक्तास्थाने' शुद्ध पाठ टिप्पणी में डालकर 'आस्थान' अशुद्ध पाठ मूल में रख लिया गया। कहीं-कहीं भारतीय प्रथाओं का ठीक परिचय न होने से अर्थ की उलझन उत्पन्न होती रही है, जैसे—'लाज-सक्तु' का अर्थ भुजिया के सत्तू जो प्रचलित आहार है, न समझकर कावेल ने 'दही मिला आटा' और कणे ने 'जौ का आटा' अर्थ किया। अथवा अँधेरी कोठरी में चौड़े मुँह के घड़ों में उगाए जानेवाले यवांकुरों या जवारों की प्रथा को न जानने से 'सेकसुकुमारयवांकुरदन्तुरे' वाक्य का अर्थ पूर्व टीकाओं में अनबूझ पहेली ही बन गया था (पृ० १४)। राज्यवर्द्धन की बुद्धभक्ति (पृ० ११३), शशांक की मुद्रा (पृ० ११७) और दिङ्नाग के स्थूलहस्तावलेप (पृ० १२१) सम्बन्धी श्लेषान्तर्गत अर्थ भी द्रष्टव्य है।

इन उदाहरणों से यह अनुमान किया जा सकता है कि हर्षचरित के प्रामाणिक पाठों का विचार करते हुए उसका शुद्ध संस्करण तैयार करने की आवश्यकता अभी बनी हुई है। क्या ही अच्छा हो, यदि इस कार्य के लिये प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की और अधिक सामग्री मिल सके? श्री आरल स्टाइन कश्मीर से शारदा लिपि में हर्षचरित की कई प्रतियाँ लाए थे, जिनमें से एक प्रति राजानक रत्नकंठ (१७ वीं शती) के हाथ की लिखी हुई और भट्ट हरक के हाथ के संशोधन और टिप्पणियों से युक्त है। वह प्रति केवल पाँचवें उच्छ्वास तक) इस समय आक्सफोर्ड के इण्डिया इस्टीट्यूट के संग्रह में सुरक्षित है[१]।

१ श्री आरल स्टाइन ने २१ नवम्बर १९४० के पत्र में मुझे इस प्रति (जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी, १९१२ में प्रकाशित सूची संख्या १२९) का युद्ध के अनन्तर उपयोग करने की अनुमति प्रदान की थी। अभी तक मैं उस आज्ञा का लाभ नहीं उठा सका हूँ, पर भविष्य में प्रति प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा।

एवं और भी सामग्री मिलने की सम्भावना है। श्रीकृष्णमाचार्य ने अपने संस्कृत के इतिहास में कादम्बरी की ११ टीकाओं का उल्लेख किया है[१], किन्तु हर्षचरित की केवल एक ही प्राचीन टीका उपलब्ध है, वह है शंकरकृत 'सकेत'। ये शंकर पुण्याकर के पुत्र थे और कश्मीर के ज्ञात होते है। उन्होंने अपना अन्य कुछ परिचय नही दिया, केवल अन्तिम श्लोक मे इतना लिखा है कि उन्होंने यह टीका प्राचीन टीकाओ के अनुसार (सम्प्रदायानुरोधत) लिखी। यह टीका केवल गूढार्थ को खोलने के लिये संक्षिप्त शैली मे लिखी गई है जैसा उसके 'संकेत' नाम से ही प्रकट है[२]। निस्सन्देह शकर की टीका बड़ा सहारा देती है और हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए, अन्यथा बाण के शब्दों का अर्थ जानने के लिये हमें न जाने कितना भटकना पड़ता।

पुस्तक की अनुक्रमणिका तैयार करने के लिये मैं आयुष्मान् स्कदकुमार का अनुगृहीत हूँ। श्री अंबिकाप्रसाद दुबे (भारत-कला-भवन, काशी) भी चित्र बनाने के लिये धन्यवाद के पात्र है। सेंट्रल एशियन ऐंटिक्विटीज म्यूजियम के मेरे भूतपूर्व सहकारी (वर्तमान स्थानापन्न) सुप्रिण्टेण्डेण्ट) श्री जे० के० राय का मैं उपकृत हूँ कि उन्होंने राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित बाणकालीन 'त्रिकटक' नामक (दो मोतियों के बीच जड़ाऊ पन्नेवाले) कान के आभूषण का फोटो मुझे भेजा। उसीका रंगीन चित्र बनाने के लिये वहाँ के चित्रकार श्री बिश्त मेरे धन्यवाद के पात्र है। विभागीय फोटोग्राफर श्री देवीदयाल माथुर का उपकार भी मैं नही भूल सकता जिन्होने सहर्ष तत्परता से मेरे लिये कई आवश्यक चित्र सुलभ किए। अपने मित्र श्री बी० बी० लाल का भी मैं ऋणी हूँ कि उन्होंने हस्तिनापुर की खुदाई में प्राप्त 'कटकित कर्करी' (पत्तों से ढका हुआ कटहल के आकार का मिट्टी का पात्र) का चित्र प्रकाशित करने की सुविधा प्रदान की। पुस्तक की पाण्डुलिपि लिखने मे श्रीस्कन्दकुमार और प० तिलकधर ने जो कष्ट किया, उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र है। अन्त में इन व्याख्यानों के अवसर पर पटने मे अपने मान्य सुहृद् श्रीराधाकृष्ण जी जालान से मुझे जो स्वागत और आतिथ्य प्राप्त हुआ उसके लिए मै उनका हार्दिक आभार मानता हूँ। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ जिसने यह ग्रंथ लिखने और समाप्त करने के लिये मुझे प्रेरणा दी और आवश्यक चित्र सम्मिलित करने की सहर्ष स्वीकृति दी।

माघ-शुक्ल-पूर्णिमा, २००६
काशी-विश्वविद्यालय

वासुदेवशरण

---

१. भानुचन्द्र, सिद्धिचन्द्र, तिलकसूरि, हरिदास, शिवराम, वैद्यनाथ, बालकृष्ण, सुरचन्द्र, महादेव, सुखाकर, अर्जुन, घनश्याम—इन टीकाओ के तुलनात्मक अध्ययन से बाण के अर्थों और पाठो की मूल्यवान् सामग्री प्राप्त की जा सकेगी।

२. श्रीकृष्णमाचार्य ने रगनाथ की लिखी हुई अन्य टीका का भी उल्लेख किया है (मद्रास, त्रैवार्षिक ग्रन्थ-सूची, स ३, ३८५८), किन्तु उसके विषय में अभी और कुछ मालूम नही हो सका। इसके लिये कृपया पृ० २२३ पर टिप्पणी देखिए।

आवश्यक टिप्पणी

इस पुस्तक में कोष्ठक में जो अंक दिए गए हैं वे निर्णयसागर प्रेस में मुद्रित हर्ष-चरित के १६२५ में प्रकाशित पंचम संस्करण के हैं। मूलपाठ के लिये उसी संस्करण को देखना चाहिए। सुविधा के लिये प्रत्येक पृष्ठ पर उच्छ्‌वास का अंक और पृष्ठ-शीर्षक दे दिए गए हैं। जहाँ कोष्ठक में संख्या से पहले पृ० संकेत भी है वे पृष्ठांक इन्ही व्याख्यानो के सूचक हैं।

कादम्बरी के लिये मैंने वैद्य-कृत मूल पाठ (पूना ओरिएण्टल एजेंसी से प्रकाशित) का उपयोग किया है। उसके पृष्ठांक कोष्ठक में (का० २५) इस प्रकार दिए गए हैं।

हर्षचरित—
एक सांस्कृतिक अध्ययन

प्रथम उच्छ्वास

महाकवि बाण सम्राट् हर्ष के समय (६०६–६४८ ई०) में हुए। उनके दो ग्रंथ प्रसिद्ध है, हर्षचरित और कादम्बरी[1]। इन व्याख्यानो में मेरा विचार है कि हर्षचरित का एक अध्ययन सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से प्रस्तुत करूँ।

बाण के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए दो बातें मुख्य ज्ञात होती है। एक तो जन्म से ही उनकी बुद्धि बडी गहरी (स्वभावगम्भीरधी) थी, उनकी मेधा का विस्तार बहुत था, जैसे एक बड़े पात्र मे बहुत सी सामग्री समाती है वैसे ही उनके मन में प्रत्येक विषय की अतुलित सामग्री भर जाती थी। दूसरे वे प्रत्येक वस्तु की जानकारी प्राप्त करने के लिये सदा उत्सुक रहते थे। वे कहते है—'अतिपरवानस्मि कुतूहलेन' (६४), अर्थात् किसी नई बात को जानने के लिये मेरे मन में तुरन्त ही कुतूहल का ऐसा वेग उठता है कि मै लाचार हो जाता हूँ। हम आगे देखेंगे कि अजिरवती के किनारे मणितारा गाँव के पास पड़ी हुई हर्ष की छावनी में जब वे हर्ष से मिलने गए, तो महाप्रतीहारों के प्रधान दौवारिक पारियात्र के साथ सम्राट् के समीप जाते हुए उन्हे मार्ग के बाईं ओर एक बाडा दिखाई पड़ा और उन्होंने पूछा कि यह क्या है? और यह जानकर कि वह हर्ष की गजशाला थी जहाँ उनका मुख्य हाथी दर्पशात रहता था, बाण ने कहा—'हाँ, मैने दर्पशात का नाम सुना है, उत्कंठा से मैं परवश हूँ, यदि आपत्ति न हो तो पहले उसी को देख लूँ' (६४)। इस प्रकार गंभीर धारणाशक्ति और जानकारी की पैनी उत्सुकता, इन दो जन्मसिद्ध गुणों से बाण का व्यक्तित्व बना था। साथ ही उनके जीवन के अल्हड़पन और घुमक्कडी प्रवृत्ति ने एक तीसरी विशेषता और पैदा कर दी थी और वह थी ससार का अपनी आँखों से देखा हुआ चौचक अनुभव। उन्होंने घाट-घाट का पानी पिया था, अनेक लोगों से मिले थे और सब तरह की दुनिया देखी थी। 'देशान्तर देखने की उत्कंठा से भरकर मै घर से निकल पड़ा (देशान्तरालोकनकौतुकाक्षिप्तहृदयः गृहान्निरगात्, ४२)। बड़े-बड़े राजकुलों के उत्तम व्यवहार और शिष्टाचार देखे, गुरुकुलों और विद्यापीठों में रहकर वहाँ का जीवन भी देखा कि किस प्रकार वहाँ निरवद्य विद्या अर्थात्

१ पार्वती-परिणय नामक नाटक कादम्बरीकार बाण की रचना नहीं है, किन्तु उसके कर्ता वामनभट्ट बाण नामक एक तैलग देशीय वत्स गोत्री महाकवि थे जो चौदहवीं शती में हुए। वे दक्षिण के राजा वेमभूप (अपर नाम वीर नारायण) के कवि थे जिनके लिये उन्होंने वीरनारायण-चरित नामक काव्य भी लिखा। देखिए वाणी विलास प्रेस से प्रकाशित १९०६ ई० पार्वती परिणय नाटक की श्री र० व० कृष्णमाचार्य की विस्तृत भूमिका। उसका हिन्दी सारांश, श्री जयकिशोरनारायण सिंह साहित्यालंकार कृत लेख में 'महाकवि बाण तथा पार्वती-परिणय,' (माधुरी स० १९८८, पूर्ण संख्या १११, पृ० २८९–२९४)।

उत्तम ज्ञान की साधना की जाती थी। और मै उन गोष्ठियों मे भी शामिल हुआ जिनमे अनमोल बातों का समाँ बँधता था और जो गम्भीर गुणों की खान थी। सूझ-बूझवाले विदग्धजनों की मडलियों में भीतर घुसकर (गाहमान.) उनकी थाह ली और उनमे खोया नहीं गया।' इस प्रकार देशाचार और लोकाचारों का गाढा अनुभव प्राप्त करके और अपने आपको घूमने की खुली छूट देकर जब वे लम्बे अर्से के बाद फिर अपने घर वापस आए तो उनके अन्दर पुश्तैनी विद्या की जो प्रतिभा थी वह स्वाभाविक रस के साथ चमक उठी (पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्मवशोचिता प्रकृतिमभजत्, ४३)।

बाण की बुद्धि चित्रग्राहिणी थी। उसपर फोटो की भाँति प्रत्येक नये चित्र की गहरी छाप पड़ जाती थी जिसमें उन-उन दृश्यों का सागोपाग रूप देखा जा सकता था। सूक्ष्म दर्शन बाण की विशेषता है। पाणिनि के लिये भी काशिकाकार ने लिखा है कि उनकी निगाह वस्तुओं के ब्यौरेवार अवलोकन मे बडी पैनी थी (सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य, सूत्र ४।२।७४)। बाण की सूक्ष्मावलोकनशक्ति और कविसुलभ प्रतिभा के अनेक प्रमाण हर्षचरित और कादम्बरी में मिलते हैं। ये दो ग्रथ भारतीय इतिहास की सास्कृतिक सामग्री के लिये अमृत के झरने है, क्योंकि सौभाग्य से बाण का समय निश्चित है इसलिए यह साक्षी और भी अधिक मूल्यवान् है।

सातवीं शती की भारतीय संस्कृति का रूपचित्रण करने के लिये बाणभट्ट किसी विशिष्ट कला-सग्रह के उस सग्रहाध्यक्ष की भाँति हैं जो प्रत्येक कलात्मक वस्तु का पूरा-पूरा ब्यौरा दर्शक को देकर उसके ज्ञान और आनन्द की वृद्धि करना चाहता है। अथवा, बाण उस महास्थपति के समान है जिसकी विराट् बुद्धि किसी अनगढ़ पहाड में से सूक्ष्मातिसूक्ष्म अग-प्रत्यगों समेत कोई नवीन महाप्रासाद गढ़कर तैयार करती है। बाण वर्णनात्मक शैली के धनी है। तिलकमंजरीकार धनपाल (ग्यारहवीं शती) ने उनकी उपमा अमृत उत्पन्न करनेवाले गहरे समुद्र से दी है। बाण के वर्णन ही उनके काव्य की निधि है। इन वर्णनो से उकताना ठीक नहीं। इनके भीतर पैठकर युक्ति से इनका रस लेना चाहिए। जब एक बार पाठक इन वर्णनों को अणुवीक्षण की युक्ति से देखता है तो उनमें उसे रुचि उत्पन्न हो जाती है, एव बाण की अक्षराडम्बरपूर्ण शैली के भीतर छिपे हुए रसवाही सोते तक वह पहुँच जाता है। उस समय यह इच्छा होती है कि कवि ने अपने वर्णन के द्वारा चित्रपट पर जो चित्र लिखा है उसकी प्रत्येक रेखा सार्थक है और चित्र का समग्र रूप प्रस्तुत करने में सहायक है। जिस प्रकार रगवल्ली की विभिन्न आकृतियों से भूमि सजाई जाती है उसी प्रकार बाण ने अपने काव्य की भूमि का मंडन करने के लिये अनेक वर्णनों का विधान किया है। कभी-कभी रस-लोभी पाठक का मन चाहने लगता है कि यह वर्णन कुछ और अधिक सामग्री से हमारा परिचय कराता, विशेषत: सास्कृतिक सामग्री के विषय मे यह इच्छा उत्कट हो उठती है। महाप्रतिभाशाली इस लेखक ने अपनी विशेष प्रकार की श्लेषमयी वर्णनात्मक शैली के द्वारा जो कुछ हमें दिया है वह भी पर्याप्त है और उसके लिये हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

बाण के सास्कृतिक अध्ययन का अन्तर्यामी सूत्र कुछ गहराई तक उनके शास्त्र में पैठने पर हमारे हाथ आया। वह यह दृष्टिकोण है कि बाण ने हर्षचरित और कादम्बरी अपने समकालीन सातवीं शती के पाठकों के लिये लिखे थे जबकि वह सस्कृति जीवित थी

और उसके पारिभाषिक शब्दों का निश्चित अर्थ था। बाण को खींचकर बीसवीं शती में लाकर जब हम उसका अर्थ करने बैठते है तो सास्कृतिक शब्द धुँधले पड जाते है। किन्तु जब हम स्वय सप्तम शती में अपने-आपको ले जाकर बाण के पाठक बन जाते हैं तब प्रत्येक शब्द के निश्चित अर्थ तक पहुँचने के लिये हमारी जिज्ञासा उत्कट हो जाती है। उदाहरणार्थ बाण के पाठकों के लिये बाह्यास्थानमडप, भुक्तास्थानमंडप, राजद्वार, अलिन्द, धवलगृह, सजवन या चतु.शाल, प्रग्रीवक, चन्द्रशाला, प्रासाद-कुक्षि, दीर्घिका, स्नानभूमि, प्रतिहारगृह, प्रतोली, गवाक्ष आदि प्रत्येक शब्द का निश्चित अर्थ था जिसके मूल तक पहुँचे बिना हम हर्षचरित या कादम्बरी के वर्णनों को स्पष्टता से कभी नही समझ सकते। इस जिज्ञासा के साथ हम बाण के अध्ययन की नई दीक्षा लेते है और प्रत्येक नये शब्द के लिये क्या और क्यों प्रश्नो का उत्तर ढूँढने लगते है। इस नये दृष्टिकोण को हम सास्कृतिक सप्रश्न का व्रत कह सकते है। न केवल बाण के ग्रन्थों मे, बल्कि समस्त संस्कृत-साहित्य के लिये यह सस्कृति-विषयक सप्रश्न का व्रत आवश्यक है।

बाणभट्ट का समय सातवी शती का पूर्वार्द्ध है। उस समय गुप्तकालीन संस्कृति पूर्णरूप से विकसित हो चुकी थी। एक प्रकार से स्वर्णयुग की वह सस्कृति उत्तरगुप्तकाल में अपनी सन्ध्यावेला मे आ गई थी और सातवी शती मे भी उसका बाह्य रूप भली प्रकार पुष्पित, फलित और प्रतिमडित था। कला, धर्म, दर्शन, राजनीति, आचार, विचार आदि की दृष्टि से बाण के अधिकाश उल्लेख गुप्तकालीन सस्कृति पर भी प्रकाश डालते हैं। अभी तक बाण का अध्ययन प्राय काव्य की दृष्टि से ही होता रहा है, किन्तु इन व्याख्यानों के रूप में हर्षचरित का जो अध्ययन प्रस्तुत करने का हमारा विचार है उसमें विशेषकर सास्कृतिक सामग्री की दृष्टि से बाण के वर्णनों की जाँच-पडताल की जायगी। यह दृष्टिकोण बाण के काव्य के लिये पारस की तरह है। इसके प्रकाश में बाण के वे अनेक वर्णन जो पहले नीरस और बोझिल प्रतीत होते थे, अत्यन्त रुचिकर, सरस और हृदयग्राही लगने लगते है। इच्छा होती है कि एक-एक वाक्य, पदबन्ध और शब्द के भीतर प्रविष्ट होकर उसके प्रकट अर्थ एव श्लेष मे छिपे हुए गूढ़ अर्थ को अवगत किया जाय। इस युक्ति से बाण का हर्षचरित सास्कृतिक इतिहास का अपूर्व साधन बन जाता है। उसे एक बार पढ़कर तृप्ति नहीं होती, किन्तु बारम्बार उसके अर्थों मे रमकर शब्दों से निर्मित होनेवाले चित्रों को आत्मसात् करने की इच्छा होती है।

बाण ने काव्य और गद्य की शैली के विषय में अपने विचार प्रकट किए है— 'इस समय लोक में राग-द्वेष से भरे हुए, वाचाल, मनमाने ढॅग से कविता करनेवाले (कामकारिणः) कुकवि भरे हुए है। ऐसे कवि घर-घर में हैं जो वस्तु के यथार्थ स्वरूपमात्र के वर्णन को ही कविता समझते है, किन्तु नवनिर्माणकारी, नई वस्तु उत्पन्न करनेवाले कवि थोड़े ही हैं (असख्या जातिभाज. उत्पादका न बहवः कवयः, १,३)। इसमें 'जातिभाजः' पद में बाण अपने से पूर्ववर्ती शैली की ओर संकेत करते है। बौद्ध-सस्कृत-साहित्य की काव्य-रचना जिसका गुप्तकाल में उत्कर्ष हुआ, स्वभावोक्ति पसन्द करती है। वस्तु का जो यथार्थ रूप है उसे वैसा ही कहना पहले के कवियों को इष्ट था। ललितविस्तर, आर्यशूर-कृत जातकमाला आदि ग्रथ इसी शैली में है। किन्तु शनैः-शनैः स्वभावोक्ति से प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई और

वक्रोक्ति की ओर लोगों का झुकाव हुआ। वक्रोक्ति-शून्य कविता भी कोई कविता है, यह विचार जनता में फैल गया। लोगों का झुकाव श्लेष-प्रधान शैली की ओर हुआ। बाण के पूर्ववर्ती सुबन्धु ने अपनी वासवदत्ता में एक-एक शब्द में श्लेष डालकर काव्य-रचना करने की निपुणता का उल्लेख किया है (प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्य)। बाण ने कादम्बरी की भूमिका में लगातार श्लेषो से भरी हुई (निरन्तरश्लेषघना) शैली की प्रशसा की है। साथ-ही-साथ सुन्दर जाति अर्थात् स्वभावोक्ति-प्रधान वर्णनों को भी ग्राह्य माना है। बाण का कहना है—'उदीच्य लोगों में श्लेष-प्रधान शैली का रिवाज है, पश्चिम भारत में शैली पर उतना ध्यान नहीं जितना अर्थ या कथावस्तु पर, दाक्षिणात्य लोगों में कल्पना की उडान या उत्प्रेक्षा ही काव्य का गुण है, लेकिन गौड-देशवासी अर्थात् प्राच्य भारत में विकट शब्द-योजना (अक्षराडम्बर) ही पसन्द की जाती है।' वस्तुतः यह काव्य-शैली की एकांगी दृष्टि थी। बाण स्वय कहते हैं कि बढिया काव्य वह है जिसमें पाँच बातों का एक साथ मेल हो, अर्थात् विषय की नवीनता, बढिया स्वभावोक्ति, ऐसा श्लेष जो क्लिष्ट न हो, स्फुटरस अर्थात् जिसकी प्राप्ति के लिये पाठक को हाथ पैर न मारना पड़े, और भारी-भरकम शब्द-योजना[१]। जहाँ ये पाँच गुण एक साथ हों वही रचना सचमुच श्लाघनीय है। इस समन्वय-प्रधान दृष्टि को अपनाना,—यही बाण की विशेषता है और उनकी सफलता का रहस्य भी। बाण में विषय की नूतनता, श्लेष-प्रधान शब्दों की अद्भुत योजना, वस्तुओं के यथार्थ वर्णन—जैसे हाथी, घोड़े, सेना, सैनिक आदि के, और समासबहुल पदविन्यास, ये चारों गुण एक साथ आहत हुए हैं, और इनके साथ कथावस्तु एव शैली के ग्रथन मे स्फुट रूप से बहती हुई रसधारा भी सहज ही प्राप्त होती है।

बाण की गद्यशैली तीन प्रकार की है, एक दीर्घसमासवाली, दूसरी अल्पसमासवाली और तीसरी समास से रहित। समासों से भरी हुई शैली का प्राचीन नाम उत्कलिका, छोटे-छोटे समासयुक्त पदों में बिखरी हुई शैली का नाम चूर्णक, और समासरहित शैली का नाम आविद्ध था[२]। चतुर शिल्पी की भाँति बाण इन शैलियों को अदल-बदलकर इस प्रकार काव्य में सजाते हैं कि वर्णन बोझिल बनकर पाठक के मन को आक्रान्त न कर दे। उनकी रीति है कि समासबहुल उत्कलिका शैली के बाद फिर ढील छोड देते है। प्रायः बड़े-बड़े वर्णनों में उत्कलिका शैली का आश्रय लिया गया है। प्रचंड निदाघकाल (४६–४७), उसमें चलने-वाली गरम लू (४८–५०) और वन को जलाती हुई दावाग्नि (५०–५२) के वर्णन में इस शैली की अच्छी झाँकी मिलती है। कभी-कभी एक ही वर्णन में शब्दाडबरपूर्ण उत्कलिका शैली से आरम्भ करके समासरहित आविद्ध शैली से अन्त करते हैं। इसका अच्छा उदाहरण युवक दधीच का वर्णन है (२१–२४)। उसके तुरन्त बाद ही उसके

१. नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्ट स्फुटो रस।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥ हर्षचरित श्लो० १।८

२. चूर्णकमल्पसमासं दीर्घसमासमुत्कलिकाप्रायम्।
समासरहितमाविद्धं वृत्तभागान्वित वृत्तगन्धि।
बीच-बीच में श्लोकों से बघारी हुई शैली वृत्तगंधि थी जिसका प्रयोग बाण में नहीं है।

पाश्र्वचर के वर्णन में छोटे-छोटे समासों से परिपूर्ण चूर्णक शैली का आश्रय लिया गया है। बाण ने भट्टार हरिचन्द्र के गद्य-काव्य की शैली को आदर्श माना है। उसमे पदों की सुन्दर रचना थी और उसकी शैली या रीति भी मनोहर थी। इस समय हरिचन्द्र की यह गद्यरचना उपलब्ध नहीं है। बाण की दृष्टि में शब्द ऐसे होने चाहिएँ कि जो सुखप्रबोध हों अर्थात् सरलता से समझ में आ सके, एव जो सुन्दर अक्षरों से बने हो। ऐसे शब्दों से ग्रथित आख्यायिका सबको अच्छी लगनेवाली होती है। बाण ने सराहनीय कथा के लिये एक विशेषण दिया है सर्ववृत्तान्तगामिनी अर्थात् जो सत्पुरुषों के चरित, उपाख्यान या लोक-वृत्तान्त हैं, उन सबका परिचय कथालेखक को होना चाहिए। हर्षचरित और कादम्बरी दोनों में इस प्रकार की व्यापक जानकारी मौजूद है।

बाण के अनुसार हर्षचरित आख्यायिका है और कादम्बरी कथा। आख्यायिका मे ऐतिहासिक आधार होना चाहिए। कथा कल्पनाप्रसूत होती है। कम-से-कम हर्षचरित और कादम्बरी के उदाहरण से ऐसा ज्ञात होता है। किन्तु कथा और आख्यायिका के सबध में बाण और दंडी के समय मे बहुत-कुछ वाद-विवाद था। दंडी ने उन दोनों का भेद बताने की कोशिश की—जैसे, आख्यायिका का वक्ता स्वय नायक होता है, कथा का नायक या अन्य कोई, किन्तु यह नियम सब जगह लागू नहीं। फिर नायक स्वय वक्ता रूप में हो अथवा अन्य कोई व्यक्ति, इसमें कोई विशेष बात नहीं होती, इसलिए यह भेद अवास्तविक है। कुछ विद्वानों का मत था कि आख्यायिका में वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग किया जाता है और उसमें कथाश उच्छ्वासों में बँटा रहता है। यद्यपि दडी ने प्रसगवश कथा में भी इन लक्षणों का होना कहा है और इस भेद को अस्वीकार किया है, तथापि बाण के हर्षचरित में यह लक्षण अवश्य घटित होता है। दडी के मत से तो कथा और आख्यायिका मे केवल नाम का ही भेद है, दोनों की जाति एक ही है। पर बाण ने हर्षचरित को आख्यायिका और कादम्बरी को कथा माना है। हर्षचरित के आरम्भ में कहा है कि चपलतावश मै इस आख्यायिकारूपी समुद्र में अपनी जिह्वा का चप्पू चला रहा हूँ। कादम्बरी की भूमिका मे उसे वासवदत्ता और बृहत्कथा इन दोनों को मात करनेवाली (अतिद्वयी) कथा कहा है।

हर्षचरित के आरम्भ मे बाण ने कुछ पुराने कवियों का उल्लेख किया है। इनमे सबसे पहले सर्वविद् व्यास हैं, जिन्होंने अपनी वाणी से भारत नामक ग्रथ को ऐसे पवित्र किया जैसे सरस्वती नदी भारतवर्ष को पवित्र करती है (३)। इससे ज्ञात होता है कि बाण के समय में देश की संज्ञा भारतवर्ष प्रयुक्त होती थी और वह एक भौगोलिक इकाई बन चुका था। उदीच्य, प्रतीच्य, दाक्षिणात्य और गौड़ या प्राच्य उसके चार मोटे विभाग थे। सातवीं शती में भारत या महाभारत अपने पूर्णरूप मे विकसित हो चुका था। अनेक स्थलों पर महाभारत और उसके पात्रों के उल्लेख बाण में आए हैं। इसी भूमिका में बाण ने कहा है कि महाभारत की कथा तीनों लोकों मे फैल गई थी (कथेव भारती · व्याप्नोति जगत्त्रयम्, ४)। यह बाण के समकालीन इतिहास का सत्य था कि महाभारत की कथा का न केवल इस देश में सर्वत्र, किन्तु बृहत्तर भारत या द्वीपान्तरों में भी प्रचार हो गया था।

बाण ने जिस वासवदत्ता का उल्लेख किया है वह सुबन्धु-कृत वासवदत्ता ही होनी चाहिए जो आज भी उपलब्ध है। वासवदत्ता श्लेषबहुल शैली की मँजी हुई रचना है,

एवं उसमें भी विविध प्रकार की सांस्कृतिक सामग्री का सन्निवेश हुआ है। सुबन्धु के काल का ठीक निश्चय नहीं, किन्तु अवश्य ही वे बाण से पहले हुए। सुबन्धु ने धर्मकीर्ति-कृत बौद्धसगति अलकार और उद्योतकर के न्यायवार्तिक का उल्लेख किया है। वासवदत्ता के कई स्थल हर्षचरित से बहुत-कुछ मिलते है, विशेषतः जहाँ बाण ने पूर्वकाल के बीस राजाओं के चरित्रों मे कलक का उल्लेख किया है (८७-९०)[1]। उस सूची के पन्द्रह राजाओं का नामोल्लेख उसी प्रकार से सुबन्धु ने भी किया है। इन कारणों से विद्वानों का विचार है कि सुबन्धु निश्चित रूप से बाण के पूर्ववर्ती थे और वे छठी शताब्दी के अन्त मे हुए।

जिन भट्टार हरिचन्द्र के मनोहर गद्य-ग्रथ का बाण ने उल्लेख किया है, वे महेश्वर-विरचित विश्वप्रकाश-कोश के अनुसार साहसाक-नृपति के राजवैद्य थे। उन्होंने चरक पर एक अतिप्रसिद्ध टीका लिखी। वाग्भट्ट-विरचित अष्टागसग्रह के व्याख्याता इन्दु के अनुसार भट्टार हरिचन्द्र की उस टीका का नाम खरणाद सहिता था। (कल्पस्थान, ६ठा अध्याय)। चतुर्भाणी ग्रथ में सगृहीत 'पादताडितकम्' नामक भाण मे ईशानचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र भिषक् का उल्लेख आया है। यह निश्चित नही कहा जा सकता कि चरक के व्याख्याकार भट्टार हरिचन्द्र और बाणोल्लिखित भट्टार हरिचन्द्र एक ही व्यक्ति थे अथवा भिन्न। किन्तु यह तो निश्चित ज्ञात होता है कि राजशेखर ने जिन हरिचन्द्र का उल्लेख किया है[2] वे साहित्यकार थे। बाण के भट्टार हरिचन्द्र की पहचान उन्हीं से की जानी उचित है।

बाण ने सातवाहन-विरचित किसी प्रसिद्ध ग्रथ का उल्लेख किया है जिसमे सुभाषितों का सग्रह था। हर्षचरित मे सातवाहन के इस ग्रथ को कोश कहा गया है। सातवाहन-विरचित यह सुभाषित-कोश हाल-कृत गाथासप्तशती का ही वास्तविक नाम था। हाल सात-वाहनवशी सम्राट् थे। डा० भडारकर गाथासप्तशती और सातवाहन-कृत कोश को एक नहीं मानते, किन्तु श्रीमिराशीजी ने निश्चित प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि गाथासप्तशती की अतिम गाथा में एव उसके टीकाकार पीताम्बर की संस्कृत छाया मे उस ग्रथ को कोश ही कहा गया है। प्राकृत कुवलयमालाकथा के कर्त्ता इन्द्रसूरि (७७८ ई०) ने हाल के ग्रथ को कोश कहा है। गाथासप्तशती के दो अन्य टीकाकार बलदेव और गगाधर भी हाल के सुभाषित-सग्रह को गाथा-कोश के नाम से पुकारते हैं। लगभग नवी शती तक यह ग्रथ कोश या गाथा-कोश ही कहलाता था। मध्यकाल मे जब कोश शब्द अभिधान-ग्रथों के लिये अधिक प्रयुक्त होने लगा उसके बाद से हाल का ग्रथ गाथासप्तशती नाम से प्रसिद्ध हुआ[3]।

---

१. श्री कार्टेलियरी (Dr. W Cartellieri) सुबन्धु और बाण, वियना ओरियंटल जर्नल, भाग १(१८८७), पृ० ११४-१३२।

२ श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा।
इह कालिदासमेण्ठावत्रामरसूरभारवयः।
हरिचन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्॥

३ दे० श्री वा० वि० मिराशी, दी ओरीजिनल नेम आफ दी गाथासप्तशती, नागपुर ओरियंटल कान्फ्रेंस (१९४६), पृ० ३७०-७४.

अन्य कवियो मे बाण ने प्रवरसेन, भास और कालिदास का उल्लेख किया है। सब विद्वान् इस विषय मे सहमत हैं कि प्रवरसेन प्राकृत-काव्य सेतुबन्ध के रचयिता हैं। पहले कुछ विद्वानो का अनुमान था कि प्रवरसेन कश्मीर के राजा थे जिनका उल्लेख राजतरगिणी में किया गया है और जो मातृगुप्त के बाद गद्दी पर बैठे। किन्तु अधिक सभावना यह है कि ये प्रवरसेन वाकाटक-वश के सम्राट् प्रवरसेन द्वितीय थे। श्रीमिराशीजी का मत है कि सेतुबन्ध अथवा रावणवहो नामक काव्य के कर्त्ता वाकाटक-प्रवरसेन के दरबार में कालिदास कुछ समय के लिये दूत बनाकर भेजे गए थे। वाकाटक-राजा ही कुन्तलेश्वर कहे जाते थे। उनका मूल प्रदेश विदर्भ था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावती गुप्ता वाकाटक-वश के राजा रूद्रसेन द्वितीय से ब्याही थीं। उन्ही के पुत्र प्रवरसेन वाकाटक राजसिहासन पर बैठे। सेतुबन्ध के एक पुराने टीकाकार ने निर्देश किया है कि यह काव्य विक्रमादित्य की आज्ञा से प्रवरसेन के लिये कालिदास ने लिखा। श्रीमिराशी के अनुसार अधिक सभावना यह है कि कालिदास के द्वारा सेतुबध का सशोधन किया गया हो जिससे ऊपर की अनुश्रुति प्रचलित हुई[1]।

भास के सबध मे बाण की सूचना बहुमूल्य है। बाण का कहना है कि भास के नाटकों का आरम्भ सूत्रधार के द्वारा किया जाता है। उनमे अनेक तरह के बहुसख्यक पात्र है, और उनमे कथावस्तु मे सहायक पताका नामक अग पाए जाते है। बाण के इस उल्लेख को श्री प्रो० कीथ बहुत प्रामाणिक समझते है। उनका कहना है कि बाण ने जो विशेषताएँ बताई हैं वे दक्षिण से उपलब्ध भास के नाटकों मे मिलती है, अतएव उन्हें भास की प्रामाणिक रचना मानना चाहिए।[2] भास-सबधी श्लोक मे श्लेष से देवकुल या मन्दिरों का उल्लेख किया गया है। इस सबध मे बहुभूमिक पद महत्त्वपूर्ण है, अर्थात् ऐसे मंदिर जिनके शिखरों मे कई खड होते थे। आरम्भिक गुप्तकाल के जो मदिर साँची, भूमरा, तिगोवा, दरा आदि स्थानों मे मिले हैं वे बिना शिखर के हैं और उनकी छत का पटाव सपाट पत्थर रखकर किया जाता था। आरभ मे मदिर के गर्भगृह का स्वरूप इकमंजिला था। पीछे गर्भगृह की छत के ऊपर एक, दो या तीन छोटी मजिलों की कल्पना होने लगी, जैसा कि देवगढ के मदिर में मिलता है। इन भूमियो या मजिलो के रूप-परिवर्तन से शिखर का प्रादुर्भाव हुआ। बाण का बहुभूमिक विशेषण इस प्रकार के विकसित शिखरोंवाले देवकुलों का उल्लेख करता है।

हर्षचरित की भूमिका में बाण ने स्पष्ट रूप से बृहत्कथा का उल्लेख किया है। अवश्य ही उनके समय में बृहत्कथा अपने पैशाची भाषा के रूप मे लोगों के लिए विस्मयजनक थी। कादम्बरी में बाण ने लिखा है—'कर्णीसुतकथेव सन्निहितविपुलाचला शशोपगता च' (१६), अर्थात् 'कर्णीसुत की कथा में विपुल, अचल और शश इन पात्रो का सबध था।' कर्णीसुत मूलदेव का नाम था। उसकी कहानी बृहत्कथा में आती है और वहीं विपुल और शश इन पात्रों के नाम भी आते है। केशव-कृत कल्पद्रु-कोश के अनुसार कर्णीसुत या मूलदेव का भाई शश था तथा विपुल और अचल मूलदेव के भृत्य थे।

अपने से पूर्ववर्ती कवियों और लेखकों को नमस्कार करने की यह पद्धति गद्यकथाओं का आवश्यक अग समझी जाती थी। बाण से पहले सुबन्धु में भी हम इसे पाते हैं। बाण

१. वा० वि० मिराशी, कालिदास, पृष्ठ ४२.

२ ए० बी० कीथ, ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर (१९४१), भूमिका पृ० १४.

के बाद के लेखकों में तो यह प्रवृत्ति और अधिक बढी हुई मिलती है, जैसे धनपाल की तिलक-मंजरी में। प्राकृत और अपभ्रश के प्राय: सभी कवियों ने इस परिपाटी का अनुसरण किया, जैसे महापुराण की उत्थानिका में पुष्पदन्त ने लगभग बाईस पूर्व कवियों के नाम दिये हैं[1]।

भूमिका के एक श्लोक मे बाण ने आढ्यराज और उनके उत्साहों का उल्लेख किया है, और लिखा है कि उनका स्मरण करते ही मेरी जिह्वा भीतर खिंच-सी जाती है और मुझमें कविता करने की प्रवृत्ति नहीं होती। यह श्लोक कुछ कठिन है, इसके तीन अर्थ सभव है। प्रथम यह कि आढ्यराज नामक किसी कवि ने प्राकृत भाषा मे नृत्य के साथ गाए जानेवाले कुछ गीतिकाव्य रचे थे। उन उत्साहनामक पदों को जो इतने श्रेष्ठ थे, याद करके जैसे मेरी बोलती बन्द हो जाती है और कविता नहीं फूटती। किन्तु आढ्यराज नामक कवि और उनके उत्साहों का कुछ निश्चित पता नहीं। सभव है वे कोई लोक-कवि रहे हों। पिशेल का मत था कि हर्ष ही आढ्यराज है, और कीथ[2] का भी यही मत है। तदनुसार बाण यह कहना चाहते है कि हमारे महान् सम्राट् के उदात्त कर्म ऐसे है कि उनका स्मरण मेरी जिह्वा को कुंठित करता है और कविकर्म की प्रवृत्ति को रोकता है। सरस्वतीकंठाभरण के टीकाकार रत्नेश्वर ने 'केभूवन्नाढ्यराजस्य काले प्राकृतभाषिण' का अर्थ करते हुए आढ्य-राज को शालिवाहन का दूसरा नाम कहा है। कथा है कि गुणाढ्य ने सात लाख श्लोकों मे बृहत्कथा का निर्माण किया और उसे सातवाहन की सभा में उपस्थित किया, किन्तु उन्हें विशेष उत्साह न मिला। तब उसके छ लाख श्लोक उन्होंने नष्ट कर दिए, अन्त में जब एक लाख बचे तब सातवाहन ने उनकी रक्षा की। यद्यपि यह किवदन्ती अतिशयोक्तिपूर्ण और पुराने ढर्रे की है, किन्तु सम्भव है, बाण के समय में प्रचलित रही हो। राजाओं से कवियों को मिलनेवाले प्रोत्साहन की ओर व्यग्य करते हुए बाण का यह श्लोक चरितार्थ होता है। इससे पहले श्लोक मे बृहत्कथा का नाम आ चुका है, इससे यह अर्थ सम्भव है—'आढ्यराज सातवाहन ने बृहत्कथा-लेखक गुणाढ्य को जैसा फीका उत्साह दिलाया, उसके स्मरणमात्र से कविता करने की मुझे इच्छा नहीं होती। लेकिन फिर भी राजा हर्ष की भक्ति के वश मैं उनके इस चरितसमुद्र में डुबकी लगाऊँगा'। यही यहाँ सुसंगत जान पड़ता है।

बाण के समय में आन्ध्रदेश में स्थित श्रीपर्वत की कीर्ति सर्वत्र फैल गई थी। वह तन्त्र, मत्र और अनेक चमत्कारों का केन्द्र माना जाता था। दूर-दूर से लोग अपनी मनकामना पूरी कराने के लिए श्रीपर्वत की यात्रा करते थे (सकलप्रणयिमनोरथसिद्धि-श्रीपर्वत., ७)। ऐसा जनविश्वास था कि श्रीपर्वत के चारों ओर जलती हुई अग्नि की दीवार उसकी रक्षा करती थी। शङ्कर ने उद्धरण दिया है कि त्रिपुरदहन के समय गणेशजी ने जो विघ्न उपस्थित किए उनसे रक्षा करने के लिये शिव ने एक प्रचड अग्नि का घेरा उत्पन्न किया, वही श्रीपर्वत की रक्षा करता है। बाण ने इसी किंवदन्ती को लिखा है

१. नाथूराम प्रेमी, जैन-साहित्य और इतिहास, पृ० ३२५।
२ हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर, पृ० ३१६।

है। महाभारत वनपर्व के अन्तर्गत तीर्थयात्रापर्व मे श्रीपर्वत का उल्लेख आया है और लिखा है कि देवी के साथ महादेव और देवताओ के साथ ब्रह्मा श्रीपर्वत पर निवास करते है[1]। श्रीपर्वत की पहचान श्रीशैल से की जाती है जो कृष्णा नदी के दक्षिण तट पर कुरनूल से बयासी मील पर ईशानकोण मे है। यहाँ द्वादश ज्योतिर्लिगो मे से मल्लिकार्जुन नामक शिवलिग है। श्रीशैलस्थल-माहात्म्य के अनुसार राजा चन्द्रगुप्त की कन्या चन्द्रावती श्रीशैल के मल्लिकार्जुन शिव के लिये प्रतिदिन एक माला भेजती थी। चन्द्रावती की पहचान श्री अल्टेकर महोदय गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त की पुत्री वाकाटक सम्राज्ञी प्रभावती गुप्ता से करते है। ज्ञात होता है कि उनकी ओर से श्रीशैल पर नित्य शिवार्चन के लिये एक माला का प्रबन्ध किया गया था। अवश्य ही बाण के समय मे श्रीपर्वत महाश्चर्यकारी सिद्धियो की खान गिना जाता था और वहाँ के बुड्ढे द्रविड पुजारी अपनी इन सिद्धियो के लिये दूर-दूर तक पुजवाते थे, जैसा कादम्बरी मे कहा है—'श्रीपर्वताश्चर्यवार्तासहस्राभिज्ञेन जरद्द्रविड-धार्मिकेन'।

हर्षचरित नाम का चरित शब्द बाण से पहले ही साहित्य मे प्रयुक्त होने लगा था। अश्वघोष के बुद्धचरित से लेकर तुलसी के रामचरितमानस तक चरित-काव्यो की अविच्छिन्न परम्परा मिलती है। हर्षचरित विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रथ नही कहा जा सकता। उसमे काव्य के ढग से बाण ने हर्ष के जीवन, उनके व्यक्तित्व, समकालीन कुछ घटनाएँ और सम्बन्धित पात्र, इत्यादि बातो का काव्यमयी शैली से वर्णन किया है। दडी ने महाकाव्य के लक्षण देते हुए जो यह कहा है कि उसमे नगर, पर्वत, समुद्र, ऋतुशोभा, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यान-क्रीडा, सलिल क्रीडा, विवाह, पुत्रजन्म, मत्रणा, सेना-प्रयाण, आदि का वर्णन होना चाहिए वह परम्परा बाण को भी विदित थी और ज्ञात होता है कि वह कालिदास के समय में पूरी तरह विकसित हो चुकी थी। प्राय. ये सभी वर्णन कालिदास के काव्यो मे मिल जाते है। इनके सम्मेलन से महाकाव्यों का ठाठ रचा जाता था। हर्षचरित मे भी बाण ने काव्य के इन लक्षणो का जान-बूझकर पालन किया है।

हर्षचरित की संक्षिप्त विषय-सूची इस प्रकार है—

पहला उच्छ्वास

कथा	विशेष वर्णन
शुरू मे बाण के वात्स्यायन वश और पूर्वजो का और उसके आरभिक जीवन का वर्णन है। दीर्घकाल तक देशान्तरों मे घूमकर और बहुविध अनुभव प्राप्त करके बाण अपने ग्राम प्रीतिकूट मे वापिस आता है।	सरस्वती (८-६), सावित्री (१०-११), प्रदोषसमय (१४ १६), मदाकिनी (१६), युवक दधीच (२१ २४), दधीच की सखी मालती (३१-३३), बाण के ४४ मित्रों की सूची (४१-४२)।

[1] श्रीपर्वत समासाद्य नदीतीरमुपस्पृशेत्। अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोक च गच्छति ॥
श्रीपर्वते महादेवो देव्या सह महाद्युति । न्यवसत् परमप्रीतो ब्रह्मा च त्रिदशैर्वृत ॥
आरण्यकपर्व, पूना संस्करण ८६, १६-१७,

दूसरा उच्छ्वास

कथा

हर्ष के भाई कृष्ण का लेखहारक मेखलक बाण के पास आता है और उसे हर्ष के पास आने के लिये निमन्त्रित करता है। बाण अपने ग्राम से चलकर तीन पडावों के बाद अजिरवती के तट पर मणितारा ग्राम मे पडी हुई हर्ष की छावनी मे पहुँचकर हर्ष से मिलता है और उसका प्रेम और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

वर्णन

बाण के बान्धव ब्राह्मणों के घर (४४-४५), निदाघकाल (४६-४७), गर्मी में चलनेवाली लू (४८-५०), दावाग्नि (५०-५२), हर्ष की छावनी मे उसका राजभवन (५८-६१), हर्ष का महाप्रतीहार दौवारिक पारियात्र (६१-६२), राजकीय मन्दुरा या घुडसाल (६२-६३), राजकीय गजशाला और हर्ष का मुख्य हाथी दर्पशात (६४-६६), सम्राट् हर्ष और उनका दरबार (६६-७७), सन्ध्याकाल (८०-८१)।

तीसरा उच्छ्वास

बाण घर लौटकर अपने चार चचेरे भाइयो के अनुरोध से हर्ष का चरित वर्णन करता है। श्रीकंठ जनपद, उसकी राजधानी थानेश्वर और वंश के संस्थापक पुष्पभूति की कथा कहने के बाद तान्त्रिक साधना मे उसके सहायक भैरवाचार्य का विशद वर्णन है। अन्त मे पुष्पभूति श्रीकंठ नाग के दर्शन और लक्ष्मी से वंश स्थापना का वर प्राप्त करता है।

शरत्समय (८३-८४), श्रीकंठ जनपद (८४-८६), स्थाण्वीश्वर (८७), भैरवाचार्य का शिष्य मस्करी (१०१-१०२), भैरवाचार्य (१०३-१०४), अट्टहास नामक महाकृपाण (१०७), टीटिभ, पातालस्वामी और कर्णताल नामक भैरवाचार्य के तीन शिष्य (१०८-११), श्रीकंठ नामक नाग (११२), श्रीदेवी (११४-११५)।

चौथा उच्छ्वास

पुष्पभूति से उत्पन्न राजवंश की संक्षिप्त भूमिका के बाद राजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन और उसकी रानी यशोवती का वर्णन है। पुन रानी के गर्भ धारण करने और राज्यवर्द्धन के जन्म की कथा है। तदनन्तर हर्ष और राज्यश्री के जन्म का अतिविस्तृत वर्णन है। यशोवती का भाई अपने पुत्र भंडि को दोनो राजकुमारो के साथी के रूप मे अर्पित करता है। मालव राजकुमार कुमारगुप्त और माधवगुप्त राज्यवर्द्धन और हर्ष के पार्श्ववर्ती होकर दरबार मे आते हैं। मौखरि ग्रहवर्मा के साथ राज्यश्री का विवाह तय होता है और धूमधाम के साथ सम्पन्न होता है। इसी प्रसग मे राजमहल के ठाठबाट का विशद वर्णन है।

महादेवी यशोवती (१२१-१२२), उनकी गर्भिणी अवस्था (१२६-१२७), पुत्रजन्मोत्सव (१२६-१३३), राज्यश्री के विवाहोत्सव की तैयारियाँ (१४२-१४३), वरवेश मे ग्रहवर्मा (१४५), कौतुकगृह या कोहबर १४८)।

पाँचवाँ उच्छ्वास

कथा

हूणों को जीतने के लिये राज्यवर्द्धन सेना के साथ प्रस्थान करता है। हर्ष भी उसके साथ जाता है किन्तु बीच में ही शिकार खेलने के लिये चला जाता है। वहाँ से प्रभाकरवर्द्धन की बीमारी का समाचार पाकर उसे अचानक लौटना पडता है। लौटने पर वह देखता है कि समस्त राजपरिवार शोक से विह्वल है। प्रभाकरवर्द्धन की असाध्य अवस्था देखकर रानी यशोवती सती हो जाती है। इसके बाद प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु, उसकी अतिम क्रिया तथा हर्ष के शोक का वर्णन है।

वर्णन

सदेशहर कुरंगक (१५१), शोकग्रस्त स्कधावार (१५३), शोकाभिभूत राजकुल (१५४), मरणासन्न प्रभाकरवर्द्धन (१५५-१५७), सतीवेश मे यशोवती (१६४-१६५), यशोवती का अतिम विलाप (१६६-१६७)।

छठा उच्छ्वास

राज्यवर्द्धन लौटकर आता है और हर्ष को राज्य देकर स्वय छुटकारा चाहता है। हर्ष उससे धैर्य रखने का आग्रह करता है। इसी समय ग्रहवर्मा की मृत्यु और राज्यश्री का मालवराज के द्वारा बन्दी किये जाने का दु:खद समाचार मिलता है। उसे दड देने के लिये राज्यवर्द्धन तुरन्त प्रस्थान करता है, हर्ष घर पर ही रहता है। शीघ्र ही समाचार मिलता है कि मालवराज पर विजयी राज्यवर्द्धन को गौड देश के राजा ने धोखे से मार डाला। उससे क्षुभित होकर हर्ष गौडेश्वर से बदला लेने की प्रतिज्ञा करता है। गजसेना का अध्यक्ष स्कन्दगुप्त हर्ष को प्रोत्साहित करता है।

राज्यवर्द्धन का शोक (१७६-१७७), सेनापति सिहनाद (१८८-१९३), गजसाधनाधिकृत स्कन्दगुप्त (१९६ १९७), अट्ठाइस पूर्वराजाओ द्वारा किए हुए प्रमाददोष (१९८-२००)।

सातवाँ उच्छ्वास

हर्ष सेना के साथ दिग्विजय के लिये प्रयाण करता है। सेना का अत्यन्त ओजस्वी और अनूठा वर्णन किया गया है। उसी समय प्राग्ज्योतिषेश्वर भास्करवर्मा का दूत हसवेग अनेक प्रकार की भेट और मैत्री सदेश लेकर आता है। हर्ष सेना के साथ विन्ध्यप्रदेश मे पहुँचता है और मालवराज पर विजयी होता है। भडि मालवराज की सेना और खजाने पर दखल कर लेता है।

प्रयाण की तैयारी (२०४-२०६), अनुयायी राजा लोग (२०६-२०७), प्रयाणाभिमुख हर्ष (२०७-२०८), प्रयाण करता हुआ कटक-दल (२०९-२१३), भास्करवर्मा के प्राभृत या भेट-सामग्री का वर्णन (२१५-२१७), सायकाल (२१८-२१९), वन-ग्राम (जगली देहात) और उसके घरा का वर्णन (२२७ २३०)।

आठवाँ उच्छ्वास

कथा

विन्ध्याटवी के एक शबर युवक की सहायता से हर्ष राज्यश्री को जो मालवराज के बंदीगृह से निकलकर विन्ध्याटवी मे कहीं चली गई थी, ढूँढने का प्रयत्न करता है। शबर युवक निर्घात की सहायता से हर्ष बौद्ध भिक्षुक दिवाकरमित्र के आश्रम मे पहुँचकर राज्यश्री को ढूँढने मे सहायता की प्रार्थना करता है। दिवाकरमित्र यह कह ही रहा था कि उसे राज्यश्री के बारे मे कुछ पता न था कि एक भिक्षु अग्नि मे जलने के लिए तैयार किसी विपन्न स्त्री का समाचार लेकर आता है। हर्ष तुरन्त वहाँ पहुँचता है और अपनी बहन को पहचानकर उसे समझ बुझाकर दिवाकरमित्र के आश्रम म ले आता है। दिवाकरमित्र राज्यश्री को हर्ष की इच्छानुसार जीवन बिताने की शिक्षा देता है। हर्ष यह सूचित करता है कि दिग्विजय-संबंधी अपनी प्रतिज्ञा पूरी होने पर वह और राज्यश्री साथ ही गेरुवे वस्त्र धारण कर लेंगे।

वर्णन

विन्ध्याटवी का शबर युवा (२३१-२३२), विन्ध्याटवी की वनराजि और वृक्ष (२३४ २३६), दिवाकरमित्र का आश्रम (२३६-२३८), राज्यश्री का विलाप (२४६-२४८), दिवाकर मित्र की दी हुई एकावली का वर्णन (२५१-२५२), दिवाकरमित्र का राज्यश्री को उपदेश (२५४-२५५), सन्ध्या समय (२५७-२५८)।

हर्षचरित का आरम्भ पुराण की कथा के ढग पर होता है। ब्रह्मलोक मे खिले हुए कमल के आसन पर ब्रह्माजी बैठे है (विकासिनि पद्मविष्टरे समुपविष्टः परमेष्ठी, ७)। पद्मासन पर बैठे हुए ब्रह्माजी की यह कल्पना भारतीय कला मे सर्वप्रथम देवगढ के दशावतार मंदिर मे लगे हुए शेषशायी मूर्ति के शिलापट्ट पर मिलती है [चित्र १]। बाण ने लिखा है कि इन्द्र आदि देवता ब्रह्माजी को घेरे हुए थे (शुनासीरप्रमुखैः गीर्वाणैः परिवृतः, ७)। इस शिलापट्ट में भी हाथी पर इन्द्र ब्रह्मा के दाहिनी ओर दिखाए गए है *। ब्रह्मा की सभा मे विद्यागोष्ठियाँ चल रही थी। गोष्ठियाँ प्राचीन भारत मे अर्वाचीन क्लब की भाँति थीं। इनके द्वारा नागरिक अनेक प्रकार से अपना मनोविनोद करते थे। गोष्ठियों मे विदग्धों अर्थात् बुद्धि-चतुर और बातचीत मे मँजे हुए लोगों का जमावडा होता था। शकर ने गोष्ठी का लक्षण यों किया है—विद्या, धन, शील, बुद्धि और आयु मे मिलते-जुलते लोग जहाँ अनुरूप बातचीत के द्वारा एक जगह आसन जमावें वह गोष्ठी है, (समानविद्यावित्तशीलबुद्धिवयसामनुरूपैरालापैरेकत्रासनबन्धो गोष्ठी)। वात्स्यायन के अनुसार अच्छी और बुरी दो तरह की गोष्ठी

*. वासुदेव शरण अग्रवाल, गुप्त आर्ट, चित्र १८.

जमती थी, एक मनचले लोगो की जिसमे जुआ, हिंसा के काम आदि भी शामिल थे (लोकविद्विष्टा परहिंसात्मिका गोष्ठी) और दूसरी भले लोगों की (लोकचित्तानुवर्तिनी) जिसमें खेल और विद्या के मनोरंजन प्रधान थे (क्रीडामात्रैककार्या)। बाण ने जानबूझकर यहाँ निरवद्य (दोषरहित) गोष्ठी का उल्लेख किया है। गुप्तकालीन और उसके बाद की गोष्ठियों की तुलना अशोककालीन समाज से की जा सकती है। अशोक ने बुरे समाजो का निराकरण करके अच्छे नीतिप्रधान समाजो को प्रोत्साहन दिया था।

गोष्ठियाँ कई प्रकार की होती थी जैसे पद-गोष्ठी, काव्य-गोष्ठी, जल्प-गोष्ठी, गीत-गोष्ठी, नृत्य-गोष्ठी, वाद्य-गोष्ठी, वीणा-गोष्ठी आदि (जिनसेनकृत महापुराण, नवी शती, १४। १९०-१९२)। नृत्य, गीत, वाद्य, चित्र आदि कलाएँ, काव्य और कहानियाँ इन गोष्ठियो के विषय थे। बाण ने विद्यागोष्ठी का विशेष उल्लेख किया है (निरवद्या विद्यागोष्ठी. भावयन्) इनमे से पदगोष्ठी, काव्यगोष्ठी और जल्पगोष्ठी विद्यागोष्ठी के ही भेद जान पडते है। काव्यगोष्ठी मे काव्यप्रबन्धो की रचना की जाती थी, जैसा कि बाणभट्ट ने शूद्रक की सभा का वर्णन करते हुए उल्लेख किया है। जल्पगोष्ठियो मे आख्यान, आख्यायिका, इतिहास और पुराण आदि सुनने-सुनाने का रंग रहता था (कदाचित् आख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणाकर्णनेन, का० ७)। जिनसेन ने जिसे पदगोष्ठी कहा है, बाण के अनुसार उसके विषय अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, बिन्दुमती, गूढचतुर्थपाद आदि तरह-तरह की पहेलियाँ जान पडती है (का० ७)। हर्ष के मनोविनोदो का वर्णन करते हुए बाण ने वीर-गोष्ठी का उल्लेख किया है जिसमे रणभूमि में साका करनेवाले वीरों की वीरता की कहानियाँ कही सुनी जाती थी (वीरगोष्ठीषु अनुरागसदेशम् इव रणश्रिय शृण्वन्तम्, ७१)। इन गोष्ठियो मे अनेक प्रकार से वैदग्ध्य या बुद्धिचातुर्य के फव्वारे छूटते थे। बाण को स्वयं इस प्रकार की विद्वद्गोष्ठियों मे बहुत रुचि थी। अपने घुमक्कडपन के समय उसने अनेक गुणवानों की गोष्ठियो मे शामिल होकर उनकी मूल्यवान् बातचीत से लाभ उठाया था। (महार्घालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठीश्चोपतिष्ठमान , ४२)। हर्ष के दरबार मे आने का जब उसे न्योता मिला तो 'जाऊँ या न जाऊँ' यह निश्चित करने से पहले अन्य बातों को सोचते हुए उसने यह भी सोचा था कि राजसभा मे होनेवाली विद्वद्गोष्ठियो मे भाग लेने के लिये जो बढी-चढी चातुरी (विदग्धता) चाहिए वह उसमे नही है (न विद्वद्गोष्ठीबन्धवैदग्ध्य, ५६)। राजसभाओ मे इस प्रकार के विदग्धों का मडल जुटता था और वहाँ विद्या, कला और शास्त्रों मे निपुण विद्वानों की आपस में नोक-झोक का आनंद रहता था। गोष्ठियो मे वैदग्ध्य प्राप्त करना नवयुवको की शिक्षा का अंग था। अट्ठारह वर्ष के युवक दधीच को अन्य यौवनोचित गुणों के साथ वैदग्ध्य का चढता हुआ पूर कहा गया है (यश प्रवाहमिव वैदग्ध्यस्य, २४)।

कभी कभी इन गोष्ठियो में आपसी मतभेद से, दुर्भाव से नही, विद्या के विवाद भी उठ खडे होते थे। ऐसा ही एक विवाद दुर्वासा और मन्दपाल नामक मुनि के बीच हो गया। स्वभाव के क्रोधी दुर्वासा अटपट स्वर मे सामगान करने लगे। मुनियो ने मारे डर के चुप्पी साध ली। ब्रह्माजी ने दूसरी चर्चा चलाकर बात टालनी चाही, पर सरस्वती अल्हड़पन के कारण (किञ्चिदुन्मुक्तबालभावे, ८) हँसी न रोक सकी। यहाँ बाण ने ब्रह्मा के ऊपर चमर डुलाती हुई सरस्वती का बहुत ही सुन्दर चित्र खींचा है। उनके पैरो मे बजनेवाले दो नूपुर थे

(मुखरनूपुरयुगल) जो पदपाठ और क्रमपाठ के अनुसार मंत्र पढ़नेवाले पादप्रणत दो शिष्यों-से लगते थे। बाण के युग में ऋग्वेद, यजुर्वेद के पाठ और सामगान का काफी प्रचार था, यह उनके अनेक उल्लेखों से ज्ञात होता है। शिलालेख और ताम्रपत्रों में भी अपने-अपने चरण और शाखाओं के अनुसार वेदाभ्यास करनेवाले ब्राह्मणकुलों का उल्लेख आता है। सरस्वती का मध्यभाग मेखला से सजा हुआ था जिसपर उनका बॉया हाथ रक्खा था (विन्यस्तवामहस्तकिसलया, ८)। कट्यवलंबित वामहस्त की मुद्रा भारतीय कला में सुपरिचित है। शुंगकाल से मध्यकाल तक बराबर इसका अङ्कन मिलता है। सरस्वती के शरीर पर कंधे से लटकता हुआ ब्रह्मसूत्र (असावलम्बिना ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकाया) सुशोभित था। महाश्वेता के वर्णन में भी बाण ने ब्रह्मसूत्र का उल्लेख किया है। वह मोतियों का हार पहने थी जिसके बीच में एक नायक या मध्यमणि गुथी हुई थी। एक कान में सिन्धुवार की मञ्जरी सुशोभित थी। शरीर पर महीन और स्वच्छ वस्त्र था (सूक्ष्मविमलेन अंशुकेन आच्छादितशरीरा)। बारीक वस्त्र जिसमें शरीर झलकता हुआ दिखाई देता था, गुप्तकाल की विशेषता थी और गुप्तकालीन मूर्तियों में इस प्रकार का वस्त्र प्रायः मिलता है। आगे मालती के वेष का वर्णन करते हुए बाण ने इस पर और भी अधिक प्रकाश डाला है।

सरस्वती को हँसती देख दुर्वासा की भौहें तन गईं और वे शाप देने पर उतारू हो गए। उनके ललाट पर कालिमा ऐसे छा गई जैसे शतरंज खेलने के पट्टे पर काले रंग के घर बने रहते हैं (अंधकारितललाटपट्टाष्टापदा, ६)। प्रतिपंक्ति में आठ घरोंवाला शतरंज का खेल बाण के समय में चल चुका था और उसके खाने काले या सफेद रङ्ग के होते थे। उसी का यहाँ अंधकारित अष्टापद पट्ट इन शब्दों में उल्लेख किया गया है। पहलवी भाषा की मादीगान-ए-शतरंग नामक पुस्तक में आरम्भ में ही इस बात का उल्लेख है कि दीवसारम् नाम के भारतीय राजा ने खुसरू नौशेरवाँ की सभा के विद्वानों की परीक्षा के लिये बत्तीस मोहरोंवाला शतरंज का खेल ईरान भेजा। खुसरू परवेज या नौशेरवाँ हर्ष के समकालीन ही थे। अनुश्रुति है कि दक्षिण के चालुक्यराज पुलकेशिन् की सभा में खुसरू परवेज ने अपना दूत-मंडल प्राभृत या भेंट लेकर भेजा था। अरबी इतिहास-लेखक तबारी के ग्रन्थ में पुलकेशी और खुसरू के बीच हुए पत्र-व्यवहार का भी उल्लेख है। फिरदौसी ने भी भारतीय राजा (राय हिन्दी) के द्वारा शतरंज के खेल का ईरान भेजा जाना लिखा है। एक स्थान पर 'राय हिन्दी' को 'राय कन्नौज' भी कहा गया है*।

दुर्वासा की सिकुड़ी हुई भृकुटि की उपमा स्त्रियों के पत्रभंगमकरिका नामक आभूषण से दी गई है। मकरिका गहने का उल्लेख बाणभट्ट में अनेक स्थानों पर आता है। दो मकरमुखों को मिलाकर फूल-पत्तियों के साथ बनाया हुआ आभूषण मकरिका कहलाता था। गुप्तकालीन मूर्तियों के मुकुट में प्रायः मकरिका आभूषण मिलता है [चित्र २]। दुर्वासा के शरीर पर कन्धे से लटकते हुए कृष्णाजिन का भी उल्लेख किया गया है। कृष्णाजिन की उपमा के सिलसिले में शासनपट्ट का उल्लेख अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। ज्ञात होता है कि राजकीय

* विजारिशन-इ-शतरंग, जे० सी० तारापुर द्वारा मूल और अंग्रेजी अनुवाद सहित सम्पादित, पृ० १, १२, २३ प्रकाशक पारसी पंचायत फंड, बंम्बई, १६३२।

आज्ञाओं के शासनपट्ट उस समय कपड़े पर काली स्याही से लिखे जाते थे। दर्पशात हाथी के वर्णन में भी इस प्रकार के कलम से लिखे हुए दानपट्टकों का उल्लेख आया है।

ब्रह्माजी के समीप मे दूसरी ओर सावित्री बैठी हुई थी। उनके शरीर पर श्वेत रंग का कल्पद्रुम से उत्पन्न दुकूल वल्कल था। कल्पवृक्ष से वस्त्र, आभूषण, अन्नपान आदि के इच्छानुसार उत्पन्न होने की कल्पना साहित्य और कला मे अति प्राचीन है। उत्तरकुरु के वर्णन मे रामायण और महाभारत दोनो मे इस अभिप्राय का उल्लेख हुआ है। साँची और भरहुत की कला मे कल्पलताओं मे वस्त्र और आभूषण उत्पन्न होते हुए दिखाए गए है*। कालिदास ने मेघदूत मे इस अभिप्राय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि अकेला कल्पवृक्ष ही स्त्रियो के शृंगार की सब सामग्री अलका मे उत्पन्न कर देता है। उसमे चित्र-विचित्र वस्त्रो का स्थान प्रथम है†। सावित्री के शरीर के ऊपरी भाग मे महीन अंशुक की स्तनो के बीच बँधी हुई गात्रिका ग्रंथि थी (स्तनमध्यबद्धगात्रिका ग्रंथि, १०) (चित्र ३)। गात्रिका से ही हिन्दी का गाती शब्द निकला है। ब्रह्मचारी या संयासी अभी तक उत्तरीय की गाती बाँधते है। माथे पर भस्म की त्रिपुण्ड्र रेखाएँ लगी हुई थी। त्रिपुण्ड्र तिलक का प्रयोग सप्तम शती से पूर्व लोक मे चल गया था। सावित्री के बॉयें कंधे से कुंडलीकृत योगपट्ट लटक रहा था जो दाहिनी बगल के नीचे होकर कमर की तरफ जाता था (चित्र ४)। इस वर्णन मे कुंडलीकृत, योगपट्ट और वैकक्ष्यक तीनो शब्द पारिभाषिक हैं। वैकक्ष्यक बाण के ग्रंथो मे कई बार आता है। माला, हार या वस्त्र बॉयें कन्धे से दाहिनी कॉख (कक्ष) की ओर जब पहना जाता था तो उसे वैकक्ष्यक कहते थे। योगपट्ट वह वस्त्र था जिसे योगी शरीर का ऊपरी भाग ढकने के लिये रखते थे। साहित्य मे अनेक स्थानो पर इस शब्द का प्रयोग हुआ है। अपभ्रंश भाषा के यशोधरचरित काव्य मे इसका रूप जोगवट्टु आया है (गल जोगवट्टु सज्जिउ विचित्तु)। पुरानी अवधी मे इसी का रूप जोगबाट जायसी ने प्रयुक्त किया है‡। बाण का यह लिखना कि योगपट्ट कुंडली करके या मोडकर पहना गया था, गुप्तकालीन मूर्तियो को देखने से ही समझ में आ सकता है जिनमे बॉयें कंधे पर से उतरता हुआ योगपट्ट दोहरा करके डाला जाता है। सावित्री के बॉयें हाथ मे स्फटिक का कमंडलु था जिसकी उपमा पुंडरीक मुकुल से दी गई है। गुप्तकालीन अमृतघट जो बोधिसत्त्व आदि मूर्तियो के बाएँ हाथ मे रहता है ठीक इसी प्रकार का लम्बोतरा नुकीली पेंदी का होता है। (चित्र ५) सावित्री दाहिने हाथ मे शंख की बनी हुई अंगूठियाँ (कम्बुनिर्मितऊर्मिका) पहने और अक्षमाला

* देखिए मेरा लेख कल्पवृक्ष, कलापरिषद् कलकत्ता का जर्नल १९४३ पृ० १-८।

† वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥

मेघदूत २, ११

‡ रतनसेन जोगी खण्ड में—मेखल सिंघी चक्र धंधारी। जोगबाट रुद्राछ अधारी ॥
(पद्मावत, १२-१-४)

लिए थी। सावित्री के साथ ब्रह्मचारियों का वेश रखे हुए मूर्तिमान् चारो वेद भी थे। शिल्पकला मे मूर्तिमान् चारो वेदो का अकन अभी तक देखने मे नही आया।

सावित्री बीच मे पडकर दुर्वासा से क्षमा माँगना चाहती ही थी कि क्रोधी दुर्वासा ने चट शाप दे दिया कि सरस्वती मर्त्यलोक मे जन्म ले। शाप सुनकर ब्रह्माजी ने पहले धीर स्वर से दुर्वासा को समझाया और पुन सरस्वती से कहा—'पुत्री, विषाद मत करो। यह सावित्री भी तुम्हारे साथ रहेगी और पुत्रजन्म पर्यन्त तुम वहाँ निवास करोगी।' ब्रह्मा के शरीर को धवलयज्ञोपवीती कहा गया है। गुप्तकालीन ब्राह्मणधर्म-सबधी मूर्तियो मे यज्ञोपवीत का अंकन आरभ हो गया था। कुषाणकालीन मूर्तियो मे इसका अकन नही पाया जाता। ब्रह्माजी के उपदेशवाक्यो मे बाण के समकालीन बौद्धो के धार्मिक प्रवचन की झलक पाई जाती है। 'जिन्होने इन्द्रियो को वश मे नही किया, उनके इन्द्रियरूपी उद्दाम घोडो से उठी हुई धूल दृष्टि को मलीन कर देती है। चर्मचक्षु कितनी दूर देख सकते है? ज्ञानी लोग भूत और भविष्य के सब भावो को विशुद्ध बुद्धि से देखते है *।' बुद्ध की प्रज्ञा के सबध मे बौद्ध लोग यही बात कहते थे। विश्व की सब वस्तुओ का ज्ञान बुद्ध को करतलगत था। इसे बुद्ध का 'चक्षु' कहा जाता था। इसी का विवेचन करने के लिये रत्नकरतल चक्षु-विशोधन-विद्या (धर्मरक्षकृत, २६६-३१३ ई०) आदि ग्रथ रचे गए। कालिदास ने भी वसिष्ठ के सम्बन्ध मे इस प्रकार के निष्प्रतिघ चक्षु का उल्लेख किया है †।

इसके बाद सध्या हो गई। यहाँ बाण ने प्रदोषसमय का साहित्यिक दृष्टि से बडा भव्य वर्णन किया है—'तरुण कपि के मुख की भाँति लाल सूर्य अस्ताचल को चले गए। आकाश ऐसे लाल हो गया मानो विद्याधरी अभिसारिकाओ के चरणो मे लगे महावर से पुत गया हो। सध्या की कुसुभी लाली दिशाओ को रँगती हुई रक्तचन्दन के द्रव की भाँति आकाश मे बिखर गई। हस तालो में कमलो का मधु पीकर छके हुए ऊँघने लगे। रात की साँस की तरह वायु मन्द-मन्द बहने लगी। पके तालफल की त्वचा की कलौस मिली ललाई की भाँति सध्या की लाली के साथ पहला अँधेरा धरती पर फैल गया। कुटज के जगली फूलो की तरह तारे नभ मे छिटक गए। निशालक्ष्मी के कान मे खोसी हुई चम्पा की कली जैसे दीपक बढते हुए अँधेरे को हटाने लगे। चन्द्रमा के हलके और पीले उजाले से अधकार के हटने पर पूर्वी दिशा का मुख ऐसे निकला मानो सूखते हुए नीले जल के घटने से जमना का बालू-भरा किनारा निकला हो। चूहे के पख के रग-सा अँधेरा घटता हुआ आकाश छोडकर धरती पर खिले नीले कमलो के सरोवरो मे छा गया। रात्रिवधू के अधरराग की भाँति लाल चन्द्रमा उग आया, मानो वह उदयाचल की खोह में रहनेवाले सिह के पजो से मारे गए अपनी ही गोद के हिरन के रुधिर से रँग गया था। उदयाचल पर फैली चन्द्रकान्तमणि से

---

* उद्दामप्रसृतेन्द्रियाश्वसमुत्थापित हि रज कलुषयति दृष्टिम् अनक्षजिताम्। कियद्दूर वा चक्षुरीक्षते? विशुद्धया हि धिया पश्यन्ति कृतबुद्धय सर्वानर्थानसत सतो वा (१२)।

† पुरुषस्य पदेष्वजन्मन समतीत च भवच्च भावि च।
स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा त्रितय ज्ञानमयेन पश्यति॥

(रघुवश, ८-७८)

बही जलधाराओं ने अँधेरे को धोकर बहा दिया। पूर्णचन्द्र आकाश मे उठकर सफेद चाँदनी से समुद्र को ऐसे भरने लगा जैसे हाथीदाँत का बना मकरमुखी पनाला गोलोक से दूध की धार बहा रहा हो। इस प्रकार प्रदोष समय स्पष्ट हो उठा।'

कला की दृष्टि से इस वर्णन मे कई शब्द ध्यान देने योग्य है जैसे, नृत्तोद्धूतधूर्जटिजटाटवी (१५)। इससे ज्ञात होता है कि ताडव करते हुए नटराज शिव की मूर्त कल्पना उस समय लोक मे व्याप्त हो रही थी। दन्तमय मकरमुख महाप्रणाल से तात्पर्य हाथीदाँत के बने मकरमुखी उन पनालो से है जो मन्दिरो या महलों की वास्तुकला में लगाए जाते थे। पत्थर मे उनके बडे अनेक उदाहरण भारतीय वास्तु मे मिलते है। [चित्र ६]

साहित्यिक दृष्टि से इतना कहना उचित होगा कि बाण को सध्या का वर्णन बहुत प्रिय था। हर्षचरित मे चार बार सध्या का वर्णन आया है (१४-१६, ८०-८१, २१८-२१६,२५७-२५८) बाण ने हर बार भिन्न भिन्न चित्र खीचने का प्रयत्न किया है। खुली प्रकृति मे और शहर के अन्दर बन्द वातावरण मे सध्या के दृश्य प्रभाव और प्रतिक्रिया विभिन्न होती है। बाण की साहित्यिक तूलिका ने दोनो के ही चित्र लिखे है।

प्रातःकाल होने पर सावित्री के साथ सरस्वती ब्रह्मलोक से निकली और मन्दाकिनी का अनुसरण करती हुई मर्त्यलोक मे उतरी। इस प्रसग मे ब्रह्मा के हसविमान का उल्लेख है। हसवाही देव-विमान मथुरा की शिल्पकला मे अकित पाया गया है [चित्र ७]।[1] मदाकिनी के वर्णन मे कला की दृष्टि से कई शब्द उपयोगी है, जैसे मौलिमालतीमालिका, मस्तक पर पहनी जाने वाली मालती-माला जिसका गुप्तकला मे चित्रण पाया जाता है [चित्र ८], दूसरी अशुकोष्णीषपट्टिका अर्थात् अंशुक नामक महीन वस्त्र की उष्णीष पर बँधी हुई पट्टिका [चित्र ६]; तीसरी विट के मस्तक की लीलाललाटिका। विट और विदूषकों के वेश कुछ मसखरापन लिए होते थे। जान पडता है, विट लोग माथे पर बोल, बेंदी या टिकुली जैसा कोई आभूषण (ललाटिका) पहन लेते थे। विदूषको के लिए तीन चोचवाली (त्रिशिखडक) टोपी गुप्तकला मे प्रसिद्ध थी[2]। बाण ने मदाकिनी के लिये सप्तसागर राजमहिषी की कल्पना की है। वस्तुत. गुप्तयुग और उत्तर-गुप्तयुग मे द्वीपान्तरो के साथ भारतीय सम्पर्को मे वृद्धि होने से सप्तसागरो का अभिप्राय साहित्य मे आने लगा था। पुराणो मे इसी युग मे सप्तसमुद्र महादान की कल्पना की गई (मत्स्यपुराण, षोडशमहादानप्रकरण)। विदेशो के साथ व्यापार करके घर लौटने पर धनी व्यापारी सवा पाव से लेकर सवा मन तक सोने के बने हुए सप्त-समुद्ररूपी सात कुडों का दान करते थे। मथुरा, प्रयाग, काशी-जैसे बडे केन्द्रो मे जहाँ इस प्रकार के दान दिए जाते थे, वे जलाशय सप्तसमुद्रकूप या समुद्रकूप कहलाते थे। इस नाम के कूप अभीतक इन तीनो स्थानो मे विद्यमान है। मदाकिनी के लिये सप्तसमुद्रों की पटरानी की कल्पना भारत के सास्कृतिक इतिहास का एक सुन्दर समकालीन प्रतीक है।

इसके बाद की कहानी मर्त्यलोक मे शोण नदी के किनारे आरम्भ होती है। शोण को बाण ने चन्द्र-पर्वत का अमृत का झरना, विन्ध्याचल की चन्द्रकान्त मणियो का निचोड और दडकारण्य के कर्पूरवृक्षो का चुआ हुआ प्रवाह कहा है। श्रीयुत बागची ने एक

१ स्मिथ, जैन स्तूप आफ मथुरा, फलक २०।

२ गुप्ता आर्ट, चित्र १०.

चन्द्रद्वीप की पहिचान दक्षिणी बगाल के बारीसाल जिले के समुद्र तट से की है[1]। किन्तु शोण से सबधित चन्द्रपर्वत विन्ध्याचल का वह भाग होना चाहिए जहाँ अमरकटक के पश्चिमी ढलान से सोन नदी का उद्गम हुआ है। भवभूति ने उत्तर-रामचरित (अङ्क ४) मे सीता-वनवास से खिन्न राजा जनक के वैखानसवृत्ति धारण करके चन्द्रद्वीप के तपोवन मे कुछ वर्ष बिताने का उल्लेख किया है। सभव है, भवभूति का यह चन्द्रद्वीप विन्ध्याचल के भूगोल का ही भाग हो जो कि उत्तररामचरित की भौगोलिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत है। बाण के समय शोण का दूसरा नाम हिरण्यवाह भी प्रसिद्ध था (हिरण्यवाहनामान महानद य जनाः शोण इति कथयन्ति, १६)। अमरकोश मे भी शोण का पर्याय हिरण्यवाह दिया है जिससे गुप्तकाल तक इस नाम की ख्याति सिद्ध होती है। सोन के पश्चिमी तीर अर्थात् बाएँ तट पर सरस्वती ने अपना आश्रम बनाया और दाहिने किनारे पर सोन की उपकठ भूमि या कछार मे कुछ दूर हटकर कही च्यवनाश्रम था। बाण के अनुसार सोन के उस पार एक गव्यूति या दो कोस पर च्यवन ऋषि के नाम से प्रसिद्ध च्यावन नामक वन था[2], जहाँ सरस्वती के भावी पति दधीच ने अपना स्थान बनाया। दधीच की सखी मालती घोडे पर सवार होकर सोन पार करके सरस्वती से मिलने आती है (प्रजविना तुरगेण ततार शोण, ३६)। अवश्य ही इस स्थान पर सोन कही पैदल पार की जा सकती होगी। यही दधीच और सरस्वती के पुत्र सारस्वत ने अपने चचेरे भाई वत्स के लिए प्रीतिकूट नाम का गाँव च्यवनाश्रम की सीमा मे बसाया (३८) ब्राह्मणो की बस्ती प्रधान होने के कारण बाण ने इसे ब्राह्मणाधिवास भी कहा है। यही प्रीतिकूट बाण का जन्मस्थान था ❀।

[1] श्रीप्रबोधचन्द्र बागची, इडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली भाग २२, पृ० १२९, बगला के सस्कृत-साहित्य पर नया प्रकाश , और भी देखिए, विश्वभारती क्वार्टरली, अगस्त १९४६, पृष्ठ ११६-१२१, श्री प्रबोधचन्द्र सेन, प्राचीन बगाल का भूगोल। और भी, श्रीबागची द्वारा सपादित कौलज्ञाननिर्णय (कलकत्ता सस्कृत सीरीज) की भूमिका मे चन्द्र पर्वत सबधी अन्य सामग्री।

[2] इतश्च गव्यूतिमात्रमिव पारेशोण तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मित व्यपदेश च्यावन नाम कानन (२७)।

❀ च्यवनाश्रम की पहचान के सम्बन्ध मे श्रीपरमेश्वरप्रसाद शर्मा ने 'महाकवि बाण के वंशज तथा वास-स्थान' नामक लेख मे (माधुरी, वर्ष ८, स० १९८७, पूर्ण सख्या ९६, पृ० ७२२ – ७२७) विचार किया है। उनका कहना है—'शोणनद के किनारे खोज करने से च्यवनऋषि का आश्रम आजकल भी 'देवकुर' (देवकुड) के नाम से एक सुविस्तृत जगल-झाडियों के बीच गया जिले मे शोण नहर के आस पास, शोण की वर्त्तमान धारा से पूर्व की ओर, गया से पश्चिम रफीगज से १४ मील उत्तर-पश्चिम मे बसा हुआ है। बाण का जन्मस्थान इसी के आस-पास कही होगा। और भी खोज करने पर इस च्यवना-श्रम के आस-पास चारो ओर बच्छगोतियों की कई एक बडी-बडी बस्तियों का पता लगता है, जैसे सोनभद्र, परभै, बँधवाँ वगैरह। इन सबमे सोनभद्र आदिस्थान माना जाता है। मालूम होता है कि शोण के किनारे होने के कारण ही इस गाँव का नाम शोणभद्र पड़ा। यहाँ के रहनेवाले सोनभदरिया विख्यात हुए जो अपने को बच्छगोतिया

शोणतटवर्ती आश्रम मे सरस्वती की दिनचर्या का वर्णन करते हुए शिवपूजा के संबध मे कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी गई हैं। सरस्वती नदी के किनारे सैकत शिवलिंग बनाती और शिव के पचब्रह्मरूप की पूजा करती थी (पचब्रह्मपुरस्सरा, २०)। शिव के ये पाँच रूप सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान नामक थे। इनके अनुसार पचमुखी शिवलिंग कुषाणकाल से ही बनने लगे थे और गुप्तकाल मे भी उनका विशेष प्रचार था [चित्र १०]। पाँच तत्त्व और पाँच चक्रों के अनुसार यह शिव के पचात्मक रूप की कल्पना थी। बौद्धों मे भी योग और तान्त्रिक प्रभावो के सम्मिश्रण से पचात्मक बुद्धो की उपासना व कलात्मक अभिव्यक्ति कुषाण और गुप्तकाल मे विकसित हो चुकी थी। बाण ने यहाँ शिव की अष्टमूर्तियो का भी उल्लेख किया है। इनका ध्यान करके शिवपूजा मे शिवलिंग पर अष्टपुष्पिका चढाई जाती थी। कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल के मगलश्लोक मे शिव की इन अष्टमूर्तियो का अत्यन्त सरस वर्णन किया है। बाण ने उनके नाम इस प्रकार गिनाए है—१ अवनि, २. पवन, ३ वन (जल), ४. गगन, ५ दहन (अग्नि), ६. तपन (सूर्य), ७ तुहिनकिरण (चन्द्रमा) और ८. यजमान (आत्मा २०)। अष्टपुष्पिका पूजा के इस प्रसग मे ध्रुवागीति का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है जिसका तात्पर्य ध्रुपद गान से ही ज्ञात होता है। ध्रुपदगान और कुछ रागों का विकास बाण से पहले हो चुका था। बाण के पूर्वकालीन सुबन्धु ने वासवदत्ता मे विभास राग का स्पष्ट नामोल्लेख किया है।[1]

एक दिन प्रातःकाल के समय एक सहस्र पदाति-सेना और घुडसवारो की एक टुकडी उस आश्रम के समीप आती हुई दिखाई पडी। गुप्तकाल मे बहुत यत्न के बाद पदाति-सेना का जो निखरा रूप बना था उसका एक उभरा हुआ चित्र बाण ने यहाँ प्रस्तुत किया है।

कहते हैं। बच्छगोतिया शब्द वत्सगोत्रीय शब्द का बिगडा हुआ रूप है। च्यवनाश्रम की समीपता, शोणभद्र की तटस्थता, तथा सोनभद्र की प्राचीनता और बच्छगोतिया नाम के अस्तित्व के ऊपर विचार करने से यह धारणा हुए बिना नही रह सकती कि यह सोनभद्र गाँव महाकवि बाण के बाल्यकाल का क्रीड़ा स्थल था, यही पर बाण ने अपने कादम्बरी-जैसे अनोखे उपन्यास और हर्षचरित-जैसे अनोखे इतिहास की रचना की थी।'

बाण के साले मयूर के जन्म-स्थान के विषय में भी इस लेख मे लिखा है कि गया जिले मे पामरगंज स्टेशन से दक्षिण-पश्चिम १४ मील हटकर च्यवनाश्रम से ठीक बीस कोस दक्षिण-पश्चिम कोने पर एक 'देव' नामक प्रसिद्ध स्थान है जहाँ सूर्य का एक विशाल मन्दिर मयूर-भट्ट की तपोभूमि का स्मरण दिला रहा है। यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक और चैत्र की छठ को बडा मेला लगता है और सैकडो आदमी यहाँ कुष्ठरोग से छुटकारा पाने के लिये आते है। यह मन्दिर भी च्यवनाश्रम की तरह पश्चिम मुँह का है। इसके आस-पास मरयार नाम के स्थानीय ब्राह्मणो की अनेक बस्तियाँ है जो अपने को मयूर का वंशज बतलाते है। (माधुरी, वही पृष्ठ ७२४)।

१. विभासरागमुखरकार्पटिकजनोपगीयमानकाव्यकथासु रथ्यासु, (वासवदत्ता, जीवानन्द संस्करण, पृ० २२), अर्थात् कार्पटिक साधु काव्य की कहानियाँ विभासराग में गा-गाकर गलियों में सुनाते थे।

पदाति-सेना की भर्ती मे प्राय जवान लोग थे (युवप्रायेण)। बाण के समय लम्बे बाल रखने का रिवाज था, लेकिन फौजी जवान लम्बे घुँघराले बालो को इकट्ठा करके माथे पर जूडा बाँधते थे [1] [चित्र ११]। वे कानो मे हाथीदाँत के बने पत्ते पहनते थे जो झुमके की तरह कपोल के पास लटकते थे [2]। प्रत्येक सैनिक लाल रग का कचुक या कसा हुआ छोटा कोट पहने था, जिसपर काले अगुरु की बुदकियाँ छिटकी हुई थी [3]। सिर पर उत्तरीय की छोटी पगडी बँधी हुई थी [4]। बाएँ हाथ की कलाई मे सोने का कडा पडा हुआ था। गुप्तकाल मे इसका आम रिवाज था। कालिदास ने भी इसका उल्लेख किया है [5]। यह कडा कुछ निकलता हुआ या ढीला होता था, जो सम्भवत छैलपन की निशानी थी। इस विशेषता के कारण बाण ने उसे स्पष्ट-हाटक-कटक कहा है[6]। कमर मे कपडे की दोहरी पेटी की मजबूत गाँठ लगी थी और उसी मे छुरी खोंसी हुई थी [7]। छुरी के लिए प्रायः असिधेनु या असिपुत्रिका शब्द चलते थे। निरन्तर व्यायाम से शरीर पतला किन्तु तारकशी की तरह खिचा हुआ था [8]। गठे हुए लम्बे शरीर पर पतली कमर मे कसी हुई पेटी और उसमे खोसी हुई कटारी, इस रूप मे सैनिको की मिट्टी की मूर्तियाँ अहिच्छत्रा की खुदाई मे मिली है जो लगभग छठी-सातवीं ईसवी की हैं [9] [चित्र १२]। पदाति-सैनिको मे कुछ लोग मुँगरी या डडे लिये हुए थे (कोणधारी) और कुछ के हाथ मे तलवार थी। यह पदाति-सेना आगे-आगे तेज चाल से चली जाती थी और इनके पीछे अश्ववृन्द या घुडसवारो की टुकडी आ रही थी।

घोडो की टुकडी के बीच मे अठारह वर्ष का एक अश्वारोही युवक था। दधीच नामक इस युवक के वर्णन मे बाण ने अपने समकालीन सम्भ्रान्त और नवयुवक सेनानायक का चित्र खीचा है। वह बडे नीले घोडे पर सवार था। साथ मे चवर डुलाते हुए दो परिचारक दाएँ बाएँ चल रहे थे। आगे-आगे सुभाषित कहता हुआ एक बन्दी या चारण चल रहा था। सेनानायक के सिर पर छत्र था। बाण ने छातो का कई जगह वर्णन किया है (५६, २१६)। इस छाते की तीन विशेषताएँ थी। उसके सिरे पर अर्धचन्द्र की आकृतियोंवाली एक गोल किनारी बनी हुई थी। बगडीदार या चूडीदार सजावट की यह किनारी (Scalloped border) प्रभामडल के साथ कुषाणकाल से ही मिलने लगती

---

१ प्रलम्बकुटिलकचपल्लवघटितललाटजूटक, २१। इस प्रकार के माथे पर बँधे जूडे (ललाटजूटक) के साथ मथुरा-सग्रहालय मे जो २१ सख्यक पुरुषमस्तक देखिए।

२ धवलपत्रिकाद्युतिहसितकपोलभित्ति, २१।

३ कृष्णशबलकषायकचुक, २१।

४ उत्तरीयकृतशिरोवेष्टन, २१।

५ कनकवलयश्र शरिक्तप्रकोष्ठ, मेघदूत, २१।

६ वामपकोष्ठनिविष्टस्पष्टहाटककटकेन, २१।

७ द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रंथिग्रथितासिधेनुना, २१।

८ अनवरतव्यायामकृशकर्कशशरीरेण, २१।

९ वासुदेवशरण अग्रवाल, टेराकोटा फिगरीन्स ऑव अहिच्छत्रा, एँश्यंट इडिया, अक ४, पृष्ठ १४९, चित्र० स० १८८,।

है। किन्तु गुप्तकाल के छाया-मडलो मे इस किनारी के साथ और भी अलकरण जैसे कमल की पँखडी और मोर या गरुड मिलने लगते है। ये छाया-मडल हूबहू छत्रो के ढग पर अलकृत किए जाते थे। ऐसा कालिदास ने लिखा है[1]। छत्र के किनारे पर मोतियो की झालर लगी हुई थी (मुक्ताफलजालमालिना २१) और बीच-बीच मे तरह-तरह के रत्न जड़े थे। दधीच कटि तक लम्बी मालती की माला पहने हुए था और उसके सिर पर तीन प्रकार के अलकरण थे। एक तो केशान्त मे मौलसिरी की मुडमाला थी, दूसरे सामने की ओर पद्मरागमणि का जडाऊ छोटा गहना या कलँगी (शिखण्डखण्डिका २१) लगी हुई थी, और तीसरे उसके पीछे की ओर मौलिधारण किये हुए था। उसकी नाक लम्बी और ऊँची थी (द्राघीयस् घोणावश)। मुख मे विशेष प्रकार का सुगधित मसाला था जो सहकार, कर्पूर, कक्कोल, लवग, और पारिजात इन पाँच सुगधित द्रव्यो से बना था। ज्ञात होता है कि उस समय इस मुखशोधक सुगधि (मुखामोद) का अधिक रिवाज था। बाण ने अन्यत्र भी इसका उल्लेख किया है और ऊपर लिखे द्रव्यों के अतिरिक्त चपक और लवली भी मुखशोधक मसाले मे मिलाने की बात लिखी है (६६)। युवक के कान मे त्रिकटक नाम का गहना था। यह आभूषण दो मोतियो के बीच मे पन्ने का जडाव करके बनाया गया था (कदम्बमुकुलस्थूलमुक्ताफलयुगलमध्याध्यासितमरकतस्य त्रिकटककर्णाभरणस्य, २२)। उस समय त्रिकटक कर्णाभरण का व्यापक रिवाज था। स्त्री और पुरुष दोनों इसे पहनते थे। हर्ष के जन्ममहोत्सव के समय राजकुल मे नृत्य करती हुई राजमहिषियाँ त्रिकंटक पहने हुए थी (उद्धूयमानधवलचामरसटालग्नत्रिकटकवलितविकटकटाक्षा:, १३३)। हर्ष का ममेरा भाई भडि जब पहली बार दरबार मे आया, वह कान मे मोतियो से बना त्रिकंटक पहने था (त्रिकटकमुक्ताफलालोकधवलित, १३५)। सौभाग्य से बाण के वर्णन से मिलता हुआ दो मोतियो के बीच मे जडाऊ पन्ने सहित सोने का कान मे पहनने का एक गहना जो बाली के आकार का है, मुझे प्राप्त हुआ था, वह अब राष्ट्रीय सग्रहालय, नई दिल्ली मे सुरक्षित है। उसकी पहचान त्रिकटक से की जा सकती है। [चित्र १३]

दधीच की कमर मे एक हरे रग का कसकर बाँधा हुआ (निबिडनिपीडित) छोटा अधोवस्त्र था। बाण ने उसके बाँधने के प्रकार का यथार्थ चित्रण किया है। सामने की ओर नाभि से कुछ नीचे उसका एक कोना रहता था (ईषदधोनाभिनिहितैककोणकमनीय, २२), अर्थात् उसका ऊपर का सिरा नीवी या अटी मे बँधा और नीचे का छुटा रहता था। शरीर के मोडने से दाहिनी जाँघ का कुछ भाग दिखाई दे जाता था (सवलनप्रकटितोरुत्रिभाग, २२)। उस गमछानुमा अधोवस्त्र का कच्छभाग पीछे की ओर पल्ला खोंसने के बाद भी कुछ ऊपर निकलता रहता था (कक्ष्याधिकक्षिप्तपल्लव, २२)। अधोवस्त्र पहनने का यह ढग गुप्तकालीन मूर्तियो मे प्रत्यक्ष देखा जाता है। उससे बाण के वर्णन को स्पष्ट समझने मे सहायता मिलती है। [चित्र १४]

वह युवक जिस घोडे पर सवार था उसके साज का भी वर्णन किया गया है। उसके मुँह मे खरखलीन या काँटेदार लगाम थी। सीधे घोडों को सादा लगाम और तेज-मिजाज घोडो के लिए काँटेदार लगाम प्राय: होती है। उसके लिये बाण ने खरखलीन

1. छायामण्डललक्ष्येण ... पद्मातपत्रेण, रघुवश, ४, ५।

नाम दिया है। खलीन शब्द सस्कृत मे यूनानी भाषा से किसी समय लिया गया था जो बाण के समय मे खूब चल गया था। घोडे की नाक पर सामने की ओर लगाम का कमानीदार हिस्सा (दीर्घघ्राणलीनलालिक) और माथे पर सोने का पदक झूल रहा था (ललाटलुलित-चामीकरचक्रक)। गले मे सोने की झनझन बजनेवाली मालाएँ पडी थी जिन्हे जयन कहते थे (शिजानशातकौम्भजयन, २३)। जहाँ सवार के पैर लटकते थे वहाँ कदया के समीप पलान से झूलती हुई छोटी-छोटी चवरियो की पक्ति घोडो की शोभा के लिये लगाई जाती थी (अश्वमडनचामरमाला, २३)।

इस प्रकार वह नवयुवक नायक अश्ववृन्द के मध्य मे चल रह था, मानो वह नेत्रो का आकर्षणाजन, मान का वशीकरण मत्र, सौभाग्य का सिद्धियोग, रूप का कीर्तिस्तम्भ और लावण्य का मूल कोष हो। ये सब पारिभाषिक शब्द है। वाग्भट्ट के अष्टागसग्रह मे जो लगभग बाण की समकालीत रचना थी, सर्वार्थसिद्ध अजन के बनाने की विधि विस्तार से दी गई है। बाण ने लिखा है कि चडिका के मदिर का बुड्ढा दक्खिनी पुजारी किसी ठग के द्वारा दिए हुए सिद्धाजन से अपनी एक आँख ही गँवा बैठा था (का० २२६)। उस समय की जनता देवी-देवताओं की मनौती मानकर इस प्रकार के सिद्ध अजन और औषधियो का प्रयोग करती थी, यह भी वाग्भट्ट से ज्ञात होता है। सातवी शती मे कीर्तिस्तम्भ शब्द का प्रयोग उनके निर्माण की प्राचीन परम्परा का सूचक है।

उसके पार्श्व मे घोडे पर सवार एक अगरक्षक चल रहा था। लम्बा, तपे सोने के-से रगवाला, अधेड अवस्था का, जिसके दाढी मूँछ और नाखून साफ-सुथरे कटे हुए थे (नीचनखश्मश्रुकच), छिले कसेरू-सी घुटी खोपडीवाला (शुक्तिखलितः), कुछ तुन्दिल, रोमश उरस्थल वाला, दिखावटी न होने पर भी भव्य वेश का, आकृति से महानुभाव शिष्टाचार (तहजीबसलीका) की सीख-सी देता हुआ (आचारस्य आचार्यकम् इव कुर्वाण), सफेद कचुक पहने हुए और सिर पर धुली दुकूलपट्टिका बाँधे हुए—इस प्रकार का वह पार्श्व-पुरुष था। यहाँ स्पष्ट रूप से उसकी जातीयता न बताकर भी बाण ने बारीक हुलिया से उसके विदेशी होने का इशारा किया है। सभवत: इस वर्णन के पीछे पारसीक सैनिक का चित्र है। बाण ने स्वय उसके लिए 'साधु' पद का प्रयोग किया है। सभवतः यह 'शाह' का सस्कृत रूप तत्कालीन बोलचाल मे प्रयुक्त होता हो।

वे दोनों घोड़े से उतरकर सरस्वती और सावित्री के पास लतामंडप मे विनीत भाव से आए। शिष्टाचार के उपरान्त सावित्री के प्रश्न के उत्तर मे पार्श्वचर ने अपने साथी का परिचय देते हुए कहा —'यह च्यवन से सुकन्या मे उत्पन्न पुत्र दधीच है। इसका जन्म अपने नाना के यहाँ हुआ। अब यह अपने पिता के समीप जा रहा है। मै इसके मातामह-कुल का आज्ञाकारी भृत्य विकुक्षि हूँ। शोण के उस पार च्यावन वन तक हमे जाना है। आप भी अपने गोत्र-नाम से अनुगृहीत करे।' सावित्री ने इतना ही कहा—'आर्य, समय पर सब जानेगे'। इसके बाद सन्ध्या हो गई किन्तु सावित्री को उस युवक मे मन लग जाने के कारण नीद न आई। कुछ दिन बाद यही विकुक्षि छत्रधार के साथ पुन वहाँ आया। कुशल-प्रश्न के उपरान्त उसने सूचना दी कि कुमार दधीच की मालती नामक सखी उसका सन्देश लेकर शीघ्र ही आएगी। अगले दिन प्रातःकाल शोण पार करके मालती उस स्थान पर

आई। वह बडे तुरगम पर सवार थी। उसके पैर रकाब मे पडे हुए थे (उरवप्रारोपित-चरणयुगल, ३१)। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि भारतवर्ष मे रकाब का वर्णन स्त्रियो की सवारी के लिए ही आता है और कला मे भी स्त्रियो के लिये ही उसका अकन किया गया है।[१] [चित्र १५]

मालती का वेश विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। वह धोए हुए सफेद रेशम का पैरो तक लटकता हुआ झीना कचुक पहने थी[२] जो सॉप की केंचुली की तरह हल्का और बारीक था। इस प्रकार का लम्बा कचुक अजन्ता की पहली गुफा मे बोधिसत्व अवलोकितेश्वर के पीछे खडी हुई स्त्री के शरीर पर स्पष्ट है। वस्त्र के लिए यहाँ नेत्र शब्द का प्रयोग किया गया है। बाण के ग्रथो मे यह शब्द कितनी ही बार आता है। नेत्र एक प्रकार का महीन रेशमी कपडा जान पडता है। झीने कचुक के नीचे कुसुम्मी रग का लाल लहगा (कुसुम्भरंगपाटलं चडातक) झलक रहा था (अन्त स्फुट) जिस पर रग-बिरगी बदकियाँ पडी हुई थीं (पुलकबधचित्रम्)। ज्ञात होता है कि बाधनू की रगाई से ये बदकियाँ उत्पन्न की जाती थीं। इस तरह की रगाई के लिये पुलक बन्ध पारिभाषिक शब्द ज्ञात होता है। उसका मुख मानो नीले अशुक की जाली से ढॅका था (नीलाशुकजालिकयेव निरुद्धार्धवदना)। माथे पर दमकता हुआ पद्मराग का चटुला ऐसा फबता था मानो वह रक्ताशुक का घूघट डाले हुए थी। बाण के वर्णनों मे देहाती स्त्रियों के वेश मे ही शिरोवगुठन का उल्लेख आया है।

मालती के शरीर पर कई प्रकार के आभूषणों का वर्णन किया गया है। कटिप्रदेश मे बजती हुई करधनी थी। गले मे आँवले जैसे बडे गोल मोतियों का हार था (आमलकी-फलनिस्तलमुक्ताफलहार)। इस हार की उपमा स्थूल ग्रहगण या नवग्रहों से दी गई है। ज्ञात होता है कि यह नौ बडे मोतियों का कंठा था जो ग्रीवा से कुछ सटा हुआ पहना जाता था। मथुरा कला मे इस प्रकार का कठा शुग कालीन मूर्तियो पर ही मिलने लगता है[३]। छाती पर रत्नो की प्रालम्बमाला कुचो तक लटकती थी (कुचपूर्णकलशयोरुपरिरत्नप्रालबमालिका)[४]। इस माला मे लाल और हरे रत्न अर्थात् माणिक और पन्ने जडे थे। एक हाथ की कलाई मे सोने का कडा था (हाटककटक) जिसके गाहामुखी सिरो पर पन्ने जडे हुए थे (मरकतमकरवेदिका-

१. कुमारस्वामी, बोस्टन म्यूजियम बुलेटिन, सं० १४४, अगस्त १९२६, पृ० ७, चित्र ४ मे मथुरा के एक सूचीपट्ट पर अश्वारोहिणी स्त्री रकाब मे पैर डाले हुए दिखाई गई है। कुमारस्वामी के अनुसार भारतीय कला मे रकाब के उदाहरण ससार मे सबसे प्राचीन है। भरहुत, भाजा, साची और मथुरा की शिल्पकला मे द्वितीय-प्रथम शती ई० पूर्व की अश्वारोही मूर्तियो मे रकाब के कई उदाहरण मिलते है। प्राय स्त्रियाँ रकाब के साथ और पुरुष उसके बिना सवारी करते दिखाए गए है। जब रकाब दिखाई जाती है तो मुडी हुई टाँगें घोडे के पेट से नीचे नही लटकती, और जब रकाब नही होती तब टाँगे सीधी और पैर नीचे तक लटकते हुए दिखाए जाते हैं। इसीलिये यहाँ पर बाण ने मालती के पैरो को घोडे के उरस्थल पर कसी हुई बध्रा या तग के पास रखे हुए कहा है।

२ धौतधवलनेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेण आप्रपदीनेन कचुकेन तिरोहिततनुलता, ३१।

३ देखिए, मथुरा कला की निम्नलिखित मूर्तियाँ, आई १५, ए ४६, जे ७।

४ प्रालम्बमृजुलम्बि स्यात् कठात्, अमरकोश।

सनाथ)। गाहामुखी (ग्राहमुखी या मकरमुखी) और नाहरमुखी कड़ो का रिवाज भारतीय गहनों मे अभी तक पाया जाता है। कानों मे एक-एक बाली थी जिसमे मौलसिरी के फूल की तरह लम्बोतरे तीन-तीन मोती थे[1] इसके अतिरिक्त बाये कान मे नीली झलक का दन्तपत्र और दाहिने कान मे केतकी का हरा अवतस (नुकीला टैसा) सुशोभित था। माथे पर कस्तूरी का तिलक बिन्दु लगा था। ललाट पर सामने माग से लटकती हुई चटुला तिलक नामक मणि थी (ललाटलासकसीमन्तचुम्बी चटुला तिलकमणि)। इस प्रकार का चटुला तिलक गुप्तकालीन स्त्रीमूर्त्तियों में प्राय देखा जाता है[2]। [चित्र १६] पीठ पर बालों का जूडा ढीला लटका हुआ था और सामने केशो मे चूडामणि मकरिका आभूषण लगा हुआ था। दोनों ओर निकले हुए दो मकरमुखों को मिलाकर सोने का मकरिका नामक, आभूषण बनता था जो सामने बालों मे या सिर पर पहना जाता था। इस प्रकार मालती के वेश और आभूषणों के ब्यौरेवार वर्णन में उस काल की एक सम्भ्रान्त स्त्री का स्पष्ट चित्र बाण ने खींचा है।

मालती के साथ उसकी ताम्बूलकरकवाहिनी भी थी। लतामडप मे आकर वह सावित्री और सरस्वती के साथ आलाप मे सलग्न हो गई। मध्याह्न के समय सावित्री के शोणतट पर स्नान के लिए चले जाने पर मालती ने सरस्वती से दधीच का प्रेम-सदेश कह सुनाया। यह सदेश समासरहित सरल शैली मे कहा गया है। उत्तर मे सरस्वती के प्रेम का आश्वासन पाकर मालती पुन. च्यवनाश्रम मे आई और अगले दिन दधीच को साथ लेकर लौटी। वहाँ एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक दधीच और सरस्वती साथ-साथ रहे। तब सरस्वती ने सारस्वत नाम के पुत्र को जन्म दिया, और पुन शापावधि समाप्त होने पर ब्रह्मलोक को लौट गई। भार्गव वश मे उत्पन्न अपने भाई ब्राह्मण की पत्नी अक्षमाला को दधीच ने सारस्वत को धात्री बनाया। सारस्वत और अक्षमाला का पुत्र वत्स दोनों साथ बढने लगे। सारस्वत ने वत्स के प्रेम से प्रीतिकूट नामक निवास की स्थापना की और स्वय 'आषाढी कृष्णाजिनी वल्कली अक्षवलयी जटी' बनकर तप करता हुआ च्यवन के लोक को ही चला गया। यहाँ तक बाणभट्ट ने अपने पूर्वजो का पौराणिक वर्णन किया है जिसमे लगभग पूरा पहला उच्छ्वास समाप्त हो जाता है।

वत्स से वात्स्यायन वश का प्रादुर्भाव हुआ। उसी वश मे वात्स्यायन नामक गृहमुनि अर्थात् गृहस्थ होते हुए भी मुनिवृत्ति रखनेवाले ब्राह्मण उत्पन्न हुए। इन मुनियों का जो उदात्त वर्णन बाण ने दिया है उसे पढकर ताम्रपत्रों मे वर्णित उस समय के वेदाध्यायी, कर्मकाडनिरत ब्राह्मण-कुटुम्बों का स्मरण हो आता है। इन लोगो के विषय मे विशेष उल्लेखनीय बात यह कही गई है कि उन्होंने पक्तिभोजन छोड रखा था (विवर्जितजनपक्तय.)। ऐसे लोग जनसमुदाय के साथ सामूहिक जेवनारों मे सम्मिलित न होकर अपनी बिरादरी के साथ ही भोजन का व्यवहार रखते थे। दूसरे प्रकार के वे लोग थे जिन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों का भी भोजन त्याग दिया था (वर्णत्रयव्यावृत्तिविशुद्धाधसः, ३६)। सम्भवत ऐसे लोग स्वय पाकी रहना पसन्द करते थे। सामाजिक इतिहास की दृष्टि से इतना निश्चित ज्ञात

---

१ बकुलफलानुकारिणीभिः तिसृभि· मुक्ताभि कल्पितेन बालिकायुगलेन, ३२।

२ वासुदेवशरण, अहिच्छत्रा टेराकोटाज, एश्येट इडिया अक ४, पृष्ठ १४४, चित्र १६४ से १६७ तक।

होता है कि इस प्रकार भोजन की छुआछूत के विषय मे ब्राह्मण-परिवारो मे विशेष प्रकार की रोकथाम और मर्यादाएँ सातवी शती मे प्रचलित हो चुकी थी।

उस समय एक सुसस्कृत परिवार मे विद्या और आचार का जो आदर्श था वह अपनी बिरादरी के सम्बन्ध मे बाण के निम्नलिखित वर्णन से ज्ञात होता है— 'श्रौत आचारो का उन्होंने आश्रय लिया था। झूठ और दम्भ को वे पास न आने देते थे। कपट, कुटिलता और शेखी बघारने की आदत उनमे न थी। पापो से वे बचते थे। शठता को दूर करके अपने स्वभाव को प्रसन्न रखते थे। हीनता की कोई बात नही आने देते थे। दूसरे की निन्दा से अपने चित्त को विमुख रखते थे। बुद्धि की धीरता के कारण माँगने की वृत्ति से पराङ्मुख थे। स्वभाव के स्थिर, प्रणयिजनों मे अनुकूल, कवि, वाग्मी, सरस भाषण में प्रीति रखनेवाले, विदग्धो के अनुरूप हास-परिहास मे चतुर, मिलने-जुलने मे कुशल, नृत्य-गीत-वादित्र को अपने जीवन मे स्थान देनेवाले, इतिहास मे अतृप्त रुचि रखनेवाले, दयावान्, सत्य से निखरे हुए, साधुओं को इष्ट, सब सत्त्वो के प्रति सौहार्द और करुणा से द्रवित, रजोगुण से अस्पृष्ट, क्षमावन्त, कलाओ मे विज्ञ, दक्ष एव अन्य सब गुणो से युक्त द्विजातियो के वे कुल असाधारण थे।' बाण ने तत्कालीन ज्ञानसाधन की दो विशेषताओं की ओर भी यहाँ इशारा किया है। अपने दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनो मे भी जो शकाएँ उठाई जाती थीं उनका समाधान भी वे जानते थे (शमितसमस्तशाखान्तरसशीति , ३६)। गुप्तकाल से बाण के समय तक के युग मे बौद्ध, ब्राह्मण तथा जैन दार्शनिक अनेक दृष्टिकोणो से तत्त्वचिन्तन करते रहे थे। उस समय के दार्शनिक मथन की यह शैली थी कि वे विद्वान् एक दूसरे से उद्भावित नई-नई युक्तियो और कोटियो से अपने-आपको परिचित रखते और अपने ग्रथो मे उनका विचार और समाधान करते थे। प्रमुख आचार्य अन्य मतो मे प्रवृद्ध रुचि रखते थे, उपेक्षा का भाव न था। इस प्रकार की जागरूकता के वातावरण मे ही वसुबन्धु, धर्मकीर्ति, सिद्धसेन दिवाकर, उद्योतकर, कुमारिल और शकर-जैसे अनेक प्रचड मस्तिष्को ने एक दूसरे से टकरा-टकरा कर दार्शनिक क्षेत्र मे अभूतपूर्व तेज उत्पन्न किया। इस पृष्ठभूमि मे बाण का 'शमितसमस्त-शाखान्तरसशीति' विशेषण साभिप्राय है और ज्ञान-साधन की तत्कालीन प्रवृत्ति का परिचय देता है। इस प्रसग मे दूसरी बात यह कही गई है कि वे विद्वान् समग्र ग्र थो मे जो अर्थ की ग्रथिया थी उनको उद्घाटित करते थे (उद्घाटितसमग्रग्रथार्थग्रथय , ३६)। इसमें भी तत्कालीन विद्यासाधन की झलक है। समग्र ग्रथो से तात्पर्य भिन्न-भिन्न दर्शनो, जैसे न्याय, वैशेषिक, साख्ययोग, वेदान्त, मीमासा, पाशुपत, बौद्ध, आर्हत आदि के ग्रथो से है। उस समय के पठन-पाठन मे ऐसी प्रथा थी कि लोग केवल अपने ही दार्शनिक ग्रथो के अध्ययन से सन्तुष्ट न रहकर दूसरे सम्प्रदायो के ग्रथो का भी अध्ययन करते थे और उसमे जो अर्थ की कठिनाइयाँ थी उन्हे स्पष्ट करते थे। इसी प्रणाली के कारण नालन्दा के बौद्ध-विश्वविद्यालय मे वेद-शास्त्र आदि ब्राह्मणो के ग्रथों का पठन-पाठन भी खूब चलता था, जैसा कि श्युआन चुआङ् ने लिखा है। अध्ययन-अध्यापन और ग्रथ-प्रणयन, दोनो क्षेत्रो में ही सकल शास्त्रो मे रुचि उस युग के विद्वानो की विशेषता थी। स्वयं बाण ने दिवाकर मित्र के आश्रम का वर्णन करते हुए इस प्रवृत्ति का आँखोदेखा सच्चा चित्र खीचा है (२३७)।

उस वात्स्यायनवंश में क्रम से कुबेर नामक एक ब्राह्मण ने जन्म लिया। कुबेर के अच्युत, ईशान, हर और पाशुपत ये चार पुत्र हुए। उनमें पाशुपत का पुत्र अर्थपति था। अर्थपति के ग्यारह पुत्र हुए भृगु, हंस, शुचि, कवि, महिदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, अहिदत्त और विश्वरूप। इनमें से आठवें चित्रभानु की पत्नी राजदेवी से बाण का जन्म हुआ। बालपन में ही उसे माता का वियोग सहना पड़ा और पिता ने ही मातृस्नेह के साथ उसका पालन किया। पिता की देख-रेख में दिन-दिन जीवट लाभ करता हुआ वह बढ़ने लगा। पिता ने उपनयन आदि श्रुति-स्मृति-विहित सब संस्कार यथासमय किए। बाण की आयु चौदह वर्ष की भी पूरी न होने पाई थी कि उसके पिता भी बिना वृद्धावस्था को प्राप्त हुए ही गत हो गए। उस समय तक बाण का समावर्तन-संस्कार हो चुका था। विवाह के साथ-साथ दो-एक दिन पहले ही समावर्तन-संस्कार कर लेने का जो रिवाज है, उसके अनुसार ज्ञात होता है कि बाण का विवाह भी पिता के सामने ही हो गया था। समावृत्त पद में ही विवाह का भी अन्तर्भाव है। हर्ष के साथ पहली भेंट में उसने आत्मसम्मान के साथ कहा था—स्त्री का पाणिग्रहण करने के बाद से ही मैं नियमित गृहस्थ रहा हूँ (दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि, ७६)।

पिता की मृत्यु से बाण का कुछ दिन तक दुःखी और शोकसंतप्त रहना स्वाभाविक था। उसने वह समय घर पर ही काटा। जब शनैः-शनैः शोक कम हुआ तब बाण की स्वतंत्र प्रकृति ने जोर मारा। वह उसके यौवनारम्भ का समय था, बुद्धि परिपक्व न हुई थी (धैर्यप्रतिपन्नतया यौवनारम्भस्य, ४१), अल्हड़पन के कारण स्वभाव में चपलता थी और मन में नई-नई बातें जानने का कुतूहल था। पिता के न रहने से एकाएक जो छूट मिली उससे नियमित जीवन में कमी आई और अविनय या अनुशासनहीनता बढ़ गई। फल यह हुआ कि वह 'इत्वर' (आवारा) हो गया। इत्वर का अर्थ शंकर ने गमनशील किया है। मूल में यह वैदिक शब्द था जो 'इण् गतौ' धातु से बनाया गया था। क्रमशः इसका अर्थ गमनशील से चंचल और ऊधमी हो गया। हिन्दी की इतराना धातु इसी से बनी है। लोक में ईतरे बालक और ईतरी गाय ये प्रयोग दंगई, ऊधमी, उत्पाती के अर्थ में चलते हैं। बाण का अभिप्राय यहाँ इत्वर से अपने आवारापन की ओर इशारा करने का है। बाण के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। ब्राह्मणों के यहाँ जैसा चाहिए वैसा पिता-पितामह का उपार्जित धन घर में था।[1] उसकी पढ़ाई का सिलसिला भी जारी था (सति च अविच्छिन्ने विद्याप्रसंगे)। ज्ञात होता है कि बाण के गाँव प्रीतिकूट में संस्कृत के विविध विषयों की पढ़ाई का उसके सगे-सम्बन्धियों के कुलों में ही अच्छा प्रबन्ध था। जब वह हर्ष के यहाँ से लौटकर अपने गाँव आया तो उसने अध्ययन-अध्यापन और छात्रसमूह के विषय में स्वयं विशेष रूप से प्रश्न पूछे। व्याकरण, न्याय, मीमांसा, काव्य, कर्मकांड और वेदपाठ, इतने विषयों की पढ़ाई तो नियमित रूप से प्रीतिकूट गाँव में ही होती है (८४)। किन्तु उसके तूफानी स्वभाव के कारण ये सब सुविधाएँ भी बाण को घर में रोककर न रख सकीं। वह लिखता है—'जैसे किसी पर ग्रहों की बाधा सवार हो वैसे ही स्वच्छन्द मन और नवयौवन के कारण स्वतंत्र होकर मैं घर से

---

[1] सत्सु अपि पितृपितामहोपात्तेषु ब्राह्मणजनोचितेषु विभवेषु, ४२।

निकल पडा। मेरे मन को तो देशान्तर देखने की इच्छा ने जकड लिया था।[1] इसपर सबने मेरी बडी खिल्ली उडाई।[2] किन्तु उसका यह प्रयास ही उसके लिए बहुमूल्य अनुभव उपार्जित करने का कारण हुआ। देशान्तर देखने की जो उत्कट लालसा मन में थी वह हलका कुतूहल न रहकर ज्ञानवृद्धि का कारण बन गई।

अपने इस प्रवास मे बाण ने चार प्रकार के सामाजिक स्तरो के अनुभव लिए। एक तो बडे-बडे राजकुलों का हाल-चाल लिया जहाँ अनेक तरह के उदार व्यवहार देखने को मिले। दूसरे प्रसिद्ध गुरुकुल या शिक्षा-केन्द्रो मे उसने समय बिताया (गुरुकुलानि सेवमान)। यद्यपि बाण ने नाम नही दिया, तो भी सभावना यही है कि श्रेष्ठ विद्या से प्रकाशित (निरवद्यविद्याविद्योतित) अपने प्रान्त के ही विश्वविश्रुत महान् गुरुकुल नालन्दा मे भी वह गया हो और वहाँ के विद्याक्रम की व्यवस्था का अनुभव किया हो। दिवाकर मित्र के आश्रम मे ज्ञान-साधन के जो प्रकार उसने बताए है उन्हे नालन्दा-जैसे विद्याकेन्द्र मे ही चरितार्थ होते हुए देखा होगा (२३७)। तीसरे गुणवानो और कलावन्तो की गोष्ठियो मे उपस्थित होकर (उपतिष्ठमान) उनकी मूल्यवान्, गहरे पैठनेवाली और बुद्धि पर धार रखनेवाली चोखी चर्चाओ से लाभ उठाया (महार्हालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठी)। जैसा कहा जा चुका है, इन गोष्ठियो मे विद्या-गोष्ठी, काव्य-गोष्ठी, वीणा-गोष्ठी वाद्य-गोष्ठी, नृत्य-गोष्ठी आदि रही होगी। चौथे उसने उन विदग्धमडलो का भी डूबकर (गाहमान) रस लिया जिनमे रसिक लोग सम्मिलित होकर बुद्धि की नोक-झोक करते थे।

बाण का व्यक्तित्व चार प्रकार की प्रवृत्तियों से मिलकर बना था। एक तो उसके स्वभाव मे रईसी का पुट था, दूसरे वशोचित विद्या की प्रवृत्ति थी[3], तीसरे साहित्य और विविध कलाओ से अनुराग था, और चौथे मन मे वैदग्ध्य या छैलपन का पुट था। उसका स्वभाव अत्यन्त सरल, सजीव और स्नेही था। भारतीय साहित्यिकों के लम्बे इतिहास मे किसी के साथ बाणके स्वभाव की पटरी बैठती है तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ। वह लिखता है कि अपनी बालमित्रमडली मे फिर लौटकर आने पर मुझे जैसे मोक्ष का सुख मिला (बालमित्रमडलस्य मध्यगतः मोक्षसुखमिवान्वभवत्, ४३)। अपने मित्रमडल का उसने वर्णन भी किया है जिससे उन लोगों के प्रति उसके कोमल भाव सूचित होते है। वह लिखता है कि उसके घुमक्कडी जीवन मे ये मित्र तथा कुछ और भी लोग उसके साथ थे। उसने अपनी बालसुलभ प्रकृति के कारण अपने आपको इन मित्रों के ऊपर पूर्ण रीति से छोड रखा था (बालतया निघ्नतामुपगत, ४२)।

बाण का मित्रमडल काफी बडा था। चवालीस व्यक्तियो के नाम उसने गिनाए है। उसमे सुहृद् और सहाय दो प्रकार के लोग थे (वयसा समाना सुहृदः सहायाश्च)। इस मडली मे चार स्त्रियाँ भी थी। बाण के मित्रो की यह सूची उस समय के एक सुसस्कृत नागरिक की बहुमुखी रुचि और सास्कृतिक साधनो का परिचय देती है। उसके कुछ मित्रो

---

१. देशान्तरालोकनाक्षिप्तहृदय, ४२।

२. अगाच्च निरवग्रहो ग्रहवानिव नवयौवनेन स्वैरिणा मनसा महताम् उपहास्यताम् ४२।

३ वैपश्चितीमात्मवशोचितां प्रकृतिमभजत्, ४३।

का सबध कविता और विद्या से था, कुछ का सगीत और नृत्य से, और कुछ मनोरजन के सहायमात्र थे। साथ ही कुछ प्रतिष्ठित परिचारकों के रूप मे थे। इस मित्रमडली की सूची इस प्रकार है—

(अ) कवि और विद्वान्

१ भाषा-कवि ईशान जो कि बाण का परम मित्र था। भाषा-कवि से तात्पर्य लोक-भाषा में गीतों के रचना करनेवाले से है। ज्ञात होता है कि बाण के समय मे भाषा पद अपभ्र श के लिये प्रयुक्त होता था। दडी के अनुसार अहीर आदि जातियो मे कविता के लिये अपभ्र श भाषा का प्रचार था[1]। महाकवि पुष्पदन्त ने अपभ्र शमहापुराण की भूमिका में ईशान कवि का उल्लेख किया है[2]।

२. वर्णकवि वेणीभारत। वर्णकवि शब्द का तात्पर्य स्पष्ट नही। शकर के अनुसार गाथा छन्द मे गीत रचनेवाले कवि से तात्पर्य है। सभवतः आल्हा-जैसी लोककविताएँ रचनेवाले से तात्पर्य हो।

३ प्राकृत भाषा मे रचना करनेवाले कुलपुत्र वायुविकार।

४-५ अनगबाण और सूचीबाण नामक दो बदीजन। बन्दियो का काम सुभाषितों का पाठ करना था। घोड़े पर सवार दधीच के आगे-आगे उसका बन्दी सुभाषित पढता हुआ चल रहा था (२३)

६-७ वारबाण और वासबाण नामक दो विद्वान्। सभवतः दर्शन-शास्त्र आदि विषयो के ज्ञाता विद्वान् पद से अभिप्रेत है।

८ पुस्तकवाचक सुदृष्टि जिसका कंठ बहुत मधुर था। हर्ष के यहाँ से लौटने पर बाण को इसने वायुपुराण की कथा सुनाई थी (८५)

९ लेखक गोविन्दक।

१० कथक जयसेन। पेशेवर कहानी सुनानेवालो का उस समय अस्तित्व इससे सूचित होता है।

(आ) कला

११ चित्रकृत् वीरवर्मा।

१२ स्वर्णकार (कलाद) चामीकर।

१३ हैरिक सिन्धुषेण। शकर ने सुनारो के अध्यक्ष को हैरिक कहा है, किन्तु हमारी सम्मति मे हैरिक से तात्पर्य हीरा काटने वाले या बेगडी से है।

१४ पुस्तकृत् कुमारदत्त। उस समय मे पुस्तकर्म का अर्थ था मिट्टी के खिलौने बनाना, जैसा अन्यत्र बाण ने कहा भी है (पुस्तकर्मणा पार्थिवविग्रहाः, ७८)।

---

१ आभीरादिगिर काव्येष्वपभ्र शतया स्मृता, काव्यादर्श।

२ चौमुहु सयम्भु सिरिहरिसु दोणु। णालोइउ कइ ईसाणु बाणु।
पुष्पदन्त अपनी नम्रतावश लिखते है—'चतुर्मुख स्वयम्भु, श्रीहर्ष, द्रोण, ईशान और बाण इनकी कविताओं को मैंने ध्यानपूर्वक नही पढा'। देखिए नाथूराम प्रेमी-कृत जैन-साहित्य और इतिहास, पृ० ३२५, ३७१।

(इ) सगीत और नृत्य

१५ मार्दगिक जीमूत । मार्दगिक=मृदगिया या पखावजी । राजघाट से प्राप्त खिलौनो मे मृदगियो की कई मूर्तियाँ मिली है ।

१६-१७ वाशिक या वशी बजानेवाले मधुकर और पारावत ।

१८. दार्दुरिक दर्दुरनामक घटवाद्य बजानेवाला दामोदर ।

१९-२० गवैये सोमिल और ग्रहादित्य ।

२१ गान्धर्वोपाध्याय दर्दुरक ।

२२ लासक युवा (नर्तक) ताडविक ।

२३ नर्तकी हरिणिका ।

२४ शैलालि युवा (भरतनाट्य करनेवाला) शिखडक[१] ।

(उ) साधु-सन्यासी

२५ शैव वक्रघोण ।

२६ क्षपणक (जैनसाधु) वीरदेव ।

२७ पाराशरी सुमति । बाण ने कई स्थलो पर पाराशरी भिक्षुओ का उल्लेख किया है । पाराशर्य व्यास के विरचित भिक्षुसूत्र या वदान्तदर्शन का अभ्यास करनेवाले भिक्षु पाराशरी कहलाते थे ।

२८ मस्करी (परिव्राजक) ताम्रचूड ।

२९ कात्यायनिका (बौद्धभिक्षुणी) चक्रवाकिका ।

(ए) वैद्य और मत्रसाधक

३० भिषग्पुत्र मदारक ।

३१ जागुलिक (विषवैद्य या गारुडी) मयूरक ।

३२ मत्रसाधक कराल ।

३३ धतुवादविद् (रसायन या कीमिया बनानेवाला) विहगम ।

३४. असुरविवरव्यसनी लोहिताक्ष । असुरविवर-साधन का बाण ने कई बार उल्लेख किया है (१९९) । असुरविवर का ही दूसरा नाम पातालविवर था जिसका उल्लेख पुरातन-प्रबन्ध-सग्रह के विक्रमार्क-प्रबन्ध मे है । इस प्रकार की कहानियो का मुख्य अभिप्राय पाताल मे घुसकर किसी यक्ष या राक्षस को सिद्ध करके धन प्राप्त करना था ।

(ऐ) धूर्त

३५ आक्षिक (पासा खेलनेवाला) आखडल ।

३६ कितव (धूर्त) भीमक ।

३७ ऐन्द्रजालिक चकोराक्ष ।

---

१ शिलालि आचार्य नटसूत्रों के प्रवर्तक थे । पाणिनि मे उनका उल्लेख आया है (४-३-११०) । उनका सम्बन्ध ऋग्वेद की शाखा से था ।

(ओ) परिचारक

३८ ताम्बूलदायक चडक ।

३९ सैरन्ध्री (प्रसाधिका) कुरगिका ।

४०- सवाहिका केरलिका ।

(औ) प्रणयी (स्नेही आश्रित)

४१-४२ रुद्र और नारायण ।

(अ) पारशव बन्धु-युगल

४३-४४ चन्द्रसेन और मातृषेण । पारशव अर्थात् शूद्रा माता से उत्पन्न द्विजपुत्र । इनमे चन्द्रसेन बाण का अत्यन्त प्रिय और विश्वासपात्र था। कृष्ण के दूत मेखलक को ठहराने और उसकी भोजनादि की व्यवस्था का भार बाण ने चन्द्रसेन को ही सौपा था ।

ये सब लोग बाण की मित्रमडली के अग थे। उनके नाम भी वास्तविक जान पडते हैं। उनमे से कई का उल्लेख बाण ने आगे चलकर किया भी है। जैसे, जब पुस्तक-वाचक सुदृष्टि वायुपुराण की कथा सुनाने के लिये अपने पोथी-पत्रे ठीक कर रहा था तो वशी बजानेवाले मधुकर और पारावत उसके पीछे कुछ खिसककर बैठे हुए मंडली मे विद्यमान थे ।

दूसरा उच्छ्वास

लम्बे समय के बाद बन्धु-बान्धवो के मध्य मे लौटने पर बाण की बहुत आवभगत हुई और वह अत्यन्त स्नेहपूर्वक चिरदृष्ट बान्धवों के यहाँ जाकर मिलता रहा (महतश्च कालात्तामेव भूय आत्मनो जन्मभुव ब्राह्मणाधिवासमगमत्, ४२, चिरदृष्टाना बान्धवाना प्रीयमाणो भ्रमन् भवनानि, ४४)। इस प्रसग मे उस समय के ब्राह्मणो के घरो का एक अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमे दो बाते मुख्य है। एक तो अनेक शिष्यो का समुदाय वहाँ पढने आता था। ये ब्राह्मण-भवन उस काल मे पाठशालाओ का काम (अनवरताध्ययनध्वनिमुखर, ४४) देते थे। दूसरे यज्ञीय कर्मकाड का इस समय पुन. प्रचार बहुत बढा हुआ ज्ञात होता है। कुमारिल भट्ट ने मीमासाशास्त्र के पुनरुद्धार का जो आदोलन किया था उसकी पृष्ठभूमि बाण के इस वर्णन मे झलकती है—उन घरो मे सोमयज्ञो को देखने के लोभी बटु जिनके मस्तक पर त्रिपुड्र भस्म लगी हुई थी इकट्ठा थे, उनके सामने सोम की हरी क्यारियाँ लगी हुई थी, बिछे हुए कृष्णाजिन पर पुरोडाश बनाने के लिये सावा सूख रहा था, कुमारी कन्याएँ अकृष्टपच्य नीवार की बलि से पूजा कर रही थी, शिष्य कुशा और पलाश की समिधाएँ इकट्ठी कर रहे थे, जलाने के लिये गोबर के कडो का ढेर लगा था, होमार्थ दूध देनेवाली गउएँ आँगन मे बैठी थी, वैतान अग्नियो की वेदी मे लगाए जानेवाले शकुओ के लिये गूलर की शाखाएँ किनारे रखी थी विश्वेदेवो के पिड स्थान-स्थान पर रखे गए थे, हविर्धूम से आगन के विटप धूमिल हो रहे थे, पशुबन्ध यज्ञों के लिये लाए गए छाग-शावक किलोल कर रहे थे (४४,४५)।

अध्ययन-अध्यापन के सबध मे शुकसारिकाओं का वर्णन बाण ने कई जगह किया है। कादम्बरी की भूमिका मे लिखा है कि पिजडो मे बैठी हुई शुकसारिकाएँ अशुद्ध पढने पर विद्यार्थियों को डपटती थी। यहाँ कहा है कि शुकसारिकाएँ स्वय अध्ययन कराकर गुरुओ को विश्राम देती थी (४५)। अवश्य ही यह एक साहित्यिक अभिप्राय बन गया था। शकरदिग्विजय मे मडन मिश्र के घर की पहचान बताते हुए कहा गया है कि 'ससार नित्य है, ससार अनित्य है' इस प्रकार के कोटि-वाक्य शुकसारिकाएँ जहाँ कहती हो वही मडन मिश्र का घर है। स्वय कादम्बरी की कथा 'सकल शास्त्रो के जाननेवाले' वैशम्पायन तोते से कहलाई गई है। बाण के लगभग समकालीन ही पश्चिमी भारत के विष्णुषेण (ई० ५९२) के शिलालेख मे प्रचलित रिवाजों का वर्णन करते हुए लिखा है कि गाली-गलौज और मार-पीट के मामलो में मैना की गवाही अदालत मे न मानी जायगी [1]। शुकसारिकाओ के स्फुट वाक्य-उच्चारण करने और घरो मे आम तौर से पाले जाने के साहित्यिक अभिप्राय का उल्लेख कालिदास ने भी किया है [2]।

---

१. वाक्पारुष्यदडपारुष्ययो· साक्षित्वे सारी न ग्राह्या। श्री दिनेशचन्द्र सरकार, एपिग्रॅफी एँड लेक्सिकोग्राफी इन इडिया, पन्द्रहवी आरियटल कान्फ्रेंस, बबई का लेख-सग्रह, पृ० २६४।

२ रघुवश ५७,४, मेघदूत, २,२२।

इस प्रकार बाण के सुखपूर्वक घर मे रहते हुए ग्रीष्म का समय आया। यहाँ बाण ने कठोर निदाघकाल का बहुत ही ज्वलन्त चित्र खीचा है (४६-५२)। सस्कृत-साहित्य मे इसकी जोड का दूसरा ग्रीष्म-वर्णन नही मिलता। इससे बाण के सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण और वर्णन की अद्भुत शक्ति का परिचय मिलता है। 'फूली हुई चमेली (मल्लिका) के अट्टहास के साथ ग्रीष्म ने जभाई ली। वसन्तरूपी सामन्त को जीतकर नवोदित उष्णकाल ने पुष्पो के बन्धन खोले जैसे राजा बन्दीगृह से बन्दियो को छोडते है। नये खिले हुए पाटल के पुष्पो से पीने का जल सुगन्धित किया गया। झिल्ली झकारने लगी। कपोत कूजने लगे। कूडा-कर्कट बटोरनेवाली हवाएँ चलने लगी। धातकी के लाल-लाल गुच्छो को रुधिर के भ्रम से शेर के बच्चे चाटने लगे। मन्दार के सिदूरिया फूलो से सीमाएँ लाल हो गई। कुक्कुट आदि पक्षी उडते हुए तप्त रेत से व्याकुल हो गए। प्यासे भैसे पानी की तलाश मे स्फटिक की चट्टानों पर सीग मारने लगे। सेही बिल मे घुसने लगी। किनारे के अर्जुन वृक्षो पर बैठे क्रौच पक्षी कडा शब्द कर रहे थे, जिससे डरकर सूखते तालाबों की मछलियाँ तडफडा उठती थी। पके किवाच के गुच्छों के साथ छेडछाड करने की गुस्ताखी के कारण उठी हुई खाज की छटपटाहट से भुइयालोट हवा कँकरीली धरती मे मानो अपनी देह रगड रही थी। मुचुकुन्द की कलियाँ खिल रही थी। अधिक गर्मी से मृगतृष्णाओ के झिलमिलाते जल मे मानों निदाघ-काल तैर रहा था। धूल के बवडर जगह बदलते हुए ऐसे लगते थे मानो आरभटी नृत्य मे नट नाच रहे हों। शमी के सूखे पत्ते मरुभूमि के मार्गों पर बिछे हुए थे जिनपर मर्मर करती हवा दौड रही थी। सूखी करज की फलियों के बीज बज रहे थे। सेमल के डोडो के फटने से रुई बिखर रही थी। जगलों मे सूखे बाँस चटक रहे थे। साँप केचुलियाँ छोड रहे थे। चहे पक्षी अपने पख गिरा रहे थे। गुजाफल मानो किरणो की लुग्गाठ से जलकर अगारे उगल रहे थे। नीम के पेडो से फूलो के गुच्छे झर रहे थे। गर्म चट्टानों से शिलाजीत का रस बह रहा था। वन मे लगी हुई आग की गर्मी से चिडियो के अडे फूटकर पेडो के कोटरो मे बिछ गए थे जिनमें झुलसे हुए कीडों के मिलकर पकने से पुटपाक की उग्र गध उठ रही'। इस वर्णन में भारतवर्ष की भयकर गर्मी और लूओ का चित्र बाण ने खीचा है। इसके आगे वन मे लगी दावाग्नियो का भी वर्णन किया गया है।

सास्कृतिक दृष्टि से इस प्रसग मे कई उल्लेखनीय बाते है (१) उस काल मे यह प्रथा जान पडती है कि सीमाओं पर लालरग के चिह्न बनाकर हदबदी प्रकट करते थे (सिन्दूरित सीमा)। (२) प्रयाण के समय बजाए जानेवाले बाजे को गुजा कहा गया है (प्रयाणगुजा)। शकर ने इसे यहाँ ढक्का का एक भेद कहा है और अन्यत्र (२०४) शख का भेद माना है। (३) नये राजा सिंहासन पर बैठने के बाद बन्धनमोक्ष अर्थात् बन्दीगृह से बन्दियो को छोडने की घोषणा करते थे। (४) किसी सकट से बचने के लिये लोग देवी-देवता का कोप निवारण करने की इच्छा से लाल फूलों की माला पहनकर जात देने जाते थे[1]। जात के लिए प्राचीन शब्द यात्रा था। यहाँ 'जात देना' मुहावरा सस्कृत मे प्रयुक्त हुआ है (यात्रामदात्)। सम्भवतः बाण उस समय की लोकभाषा से इसका सस्कृत मे अनुवाद कर रहे है। (५) बाण ने यहाँ एक प्रकार की विशेष घोषणा का उल्लेख किया है जिसमे राजा लोग शत्रु की जनता मे विभीषिका

१ हिमदग्धसकलकमलिनीकोपेनेव हिमालयाभिमुखी यात्रामदादशुमाली, ४६।

उत्पन्न करने के लिये समस्त जलाशयो को बन्द कर देने की डौंडी फिरवा देते थे (सकल-सलिलोच्छोषधर्मघोषणापटहैरिव त्रिभुवनविभीषिकामुद्भावयन्त', ४९) । (६) अभिचार के रूप मे रुधिर की आहुतियाँ देने का भी उल्लेख है (५०) । इस प्रकार के बीभत्स रौद्र प्रयोग उस समय चल चुके थे । (७) निर्वाण की व्याख्या करते हुए उसे 'दग्धनिःशेषजन्महेतु' विशेषण दिया गया है (५१), अर्थात् जिसमे जन्म या पुद्गल ग्रहण करने के समस्त कारण परमाणु समाप्त हो जाते है । (८) सधूमोद्गार मदरुचि पद मे मदाग्नि के लिये धूम्रपान करने का सकेत है । (९) क्षयरोग मे शिलाजतु के निरन्तर प्रयोग का भी उल्लेख आया है जिससे ज्ञात होता है कि सातवी शती मे शिलाजीत की जानकारी हो चुकी थी । (१०) रुद्र के भक्तो द्वारा गूगुल जलाने का उल्लेख बाण ने कई बार किया है, यहाँ तक कि माथे के ऊपर गूगुल की बत्ती जलाकर भक्त अपना मास और हड्डी तक जला डालते थे (१०३, १५३), (दग्धगुग्गुलवः रौद्राः) । (११) इसी प्रसग मे बाण ने दो बार आरभटी नृत्य करनेवाले नटो का उल्लेख किया है । पहले उल्लेख से ज्ञात होता है कि आरभटी शैली से नाचनेवाले नट मडलाकाररूप मे रेचक अर्थात् कमर, हाथ, ग्रीवा को मटकाते हुए रासनृत्य करते थे । (रैणावावर्तमडलीरेचकरासरसरभसारब्धनर्तनारभारभटीनटा', ४८) । यहॉ इस नृत्य की पॉच विशेषताऍ कही गई है, १ मडलीनृत्त , २ रेचक, ३ रासरस, ४ रभसारब्ध-नर्तन और ५ चटुलशिखानर्तन ।

१ मंडलीनृत्त—शकर ने मंडलीनृत्त को हलीमक कहा है जिसमे एक पुरुष नेता के रूप मे स्त्री-मडल के बीच मे नाचता है[२] । इसे ही भोज के सरस्वतीकठाभरण मे हल्लीसक नृत्य कहा गया है । (चित्र १७) हल्लीसक शब्द का उद्गम यूनानी 'इलीशियन' नृत्यो (इलीशियन मिस्ट्री डास) से ईसवी सन् के आसपास हुआ जान पडता है । कृष्ण के रास-नृत्य और हल्लीसकनृत्य इन दोनों की परपराऍ किसी समय एक दूसरे से सबन्धित हो गई ।

२ रेचक—शकर के अनुसार यह तीन प्रकार का था, कटिरेचक, हस्तरेचक और ग्रीवारेचक, अर्थात् कमर, हाथ और ग्रीवा इन तीनों को नृत्य करते हुए विशेष प्रकार से चलाना—यही इसकी विशेषता थी ।

३ रास—आठ, सोलह या बत्तीस व्यक्ति मडल बनाकर जब नृत्य करे तब वह रासनृत्य कहलाता है[१] ।

४ रभसारब्ध नर्तन—अत्यन्त वेग के साथ नृत्य मे हाथ-पैर का संचालन जिसमे उद्दाम भाव और चेष्टा परिलक्षित हो ।

---

२ मडलीनृत्त हलीमकम (शकर) । शकर ने इसपर जो प्रमाण दिया है वह सरस्वतीकठाभरण का हल्लीसकवाला श्लोक ही है—
मडलेन तु यन्नृत्त हल्लीसकमिति स्मृतम् ।
एकस्तत्र तु नेता स्याद् गोपस्त्रीणा यथा हरि ॥
तदिद हल्लीसकमेव तालबन्धविशेषयुक्त रास एवेत्युच्यते । सरस्वती०, पृ० ३०६

१ अष्टौ षोडश द्वात्रिंशद् यत्र नृत्यन्ति नायका ।
पिडीबन्धानुसारेण तन्नृत्त रासक स्मृतम् ॥ (शकर)

इस प्रकार इन चारों के एकत्र समवाय से नृत्त की जो शैली बनती है उसका नाम आरभटी था अर्थात् हाथ-कमर-ग्रीवा को विभिन्न भाव-भंगियो मे उद्दाम वेग से चलाते हुए गोल चक्कर मे सम्पन्न होनेवाला नृत्त आरभटी कहलाता था। उछल-कूद, मार-काट, डॉट-फटकार, उखाड-पछाड, आग लगाने आदि का उपद्रव, माया या इन्द्रजाल आदि के दृश्य जिस झुड मे नृत्य के द्वारा प्रदर्शित किए जायें उसे आरभटी कहा गया है[२]। यूनान के इलीशियम स्थान मे होनेवाले नृत्यों मे भी अधकार, विपत्ति, मृत्युसूचक अनेक भयस्थान आदि उद्दाम और प्रचड भाव तालबद्ध अग-सचालन से प्रदर्शित किए जाते थे। और अत मे जब ये अगविक्षेप जिन्हे अपने यहाँ रेचक कहा गया है, भाव की पराकाष्ठा पर पहुँचते और नाश और विपत्ति की सीमा हो जाती, तब अकस्मात् एक दिव्य ज्योति का आविर्भाव उन नृत्यों मे होता था[१]। इस प्रकार हल्लीसक और रास इन दोनो के सकर से आरभटी नृत्य-शैली की उत्पत्ति ज्ञात होती है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी ये नृत्य की चार वृत्तियाँ या शैलियाँ थीं। इन नामो का आधार भौगोलिक ज्ञात होता है। भारती भरत जनपद या कुरुक्षेत्र की, सात्वती गुजरात और काठियावाड के सात्वतों (यादवों) की, कैशिकी विदर्भ देश या बरार की जो क्रथकैशिक कहलाता था। इससे ज्ञात होता है कि आरभटी का सबध भी देशविशेष से था। आरभट की निश्चित पहचान अभी तक नहीं हुई। किन्तु यूनानी भूगोल-लेखकों ने सिन्धु के पश्चिम मे बलोचिस्तान के दक्षिणी भाग मे 'आरबिटाई' (Arabitae) या 'आर्बिटी' (Arbiti) नामक जाति का उल्लेख किया है जो कि सोनमियानी के पश्चिम मे थी। उनके देश मे अर्बियस (Arabius) नदी बहती थी। अर्रियन और स्त्राबो दोनो इस प्रदेश को भारतवर्ष का अन्तिम भाग कहते है। लौटते हुए सिकन्दर की यूनानी सेना इस प्रदेश मे से गुजरी थी। हमारा विचार है कि यही प्राचीन आरभट देश था जहाँ की नृत्तपद्धति जिसमे भारतीय रास और यूनानी हल्लीसक का मेल हुआ, आरभटी कहलाई। बाण ने यह भी लिखा है कि आरभटी शैली से नाचते हुए नट खुले बालों को इधर-उधर फटकारते हुए नृत्य का आरम्भ करते थे (चटुलशिखानर्तनारभारभटीनटा., ५१)। इस प्रकार बाल खोलकर सिर को और शरीर को प्रचड अगसचालन के द्वारा हिलाते हुए नृत्त की पद्धति बलूची और कबायली लोगों की अभी तक विशेषता है।

---

२ प्लुष्टावपातप्लुतगर्जितानि च्छेद्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम्।
चित्राणि युद्धानि च यत्र नित्य तां तादृशीमारभटीं वदन्ति ॥
(भरतकृत नाट्यशास्त्र, २०-२६, और ७.६२)

1. The ceremony of Elysian mystery was doubtless dramatic There were hymns and chants, speeches and exhortations, recitals of myths wailings for the loss of Persephone There were dances or rythmical movements by those engaged in the ceremony, clashing of cymbals, sudden changes from light to darkness, toilsome wanderings and dangerous passages through the gloom and before the end all kinds of terror, when suddently a wonderous light flashes forth to the worshipper

कौर्निशकृत ए कन्साइज डिक्शनरी ऑफ ग्रीक एंड रोमन एंटिक्विटीज, पृ० २७१।

इस प्रकार अत्यन्त उग्र गर्मी के समय जब बाण खा-पीकर निश्चिन्तता से बैठे थे तो दोपहर के बाद पारशव भ्राता चन्द्रसेन ने चतु.समुद्राधिपति, सब चक्रवर्तियो मे धुरन्धर, महाराजाधिराज परमेश्वर श्री हर्षदेव के भाई कृष्ण का सदेश लेकर दूत के आने का समाचार दिया। बाण ने तुरन्त उसे अन्दर लाने के लिये कहा। इस दूत का नाम मेखलक था। उसे लेखहारक और दीर्घाध्वग भी कहा गया है। मटियाले रग की पेटी से उसका ऊँचा चडातक (लहगेनुमा अधोवस्त्र) कसा हुआ था (कार्दमिकचेलचीरिकानियमितोच्चड-चडातक, ५२)। (चित्र १८) कपडे के फीते की बँधी हुई गॉठ जिसके दोनो छोर उसकी पीठ फहरा रहे थे कुछ ढीली हो गई थी (पृष्ठप्रेंखत्पटच्चरकर्पटघटितगलितग्रथि)। इस प्रकार सिर से बँधा हुआ और पीठ पर फहराता हुआ चीरा सासानी वेषभूषा की विशेषता थी। गुप्तकाल की भारतीय वेषभूषा मे भी वह आ गया था और कला मे उसका अकन प्राय. मिलता है। (चित्र १९) लेखमालिका या चिट्ठी डोरे से बीचोबीच लपेटकर बॉधी गई थी जिससे वह दो भागो मे बॅटी हुई जान पडती थी। वह चिट्ठी लेखहारक के सिर से बॅधी हुई थी।

बाण ने उसे देखकर दूर से ही पूछा, 'सबके निष्कारण बन्धु कृष्ण तो कुशल से है?' 'हॉ, कुशल से है'—यह कहकर प्रणाम करने के बाद मेखलक समीप ही बैठ गया और सिर से लेख खोलकर बाण को दिया। बाण ने सादर लेकर स्वय पढा। उसमे लिखा था—'मेखलक से सदेश समझकर काम को बिगाडनेवाली देरी मत करना। आप बुद्धिमान् है, पत्र में इतना ही लिखा जाता है, शेष मौखिक सदेश से ज्ञात होगा।' लेख का तात्पर्य समझकर बाण ने परिजनो को हटा दिया और सदेश पूछा। मेखलक ने कृष्ण की ओर से कहा—'मै तुमसे बिना कारण ही अपने बन्धु की तरह प्रेम करता हूँ। तुम्हारी अनुपस्थिति में दुर्जन लोगो ने सम्राट् को तुम्हारे विषय मे कुछ और सिखा दिया है, पर वह सत्य नहीं। सज्जनो मे भी ऐसा कोई नही जिसके मित्र, उदासीन और शत्रु न हो। किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने तुम्हारी बाल-चपलताओ से चिढकर कुछ उल्टा पुल्टा कह दिया। अन्य लोगो ने भी वैसा ही ठीक समझा और कहने लगे। मूढबुद्धियों का चित्त अस्थिर और दूसरो के कहे पर चलता है। ऐसे बहुत-से मूर्खो से एक सी बात सुनकर सम्राट् ने अपना मत स्थिर कर लिया। और वे कर भी क्या सकते थे? किन्तु मै सत्य की टोह मे रहता हूँ, तुम्हारे दूर होने पर भी तुम्हे प्रत्यक्ष की तरह जानता हूँ। तुम्हारे विषय मे मैने सम्राट् से निवेदन किया कि सबकी आयु का प्रथम भाग ऐसी चपलताओ से युक्त होता है। सम्राट् ने मेरी बात मान ली। इसलिये अब बिना समय गॅवाए आप राजकुल मे आवे। सम्राट् से बिना मिले आपका बधुओं के बीच मे निवास करते रहना निष्फल वृक्ष की तरह मुझे अच्छा नही लगता। आपको सम्राट् के पास आने मे डरना न चाहिए और सेवा मे झझट सोचकर उदासीन न होना चाहिए।' इसके बाद कृष्ण ने हर्ष के कुछ अनन्यसामान्य गुण सदेश में कहलाए। उन्हे सुनकर बाण ने अपने पारशवमित्र चन्द्रसेन से कहा—'मेखलक को भोजन कराओ और आराम से ठहराओ।'

रात्रि मे सन्ध्योपासन के बाद जब बाण शय्या पर लेटा तो अकेले मे सोचने लगा—'अब मुझे क्या करना चाहिए? अवश्य ही सम्राट् को मेरे विषय में भ्रान्ति हो गई है। मेरे अकारण स्नेही बन्धु कृष्ण ने आने का सन्देश भेजा है। पर सेवा कष्टप्रद है। हाजिरी बजाना और भी टेढा है। राजदरबार मे बडे खतरे है। मेरे पुरखो को उस तरफ कभी

रुचि नहीं हुई और न मेरा दरबार से पुश्तैनी सम्बन्ध रहा है। न पहले राजकुल के द्वारा किए हुए उपकार का स्मरण मुझे आता है, न बचपन मे राजकुल से ऐसी मदद मिली जिसका स्नेह मानकर चला जाय, न अपने कुल का ही ऐसा गौरव-मान रहा है कि हाजिरी जरूरी हो, न पहली मेल-मुलाकात की ही अनूकूलता है, न यह प्रलोभन है कि बुद्धि-सबधी विषयो मे वहाँ से कुछ आदान-प्रदान किया जाए, न यह चाह है कि जान-पहचान बढाऊँ, न सुन्दर रूप से मिलनेवाले आदर की इच्छा है, न सेवकों-जैसी चापलूसी मुझे आती है, न मुझमे वैसी विलक्षण चतुराई है कि विद्वानो की गोष्ठियों मे भाग लूँ, न पैसा खर्च करके दूसरो को मुट्ठी में करने की आदत है, न दरबार जिन्हे चाहते हो उनके साथ ही साठ-गॉठ है। पर चलना भी अवश्य चाहिए। त्रिभुवनगुरु भगवान् शकर वहॉ जाने पर सब भला करेंगे।' यह सोचकर जाने का इरादा पक्का कर लिया।

दूसरे दिन सबेरे ही स्नान करके चलने की तैयारी की। श्वेत दुकूल वस्त्र पहनकर हाथ मे माला ली और प्रास्थानिक सूत्र और मत्रो का पाठ किया। शिव को दूध से स्नान कराकर पुष्प, धूप, गन्ध, ध्वज, भोग, विलेपन, प्रदीप आदि से पूजा की और परम भक्ति से अग्नि मे आहुति दी। ब्राह्मणो को दक्षिणा बॉटी, प्राङ्मुखी नैचिकी[1] गऊ की प्रदक्षिणा की, श्वेत चन्दन, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण किए, गोरोचना लगाकर दूबनाल मे गुथे हुए श्वेत अपराजिता[2] के फूलों का कर्णपूर कान मे लगाया, शिखा में पीली सरसो रखी और यात्रा के लिये तैयार हुआ। बाण के पिता की छोटी बहन उसकी बुआ मालती ने प्रस्थान-समय के लिये उचित मगलाचार करके आशिर्वाद दिया, सगी बडी बूढियो ने उत्साह-वचन कहे, अभिवादित गुरुजनो ने मस्तक सूघा। फिर ज्योतिषी के कथनानुसार नक्षत्र-देवताओ को प्रसन्न किया। इस प्रकार शुभ मुहूर्त मे हरित गोबर से लिपे हुए ऑगन के चौतरे पर स्थापित पूर्ण कलश के दर्शन करके, कुलदेवताओं को प्रणाम करके, दाहिना पैर उठाकर बाण प्रीतिकूट से निकला। अप्रतिरथसूक्त के मत्रों का पाठ करते हुए और हाथ मे पुष्प और फूल लिए हुए ब्राह्मण उसके पीछे-पीछे चले (५६-५७)। ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि पूजा-पाठ और मगल-मनौती के विषय मे उस समय जनता की मन स्थिति कैसी थी। पूर्ण कलश के विषय मे इतना और कहा है कि उसके गले में सफेद फूलों की माला बँधी थी। उसके पिटार पर चावल के आटे का पचागुल थापा लगा हुआ था और मुँह पर आम्रपल्लव रखे हुए थे (५७)।

पहले दिन चंडिकावन पार करके मल्लकूट नामक गाँव मे पडाव किया। चडिकावन मे देवी के स्थान के पास वृक्षों पर कात्यायनी की मूर्तियॉ खुदी हुई थी जिन्हें आते-जाते पथिक नमस्कार करते थे। चडिकावन की पहचान अब भी शाहाबाद जिले में सोन और गगा के बीच मे मिलनी चाहिए। मल्लकूट गॉव मे बाण के परमप्रिय मित्र जगत्पति ने उसकी आवभगत की। दूसरे दिन गगा पार करके यष्टिग्रहक नाम के बनगॉव मे रात बिताई। फिर रात्री

१ नैचिकी—सदा दूध देनेवाली, बरस बरस पर ब्यानेवाली गऊ जिसके थनों के नीचे बछडा सदा चूँखता रहे। अथर्ववेद मे इसे नित्यवत्सा कहा है। उसका ही प्राकृत रूप नैचिकी है। 'नैचिकी तूत्तमा गोषु', हेमचन्द्र ४।३३६।

२. मूल शब्द गिरिकर्णिका = अश्वखुरी (शकर), हिंदी कौवाठेंठी।

(अजिरवती) के किनारे मणितारा नामक गाँव के पास हर्ष के स्कन्धावार या छावनी मे पहुँचा। वहाँ राजभवन के पास ही ठहराया गया।

मेखलक के साथ स्नान-भोजन आदि से निवृत्त हो कुछ आराम करके जब एक पहर दिन रहा और हर्ष भी भोजन आदि से निवृत्त हो चुके थे तब बाण उनसे मिलने के लिये चला। जैसे ही वह राजद्वार पर पहुँचा द्वारपाल लोगो ने मेखलक को दूर से ही पहचान लिया। मेखलक बाण से यह कहकर कि आप क्षण भर यहाँ ठहरे, स्वय बिना रोकटोक भीतर गया। लगभग एक मुहूर्त (२४ मिनिट) मे मेखलक महाप्रतीहारो के प्रधान, दौवारिक पारियात्र के साथ वापस आया और पारियात्र का बाण से परिचय कराया। दौवारिक ने बाण को प्रणाम करके विनयपूर्वक कहा —'आइए, भीतर पधारिए। सम्राट् मिलने के लिये प्रस्तुत है (दर्शनाय कृतप्रसादो देव)। बाण ने कहा—'मै धन्य हूँ जो मुझपर देव की इतनी कृपा है।' और यह कहकर पारियात्र के बताए हुए मार्ग से अन्दर गया। यहाँ प्रसाद शब्द पारिभाषिक है। इसका अर्थ था सम्राट् की निजी इच्छा या प्रसन्नता के अनुसार प्राप्त होनेवाला सम्मान। कालिदास ने लिखा है कि जिन लोगो को सम्राट् का प्रसाद प्राप्त होता था वे ही उनके चरणो के समीप तक पहुँच सकते थे (सम्राजश्चरणयुग प्रसादलभ्य, ४, ८८)। बाकी लोगों को दरबार मे दूर से ही दर्शन करने पडते थे। बाण ने हर्ष को दुरुपसर्प कहा है। सम्राट् के चारो ओर अवकाश का एक घेरा-जैसा रहता था जिसके भीतर कोई नही आ सकता था (समुत्सारणबद्धपर्यन्तमडल, ७१)। यह पर्यन्त-मडल लोगो को दूर रखने या हटाने से (समुत्सारण) बनता था। दौवारिक पारियात्र को सिर पर फूलों की माला पहनने का अधिकार सम्राट् के विशेष प्रसाद से प्राप्त हुआ था (प्रसादलब्धया विकचपुडरीकमुण्डमालिकया, ६१)। वह माला सम्राट् के प्रसाद की पहचान थी।

राजभवन मे भीतर जाते हुए पहले मदुरा या राजकीय अश्वशाला दिखाई पडी। फिर सडक के बाई ओर कुछ हटकर गजशाला या हाथियो का लम्बा-चौडा बाडा (इभधिष्ण्यागार) मिला। वहाँ सम्राट् के मुख्य हाथी दर्पशात को पहले देखकर और फिर तीन चौक पार करके (समतिक्रम्य त्रीणि कक्ष्यान्तराणि, ६६) बाण ने भुक्तास्थानमडप के सामनेवाले आँगन मे हर्ष के दर्शन किए।

इस प्रसग मे बाण ने स्कन्धावार के अन्तर्गत राजभवन, दौवारिक, मन्दुरा, गजशाला और सम्राट् हर्ष इन पाँचो के वर्णनात्मक चित्र दिए है जो सास्कृतिक सामग्री की दृष्टि से मूल्यवान् है और कितनी ही नई बातों पर प्रकाश डालते है। हम क्रमश उन्हें यहाँ देखेंगे।

स्कन्धावार के दो भाग थे। एक बाहरी सन्निवेश और दूसरा राजद्वार जहाँ से राजा की ड्योढी लगती थी। बाहरी सन्निवेश वस्तुत. स्कन्धावार था। वहाँ आने-जाने पर कोई रोक-टोक न थी, लेकिन राजद्वार या ड्योढी के भीतर प्रवेश आज्ञा से ही हो सकता था। बाण भी मेखलक के साथ ड्योढी तक आया और वहाँ से आगे महाप्रतीहार की सहायता से प्रविष्ट हुआ। बाहरी सन्निवेश मे ये पडाव अलग-अलग थे—

१ राजाओ के शिबिर

२ हाथियो की सेना

३ घोडे

४ ऊँट

५ शत्रुमहासामन्त, जो जीते जा चुके थे और सम्राट् के दर्शन और अपने भाग्य के फैसले के लिये लाए गए थे।

६ हर्ष के प्रताप से दबकर स्वय अनुगत बने हुए नाना देशों के राजा लोग (प्रतापानुरागागतमहीपाल)।

७ भिक्षु, सन्यासी, दार्शनिक लोग।

८ सर्वसाधारण जनता (सर्वदेशजन्मभि जनपदै)

९ समुद्र पार के देशों के निवासी म्लेच्छ जाति के लोग, जिनमे सभवत शक, यवन, पह्लव, पारसीक, हूण एव द्वीपान्तर अर्थात् पूर्वी द्वीपसमूह के लोग भी थे (सर्वाम्भोधिवेलावनवलयवासिभिश्च म्लेच्छजातिभि., ६०)

१० सब देशान्तरों से आए हुए दूतमडल (सर्वदेशान्तरागतैः दूतमडलै उपास्यमान:, ६०)।

स्कन्धावार के इस सन्निवेश का स्पष्टीकरणअन्त के परिशिष्ट मे एव चित्र द्वारा किया गया है।

राजद्वार या ड्योढी के अन्दर राजवल्लभ तुरगो की मदुरा अर्थात् खासा घोडो की घुडसाल थी। वहीं राजा के अपने वारणेन्द्र या खासा हाथी का बाडा था। उसके बाद तीन चौक (त्रीणि कक्ष्यान्तराणि) थे। इन्ही मे से दूसरी कक्ष्या में बाहरी कचहरी या बाह्य आस्थान-मडप था। इसे ही बाह्य कक्ष्य भी कहा जाता था (६०)। राजकुल के तीसरे चौक में धवलगृह या राजा के अपने रहने का स्थान था। उससे सटा हुआ चौथे चौक मे भुक्तास्थान-मडप था (६०, ६९) जहाँ भोजन के बाद सम्राट् खास आदमियों से मिलते-जुलते थे। मध्यकालीन परिभाषा के अनुसार बाह्य कक्षा या बाह्य आस्थानमडप दीवानेआम और भुक्तास्थानमडप दीवानेखास कहलाता था।

हाथियों का वर्णन करते हुए बाण ने कई रोचक सूचनाएँ दी है। एक तो यह कि हर्ष की सेना मे अनेक अयुत हाथियों की सख्या थी। (अनेकनागायुतबलम्, ७६)। एक अयुत दस हजार के बराबर होता है। इस प्रकार तीस हजार से ऊपर हाथी अवश्य हर्ष की सेना में थे। चीनी यात्री श्युआन चुआङ् के अनुसार हर्ष की सेना में हाथियों की सख्या साठ हजार और घुडसवारों की एक लाख थी जिसके कारण तीन वर्ष तक उसने शान्ति से राज्य किया। इसका अर्थ यह हुआ कि छ सौ अट्ठारह से पहले सम्राट् बडी सेना का निर्माण कर चुके थे। उसी से कुछ पूर्व बाण दरबार मे गए होगे। बाण के अनेक अयुत नागबल और श्युआन चुआङ् के साठ हजार हाथियों की सेना का एक दूसरे से समर्थन होता है। बाण ने हर्ष को 'महावाहिनी-पति' कहा है (७६)। यह विशेषण भी श्युआन चुआङ् द्वारा निर्दिष्ट महती सेना को देखते हुए सत्य है। सेना मे इतने अधिक हाथियों की सख्या प्रकट करती है कि हर्ष का अपने गजबल पर सबसे अधिक ध्यान था। बाण ने भी इस बात को दूसरे ढग से सूचित किया है—'दानवत्सु कर्मसु साधनश्रद्धा, न करिकीटेषु', जिसका व्यगार्थ यही निकलता है कि हर्ष की साधनश्रद्धा या सेना-विषयक आस्था हाथियों पर विशेष थी (५४)। जब हाथियो की इतनी विशाल सेना का निर्माण किया गया तो उन्हे पकडने और

प्राप्त करने के सब सभव उपायों पर ध्यान देना आवश्यक था। इसपर भी बाण ने प्रकाश डाला है। हाथियो की भर्ती के स्रोत ये थे—

१. नए पकडकर लाए हुए (अभिनव बद्ध)
२ कररूप मे प्राप्त (विक्षेपोपार्जित, विक्षेप = कर)
३ भेंट मे प्राप्त (कौशलिकागत)
४. नागवीथी या नागवन के अधिपतियों द्वारा भेजे गए (नागवीथीपालप्रेषित)
५ पहली बार की भेंट के लिये आनेवाले लोगो द्वारा दिए गए (प्रथमदर्शनकुतूहलोपनीत)। जान पडता है कि सम्राट् से पहली मुलाकात करनेवाले राजा, सामन्त आदि के लिये हाथी भेंट मे लाना आवश्यक कर दिया गया था।
६. दूतमडलो के साथ भेजे हुए।
७ शबर-बस्तियो के सरदारो द्वारा भेजे हुए (पल्लीपरिवृढढौकित)।
८. गजयुद्ध की क्रीडाओ और खेल-तमाशो के लिये बुलवाए गए या स्वेच्छा से दिये गए।
९. बलपूर्वक छीने गए (आच्छिद्यमान)।

हाथियो की इतनी भारी सेना बनाने के ऐतिहासिक कारण कुछ इस प्रकार जान पडते है। गुप्तकाल मे सेना का सगठन मुख्यतः घुडसवारो पर आश्रित था जैसा कि कालिदास के वर्णनो मे भी आया है। गुप्तो ने यह पाठ सभवतः पूर्ववर्ती शका से ग्रहण किया होगा। शको का अश्वप्रेम ससार-प्रसिद्ध था। गुप्तकाल मे अश्वबल की वृद्धि पराकाष्ठा को पहुँच गई थी, उसकी प्रतिक्रिया होना आवश्यक था। घुडसवार सेना की मार को सामने से तोडने के लिए हाथियो का प्रयोग सफल ज्ञात हुआ। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि गुप्त–साम्राज्य के बिखरने पर देश मे सामन्त महासामन्त, माडलिक राजाओ की सख्या बहुत बढ गई और प्रत्येक ने अपने अपने लिये दुर्गो का निर्माण किया। दुर्गो के तोडने मे घोडे उतने कारगर नही हो सकते जितने हाथी। वस्तुत कोट्टपाल सस्था का आविर्भाव लगभग इसी समय हुआ। हाथियो के इस द्विविध प्रयोग का सकेत स्वय बाण ने भी किया है। उसने हाथियो को फौलादी दीवार कहा है जो दुश्मन की फौज से होनेवाली बाणवृष्टि को झेल सकती थी (कृतानेकबाणविवरसहस्त्र लोहप्राकार, ६८)। तत्कालीन सेनापतियो के ध्यान मे यह बात आई कि घुडसवारो के बाणो की मार का कारगर जवाब हाथियों से बनी लोहे की प्राचीर ही हो सकती है। हाथियो का दूसरा उपयोग था कोट या गढ तोडना। हाथी मानो चलते-फिरते गिरिदुर्ग थे। जैसे दुर्ग के अट्टाल या बुर्ज मे सिपाही भरे रहते है जो वहाँ से बाण चलाते है, उसी प्रकार हाथियो पर भी लकडी के ऊँचे-ऊँचे अट्टाल या बुर्ज रखे जाते थे जिनमे सैनिक बैठकर पहाडी किलो को तोडते थे। बाण ने इस प्रकार के बुर्जो को कूटाट्टालक कहा है (उच्चकूटाट्टालकविकट सचारि गिरिदुर्गम्)। गुप्तकालीन युद्धनीति मे भी हाथियो का प्रयोग लगभग इसी प्रकार से होता था और भारतीय

हाथी ईरान तक ले जाए जाते थे[1]। सचारी अट्टालका से कमन्द फेंककर हमला करने वाले शत्रुओं के बुर्जों या सिपाहियों को खींचकर गिरा लेना सासानी युद्धकला की विशेषता थी। ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में भी इस कला का या तो स्वतंत्र विकास हुआ था अन्य बातों की तरह सासानी ईरान के संपर्क से यहाँ ली गई। सेना के हाथियों का इन्हीं कामों के लिये प्रयोग किया जाता था। इसके लिये हस्तपाशाकृष्टि और वागुरा द्वारा अराति-संवेष्टन पदों का प्रयोग किया है। 'हस्तपाशाकृष्टि' से शत्रु के चलते-फिरते कूटयंत्र फँसाए जाते थे और वागुरा से घोड़े या हाथी पर सवार सैनिकों को खींच लिया जाता था (६८) (चित्र २०)। बाण ने गज-बल को शत्रु की सेना मथने का (वाहिनीक्षोभ) और अकस्मात् छापा मारने या हमला करने (अवस्कन्द, ६८) का साधन कहा है। हाथियों की शिक्षा की अनेक युक्तियों में मंडलाकार घूमना (मंडलभ्रांति) और टेढ़ी चाल (वक्रचार, ६८) मुख्य थीं। सेना में पहरे के लिये भी हाथी काम में लाए जाते थे (यामस्थापित, ५८)। कुमकी हाथियों की मदद से नए हाथियों को पकड़ा जाता था (नागोद्धृति, ६७)। राजकीय जुलूस में भी हाथियों का उपयोग होता था। सबसे आगे कोतल घोड़ों की तरह सजे हुए बिना सवारी के हाथी चलते थे। उनके मस्तक पर पट्टबन्ध रहता था (पट्टबन्धार्थमुपस्थापित, ५८)। कुछ हाथियों पर धौंसे रखकर ले जाए जाते थे (डिंडिमाधिरोहण, ५८), जिस प्रकार मध्यकालीन ऊँटों पर धौंसे रखकर उन्हें जुलूस में निकालते थे। ध्वज, चँवर, शङ्ख, घंटा, अंगराग, नक्षत्रमाला[2] आदि (५८) से हाथियों की सजावट (शृंगाराभरण) की जाती थी। दोनों कानों के पास लटकते शङ्खों के आभूषण (करिकर्ण शङ्ख या अवतंस शङ्ख, ६५) का कई बार उल्लेख हुआ है (३७, ५६)। हाथियों के दाँतों पर सोने के चूड़े मढ़े जाते थे।[3]

हाथियों के लिये नियुक्त परिचारकों में घसियारे (लेशिक, ६५) और महावत (आरोह, ६७, आधोरण, ६५) का उल्लेख है। हाथियों की अवस्था, जाति और शरीर-रचना के बारे में भी हर्षचरित से काफी जानकारी मिलती है। तीस और चालीस वर्ष के बीच की चतुर्थी दशा में हाथियों की त्वचा पर लाल बुदकियाँ जैसी फूटती हैं[4]। भद्रजाति

---

1 The reserve of the Sassanian army was formed of elephants from India, which inspired the Romans with a certain amount of terror. They carried great wooden towers full of soldiers (Clement Huart, *Ancient Persia and Iranian Civilization,* 1957, p 151) The Sassanians knew the use of the ram, the ballista, and movable towers for attacking strongholds (वही)

इन्हीं चलते-फिरते बुर्जों के लिये बाण ने 'सचारि अट्टालक' शब्द दिया है। अमर-कोश में 'उन्माथ कूटयन्त्र' शब्द आया है जो 'बैटरिंग रैम' का संस्कृत नाम जान पड़ता है।

२ नक्षत्रमाला=हाथी के मस्तक के चारों ओर मोतियों की माला, संभवतः इसमें सत्ताइस मोती होते थे।

३ सकाचनप्रतिम=सोने से जड़ाऊ हाथीदाँत की शृंगारमंजूषा या आभरणपेटिका, ६८, प्रतिमा=दंतकोष (शंकर), हाथी दाँत की पेटी।

४. पिंगलपद्मजाल, ६५, तुलना कीजिए 'कुंजरबिन्दुशोण' (कुमारसम्भव, १,७)।

के हाथी सर्वोत्तम समझे जाते थे (बलभद्र, ६७) अच्छे हाथी के शरीर के नाखून चिकने, रोंये कड़े, मुँह भारी, सिर कोमल, ग्रीवामूल छोटा, उदर पतला होना चाहिए। जब उसे सिखाया या निकाला जाय तो उसे सद् शिष्य की तरह सीखना चाहिए और सीखी हुई बात पर जमना चाहिए (सच्छिष्य विनये, दृढ परिचये, ६७)। हाथी को पानी पिलाते समय मुख पर कपड़े का पर्दा डालते थे। इसका उल्लेख बाण और कालिदास दोनो ने किया है (दुकूलमुखपट्ट, ६६)।[1]

हर्ष के अपने हाथी (देवस्य औपवाह्यः, ६४) दर्पशात के लिये राजद्वार या ड्योढी के अन्दर महान् अवस्थानमडप बना हुआ था। ऊपर लिखी हुई अधिकाश विशेषताएँ उसमे भी थीं। उसके मस्तक पर पट्टबध बँधा था (६६)। ज्ञात होता है, हाथियो के समरविजय की अर्थात् कौन सा हाथी कितनी बार सग्राम मे चढा है इसकी गणना रखी जाती थी (अनेकसमरविजयगणनालेखाभि· वलिवलयराजिभि, ६५)। दर्पशात के वर्णन-प्रसग मे बाण ने राजकीय दानपट्टको के बारे मे कुछ रोचक बातें कही है। दानपट्टों पर अक्षर खोदे जाते थे (कड्डयनलिखित)। उनपर सम्राट् के हस्ताक्षर सजावट के साथ बनाए जाते थे (विभ्रमकृतहस्तस्थिति)[2] (चित्र २१), और अन्त मे वे दान लेनेवालों को पढकर सुनाए जाते थे (अलिकुलवाचालितै., ६६)।

हाथियों के अलावा घोड़े भी स्कन्धावार का विशेष अग थे। बाँसखेडा के ताम्रपट्ट मे 'हस्त्यश्वविजयस्कन्धावार' पद आया है। स्कन्धावार मे राजकुल से बाहर साधारण घोड़ो का पडाव था, लेकिन हर्ष के अपने घोड़ो की मन्दुरा राजद्वार के भीतर थी जिसका विशेष चित्र बाण ने खीचा है। ये खासा घोड़े भूपालवल्लभतुरग, राजवल्लभ या केवल वल्लभ कहलाते थे। हर्ष की मन्दुरा मे राजवल्लभतुरग अनेक देशो से लाए गए थे। वे वनायु[3] (वानाघाटी, वजीरिस्तान), आरट्ट (वाहीक या पंजाब), कम्बोज (मध्य एशिया मे वक्षु नदी का पामीरप्रदेश)[4], भारद्वाज (उत्तरी गढवाल जहाँ के टाँघन घोड़े प्रसिद्ध है), सिधुदेश (सिधसागर या थल दोआब) और पारसीक (सासानी ईरान)[5] से उस काल मे बढिया घोड़ो का आयात होता था। रगो के हिसाब से राजकीय घुडसाल मे शोण (लालकुम्मैत),

---

१. मेघदूत, १।६२—
कुर्वन् काम क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।
अर्थात् हे मेघ, तुम जल पीते समय ऐरावत के मुख पर पट की भाँति फैल जाना।

२. हस्तस्थिति = स्वहस्तेन अक्षरकरण, अपने हाथ के दस्तखत, शकर। हर्ष के बाँस-खेडा ताम्रपट्ट पर सबसे अन्त की पक्ति मे 'स्वहस्तो मम महाराजधिराजश्रीहर्षस्य' खुदा हुआ है। उसके अक्षरो की आकृति विभ्रम या शोभन ढग से कलम के पुछल्ले फैलाकर बनाई गई है।

३ देखिए रघुवंश, ५।७३, वनायुदेश्या वाहा।

४ कालिदास ने कम्बोजो के देश को बढिया घोड़ो से भरा हुआ लिखा है (सदश्व-भूयिष्ठ, ४, ७०)।

५. देखिए रघुवश, ४।६०, ६२, पाश्चात्यै अश्वसाधनै।

श्याम (मुश्की), श्वेत (सब्जा), पिंजर (समन्द)[१], हरित (नीलासब्जा)[२], तित्तिर कल्माष (तीतरपखी)[३] इन घोडो का उल्लेख किया गया है[४]।

शुभ लक्षणोंवाले घोडो मे पचभद्र (पचकल्याण)[५], मल्लिकाक्ष (शुक्ल अपागवाला) और कृत्तिकापिंजर[६] का उल्लेख है। अच्छे घोडो की बनावट के विषय मे बाण ने लिखा है—'मुँह लम्बा और पतला, कान छोटे, घॉटी (सिर और गर्दन का जोड) गोल, चिकनी और सुडौल, गर्दन ऊपर उठी हुई और यूप के अग्रभाग की तरह लम्बी और टेढी, कन्धो के जोड मांस से फूले हुए, छाती निकली हुई, टॉगें पतली और सीधी, खुर लोहे की तरह कड़े, पेट गोल, पुट्ठे चौडे और मासल होने से उठे हुए, पूँछ के बाल पृथ्वी को छूते हुए होते थे' (६२-६३)।

घोडों को बॉधने के लिए अगाडी और पिछाडी दो रस्सियॉ होती थी। बहुत तेज मिजाज घोडो की गर्दन मे आगे दो रस्सियाँ दो तरफ खींचकर दो खूटों मे बॉधी जाती थी। पिछाडी (पश्चात्पाशबन्ध) के तानने से एक पैर अधिक खिंचा हुआ हो गया था जिससे लम्बे घोड़े और लम्बे जान पडते थे। गर्दन मे बहुत-सी डोरियो से ग्रथित गडे बॅधे थे। इस प्रकार के गडे लगभग इसी काल की सूर्यमूर्तियो के घोडो मे पाए जाते है (चित्र २२)। खुरों के नीचे की धरती लकडी से मॅढी हुई थी जिसपर घोड़े खुर पटककर धरती खरोच रहे थे। घास चारा सामने डाला जाता देखकर वे चचल हो उठते थे और कठिन साईसो (चडचडाल) की डपटान सुनकर मारे डर के उनकी पुतलियॉ दीनभाव से फिर रही थी। राजमन्दुरा मे बॅधे हुए घोडो के समीप सदा नीराजन अग्नि जलती रहती थी और उनके ऊपर चदोवे तने हुए थे। कालिदास ने भी घोडो के लिये लम्बे तम्बुओ का उल्लेख किया है।[७]

---

१ पिंजर=ईषत्कपिल (शकर), अग्रेजी बे (Bay)।

२ हरित=शुकनिभ (शकर), अग्रेजी चेस्टनट (Chestnut)।

३ अ० (Dappled)। सस्कृत रगो के आधुनिक पर्यायो के लिये मै श्रीरायकृष्णदासजी का अनुगृहीत हूँ।

४ बाण से लगभग सौ वर्ष पीछे घोडों का व्यापार अरब सौदागरो के हाथ चला गया। सस्कृत नामो की जगह रगो के फारसी मिश्रित अरबी नाम, जैसे वोल्लाह, सेराह, कोकाह, खोंगाह, आदि भारतीय बाजारो मे चल पडे। हरिभद्रसूरि (७००-७७०) कृत समराइच्चकहा मे वोल्लाह किशोरक पद मे सबसे पहले वोल्लाह इस अरबी नाम का उल्लेख मिलता है। पीछे सस्कृत नामो का चलन बिल्कुल मिट गया। हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि मे घोडो के करीब बीस अरबी नामो को सस्कृत शब्द मानकर उनकी व्युत्पत्ति दी है (४। ३०३-३०९)। केवल नकुल की अश्वचिकित्सा मे पुराने सस्कृत के नाम चालू रहे।

५ हृदय, पृष्ठ मुख और दोनो पार्श्वों मे पुष्पित या भौंरीवाला (अभिधान-चिंतामणि, ४। ३०२)।

६ कृत्तिकापिंजर=किसी भी रग का घोडा जिस की जिल्द पर सफेद चित्तियॉ हो, जैसे सफेद तारे बिखरे हुए हो (तारकाकदम्बकल्पानेकबिन्दुकल्माषितत्वच, शकर)। ऐसा घोडा अत्यन्त श्रेष्ठ जाति का होता है और कम मिलता है। इस सूचना के लिये मै अपने सुहृत् श्रीरायकृष्णदासजी का कृतज्ञ हूँ।

७ रघुवश ५, ७३, दीर्घेष्वमी नियमिता पटमडपेषु।

स्कन्धावार में ऊँटों का भी जमवट था, लेकिन घोड़े-हाथियों के समान महत्त्वपूर्ण नहीं। ऊँटों से अधिकतर डाक का काम लिया जाता था, (प्रेषित, प्रेष्यमाण, प्रतीपनिवृत्त, बहुयोजनगमन, ५८)। ऊँटों को रुचि के साथ सजाते थे। मुँह पर कौड़ियों की पट्टियाँ[1], गले में सोने के बजनेवाले घुँघुरुओं की माला[2], कानों के पास पचरंगी ऊन के लटकते हुए फुँदने ये उनकी सजावट के अंग थे।

अनेक छत्र और चँवर भी स्कन्धावार की शोभा बढ़ा रहे थे (५९)। श्वेत आतपत्र या छत्रों में मोतियों की झालरें लगी थीं (मुक्ताफलजालक)। गरुड के खुले पंख और राजहंस की आकृतियाँ उनपर कढ़ी हुई थीं। उनमें माणिक्य-खंड जगे हुए थे और उनके दंड विद्रुम के बने थे (५९)। वराहमिहिर ने राजा के आतपत्र वर्णन में उसे मुक्ताफलों से उपचित, हंस और कृकवाकु के पंखों से निचित, रत्नों से विभूषित, स्फटिक-बद्धमूल और नौ पोरियों से बने हुए दंडवाला लिखा है। वह छः हाथ लम्बा होता था[4]। इसी के साथ मायूर आतपत्र और हजारों झंडियाँ भी थीं जो जलूस के काम में आती रही होंगी। मायूर आतपत्र नाचते हुए मोर के बर्हमंडल की आकृति के होते थे। बाद में भी आफताबे के रूप में वे जलूस के लिये काम में आते थे। अनेक प्रकार के वस्त्र जैसे अंशुक और क्षौम, एवं रत्न जैसे मरकत, पद्मराग, इन्द्रनील, महानील, गरुडमणि, पुष्पराग आदि भी राजकीय सन्निवेश में थे (६०)।

दरबार में अनेक महासामन्त और राजा उपस्थित थे। इनकी तीन कोटियाँ थीं। एक शत्रुमहासामन्त जो जीत लिए गए थे और निर्जित होने के बाद दरबार में अनेक प्रकार की सेवाएँ करते थे। इनके साथ कुछ सम्मान का व्यवहार किया जाता था (निर्जितैरपि सम्मानितैः)। दूसरी कोटि में वे राजा थे जो सम्राट् के प्रताप से अनुगत होकर वहाँ आए थे, और तीसरी कोटि में वे थे जो उसके प्रति अनुराग से आकृष्ट हुए थे। राजाओं के प्रति हर्ष की तीन प्रकार की यह नीति समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में उल्लिखित नीति से बहुत मिलती है। समुद्रगुप्त के द्वारा भ्रष्टराज्य और उत्सन्नराज्यवाले वंशों का पुनः प्रतिष्ठापन वैसा ही व्यवहार था जैसा निर्जित शत्रुमहासामन्तों के प्रति हर्ष का। सर्वकरदान, आज्ञाकरण और प्रणामागमन के द्वारा प्रचंडशासन सम्राट् को तुष्ट करने की नीति का भी इसीमें समावेश हो जाता है। समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के राजाओं के प्रति जो ग्रहणमोक्ष और अनुग्रह के द्वारा प्रतापोन्मिश्रित नीति बरती थी, वह हर्ष-नीति की दूसरी कोटि से मिलती है। हर्ष के प्रति अनुराग से वश में आए हुए राजाओं का तीसरा समूह समुद्रगुप्त के शासन में उन राजाओं से मिलता है जो आत्मनिवेदन करके कन्याओं का उपायन भेजकर, अथवा अपने विषय और भुक्ति पर अधिकारारूढ़ रहने के लिये गरुडांकित शासन-पत्र प्राप्त करके

१ वराटिकावलीभिः घटितमुखमंडनकैः।

२. चामीकरघुर्घरुकमालिकैः।

३ श्रवणोपान्तप्रेंखत्पंचरागवर्णोर्णाचित्रसूत्रजूटजटाजालैः।

४. बृहत्संहिता, अध्याय ७३ छत्रलक्षण।

सम्राट् को प्रसन्न कर लेते थे। समुद्रगुप्त ने जिस प्रसभोद्धरण (जड से उखाड फेंकने) की नीति का अतिरिक्त उल्लेख किया है, उस तरह के राजाओ के लिये दरबार में कोई स्थान न था, अतएव बाण ने यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया।

जो भुजनिर्जित शत्रु महासामन्त दरबार मे आते थे उनके साथ होनेवाले विविध व्यवहारों का भी बाण ने उल्लेख किया है। सम्राट् के पास आने पर उनपर जो बीतती थी वह कुछ शोभनीय व्यवहार नहीं कहा जा सकता। किंतु युद्धस्थल मे एक बार हार जाने पर प्राण-भिक्षा के लिये लाचार शत्रुओ के साथ किए गए वे व्यवहार उस युग मे अनुग्रह या सम्मान ही समझे जाते थे। सभी देशों मे इस प्रकार की रणनीति व्यवहृत थी। कुछ लोग स्वामी के कोप का प्रशमन करने के लिये कठ मे कृपाण बॉध लेते थे (कठबद्धकृपाणपट्टै:[1]), कुछ दाढी, मूँछ और बाल बढाए रहते थे, कुछ सिर पर से मुकुट उतारे हुए थे, कुछ सेवा मे उपस्थित हो चॅवर डुलाते थे (सेवाचामराणीवार्पयद्भिः)। अनन्यशरणभाव से वे लोग सम्राट् के दर्शनो की आशा में दिन बिताते और भीतर से बाहर आनेवाले अभ्यन्तरप्रतीहारों के अनुयायी पुरुषों से बार-बार पूछते रहते थे—भाई, क्या सजाए जाते हुए भुक्तास्थानमडप मे सम्राट् आज दर्शन देंगे, या वे बाह्यास्थानमडप मे निकलकर आएँगे (६०)।

इस प्रकार स्कन्धावार का चित्र खींचने के बाद बाण ने सम्राट् हर्ष का बडा विशद वर्णन किया है। महाप्रतीहारों के प्रधान पारियात्र का भी एक सुन्दर चित्र दिया गया है। प्रतीहार लोग राजसी ठाटबाट और दरबारी प्रबन्ध की रीढ थे। प्रतीहारो के ऊपर महाप्रतीहार होते थे, और उन महाप्रतीहारो मे भी जो मुखिया था उसका पद दौवारिक का था (६२)। जो लोग राजद्वार या ड्योढी के भीतर जाने के अधिकारी थे वे 'अन्तरप्रतीहार' कहलाते थे। केवल बाह्यकक्ष्या या दीवानेआम तक आने जानेवाले नौकर-चाकर बाह्य परिजन कहलाते थे। ये प्रतीहार लोग राजकुल के नियमों और दरबार के शिष्टाचार मे निष्णात होते थे। वस्तुतः उस युग मे सामन्त, महासामन्त, माडलिक, राजा, महाराजा, महाराजाधिराज, चक्रवर्ती, सम्राट्, आदि विभिन्न कोटि के राजाओं के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के मुकुट और पट्ट होते थे जिन्हें पहचानकर प्रतीहार लोग दरबारियों को यथायोग्य सम्मान देते थे।[2] महाप्रतीहार दौवारिक पारियात्र पर हर्ष की विशेष कृपा थी। वह निर्मल कचुक पहने हुए था। पतली कमर मे पेटी कसी हुई थी जिसमे माणिक्य का पदक लगा हुआ था। चौडी छाती पर हार और कानों मे मणि-कुडल थे। सम्राट् की विशेष कृपा से प्राप्त खिले कमलों की मुडमाला मस्तक पर थी। मौलि पर सफेद पगडी (पाडर उष्णीष) थी। बाँए हाथ मे मोतियों की जडाऊ मूठवाली तलवार थी और दाहिने मे सोने की वेत्रयष्टि। अधिकारगौरव से लोग उसके लिये मार्ग छोड देते थे। अत्यन्त निष्ठुर पद पर प्रतिष्ठित होने पर भी वह स्वभाव से नम्र था।

---

१ धरहु दशन तृण कंठ कुठारी—तुलसीदास।

२. इस प्रकार के भिन्न पट्ट (पत्रपट्ट, रत्नपट्ट, पुष्पपट्ट) और मुकुटो के आकार आदि का विवेचन मानसार (अ० ४९) मे है जो गुप्तकाल का ग्रथ है। और भी देखिए, शुक्रनीति १।१८३-१८४।

दौवारिक ने भुक्तास्थान मडप मे पहुँचकर बाण से कहा—'देव के दर्शन करो'। बाण ने वहाँ मंडप के सामने के आँगन मे सगमर्मर की चौकी पर हर्ष को बैठे हुए देखा। इस प्रकार का आसन ग्रीष्म ऋतु के अनुकूल था। शयन के सिरे पर टिकी हुई भुजा पर सम्राट् अपने शरीर का भार डाले थे। सम्राट् की दरबार मे बैठने की यही मुद्रा थी। उनके चारों ओर शस्त्र लिए हुए लम्बे गठीले शरीरवाले गोरे और पुश्तैनी[1] अंगरक्षक (शरीर-परिचारकलोक) पक्ति मे खड़े थे। पास मे विशिष्ट प्रियजन बैठे थे। वस्तुत भुक्तास्थान-मडप या दीवानेखास मे वे ही लोग सम्राट् से मिल पाते थे जो उनके विशेष कृपा-भाजन होते थे। कादम्बरी मे राजा शूद्रक के वर्णन मे भी दो आस्थानमडपो का उल्लेख है। एक बाहरी जहाँ आम दरबार मे चाडाल-कन्या वैशम्पायन को लेकर आई थी। सभा विसर्जित करने के बाद स्नान-भोजन से निवृत्त हो, कुछ चुने हुए राजकुमार, अमात्य और प्रियजनों के साथ शूद्रक ने भीतर के आस्थानमडप मे वैशम्पायन से कथा सुनी। उसी के लिये यहाँ भुक्तास्थानमडप पद प्रयुक्त हुआ है। हर्ष को बाण ने जिस समय देखा, वह ब्रह्मचर्यव्रत की प्रतिज्ञा ले चुका था (गृहीतब्रह्मचर्यमालिङ्गितं राजलक्ष्म्या, ७०)। हर्ष ने राज्यवर्द्धन की मृत्यु के बाद यह प्रतिज्ञा की थी कि जबतक मै संपूर्ण भूमि की दिग्विजय न कर लूँगा तबतक विवाह न करूँगा[2]। बाण के शब्दों मे 'उसने यह असिधाराव्रत लिया था' (प्रतिपन्नासिधाराधारणव्रतम्)। बाण ने हर्ष की भीष्म से तुलना की है (भीष्मात्जितकाशिनम्)। दिवाकर मित्र के सामने हर्ष के मुख से बाण ने यह कहलाया है—'भाई का वध करनेवाले अपकारी रिपुकुल का मूलोच्छेद करने के लिये उद्यत मैने अपनी भुजाओं का भरोसा करके सब लोगो के सामने प्रतिज्ञा की थी (सकललोकप्रत्यक्ष प्रतिज्ञा कृता, २५६)।

हर्ष के समीप मे एक वारविलासिनी चामर-ग्राहिणी खडी थी (७०, ७४)। काव्यकथाएँ हो रही थी। विस्रम्भ आलाप का सुख मिल रहा था। प्रसाद के द्वारा शासनपत्र बाँटे जा रहे थे (प्रसादेषु श्रिय स्थाने स्थाने स्थापयन्त)। स्निग्ध दृष्टि अपने इष्ट कृपाण पर इस तरह पड रही थी जैसे फौलाद की रक्षा के लिये चिकनाई लगाते है (स्नेहवृष्टिमिव दृष्टिमिष्टे कृपाणे पातयन्त)। उसके रूप-सौन्दर्य मे मानो सब देवो के अतिशय रूप का निवास था (सर्वदेवतावतारम्, ७२)। इस प्रसंग मे बाण ने अरुण, सुगत, बुद्ध, इन्द्र, धर्म, सूर्य, अवलोकितेश्वर, चन्द्रमा, कृष्ण इन देवताओ का उल्लेख किया है जिनकी उस समय मान्यता थी। हर्ष का बाँया पैर महानीलमणि के पादपीठ पर रखा हुआ था। पादपीठ के चारो ओर माणिक्यमाला की मेखला बँधी थी।

यहाँ बाण ने सम्राट् और राजाओ के बीच मे पाँच प्रकार के सबधो का पुन उल्लेख किया है। पहले अप्रणत लोकपाल अर्थात् जिन्होंने अधीनता न मानी थी, दूसरे जो अनुराग से अनुगत हुए थे, तीसरे उसके तेज से अस्त हुए मडलवर्ती या माडलिक राजा, चौथे अन्य अवशिष्ट राजसमूह, और पाँचवे समस्त सामन्त लोग (७२)। हर्ष दो वस्त्र पहने हुए था, एक अधर-

---

१. मौल, भृतक, श्रेणि, मित्र, अमित्र और आटविक, ये छ प्रकार के सैनिक सहायक होते है। जो पुश्त-दरपुश्त से चले आते हैं वे मौल कहलाते हैं।

२. यावन्मया न सकला जिताभूमिः तावन्मे ब्रह्मचर्यम्, इति श्रीहर्ष. प्रतिज्ञातवान् . .शकर।

वास (धोती) और दूसरा उत्तरीय। अधरवास वासुकि के निर्मोक या केचुल की तरह अत्यन्त महीन, नितम्बो से सटा हुआ[1], श्वेत फेन की तरह था। अधोवस्त्र के ऊपर नेत्रसूत्र या रेशम का पटका बँधा हुआ था (नेत्रसूत्रानिवेशशोभिना अधरवाससा) और उसके समीप मेखला बँधी हुई थी। दूसरा वस्त्र शरीर के ऊर्ध्वभाग मे महीन उत्तरीय था जिसमे जामदानी की भाति छोटे-छोटे तारे या सूत्रबिन्दु कढे हुए थे (अघनेन सतारागणेन उपरिकृतेन द्वितीयाम्बरेण)। छाती पर शेप नामक हार सुशोभित था (शेषेण हारदडेन परिवलितकन्धर)। शेष हार उस समय के विशिष्ट पुरुषों का आभूषण था। इसे मोतियो का बलेवडा कहना चाहिए जो ऊपर से पतला और नीचे से मोटा होता था और सामने शरीर पर पडा हुआ सॉप-सा लगता था। बाण ने कादम्बरी में भी शेष हार का विस्तार से उल्लेख किया है। चन्द्रापीड के लिये विशेष रूप से कादम्बरी ने इसे भेजा था। गुप्तकला की मूर्तियो मे शेप हार के कई नमूने मिलते हैं (चित्र २३)।[2] बाण ने हर्ष के महादानों का भी उल्लेख किया है जिनमे प्रति पॉचवें वर्ष वह सब कुछ दे डालता था (जीवितावधिगृहीतसर्वस्वमहादानदीक्षा, ७३)। इस प्रकार के प्रति पॉच वर्ष पर किए जानेवाले सर्वस्वदक्षिण दानों की गुप्तकाल मे या उसके कुछ बाद भी प्रथा थी। दिव्यावदान मे उनके लिये 'पचवार्षिक' शब्द आया है। कालिदास ने भी रघु के सर्वस्वदक्षिण यज्ञ का उल्लेख किया है। हर्ष की बाहुओ मे जडाऊ केयूर थे, उनके रत्नो से फूटती हुई किरणशलाकाएँ ऐसी लगती थी मानों विष्णुकी तरह सम्राट् के दो छोटी भुजाए और निकल रही हों (अजजिगीषया बालभुजैरिवापरै प्ररोहद्भि , ७३)। यह उत्प्रेक्षा गुप्तकालीन विष्णु मूर्तियो से ली गई है, जिनमे विष्णु की दो अधिक भुजाएँ कोहनियो के पास से निकलती हुई दिखाई जाती है (चित्र २४)। इसीलिये पूरी भुजाओ की अपेक्षा उन्हे बालभुज कहा गया है।[3] हर्ष के सिर पर तीन गहने थे। प्रथम, ललाट से ऊपर अरुणचूडामणि थी जो पद्मराग की थी और जिससे छिटकनेवाली किरणें ललाट के ऊपरी किनारे को शोभित कर रही थी[4]।

---

१ इस प्रकार के अत्यन्त सूक्ष्म शरीर से चिपटे हुए वस्त्र गुप्तकाल और हर्षयुग की विशेषता थी। अग्रेजी मे इसे वैट ड्रेपरी कहते है। बाण ने इसके लिये 'मग्नाशुक' (१६६) पद का भी प्रयोग किया है।

२ देखिए, अहिच्छत्रा से मिली हुई मिट्टी की मूर्तियाँ, एंश्येट इडिया, अक ४ चित्र २५९।

नैषध मे इस तरह के हार या गजरे को दु डुभक अर्थात् दुंडुभ सॉप की आकृति का कहा गया है (नैषध, २१, ४३)। नैषध के टीकाकार ईशान देव ने इसका पर्याय टोडर दिया है। नारायण के अनुसार 'दुंडुभस्य विफणतया साम्यात् स्थूलघनतरे पुष्पदाम्नि दु डुभपद लाक्षणिक'। सभव है कि शुरू मे बाण के समय में शेष हार मोतियो से गूँथा जाता हो, पीछे फूलो के गजरे भी बनने लगे। मथुरा-कला की अतिप्रसिद्ध गुप्तकालीन विष्णुमूर्ति स ई० ६ मे भी मोतियो का मोटा बलेवडा हार शेषहार ही जान पडता था।

३ मथुरा-कला की अत्यन्त सुन्दर गुप्तकालीन विष्णुमूर्ति (सख्या ई० ६) मे यह लक्षण स्पष्ट है। देखिए, मेरी लिखी हुई 'मथुरा म्युजियम गाइड बुक' चित्र ३८।

४ अरुणेन चूडामणिरोचिषा लोहितायतललाटतटम्, ७४।

दूसरा आभूषण मालती पुष्प की मुंडमाला थी जो ललाट की केशान्तरेखा के चारों ओर बँधी थी [1] (चित्र २५)। सिर पर तीसरा अलंकरण शिखंडाभरण था अर्थात् मुकुट पर कलगी की तरह का पदक था जिसमे मोती और मरकत दोनों लगे थे। ये तीनों आभूषण उत्तरगुप्तकालीन मूर्तियों के मुकुटाभूषणों मे पाए जाते है [2] (चित्र २६)। कानों मे कुंडल थे जिनकी घूमी हुई कोर बालवीणा-सी लगती थी (कुंडलमणिकुटिलकोटिबालवीणा, ७४)। कान मे दूसरा गहना श्रवणावतंस था जो सम्भवत. कुंडल से ऊपर के भाग मे पहना जाता था। इस प्रकार कान्ति, वैदग्ध्य, पराक्रम, करुणा, कला, सौभाग्य, धर्म आदि के निधान, गम्भीर और प्रसन्न, त्रासदायक और रमणीय, चक्रवर्ती सम्राट् हर्ष को बाण ने पहली बार देखा।

बाण ने दरबार की वारविलासिनियो का एक अन्तर्गर्भित चित्र देकर इस लम्बे वर्णन को और भी लंबा खीच दिया है। उस युग के राजसमाज की पूर्णता के लिये वारविलासिनियाँ आवश्यक अंग थी। यह शब्दचित्र उनका यथार्थ रूप खडा कर देता है। चित्र और शिल्प मे इसी वर्णन से मिलते जुलते रूप हमे प्राप्त होते है। ललाट पर अगरु का तिलक था, चमचमाते हारो से वे ठमकती थी, नखरो से चंचल भ्रूलताएँ चला रही थी, नृत्य के कारण लंबी साँसो से वे हाँफ रही थी, स्तनकलश बकुलमाला से परिवेष्टित थे, हार की मध्यमणि रह-रहकर इधर-उधर हिलती थी, मानो आलिंगन के लिये भुजाएँ फैली हो, कभी जम्भाई रोकने के लिये मुख पर उत्तान हाथ रख लेती थी, कानों के फूलों का पराग पड़ने से नेत्रों को मिचमिचाती थी, तिरछी भौहों के साथ चितवनें चला रही थी, कभी एकटक बरौनीवाले नेत्रो से देखने लगती थी, कभी स्वाभाविक मुस्कान इधर-उधर बिखेरती थी, कभी शरीर की तोड़-मरोड के साथ हाथो की उंगलियाँ एक दूसरे मे फँसाकर हथेली ऊपर उठाए हुए नाचती थी, और कभी उंगलियाँ चटकाकर उन्हे गोल घुमाकर छोटी-छोटी धनुहियाँ-जैसी बनाती हुई नाचती थी। इस प्रकार बाण ने चतुर चित्रकार की भाँति तूलिका के चौदह संकेतों से नृत्य करती हुई वारवनिताओं का लीलाचित्र प्रस्तुत किया है।

गुप्त-शिलालेखो मे बारम्बार 'चतुरुदधिसलिलास्वादितयशस' विशेषण गुप्त-सम्राटो के लिये आता है। वह राजाओ के लिये वर्णन की लीक बन गई थी। बाण ने हर्ष को 'चतुरुदधिकेदारकुटुम्बी' (७७) कहा है, अर्थात् ऐसा किसान जिसके लिये चार समुद्र चार क्यारियाँ हों। हर्ष के भुजदंडों को चार समुद्रो की परिखा के किनारे-किनारे बना हुआ शिला-प्राकार कहा गया है।

हर्ष को देखकर बाण के मन मे कितने ही विचार एक साथ दौड गए। 'ये ही सुगृहीत-नामा देव परमेश्वर हर्ष है जो समस्त पूर्व के राजाओ के चरितो को जीतनेवाले ज्येष्ठ-मल्ल है। इन्ही से पृथ्वी राजन्वती है [3]। विष्णु, पशुपति, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, इन देवताओ के उन-उन गुणो से भी हर्ष बढकर है। इनके त्याग, प्रज्ञा, कवित्व, सत्त्व, उत्साह, कीर्ति, अनुराग, गुण, कौशल की इयत्ता नही है'। इस प्रकार के अनेक विचार मन मे लाते हुए

१ उत्फुल्लमालतीमयेन मुखशशिपरिवेषमंडलेन मुंडमालागुणेन परिकलितकेशान्तम्, ७४।

२ शिखंडाभरणभुवा मुक्ताफलालोकेन मरकतमणिकिरणकलापेन च, ७४।

३ तुलना कीजिए, रघुवंश ६, २२, 'कामं नृपा सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्। पृथिवी पर चाहे जितने राजा और हो, धरती राजन्वती तो इन्हीं मगधराज से बनी है।'

पास जाकर उसने स्वस्ति शब्द का उच्चारण किया। इस प्रसग मे श्लेष के द्वारा बाण ने कई महत्त्वपूर्ण शब्दो का प्रयोग किया है, जिनका सास्कृतिक मूल्य है। कृष्ण के बालचरितो में अरिष्टासुर या वत्सासुर के वध का उल्लेख है। 'निस्त्रिंशग्राहसहस्र' पद मे तलवार चलाने के उन हाथों का उल्लेख है जिनका अभ्यास किया जाता था। 'जिनस्येवार्थवादशून्यानि दर्शनानि' वाक्य मे बौद्धो के योगाचार और माध्यमिक दर्शनो की तरफ इशारा है जो उस युग के दार्शनिक जगत् मे ऊँचाई पर थे। ये दर्शन क्षणिकत्व मे विश्वास करते और यह मानते थे कि केवल विज्ञान (विचार) ही तात्त्विक है, अर्थ या भौतिक वस्तुएँ असत्य है। यही योगाचार दर्शन का विज्ञान-वाद था। आगे चलकर शकराचार्य ने वेदान्तसूत्र २।२।२८ के भाष्य मे विज्ञानवाद का खडन किया। कादम्बरी में भी बाण ने 'निरालम्बना बौद्धबुद्धिम्' पद से इसी दार्शनिक पद का उल्लेख किया है। 'अस्मिश्च राजनि यतीना योगपट्टका.' इस उल्लेख मे योगपट्टक का दूसरा अर्थ जाली बनाए हुए ताम्रपत्रों से है। इस प्रकार के कई जाली ताम्रपत्र मिले भी हैं, जैसे समुद्रगुप्त का गया से प्राप्त ताम्रपत्र। बाद के राजा पूर्वदत्त दानो का प्रतिपालन करते थे, अतएव इस प्रकार के जाल रचने का प्रलोभन कभी किसी के मन मे आ जाता था। 'पुस्तकर्मणा पार्थिव-विग्रहा.' पद मे मिट्टी की बनी हुई मूर्तियो का उल्लेख है जिन्हे बडे आकार मे उस समय तैयार किया जाता था। 'वृत्तीना पादच्छेदा' उल्लेख से ज्ञात होता है कि पैर काट देना उस समय के दडविधान का अग था। 'षट्पदाना दानग्रहणकलहा.' पद मे दान शब्द का वही अर्थ है जो कृष्ण की दानलीला पद मे है अर्थात् कर-ग्रहण। 'अष्टापदाना चतुरगकल्पना.' के चतुरगकल्पना शब्द से अपराधी के दोनो हाथ और दोनो पैर काटने के दडविधान का उल्लेख है। इसी मे श्लेष से शतरज का भी उल्लेख किया गया है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, इस खेल मे अष्टापद या आठ घरों की आठ पक्तियाँ होती थी और मोहरे चतुरग सेना के चार अग हस्ती-अश्व-रथ-पदाति की रचना के अनुसार रखे जाते थे। अष्टापदपट्ट पर खाने या घर काले और सफेद होते थे, यह भी बाण ने पूर्व मे सूचित किया है।

'वाक्यविदामधिकरणविचारा' पद महत्त्वपूर्ण है। इसमे अधिकरण के दो अर्थ है, पहला अर्थ है मीमासको (वाक्यविदा) के शास्त्र मे भिन्न-भिन्न प्रकरण (शकर टीकाकार के अनुसार विश्रान्तिस्थान)। अधिकरणों का विचार कुमारिल भट्ट के समय से पूर्व ही शुरू हो गया था। कुमारिल को आठवी शती के मध्यभाग मे माना जाय तो बाण के इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि उनसे एक शती पूर्व ही मीमासाशास्त्र मे अधिकरणो की विवेचना होने लगी थी[1]। अधिकरण का दूसरा अर्थ धर्म-निर्णय-स्थान (फौजदारी और दीवानी की

---

1 माधव के जैमिनीय न्यायमालाविस्तार (चौदहवी शती) में अधिकरणों का विचार खूब पल्लवित हुआ है। विषय, सशय या पूर्वपक्ष, सगति, उत्तरपक्ष और निर्णय इन पाँच अगो से अधिकरण बनता है। इस प्रकार के ९१५ अधिकरण माधव के ग्रथ मे है। शकरभट्ट (सोलहवी शती)-कृत 'मीमासासारसग्रह' मे अधिकरणो की सख्या १००० है। मीमासादर्शन के २६५२ सूत्रों को ठीक-ठीक अधिकरणो मे बॉटने के विषय मे टीकाकारो मे मतभेद था। अतएव यह ज्ञात होता है कि अधि-करणविभाग सूत्रो का मौलिक अग न था, बरन् पीछे से विकसित हुआ।

अदालतें) भी गुप्तकाल मे खूब चल गया था। इन अधिकरणों मे प्राड्विवाक अधिकारी मुकदमो पर जिस तरह विचार करते थे उसका अच्छा चित्र 'चतुर्भाणी-सग्रह' के पादताडितक नामक भाण मे खीचा गया है[1]।

जब बाण ने हर्ष के समीप जाकर स्वस्ति शब्द का उच्चारण किया, उसी समय उत्तर दिशा की ओर समीप मे किसी गजपरिचारक के द्वारा पढा जाता हुआ एक अपरवक्त्र श्लोक सुनाई पडा। उसे सुनकर हर्ष ने बाण की ओर देखा और पूछा—'यही वह बाण है (एष स बाण.) ? दौवारिक ने कहा—'देव का कथन सत्य है। यही वे है।' इसपर हर्ष ने कहा—'मै इसे नही देखना चाहता जबतक यह मेरा प्रसाद[2] न प्राप्त कर ले।' यह कहकर अपनी दृष्टि घुमा ली, और पीछे बैठे हुए मालवराज के पुत्र[3] से कहा—यह भारी भुजग[4] है (महानय भुजग)।

हर्ष की बात सुनकर सब लोगो मे सन्नाटा छा गया। मालवराजकुमार ने ऐसी मुद्रा बनाई जैसे वह कुछ समझा ही न हो। वस्तुतः हर्ष का बाण के साथ प्रथम दर्शन मे यह व्यवहार उचित नही कहा जा सकता। यह तीखा वचन सुनकर बाण तिलमिला उठा। बाण की जो स्वतन्त्र प्रकृति थी और जो ब्रह्मतेज था, वह जाग उठा। क्षण भर चुप रहकर उसने हर्ष से काफी कडे शब्दो मे प्रतिवाद किया और अपने विषय की सच्ची स्थिति ब्यौरेवार कही—'हे देव, आप इस प्रकार की बात कैसे कहते है जैसे आपको मेरे विषय मे सच्ची बात का पता न हो या मेरा विश्वास न हो, या आपकी बुद्धि दूसरो पर निर्भर रहती हो,[5] अथवा आप स्वय लोक के वृत्तात से अनभिज्ञ हों। लोगों के स्वभाव और बातचीत मनमानी और तरह-तरह की होती है। लेकिन बडो को तो यथार्थ दर्शन करना चाहिए। आप मुझे साधारण व्यक्ति की तरह मत समझिए। मैने सोमपायी वात्स्यायन ब्राह्मणो के कुल मे जन्म लिया है। उचित समय पर उपनयन आदि सब सस्कार मेरे किए गए। मैने साग वेद भली प्रकार पढा है और शक्ति के अनुसार शास्त्र भी सुने है। विवाह के क्षण से लेकर मै नियमित गृहस्थ रहा हूँ। मुझमे क्या भुजगपना है[6] ? अवश्य ही मेरी नई आयु मे कुछ चपलताएँ हुई, इस बात से मै इनकार न करूँगा, किन्तु वे ऐसी न थी जिनका इस लोक या उस लोक से विरोध हो।

१. पादताडितक पृष्ठ ९। गुप्तकाल मे अधिकरण शब्द का तीसरा अर्थ सरकारी दफ्तर भी था।

२. प्रसाद,—राजा की प्रसन्नता, उनसे मिलने-जुलने की अनुकूलता।

३ मालवराज का यह पुत्र सभवत माधवगुप्त था। कुमारगुप्त और माधवगुप्त दो भाई मालवराजपुत्र थे जो राज्यवर्द्धन और हर्ष के पार्श्ववर्ती बनाकर दरबार मे भेजे गए थे।

४ भुजग गुडा, लम्पट।

५. यहाँ बाण ने 'नेय' शब्द का प्रयोग किया है। कालिदास ने 'नेय' का प्रयोग उसके लिये किया है जिसे अपने घर की समझ न हो और जो दूसरे के कहने पर चले (मूढ नये परप्रत्ययबुद्धि, मालविकाग्निमित्र)।

६. बाण के शब्द थे 'का मे भुजगता', जिसके तीन अर्थ है, १ मेरे जीवन में कौन-सी बात ऐसी है जिसे भुजगता कहा जाय, २ भुजगता उस व्यक्ति मे रहती है जो कामी है, मुझमे नही, ३. मैने किस स्त्री का अपनी भुजाओं मे आलिगन किया है ?

इस विषय मे मेरा हृदय पश्चात्ताप से भरा है, किन्तु अब सुगत बुद्ध के समान शान्तचित्त, मनु के समान वर्णाश्रममर्यादा के रक्षक, और यम के समान दडधर आपके शासन मे कौन मन से भी अविनय करने की सोच सकता है ? मनुष्यो की तो बात क्या, आपके भय से पशु-पक्षी भी डरते हैं। समय आने पर आप स्वय मेरे विषय मे सब-कुछ जान लेंगे, क्योंकि बुद्धिमानो का यह स्वभाव होता है कि वे किसी बात में भी विपरीत हठ नही रखते।' इतना कहकर बाण चुप रह गए। बाण का एक-एक वाक्य विद्वान् की अविशकता, खरी बात कहने का साहस, आत्मसम्मान और सत्यपरायणता से भरा हुआ है। हर्ष ने इसके जवाब में इतना ही कहा—'हमने ऐसा ही सुना था।,' और यह कहकर चुप हो गए। लेकिन सम्भाषण, आसन, दान आदि के प्रसाद से अनुग्रह नही दिखाया। बाण ने यहाँ एक सकेत ऐसा किया है कि यद्यपि हर्ष ने ऊपरी व्यवहार मे रूखापन दिखाया, किन्तु अपनी स्नेहभरी दृष्टि से अन्दर की प्रीति प्रकट की। इस समय सध्या हो रही थी और हर्ष राजाओं को विसर्जित करके अन्दर चले गए। बाण भी अपने निवासस्थान को लौट आए।

यह रात बाण ने स्कान्धावार मे ही बिताई। रात को भी उसके मन मे अनेक प्रकार के विचार आते रहे। कभी वह सोचता—'हर्ष सचमुच उदार है क्योकि, यद्यपि उसने मेरी बालचपलता की अनेक निन्दाएँ सुनी है फिर भी उसके मन में मेरे लिए स्नेह है। यदि मुझसे अप्रसन्न होता तो दर्शन ही क्यो देता। वह मुझे गुणी देखना चाहता है। बडो की यही रीति है कि वे छोटो को बिना मुख से कहे ही केवल व्यवहार से विनय सिखा देते है। मुझे धिक्कार है यदि मै अपने दोषों के प्रति अन्धा होकर केवल अनादर की पीडा अनुभव करके इस गुणी सम्राट् के प्रति कुछ और सोचने लगूँ। अवश्य ही अब मै वह करूँगा जिससे यह कुछ समय बाद मुझे ठीक जान ले' (८१)। मन मे इस प्रकार का सकल्प करके दूसरे दिन वह कटक से चला गया और अपने रिश्तेदारों के घर जाकर ठहर गया। कुछ दिनो मे हर्ष को स्वय ही उसके स्वभाव का ठीक पता चल गया और वे उसके प्रति प्रसादवान् बन गए। तब बाण फिर राजभवन में रहने के लिये आ गया। स्वल्प दिनो मे ही हर्ष उससे परमप्रीति मानने लगे और उन्होंने प्रसाद-जनित मान, प्रेम, विश्वास, धन, विनोद और प्रभाव की पराकाष्ठा बाण को प्रदान की।

तीसरा उच्छ्वास

बाण हर्ष के दरबार में गर्मी की ऋतु मे गया था। जिस भीषण लू और गर्मी का उसने वर्णन किया है उससे अनुमान होता है कि वह जेठ का महीना था। शरद् काल के शुरू मे वह हर्ष के यहाँ से पुन अपने गाँव लौट आया[1]। उच्छ्वास के आरभ में बाल शरद् का बहुत ही निखरा हुआ चित्र खीचा गया है। 'मेघ विरल हो गए, चातक डर गए, कादम्ब बोलने लगे, दर्दुर और मयूर दुःखी हुए, हससमूह आए, सिकल किए हुए खड्ग के समान आकाश श्वेत हो गया, सूर्य, चन्द्र और तारे निखर गए, इन्द्रधनुष और विद्युत् अदृश्य हो गई, जल पिघले हुए वैदूर्य की तरह स्वच्छ हो गया, घूमते हुए रूई के गोलों-जैसे मेघो में इन्द्र का बल घट गया, कदम्ब, कुटज और कन्दल के पुष्प बीन गए, कमल, इन्दीवर और कह्-लार के पुष्प प्रसन्न हो गए, शेफालिका से रात्रि शीतल हो गई, यूथिका की गन्ध फैल गई, महमहाते कुमुदो से दसो दिशाएँ भर गई, सप्तच्छद का पराग वायु मे फैल गया, बन्धूक के लाल गुच्छो से लाल सध्या-सी रच गई, नदियाँ तटो पर बाल पुलिन छोडने लगी, पका सावा कलौस ले आया, प्रियगु धान की मजरी की धूल चारो ओर भर गई।' (८३–८४)।

बाण के लौटने का समाचार सुनकर उसके भाई-बन्द सम्राट् से प्राप्त सम्मान से प्रसन्न होकर मिलने आए। परस्पर अभिवादन के बाद अपने-आपको बन्धु-बान्धवो के बीच में पाकर बाण परम प्रसन्न हुआ (बहुबन्धुमध्यवर्ती पर मुमुदे)। गुरुजनो के बैठने पर स्वय भी बैठा। पूजादि सत्कार से प्रसन्न होकर बाण ने उनसे पूछा—आप लोग इतने दिन सुख से तो रहे? यज्ञक्रिया, अग्निहोत्र आदि तो विधिवत् होता रहा? क्या विद्यार्थी समय पर पढते रहे और वेदाभ्यास जारी रहा? कर्मकाण्ड, व्याकरण, न्याय और मीमासा मे आपलोगों का शास्त्राभ्यास क्या वैसा ही जारी रहा? नए-नए सुभाषितों की अमृतवर्षा करनेवाले काव्या-लाप तो चलते रहे?' (८४) इन प्रश्नो से ब्राह्मण-परिवारो मे निरन्तर होनेवाले पठन-पाठन और शास्त्रचिन्तन का वातावरण सूचित होता है। प्राचीन भारतीय शिक्षाप्रणाली मे ऐसे ब्राह्मण-परिवार विद्यालय का कार्य करते थे। उन लोगो ने पारिवारिक कुशल का यथोचित समा-धान करके बाण के अभिनव सम्मान पर विशेष प्रसन्नता प्रकट की। 'आपके आलस्य छोडकर सम्राट् के पास वेत्रासन पर जाकर बैठने से हमलोग अपने को सब प्रकार सुखी मानते हैं'।[2] 'विमुक्तकौसीद्य' पद से बाण की उस प्रवृत्ति की ओर सकेत है जिसके कारण वे अपने विषय मे स्वयं निष्प्रयत्न रहते थे। उनकी जैसी स्वाभिमानी और स्वतन्त्र प्रकृति थी, उसमे यह स्वाभाविक था कि वे अपने बारे मे किसी के सामने हाथ न फैलाएँ। इस प्रकार स्कन्धावार-सम्बन्धी और भी बातें होती रही।

---

१ शरत्समयारम्भे राज्ञ समीपाद् बाणो बन्धून् द्रष्टुम् पुनरपि तम् ब्राह्मणाधिवासमगात् ८४।

१ सर्वथा सुखिन एवं वय विशेषेण त्वयि विमुक्तकौसीद्ये परमेश्वरपार्श्ववर्तिनि वेत्रासन-मधितिष्ठति, ८५।

मध्याह्न-भोजन के बाद पुन. वे सब एकत्र हुए। इसी बीच मे वहाँ बाण का पुस्तक-वाचक सुदृष्टि उपस्थित हुआ। वह पुड्र[१] देश के बने एक दुकूलपट्ट के थान में से तैयार किए दो श्वेत वस्त्र पहने था। माथे पर गोरोचना और गगनौटी का तिलक लगा था, सिर पर आँवले के तेल की मालिश की गई थी, चोटी मे फूलमाला गुँथी हुई थी, होठो पर पान की लाली थी, और आँखों मे अजन की बारीक रेखा खिंची हुई थी (८५)। सुदृष्टि का कठ अत्यन्त मधुर था, वह नित्यप्रति बाण को वायुपुराण की कथा सुनाता था (पवमानप्रोक्त पुराण पपाठ)। पीछे बैठे हुए मधुकर, पारावत नामक वशी बजानेवाले बाण के दो मित्रो ने उसे बैठने के लिये स्थान दिया। इस प्रसग मे बाण ने प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थ किस प्रकार रखे जाते थे इसका भी सूक्ष्म परिचय दिया है। पुस्तक के लिये ग्रन्थ शब्द प्राचीनकाल मे प्रयुक्त होता था। समस्त वैदिक साहित्य मे कही पुस्तक शब्द नही है। पाणिनि की अष्टाध्यायी एव पतजलि के महाभाष्य मे भी पुस्तक शब्द का प्रयोग नही हुआ। अश्वघोष और कालिदास के काव्यो मे भी जहाँ तक हमे ज्ञात है, यह शब्द नही मिलता। अमरकोश मे भी यह शब्द नही है। सम्भावना यह है कि बाण के युग के आस-पास ही पहली बार किताबो के लिये पुस्तक शब्द का प्रयोग होने लगा। मृच्छकटिक मे चारुदत्त के घर मे और वसन्तसेना के घर मे अन्य सामग्री के वर्णन मे पुस्तक (=प्रा० पोत्थअ = पोथा) का भी उल्लेख आया है जो सम्भवतः इस शब्द का प्रथम साहित्यिक प्रयोग है (मृच्छ, पृ० ७६, १०१)। असम के कुमार भास्कर वर्मा के उपायनो मे अगरु पेड की छाल पर लिखी हुई पुस्तको का उल्लेख आया है (२१७)। असम की तरफ ताडपत्र का प्रचार न था। उत्तरी भारत मे लिखने के लिये भोजपत्र का प्रचार था जैसा कि कालिदास ने लिखा है (कुमारसम्भव, १।७)।[२] किन्तु बाण के समय तालपत्र पर काली और लाल स्याही से पुस्तिकाएँ लिखने की प्रथा चल चुकी थी। बूढे द्राविड के वर्णन मे इस तरह की पोथियो का उल्लेख किया गया है।[३] बाण ने यह भी लिखा है कि हरे पत्तों के रस मे कोयला घोटकर घटिया किस्म की स्याही बनती थी[४]।

लगभग पाँचवी शती के मध्य मे पुस्तक शब्द ईरान से अपनी भाषा मे लिया गया ऐसी सम्भावना है। पह्लवी भाषा मे 'पुस्त' का अर्थ खाल है। ईरान मे चमड़े (पार्चमेण्ट) पर ग्रन्थ लिखे जाते थे, इसी कारण पुस्तक का अर्थ ग्रन्थ हुआ। धीरे-धीरे यह शब्द हमारे देश मे चल गया और लगभग दो सौ वर्षों के भीतर साहित्य मे व्याप्त हो गया जैसा कि बाण के उल्लेखो से सूचित होता है।

पुस्तकवाचक सुदृष्टि ने वायुपुराण की जो पोथी हाथ मे ली उसपर डोरी का वेष्टन बँधा हुआ था जिसे उसने खोला (तत्कालापनीतसूत्रवेष्टन पुस्तकम्, ८५)। सम्भवत पोथी के ऊपर नीचे लकडी की पटलियाँ रहती थी, पर बाण ने उनका उल्लेख नही किया। पटलियो के बीच मे पत्रो को रखकर उनपर डोरी लपेट दी जाती थी। पढते समय

१ पुड्र = उत्तरी बगाल, सुम्ह या राढ = पश्चिमी बगाल।

२. धातुरस से भोजपत्र पर विद्याधर। सुन्दरियाँ अक्षर लिखकर अनंगलेख भेजती हैं।

३ धूमरक्तालक्तकाक्षरतालपत्रकुहकतन्त्रमत्रपुस्तिकासग्राहिणा (कादम्बरी, २२६)।

४ हरितपत्ररसांगारमषीमलिनशम्बूकवाहिना (कादम्बरी, २२६)।

सूत्र-वेष्टन खोल लिया जाता था। आगे चलकर पुस्तको के लिये जब ताडपत्रो का इस्तमाल होने लगा तब पटली और बीच के ताडपत्रों मे आरपार छेद करके सूत्रवेष्टन बाँधा जाता था। यही प्रथा लगभग बारहवी-तेरहवी शती तक रही, फिर चौदहवी शती के शुरू मे कागज का प्रयोग ग्रन्थ-लेखन के लिये चल गया।

वायुपुराण की पोथी काफी मोटी और भारी रही होगी। पढते समय कुछ पत्रे हाथ मे ले लिये जाते थे और शेष पुस्तक सामने रक्खी रहती थी जैसा आजतक कथावाचक खुले पत्रो की पोथियो के विषय मे करते है। बाण के समय मे इस कार्य के लिये शरशलाका यन्त्र अर्थात् सरकडो का बना पीढा काम मे लाते थे (पुस्तक पुरोनिहितशरशलाकायन्त्रके निधाय, ८५)। जैन-साहित्य मे इसके लिये सपुटिका या सॉपडी शब्द है। इस प्रकार की सपुटिकाएँ लकडी की बनने लगी थी जिनपर बढिया कपडा बिछा दिया जाता था। उनका चित्रण प्राचीन जैन चित्रो मे मिलता है[1]। मृच्छकटिक मे वसन्तसेना के घर के तीसरे प्रकोष्ठ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वहाँ पाशकपीठ पर आधी खुली पुस्तक रक्खी थी और उस पीढे पर असली मणियो को गूँथकर बनाया हुआ कीमती वस्त्र बिछा था (स्वाधीनमणिमयशारीसहित पाशकपीठ, पृ० १०१)। पाठ करने के लिये पुस्तक के तीन-चार पन्ने हाथ मे उठा लिये जाते थे। इनके रखने के लिये भी आजकल जैन साधु एक दफ्ती रखते है। कुछ दूरतक उसी दफ्ती का थोडा-सा हिस्सा मोड दिया जाता है और उसपर सुन्दर वस्त्र मॅढ देते है। आजकल इसे काँवली कहते है। बाण के समय दफ्ती का प्रचार तो न था, वह लकडी और कपडे से बनाई जाती होगी। बाण ने उसे कपाटिका कहा है (गृहीत्वा च कतिपयपत्रलघ्वीं कपाटिकाम्, ८५)। नित्यप्रति जहाँ तक ग्रन्थ हो जाता था वहाँ कोई निशान बना देते थे (प्राभातिकप्रपाठकच्छेदचिह्नीकृतम् अन्तरपत्रम्, ८५)। भूर्जपत्र पर अक्षर स्याही से लिखे जाते थे (मषीमलिनानि अक्षराणि, ८५)।

जब वायुपुराण का पाठ हो चुका तो बन्दी सूचिबाण ने दो आर्या छन्द पढे जिनमे श्लेष से हर्ष के चरित और राज्य का उल्लेख था। उन्हे सुनकर बाण के चार चचेरे भाइयो, गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल ने जो पहले से ही परामर्श करके आए थे, एक दूसरे की ओर देखा जैसे कुछ कहना चाहते हों। यहाँ बाण ने उनके विद्याभ्यास का परिचय देते हुए लिखा है कि उन्होने व्याकरणशास्त्र का अच्छा अभ्यास किया था और वृत्ति, वार्त्तिक (वाक्य), न्यास, न्याय या परिभाषाएँ, एवं सग्रहग्रन्थ भले प्रकार पढे थे। यह उल्लेख व्याकरणशास्त्र के इतिहास के लिये महत्त्वपूर्ण है। ज्ञात होता है कि वृत्ति से तात्पर्य काशिकावृत्ति से है और न्यास जिनेन्द्रबुद्धिकृत काशिका की टीका थी जो आज भी उपलब्ध है। काशिकावृत्ति और जिनेन्द्रबुद्धि के न्यास के समय के बारे मे विद्वानो मे मतभेद है। इत्सिङ् ने एक वृत्तिसूत्र का उल्लेख किया है उसे काशिका का पर्याय मानकर काशिका की रचना छ सौ साठ ई० के लगभग मानी जाती है। तब

1. देखिए, तरुणप्रभ सूरि का चित्रपट (१४वी शती) उत्तरप्रदेश-इतिहास-परिषद् की प्रमुख पत्रिका, सन् १९४९, पृ० १४।

न्यास उसके भी बाद का होना चाहिए। किन्तु जैसा श्री पवते ने[1] लिखा है, काशिका सूत्रवृत्ति है, वृत्तिसूत्र नही। इत्सिङ् के अनुसार वृत्तिसूत्र मे विश्व के नियमो का विवेचन था। यह बात भी काशिका पर लागू नही होती। इत्सिङ् का कहना है कि पतजलि ने वृत्तिसूत्र पर टीका लिखी थी। अतएव वृत्तिसूत्र को काशिका मानना सभव नहीं। काशिका गुप्तकाल (चौथी या पॉचवी शती) में और न्यास उत्तर-गुप्तकाल (छठी-सातवी शती) की रचना ज्ञात होती है। तभी बाण के द्वारा उनका उल्लेख चरितार्थ हो सकता है[2]। माघ (सप्तम शती का मध्यकाल) ने भी व्याकरण की वृत्ति और न्यास का उल्लेख किया है[3]।

चारो भाइयों में छोटा श्यामल बाण को अत्यन्त प्रिय था। बडो का इशारा पाकर उसने बाण से हर्ष का चरित सुनाने की प्रार्थना की। इस प्रसग मे पुरूरवा, नहुष, ययाति, सुद्युम्न, सोमक, मान्धाता, पुरुकुत्स, कुवलयाश्व, पृथु, नृग, सौदास, नल, सवरण, दशरथ, कार्त्तवीर्य, मरुत्त, शान्तनु, पाडु, और युधिष्ठिर, इन उन्नीस पूर्वकालीन राजाओ का उल्लेख करते हुए उनसे सम्बन्धित पौराणिक कथाओं का हवाला दिया गया है जिनसे उनके चरित्र की त्रुटियाँ प्रकट होती है। इस प्रकार की सूचियाँ और वर्णन कवि समय ही बन गया था। अर्थशास्त्र, कामन्दकीयनीतिसार, वासवदत्ता, यशस्तिलकचम्पू आदि ग्रन्थो मे इस प्रकार की छोटी-बडी सूचियाँ मिलती है।

स्वय हर्ष के सम्बन्ध मे भी कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी गई है। हर्ष ने सिधु जनपद के राजा को जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया था (सिधुराज प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीकृता, ६१)। इसका तात्पर्य यह है कि पश्चिम मे हर्ष का राज्य सिधु सागर-दोआब तक था। सिंधु नदी उसकी सीमा बनाती थी। दूसरी बात यह कि हिमालय के दुर्गम प्रदेश के राजा भी हर्ष को कर देने लगे थे (अत्र परमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गाया गृहीत करः)। हिमालय का यह प्रदेश कुल्लू, कागडा और नेपाल जान पडता है[4]। इन दोनो प्रदेशो मे भारतीय सस्कृति के तत्कालीन प्रभाव के प्रमाण पाए गए है। ज्ञात होता है, ये भूभाग गुप्तो के साम्राज्य मे सम्मिलित थे, जिन्होने अब हर्ष को भी कर देना स्वीकार किया।

हर्ष ने किसी कुमार का अभिषेक किया था। सभवत यह कुमार मालवराज के पुत्र कुमारगुप्त थे जो अपने भाई माधवगुप्त के साथ राज्यवर्द्धन के पार्श्ववर्ती नियुक्त

१. आई० एस० पवते, स्ट्रक्चर आफ दि अष्टाध्यायी, भूमिका, पृ० ९।

२ पवते, वही, भूमिका पृ० १२-१३ मे जैनेन्द्रव्याकरण और न्यास के कर्त्ता (लगभग ४५० ई०) को एक मानते है।

३ काशिका मे केदार, दीनार और कार्षापण सिक्को का एक साथ नाम आया है (५, २, १२०)। केदार सिक्का केदारसंज्ञक कुषाणो ने लगभग तीसरी शती मे चलाया और गुप्तयुग मे ही ये तीनो सिक्के एक साथ चालू थे। इसी प्रकार बौद्धो के दशभूमक सूत्र का भी उल्लेख है (५, ४, ७५)। इस ग्रथ का चीनी भाषा मे पहला अनुवाद २९७ ई० मे धर्मरक्ष ने, दूसरा ४०६ ई० मे कुमारजीव ने और तीसरा ५०० ई० के लगभग बोधिरुचि ने किया।

४. बूहलर ने इस वाक्य का यही तात्पर्य लगाया है कि हर्ष ने नेपाल की विजय की थी।

हुए थे। (१३८)। इसी प्रसग मे हर्ष के अद्भुत शारीरिक बल का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि उसने किसी राजा को हाथी की सूँड से बचाया था। शकर ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि दर्पशात हाथी ने श्रीकुमार को सूँड मे लपेट लिया था, हर्ष ने अपनी तलवार चलाकर उसे बचाया और हाथी को जगल मे छुडवा दिया। इसी प्रसग मे बाण ने श्लेष से कोशनामक बौद्धग्रथ का उल्लेख किया है जिसकी पहचान वसुबन्धुकृत अभिधर्मकोश से की जाती है। यह ग्रथ बाण के समय मे बडा सिरमौर समझा जाता था। बौद्ध सन्यासी दिवाकरमित्र के आश्रम मे भी शाक्यशासन मे प्रवीण विद्वानो द्वारा कोश का उपदेश दिए जाने का उल्लेख है (२३७)।

उनकी हर्ष के चरित को सुनने की इस प्रार्थना को सुनकर बाण ने पहले तो कुछ अपनी असमर्थता प्रकट की और फिर कहा—आज तो दिन समाप्त हो गया है, कल से वर्णन करूँगा (श्वो निवेदयितास्मि, ६२)। वहाँ से उठकर वह सन्ध्यावन्दन के लिये शोण के तट पर गया और वहाँ से घर लौटकर स्नेही बन्धुओ के साथ गोष्ठीसुख का अनुभव करके गणपति के घर सो रहा (६३)। अगले दिन प्रातः उठकर हाथ-मुँह धो, सन्ध्यावन्दन से निवृत्त हो (उपास्य भगवती सन्ध्याम् , ६३), पान खाकर पुन. वही आ गया। इसी बीच सब बन्धु बान्धव भी एकत्र हो उसे घेरकर बैठ गए और उसने हर्ष का चरित सुनाना आरभ किया (६४)।

सर्वप्रथम श्रीकठ जनपद और उसकी राजधानी स्थाण्वीश्वर का वर्णन किया गया है। 'हलो से खेत जोते जा रहे थे। हल के अग्रभाग या पडौथो से नई तोडी हुई धरती के मृणाल उखाडे जा रहे थे। चारो ओर पौडो के खेत फैले हुए थे। खलिहानो मे कटी हुई फसल के पहाड लगे थे। चलती हुई रहट से सिचाई हो रही थी। धान, राजमाष, मूँग और गेहूँ के खेत सब ओर फैले थे। जगल गोधन से भरा हुआ था और गौवों के गले मे बँधी टल्लियाँ बज रही थी। भैसो की पीठ पर बैठे ग्वाले गीत गा रहे थे। जगह-जगह ऊँट दिखाई पडते थे। रास्तो पर द्राक्षा और दाडिम लगे थे। रास्ता चलते बटोही पिंड खजूर तोडकर खा रहे थे। आडुओ के उपवन फैले थे। गाएँ किनारे लगे हुए अर्जुन के पेडो के बीच मे से उतरकर गढैओं मे पानी पी रही थी। कच्छो की रखवाली करनेवाले लडके ऊँट और भेडो के झुड देख रहे थे। प्रत्येक दिशा मे वातमृगी की तरह घोडियाँ स्वच्छन्द विचर रही थी। गाँव मे जगह-जगह महत्तर अधिकारी थे। सर्वत्र सुन्दर जलाशय और महाघोषों (बड़े-बड़े पशुगोष्ठो) से दिशाएँ भरी हुई थी। वहाँ दुरित और अधर्म, आधि और व्याधि, दुर्दैव और ईति, अपमृत्यु और उपद्रव, सब शान्त थे। मदिरो के लिए टाँकियो से पत्थर गढे जा रहे थे। हवन, यज्ञ, महादान और वेदघोष की धूम थी। वृषोत्सर्ग के समय के बाजे बज रहे थे।' बौद्ध-सस्कृत-साहित्य मे इक्षुशालि-गोमहिषीसम्पन्न मध्यदेश का जो समृद्ध चित्र खीचा गया है उसी का यह परिवर्द्धित रूप है[१]।

१, गिलगित स्थान से प्राप्त सस्कृत विनयपिटक—मध्यदेशो देशानामग्र' इक्षुशालिगो महिषीसम्पन्नो भैक्षुकशतकलितो दस्युजनविवर्जित आर्यजनाकीर्णो विद्वज्जननिषेवित' इत्यादि। नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, विक्रमांक, पृष्ठ ४५।

स्थाण्वीश्वर में अनेक प्रकार के स्त्री-पुरुषो का वर्णन किया गया है जो तत्कालीन संस्कृति पर प्रकाश डालता है। 'वहाँ मुनियो के तपोवन, वेश्याओं के कामायतन, लासको की संगीतशालाएँ, विद्यार्थियो के गुरुकुल, विदग्धो की विटगोष्ठियाँ, चारणो के महोत्सव-समाज थे। शस्त्रोपजीवी, गायक, विद्यार्थी, शिल्पी, व्यापारी (वैदेहक), बन्दी, बौद्धभिक्षु, आदि सब प्रकार के लोग वहाँ थे।' यहाँ बाण ने बन्दी और चारण अलग-अलग कहे है। संभवत चारणों का यह सबसे पहला उल्लेख है। सातवी शती मे इस संस्था का आरंभ हो चुका था जो आगे चलकर मध्यकाल में अत्यन्त विस्तार को प्राप्त हुई।

स्थाण्वीश्वर की स्त्रियो का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे कंचुक या छोटी कुर्ती पहनती थी (चित्र २७)। गुप्तकाल मे यह वेश न था। लगभग छठी शताब्दी मे हूणों के बाद चोली या कुर्ती पहनने का रिवाज शुरू हुआ। अहिच्छत्रा की खुदाई मे चोली पहने हुए स्त्रियो की मूर्तियाँ पाई गई है जिनका समय ५५० से ७५० के मध्य मे है[२]। उनके वेश मे अन्य विशेषताएँ ये थी—सिर पर फूलो की माला (मुण्डमालामंडन), कानो मे पत्तो के अवतंस और कुंडल, मुख पर जाली का आवरण जो कुलीन स्त्रियों की पहचान थी, कर्पूर से सुवासित वस्त्र, गले में हार और पैरो मे इन्द्रनील के नूपुर। वीणा-वादन का वहाँ खूब प्रचार था। घरों मे स्फटिक के चौरस चबूतरे या वेदिकाएँ थी जिनपर लोग बैठकर आराम करते थे (विश्रमकारण भवनमणिवेदिका, ६६)।

ऐसे श्रीकंठजनपद मे परममाहेश्वर पुष्पभूति नाम के राजा हुए। बाण ने पुष्पभूति को वर्धनवंश के आदि संस्थापक के रूप में कल्पित किया है। थानेश्वर के इलाके मे सातवी शती मे शिवपूजा का घर-घर प्रचार था (गृहे गृहे भगवानपूज्यत खण्डपरशुः, १००) वहाँ पाशुपतधर्म के प्रचार का बाण ने बडा सजीव चित्र खीचा है। शिवभक्त गुग्गुल जलाते थे, यह अन्यत्र भी कहा जा चुका है (१००, १०३, १५३)। शिव को दूध से स्नान कराया जाता था (१००, तुलना कीजिए क्षीरस्नपन, ५६) और पूजा मे बिल्वपल्लव चढाए जाते थे। शिवपूजा के अन्य साधनो मे सोने के स्नपन-कलश, अर्घपात्र, धूपपात्र, पुष्पपट्ट (यत्र वस्त्रेषु पुष्पाणि सूत्रै क्रियन्ते स पुष्पपट्टः, शंकर १००), यष्टि-प्रदीप (चित्र २८), ब्रह्मसूत्र और शिवलिंग पर चढाए जानेवाले मुखकोश प्रधान थे। मथुरा-कला मे चतुर्मुखी शिवलिंग, पंचमुखी शिवलिंग और एकमुख शिवलिंग कुषाण काल से ही मिलते है। गुप्तकाल मे तो एकमुखी शिवलिंग बनाने का आम रिवाज हो गया था। ज्ञात होता कि पाशुपत शैवधर्म की यह विशेषता थी। वस्तुत पत्थर के शिवलिंग मे ही मुख-विग्रह बनाया जाता था। उसी परम्परा मे शिवलिंग पर सोने के मुखकोश या खोल चढाने की प्रथा प्रचलित हुई जान पडती है। इनपर मुख की आकृति बनी होने के कारण ये आवरण मुखकोश कहे जाते थे।

इसके आगे राजा पुष्पभूति द्वारा वेताल-साधना करने का वर्णन है। इस काम मे उसका सहायक भैरवाचार्य नामक दाक्षिणात्य महाशैव और उसके शिष्य थे। राजा ने भैरवाचार्य के विषय में सुना और उससे मिलने का इच्छुक हुआ। एक दिन सायंकाल प्रतिहारी ने राजा से निवेदन किया—'देव, भैरवाचार्य के पास से एक परिव्राट् आपसे मिलने आए है।' यह

२. अहिच्छत्रा टेराकोटास, एंश्येंट इंडिया, सं० ४, पृष्ठ १७२, चित्र २४६, ३०७, ३०८।

भैरवाचार्य का मुख्य शिष्य था। बाण ने इसका छोटा, पर सुन्दर चित्र खींचा है—'उसकी भुजाएँ घुटनों तक थी। अंग लटे हुए होने पर भी हड्डियाँ मोटी थी। सिर चौडा, माथा ऊँचा-नीचा था। गालो में गड्ढे पड़े हुए थे। पुतलियाँ शहद की बूँद की तरह पीलापन लिए थी। नाक कुछ टेढी थी। कान की एक पाली लम्बी थी। अधर घोडे के निचले होठ की तरह लटका हुआ था (चित्र २६)। लम्बी ठोडी के कारण मुँह और भी लम्बोतरा जान पड़ता था। उसके कधे से लटकता हुआ लाल योगपट्ट सामने वैकक्षक की तरह पडा हुआ था। शरीर पर गेरुए कपडे का उत्तरासग था जिसकी गाँठ छाती के बीच में लगी थी[१]। एक सिरे से बाएँ हाथ मे पकडे हुए बाँस के दूसरे सिरे से कधे के पीछे लटकती हुई झोली (योगभारक, १०२) थी। झोली का ऊपरी सिरा बालो की बटी हुई रस्सी से बँधा था। उसी मे मिट्टी छानने के लिये बाँस की पतली तीलियों की बनी चलनी बँधी थी[२]। बाँस के सिरे पर कौपीन लटका था। झोली के भीतर खजूर के पत्तों के पिटार मे भिक्षा-कपाल रक्खा था (खर्जूरपुटसमुद्गगर्भीकृतभिक्षाकपाल, १०१)। लकडी के तीन फट्टों को जोडकर बने हुए त्रिकोण के भीतर कमडलु रक्खा हुआ था और उस त्रिकोण के तीन फट्टों मे तीन डडियाँ लगी थी जिनसे वह बाँस से लटका हुआ था[३]। झोली के बाहर खडाऊँ लटक रही थी (चित्र ३०)। कपडे की मोटी किनारी की डोरी से बँधी हुई पोथियो की पूली योगभारक मे रक्खी थी[४]। उसके दाहिने हाथ मे वेत्रासन (बेंत की चटाई) थी।' राजा ने उचित आदर के बाद उससे पूछा—'भैरवाचार्य कहाँ है'। उसने उत्तर दिया—'सरस्वती के किनारे शून्यायतन मे शहर से बाहर ठहरे है' और यह कहकर भैरवाचार्य के भेजे हुए पाँच चाँदी के कमल झोली मे से निकालकर राजा को दिए। राजा ने उन्हे लेकर कहा—'कल मै उनके दर्शन करूँगा।' दूसरे दिन प्रात:काल ही घोडे पर चढकर कई राजपुत्रो को साथ लेकर वह भैरवाचार्य से मिलने चला। कुछ दूर चलने पर वही साधु आता हुआ मिला और उसने बताया कि भैरवाचार्य यही पुराने देवी के मन्दिर के उत्तर बिल्ववाटिका मे आसन लगाए है। पुष्पभूति ने भैरवाचार्य के दर्शन किए।

बाण ने भैरवाचार्य के वर्णन मे अपने समकालीन शैवाचार्यो का ज्वलन्त चित्र खींचा है—'वह बहुत-से साधुओं के बीच मे घिरा, प्रातःस्नान, अष्टपुष्पिका द्वारा शिवार्चन[५] और अग्निहोत्र से निवृत्त होकर भस्म की लकीर के घेरे मे बिछे बाघचर्म पर बैठा था। वह काला

---

१ हृदयमध्यनिबद्धग्रन्थिना धातुरसारुणेन कर्पटेन कृतोत्तरासगम्, १०१।

२ मिट्टी छानने की आवश्यकता स्पष्ट नही है। सभव है, मिट्टी के शिवलिंग बनाने के लिये मिट्टी चालने की आवश्यकता हो।

३ दारवफलकत्रयत्रिकोण-त्रियष्टि निविष्टकमडलुना, १०१।

४ स्थूलदशासूत्रनियन्त्रितपुस्तिकापूलिकेन, यह पद महत्त्वपूर्ण है। इसमें पुस्तको की कल्पना गोल लपेटे हुए रूप मे की गई है जैसे आजकल जन्मकुण्डली लपेटकर रखते है। वस्तुत ईरान मे चमडे पर लिखी पुस्तकें कुण्डली बनाकर रक्खी जाती थी। चीन में हस्त-लिखित ग्रन्थ भी इसी रूप मे रहते थे (मैन्युस्क्रिप्ट रोल्स)। यहाँ बाणभट्ट का सकेत इसी प्रकार की बेलनाकार लपेटी हुई पोथियो की ओर है।

५. अष्टपुष्पिका पूजा का वर्णन पहले पृ० १९ पर हो चुका है।

कॅबल ओढे हुए था। उसके सिर पर जटाएँ रुद्राक्ष और शख की गुरियो से बॅधी हुई थी। आयु ५५ वर्ष की हो चुकी थी। कुछ बाल सफेद हो गए थे। ललाट पर भस्म लगी हुई थी। माथे पर शिकन पडने से भौहो के बाल मिलकर एक भ्रूलेखा बना रहे थे। पुतली कच्चे कॉच की तरह गूगलो या पीले रग की थी। नाक का अग्रभाग झुका हुआ था। ओष्ठ नीचे लटका हुआ था। कान की लम्बी पालियो मे स्फटिक के कु डल लटक रहे थे (प्रलम्बश्रवणपालीप्रेखितस्फटिककु डल, १०३)। एक हाथ मे लोहे के कड़े में पिरोय हुआ शख का टुकडा पहने था जिसमे कुछ औषधि, मन्त्र और सूत्र के अक्षर लिखकर बॉधे हुए थे। दाहिने हाथ मे रुद्राक्ष की माला थी। छाती पर दाढी (कूर्चकलाप) लहरा रही थी। पेट पर बलियाँ पडी हुई थी। क्षौम का कौपीन पहने था। पर्यकबध मे बैठी हुई मुद्रा मे टागो को योगपट्ट से कसकर बॉध रक्खा था। पैरो के पास श्वेत खडाउओ का जोडा रक्खा हुआ था। पास मे बॉस का बैसाखी डडा था जिसके सिरे पर टेढी लोहे की कीथ जडी हुई थी, मानो अकुश हो [1]।

इस प्रसग मे निम्नलिखित सकेत सास्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। १, असुर-विवर-प्रवेश (१०३), इसका उल्लेख बाण ने कई जगह किया है। असुर-विवर-साधना करनेवाले आचार्य वातिक कहलाते थे (९७)। यहाँ बाण ने स्वय लिखा है कि असुर-विवर में प्रवेश करने के लिए पाताल या भूमि मे बने हुए किसी गहरे गड्ढे मे उतरा जाता था (पातालाधकारावास, १०३)। यह कोई बीभत्स तान्त्रिक प्रयोग था। वेताल-साधन इसका मुख्य अग था। इस प्रकार की भीषण क्रियाओ का शैवधर्म के साथ किसी तरह जोड-तोड लग गया था।

२. महामास-विक्रय—यह प्रथा पहली से भी अधिक बीभत्स और भीषण थी। स्मशान में जाकर शबमास लेकर फेरी लगते हुए भूत-पिशाच आदि को प्रसन्न करते थे।[2] कथा–

---

१. शिखरनिखातकुब्जकालायस्कटकेन वैणवेन विशाखिका-दडेन, १०४। कादम्बरी मे भी महाश्वेता की गुफा के वर्णन मे विशाखिका का वर्णन है जिसके सिरे पर नारियल की जटाओं के बने हुए चप्पल लटका दिये गए थे। इस प्रकार के चप्पल चीनी तुर्किस्तान (मध्य एशिया) की खोज मे श्री आरेल स्टाइन को मिले है।

२ देखिए, महामासविक्रय पर श्रीसदानन्द दीक्षित का लेख, इडियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग्ज, बम्बई, १९४७, पृष्ठ १०२, १०९।

इस प्रकार की काल क्रियाएँ कापालिक सम्प्रदाय मे प्रचलित थी। ये लोग अपने-आपको महाव्रती कहते थे। बाण के अनुसार महाकाल शिव के उत्सव में महा-मास-विक्रय करते हुए कुमार को वेताल ने मार डाला (१९९)। कापालिकव्रत को जगद्धर ने मालतीमाधव अक १ की टीका मे महाव्रत कहा है। बाण के समय में कापालिकमत का खूब प्रचार हो गया था। पुलकेशिन् द्वितीय के भतीजे नागवर्द्धन के नासिक जिले मे इगतपुरी के समीप मिले हुए ताम्रपत्र में कपालेश्वर शिव की पूजा के लिए महाव्रतियो को एक गॉव देने का उल्लेख है। और भी देखिए: श्री.कृष्णकान्त हदीकी-कृत यशास्तिलकचम्पू एंड इडियन कल्चर, पृ० ३५८, ३५९।

सरित्सागर में इसके कई जगह उल्लेख है (५ । २ । ८१) । प्रभाकरवर्द्धन की बीमारी के समय उसके स्वास्थ्य-लाभ के उद्देश्य से राजकुमार भी खुले रूप में महामास बेचते हुए कहे गए है (१५३) । बाण के अनुसार महामास-विक्रय से प्राप्त धन से शाक्त लोग मॅहगा मैनसिल नामक पदार्थ खरीदते थे (महामासविक्रयक्रीतेन मनःशिलापङ्केन, १०३) ।

३. सिर पर गुग्गुल जलाना (शिरोर्वधृतदग्धगुग्गुलसतापस्फुटितकपालास्थि, १०३) । शैव साधक शिवपूजा के लिये गुग्गुल की बत्ती सिर पर जलाते थे जिससे खाल और मास जलकर हड्डी तक दिखाई देने लगती थी ।

४ महामडलपूजा—अनेक रगो से चारो ओर महामडल बनाकर साधना करना । मातृकाओं और कुबेर की पूजा मडल बनाकर की जाती थी ।

५ शैवसहिता—शैवसहिताएँ बाण के समय बन चुकी थी, इसका स्पष्ट उल्लेख यहाँ आया है ।

६. स्फटिककुडल—कानों की लम्बी पाली फाडकर उनमे बिल्लौर के कुडल पहननेवाले कनफटे साधुओं का सम्प्रदाय सातवी शती मे कापालिकों के साथ जुडा हुआ था ।[1]

७ कूपोदचनघटीयन्त्रमाला (१०४) पृष्ठ ६४ पर इसे उद्घात घटी कहा गया है । दोनों शब्द रहट के लिए प्रयुक्त हुए है । बाण के समय से पहले ही रहट का प्रचार इस देश मे हो चुका था । हमारा अनुमान है कि रहट और बावडी दो प्रकार के विशेष कुवे शकों के द्वारा यहाँ लाए गए ।[2]

सम्राट् पुष्पभूति ने बिल्ववाटिका मे बैठे हुए भैरवाचार्य को साक्षात् शिव की तरह देखा । राजा को देखकर भैरवाचार्य ने शिष्यों के साथ उठकर श्रीफल दिया और स्वस्ति शब्द का उच्चारण किया । राजा ने प्रणाम किया और भैरवाचार्य ने व्याघ्रचर्म पर बैठने के लिये कहा । पुष्पभूति पास मे ही दूसरे आसन पर बैठे । कुछ देर बातचीत के बाद राजा अपने स्थान पर लौट आए । अगले दिन भैरवाचार्य उनसे मिलने गए और उचित उपचार के बाद वापस आए । एक दिन भैरवाचार्य का शिष्य राजा के पास श्वेत वस्त्र से ढकी हुई एक तलवार लेकर आया और बोला—'यह अट्टहास नामक तलवार है जिसे आचार्य के पाताल स्वामी नामक एक ब्राह्मण शिष्य ने ब्रह्मराक्षस के हाथ से छीना है । यह आपके योग्य है, लीजिए ।' उस तलवार पर नीली झलक का पानी था । उसके कुछ हिस्से पर दाँते बने हुए थे (दृश्यमानविकटदन्तमडलम् १०७) । उसके लोहे पर तेज धार चमक रही थी (प्रकाशितधारासारम्) । उसमे मजबूत मूठ लगी थी । राजा उसे लेकर प्रसन्न हुए । समय बीतने पर भैरवाचार्य एक दिन एकान्त मे राजा से मिले और कहने लगे—

१. गोरखनाथ ने आगे चलकर कनफटे योगियो के सम्प्रदाय में से इन बीभत्स क्रियाओं को हटाकर संप्रदाय को बहुत कुछ शुद्ध बनाया ।

२ बावडी (गुजराती वाव) के लिये प्राचीन नाम शकन्धु (शक देश का कुँआ) और रहट के लिये कर्कन्धु (कर्क देश का कुआँ, कर्क ईरान के दक्षिण-पश्चिम मे था) ये नाम व्याकरण-साहित्य मे सुरक्षित मिलते हैं ।

महाकाल-हृदय नाम के महामत्र का महाश्मशान मे काली माला और काले वस्त्र पहनकर मैने एक कोटि जप किया है। उस मत्र की सिद्धि का अन्त वेताल-साधना मे होता है। अकेले से वह नहीं हो सकती। आप उसे कर सकते है। इस काम मे आपके तीन साथी और होगे—एक वही टीटिभ नाम का मस्करी साधु जो आपके पास आता है। दूसरा वह पातालस्वामी ब्राह्मण और तीसरा मेरा ही शिष्य कर्णताल नाम का द्राविड।' पुष्पभूति ने प्रसन्न होकर इसे स्वीकार किया। भैरवाचार्य ने कहा—'आगामी कृष्ण-चतुर्दशी की रात्रि को महाश्मशान के समीपवाले शून्य मन्दिर मे आप साथ मे केवल तलवार लेकर मुझसे मिलिए।' कृष्ण-चतुर्दशी आने पर शैवविधि से दीक्षित होकर राजा हाथ में तलवार ले, नीले वस्त्र पहने हुए, अकेला ही नगर से निकल उस स्थान पर आया। उन तीनों ने राजा का स्वागत किया जैसे महाभारत के सौप्तिकपर्व मे अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा मिले थे। वे विकट वेश धारण किए, माला पहने हुए, शिखा मे फूल गूँथे हुए थे। उनके माथे पर उष्णीषपट्ट से बीचोबीच ऊँची स्वस्तिका ग्रथि बँधी थी। एक कान के छेद मे श्वेत दन्तपत्र और दूसरे मे रत्नकुडल था। हाथ मे तलवार और ढाल लिए हुए थे। ढाल पर अर्द्धचन्द्र और सोने की बुँदकियाँ (बुद्बुदावली ११०) बनी हुई थीं। कमर मे सोने की करधनी से नया वस्त्र कसकर बाँधा हुआ था और उसमे छुरी खोंसी हुई थी

राजा उनके साथ साधना-भूमि मे गए जहाँ पूजा-दीपक, गुग्गुल का धूम और रक्षासर्षप पहले से रक्खे थे। वहाँ भस्म से महामडल बनाकर उसके बीच मे भैरवाचार्य बैठा हुआ था। लाल चन्दन, लाल माला और लाल वस्त्र से अलकृत शव की छाती पर बैठकर उसके मुँह मे अग्नि जलाकर हवन कर रहा था और स्वय काली पगडी, काला अगराग, काली राखी (हस्तसूत्र) और काले वस्त्र पहने हुए काले तिलो से आहुति दे रहा था। मुख से कुछ जप रहा था। पास मे बहुत-से दिए जला रक्खे थे। कन्धे से ब्रह्मसूत्र लटक रहा था। इस प्रसग मे बाण ने उत्प्रेक्षा से प्रेतमुख की अग्नि मे रक्त की आहुति डालने का भी उल्लेख किया है। दूसरा महत्त्वपूर्ण उल्लेख विद्याराज ब्रह्मसूत्रों का है। बाण के युग मे ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्र नवीन प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहे थे। उनके लिए समस्त विद्याओं के राजा की पदवी प्रयुक्त की जाती थी। विभिन्न दर्शनों मे ब्रह्मसूत्रो का पद सबसे ऊँचा उठ गया था। विद्याराज को शकर ने मत्रविशेष भी लिखा है। बौद्ध लोग महामायूरी आदि पचरक्षा स्तोत्रों को विद्याराज्ञी या विद्याराज मानते थे। सम्भव है, उसीके समकक्ष ब्राह्मण-धर्म के कुछ मत्र या स्तोत्र भी अलग चुनकर विद्याराज पद से सम्मानित किए गए[१]।

जिस समय भैरवाचार्य साधना मे लगा था, पातालस्वामी पूर्व मे, कर्णताल उत्तर मे, टीटिभ पश्चिम मे और पुष्पभूति दक्षिण मे पहरा देने लगे। बाण ने लिखा है कि उस समय एक चमत्कार हुआ। मडल से उत्तर की ओर थोडी दूर पर धरती फट गई और उसमें से एक काला पुरुष निकला। उसके सिर पर नीले कुटिल केश और मालती के फूलों की माला थी और गले मे भी पुष्पमाला थी, शरीर पर जहाँ-तहाँ चन्दन के थापे

१ कालान्तर में गीता, विष्णुसहस्रनाम, गजेन्द्रमोक्ष, भीष्मस्तवराज और सनत्सुजातीय, ये पाँच पचरत्न के रूप मे पाठ करने के लिये अलग संगृहीत कर लिए गए थे।

लगे हुए थे, नीला चंडातक पहने था और कच्छ बाँधकर धरती तक नीची सफेद लम्बी पटली लटकाए हुए था। बायाँ हाथ मोडकर छाती पर रखे हुए, दाहिना हाथ तिरछा फेंकते हुए, दाहिनी जाँघ मोडकर उसपर थपोडी मारते हुए काला भुजग उसका रूप था (११२)। उसने कहा—'मैं श्रीकंठ नाग हूँ। मेरे ही नाम से यह देश श्रीकंठ कहलाता है।' उसने भैरवाचार्य को ललकारा—'विद्याधरी के पीछे भागनेवाले, दुर्बुद्धि, मुझे बलि दिए बिना तू सिद्धि चाहता है'। यह कहकर प्रचंड मुक्कों की मार से भागते हुए टीटिभ आदि को गिरा दिया। किन्तु पुष्पभूति ने निडर भाव से उसे ललकारा और अर्द्धोरुक पर कच्छ बाँधकर बाहुयुद्ध के लिए आगे बढा। श्रीकंठ नाग भी पट्ठों पर ताल दे उससे भिड गया। राजा ने उसे दे मारा, किन्तु उसकी वैकक्षक माला के नीचे यज्ञोपवीत देखकर ठिठक गया। इतने मे ही क्या देखता है कि सामने से एक स्त्री आ रही है। उसके हाथ मे कमल था। नूपुर गुल्फ तक चढे हुए थे (चित्र ३१)। नीचे घनी कटकावली थी। शरीर पर श्वेत अंशुक वस्त्र तरंगित था जिसम तरह-तरह के फूल और पक्षी कढे हुए थे (बहुविधशकुनिशतशोभितात् पवनचलिततनुतरंगात् अतिस्वच्छादंशुकात्, ११४) (चित्र ३२)। हृद्देश मे हार और कान मे दन्तपत्र का कुंडल था जो आकृति मे द्वितीया के चन्द्रमा की तरह जान पडता था। कान मे अशोक के किसलय का अवतंस था। माथे पर एक बडी टिकुली थी जो देखने मे पद्मातपत्र के छायामंडल-सी जान पडती थी। मथुरा-कला मे इस प्रकार की माथे पर गोल टिकुली से युक्त लगभग छठी शताब्दी का स्त्री-मस्तक मिला है। गले मे पडी फूल-मालाएँ धरती तक लटक रही थी (धरणितलचुम्बिनीभिः कंठकुसुममालाभिः)।

राजा ने उससे पूछा—'भद्रे, तू कौन है और क्यो प्रकट हुई है?' उसने उत्तर दिया—'हे वीर, मैं लक्ष्मी हूँ। तेरे शौर्य से प्रसन्न होकर आई हूँ। यथेष्ट वर माँग।' लक्ष्मी के वर्णन मे दो उत्प्रेक्षाएँ शिल्पकला से ली गई है। उसे सुभट के भुजारूपी जयस्तम्भ पर शोभित होनेवाली शालभंजिका कहा गया है और श्वेतराजच्छत्र के वन की मोरनी बताया गया है। शालभंजिका शब्द का इतिहास बहुत पुराना है। आरम्भ में यह स्त्रियो की एक क्रीडा थी। खिले हुए साल के नीचे एक हाथ से उसकी डाल झुकाकर फूल चुनकर स्त्रियाँ परस्पर यह खेल खेलती थी। पाणिनि की अष्टाध्यायी मे प्राचां क्रीडायां (६, ७, ७४), नित्यं क्रीडाजीविकयोः (२, २, १७) और संज्ञायां (३, ३, १०९) सूत्रों के उदाहरणों मे शालभंजिका, उद्दालकपुष्पभंजिका आदि कई, क्रीडाओं के नाम आए है जो पूर्वी भारत मे प्रचलित थी। वात्स्यायन की जयमंगला टीका मे इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। बुद्ध की माता माया देवी लुम्बिनी उद्यान मे इसी प्रकार की शालभंजिका मुद्रा मे खडी थी जब बुद्ध का जन्म हुआ। धीरे-धीरे इस मुद्रा मे खडी हुई स्त्री के लिए शालभंजिका शब्द रूढ हो गया। साँची, भरहुत और मथुरा मे तोरण की बँडेरी और स्तम्भ के बीच मे तिरछे शरीर से खडी हुई स्त्रियो के लिए तोरणशालभंजिका शब्द चल गया था। कुषाण-काल मे अश्वघोष ने इसका उल्लेख किया है[1]। इसी

---

१. अवलम्ब्य गवाक्षपार्श्वमन्या शयिता चापविभुग्नगात्रयष्टिः ।
विरराज विलम्बिचारुहारा रचिता तोरणशालभंजिकेव ।।
बुद्धचरित ५।५२

मुद्रा मे खडी हुई स्त्री-मूर्तियाँ मथुरा के कुषाणकालीन वेदिका-स्तम्भो पर बहुतायत से मिलती है। उनके लिये स्तम्भ-शालभजिका शब्द रूढ हो गया। खम्भे पर बनी हुई स्त्रीमूर्ति के लिए चाहे वह किसी मुद्रा मे हो, यह शब्द गुप्तकाल मे चल गया था। कालिदास ने स्तम्भो पर बनी योषित-मूर्तियो का उल्लेख किया है यद्यपि शालभजिका शब्द का प्रयोग उन्होंने नही किया [१]। इसी विकसित अर्थ मे बाण ने स्तभशालभजिका शब्द का प्रयोग किया है (चित्र३३)। श्वेतराजच्छत्ररूपी वन की मोरनी, यह उत्प्रेक्षा गुप्तकालीन छत्रो और छत्रों की अनुकृति पर बने छायामडलों से ली गई है जिनमे कमल के फूल-पत्ते (पत्रलता) के बीच मे मोर-मोरनी की भाँति का अलकरण बनाया जाता था।[२] (चित्र ३४)

राजा ने लक्ष्मी से भैरवाचार्य की सिद्धि के लिये वर माँगा। उसे देकर देवी ने राजा की भगवान् भट्टारक शिव के प्रति असाधारण भक्ति से प्रसन्न होकर दूसरा वरदान दिया—तुम महान् राजवंश के सस्थापक बनोगे जिसमें हरिश्चद्र के समान सर्वद्वीपों का भोक्ता हर्ष नाम का चक्रवर्ती जन्म लेगा। इसके बाद भैरवाचार्य शरीर छोडकर विद्याधर-योनि को प्राप्त हुआ। श्रीकठ नाग यह कहकर कि समय पडने पर मुझे आज्ञा दीजिएगा, भूमि विवर मे घुस गया। टीटिभ नाम का परिव्राट् वन मे चला गया। पातालस्वामी और कर्णताल सम्राट् के सुभटमडल मे सम्मिलित हो गए।

---

१ रघुवंश १६। १७, 'स्तम्भेषु योषितप्रतियातनानाम्।

२. देखिए मथुरा की स० ए ५ बुद्ध-मूर्ति का छायामंडल।

चौथा उच्छ्वास

पुष्यभूति से एक राजवश चला। उसमे अनेक राजा हुए। क्रम से उसी वश मे प्रभाकरवर्द्धन नाम का राजाधिराज हुआ। उसका दूसरा नाम प्रतापशील था। मधुवन मे मिले ताम्रपट्ट मे हर्ष के पूर्वजो की निम्नलिखित परम्परा दी है।

नरवर्द्धन ... वज्रिणी देवी
राज्यवर्द्धन ... अप्सरो देवी
आदित्यवर्द्धन ... महासेनगुप्ता देवी
प्रभाकरवर्द्धन यशोमती देवी
(महाराजाधिराज)

आश्चर्य है, बाण ने प्रभाकरवर्द्धन के तीन पूर्वजो का उल्लेख नही किया। प्रभाकरवर्द्धन ने ही स्थाण्वीश्वर के छोटे से राज्य को बढाकर महाराजाधिराज की पदवी धारण की। बाण ने उन्हें राजाधिराज लिखते हुए उनकी विजयो का ब्यौरा दिया है। वह हूणरूपी हिरन के लिये केसरी, सिन्धुदेश के राजा के लिये ज्वर, गान्धारनृपतिरूपी मस्त हाथी के लिये जलता हुआ बुखार, गुर्जर को चैन से न सोने देनेवाला उन्निद्र रोग, लाटदेश की शेखी का अत करनेवाला यमराज और मालवराजलक्ष्मीरूपी लता के लिये कुठार था। इन्हीं विजयो के कारण उसका प्रतापशील नाम पडा। हूणो के साथ प्रभाकरवर्द्धन की भिड़ंत काश्मीर के इलाके में हुई होगी। सम्भव है, सिन्धुराज के साथ उसका खुला संघर्ष हुआ हो, किन्तु उस देश को अन्तिम रूप से जीतकर अपने राज्य मे मिलाने का काम हर्ष ने किया, जैसा बाण ने अन्यत्र लिखा है (सिंधुराज प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीकृता, ६१)। गाधारदेश में उस समय कुषाण शाहियो का राज्य जान पड़ता है। वे प्रभाकरवर्द्धन के बढते हुए प्रताप से भयभीत हुए हो, ऐसा सभव है। गाधार को अपने राज्य मे मिलाने का उल्लेख स्पष्ट नही है। इसी प्रकार भिन्नमाल के गुर्जर और लाटदेश के लिये भी प्रभाकरवर्द्धन का सम्बन्ध भयकारी ही था। हाँ, मालवा को उसने अवश्य अपने राज्य मे मिला लिया था। इसीलिये मालवराज के दो पुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्त उसके दरबार मे भेजे गए थे। हर्ष ने जिस कुमार का अभिषेक किया था वह भी मालवराज-सूनु कुमारगुप्त ही विदित होते है (अत्रदेवेन अभिषिक्त. कुमार., ६१)। विदित होता है कि मालवयुद्ध मे मालवा का राजा मारा गया था। उसके बचे हुए कुमारो के साथ प्रभाकरवर्द्धन ने मृदु व्यवहार किया [1]। प्रभाकरवर्द्धन की सेना के यात्रापथो से मानों पृथ्वी चारो दिशाओ मे अधीन राजाओं (भृत्यो) मे बाँट दी गई थी। उसका प्रताप मारे हुए शत्रुमहासामन्तो के अन्तःपुर मे फैल गया था। उसके राज्य मे चूने से पुते हुए अनेक देवालय सुशोभित थे जिनके शिखरो पर धवल ध्वजाएँ फहराती थी। गाँवो के बाहर सभा, सत्र, प्रपा और मडप आदि अनेक सस्थाएँ निर्मित हुई। प्रभाकरवर्द्धन की महादेवी का नाम यशोवती था। प्रभाकरवर्द्धन परम आदित्यभक्त था। वह प्रतिदिन प्रातः समय स्नान करके श्वेत दुकूल पहनकर, सिर पर सफेद वस्त्र ढककर मडल के बीच मे घुटनो के बल बैठकर पद्मराग की तश्तरी मे

---

१ तुलना कीजिए—निर्जितस्य अस्तमुपगतो सामन्तस्य बालापत्येषु दर्शितस्नेह मृदुरभूत् ४५।

रखे हुए रक्तकमल से सूर्य की पूजा करता था। प्रायः मध्याह्न और सायंकाल मे आदित्य हृदय मन्त्र का सन्तान के लिये जप करता था।

एक बार ग्रीष्मकाल मे राजा यशोवती के साथ सुधाधवलित महल के ऊपर सोए हुए थे। सहसा देवी यशोवती चौंककर उठ बैठी। राजा के पूछने पर उसने कहा, मैंने स्वप्न में सूर्यमडल से निकलकर आते हुए दो कुमारों को एक कन्या के साथ पृथ्वी-तल पर उतरते हुए देखा और वे मेरे उदर मे प्रविष्ट हुए। इसी समय तोरण के समीप प्रभात-शख बजा। दु दुभियाँ बजने और प्रात काल का नान्दीपाठ होने लगा। प्रबोध-मगल-पाठक 'जय-जय' शब्द का उच्चारण करने लगे। कालिदास ने भी प्रात.काल मगलश्लोक गाकर राजाओं को उठानेवाले वैतालिकों का उल्लेख किया है (रघुवश ५।६५)।

कुछ समय बीतने पर यशोवती ने गर्भ धारण किया। गुर्विणी अवस्था मे सखियाँ उसे किसी प्रकार हाथ का सहारा देकर देव वन्दना के लिये ले जातीं। समीप के स्तम्भों के सहारे विश्राम करती हुई वह शालभजिका-जैसी जान पडती थी। स्तम्भशालभजिका-अभिप्राय का निरूपण ऊपर हो चुका है। दसवाँ मास लगने पर राज्यवर्धन का जन्म हुआ और राजा की आज्ञा से एक महीने तक जन्म-महोत्सव मनाया गया। पुन कुछ समय बीतने पर यशोवती ने हर्ष को इस प्रकार गर्भ मे धारण किया जिस प्रकार देवी देवकी ने चक्रपाणि विष्णु को (१२६)। दिन मे जिस पलग पर वह सोती थी उसपर पत्र-भग के साथ पुतलियाँ बनी हुई थी जिनका प्रतिबिम्ब उसके कपोलो पर पडता था (अपाश्रय-पत्रभगपुत्रिकाप्रतिमा, १२७)[1]। रात्रि के समय सौधशिखर पर बने हुए जिस वासभवन मे वह सोती थी उसकी भित्तियों पर चित्र बने थे और उन चित्रों मे चामर-ग्राहिणी स्त्रियाँ लिखी गई थीं जो उसके ऊपर चवर डुलाती जान पडती थी। जब वह जागती तो चन्द्र-शालिका[2] मे उत्कीर्ण शालभजिकारूपी स्त्रियाँ मानो उसका स्वागत करती थीं। उसके मन मे यह दोहद-इच्छा हुई की चार समुद्रों का जल एक में मिलाकर स्नान करूँ और समुद्र के वेलाकुजो मे भ्रमण करूँ। नगी तलवार के पानी मे मुँह देखने की, वीणा अलग हटाकर धनुष की टकार सुनने की और पजरबद्ध केसरियो को देखने की इच्छा हुई। उसके ग्रीवासूत्र मे प्रशस्त रत्न बँधे हुए थे। तब ज्येष्ठ महीने मे कृत्तिका नक्षत्र, कृष्णपक्ष की द्वादशी मे प्रदोष समय बीतने पर रात्रि के प्रारम्भ मे हर्ष का जन्म हुआ। इसका समाचार यशोवती की प्रेमपात्र धात्री-सुता सुयात्रा ने राजा को दिया। सम्राट् ने तारक नाम के ज्योतिषी को बुलाकर ग्रह दिखलाए। बाण के अनुसार यह गणक भोजक अर्थात् मग जाति का था[3]।

१ अपाश्रय पलग शकर:। पत्रभग फूलपत्तियो के कटाव।

२ चन्द्रशालिका सालभजिकापरिजन' जयशब्दमसकृदजनयत् , १२७।

३ भोजका रविमर्चयित्वा पूजका हि भूयसा गणका भवन्ति, ये मगा इति प्रसिद्धा (शकर)। भविष्य पुराण मे कथा है कि कृष्ण के पुत्र साम्ब दुर्वासा के शाप से कुष्ठी हो गए। सूर्य की उपासना करने से वे अच्छे हुए। तब साम्ब ने एक सूर्य का मन्दिर बनवाया और शाकद्वीप से मगों के अठारह परिवारो को अपने साथ लाए एव द्वारका के भोजों को जो यादवो की एक शाखा थे मगो को कन्या देने के लिये राजी किया। इसी कारण शक लोग भोजक कहलाए।

कुषाण-काल के आरम्भ मे सूर्य-पूजा का देश मे अत्यधिक प्रचार हुआ। इसमे ईरानी शको का प्रभाव मुख्य कारण था। सूर्य की मूर्ति, उसका उदीच्य वेश और पूजाविधि इन सबपर ईरानी प्रभाव पडा। विष्णुधर्मोत्तरपुराण और वराहमिहिर की बृहत्सहिता मे ईरानी प्रभाव का स्पष्ट उल्लेख है। सूर्य की अव्यग-नामक पारसी पेटी का भी उल्लेख आया है। इस युग के ज्योतिषशास्त्र पर भी पारसीक यवन रोमक सिद्धान्तों का काफी प्रभाव हुआ। शाकद्वीपी मग ब्राह्मण सूर्य-मन्दिरो की प्रतिष्ठा कराते थे और वे ही सम्भवत ज्योतिष का काम भी करते थे। बाण ने तारक नाम के गणक को सब ग्रह-सहिताओ मे पारगत कहा है। इन सहिताओ मे वराहमिहिर की बृहत्सहिता एव अन्य आचार्यों के सिद्धान्त-ग्रथ सम्मिलित रहे होगे। बृहत्सहिता मे ज्योतिष के तीन अग कहे है—ग्रहगणित, सहिता और होराशास्त्र, और लिखा है कि सहिता मे पारगत ही दैवचिन्तक होता है। बृहत्सहिता के दूसरे अध्याय मे सहिता के विषयों की लबी सूची दी गई है। उस ज्योतिषी ने ग्रह देखकर बताया कि 'सब ग्रह उच्च के है[1]। मान्धाता के बाद आज तक किसी ने भी इस प्रकार के चक्रवर्ती योग मे जन्म नही लिया। आपका यह पुत्र सात चक्रवर्तियों मे अग्रणी, चक्रवर्ती चिह्नो से युक्त, चक्रवर्तियो के सात रत्नो का भाजन (चित्र ३५), सत समुद्रो का पालनकर्त्ता, सब यज्ञों का प्रवर्तक, सूर्य के समान तेजस्वी होगा।'

हर्ष के जन्म के समय धूमधाम से पुत्रोत्सव मनाया गया। उसका बाण ने ब्योरे के साथ वर्णन दिया है—'शख, दुदुभी, मगलवाद्य और पटह बाजे बजने लगे। घोड़े हर्ष से हीसने लगे, हाथी गर्जने लगे, दिव्य वायु बहने लगी, यज्ञशालाओ मे वैतान अग्नियाँ प्रज्वलित हुई। सुवर्णश्रृखला से बँधी हुई कलसियो के रूप मे महानिधियाँ पृथ्वीतल से प्रकट हुई। ब्राह्मण वेदोच्चारण करने लगे। पुरोहित शान्तिजल हाथ मे लेकर उपस्थित हुआ। बडे-बूढे रिश्तेदार एकत्र हुए। कारागार से बन्दी मुक्त किए गए (मुक्तानि बन्धन-वृन्दानि, १२६)। प्रसन्न हुए लोगो ने मारे खुशी के बनियो की दुकानें लूट ली जो कि भागते हुए अधर्म की पैठ-सी जान पडती थी। महलो मे वामन आदि परिचारको से घिरी हुई बूढी धात्रियाँ नाचने लगी, जान पड़ता था, बालको से घिरी हुई साक्षात् जात-मातृकासज्ञक देवियाँ हों। राजकुल के नियम शिथिल कर दिए गए। प्रतिहार लोगो ने अपना वेश और डडे उतारकर रख दिए और सब लोग बेरोक-टोक अन्त.पुर मे आने-जाने लगे।' इस प्रसग में लोगो द्वारा जो महाजनो की दुकानें लूटने का उल्लेख है, सभव है, राज्य की ओर से उस हानि की भरपाई की जाती हो। कारागार से बन्धनमुक्ति ऐसे विशेष अवसरो पर पुरानी प्रथा थी। जातमातृ देवी की आकृति सोहर मे बनाई जाती थी। शकर के अनुसार यह मार्जाराननना (बिल्ली के मुखवाली) देवी थी। उसके आस-पास छोटे-छोटे बच्चो के चित्र भी लिखे जाते थे। इसका एक नाम चर्चिका भी था[2]। कादम्बरी

१ श्रीयुत कणे के अनुसार ज्येष्ठ-कृष्ण-द्वादशी को सभी ग्रहो की उच्च स्थिति असम्भव है। सूर्य उस दिन मेष-राशि मे नहीं हो सकता।

२. नानार्थार्णवसक्षेपकोश, ११४००, काशीखड, अध्याय९७ मे भी चर्चिका देवी के मन्दिर का उल्लेख है। परमार राजा नरवर्मदेव के भिलसा-शिलालेख में चर्चिका देवी की स्तुति दी हुई है और उसके लिये मन्दिर बनवाने का उल्लेख है। वह परमारो की कुलदेवी थी। भडार-कर-लेखसूची १६५८, वेस्टर्न सर्किल की पुरातत्व रिपोर्ट, १९१३-१४, पृ० ५९।

के सूतिकागृह-वर्णन मे मातृपटपूजा का उल्लेख किया गया है। यह देवी बालकों से घिरी हुई (बहुबालक-व्याकुला) बौद्धो की हारीती के समकक्ष थी।

अगले दिन से पुत्र-जन्मोत्सव ने और भी रग पकडा। सामन्तो की स्त्रियाँ राजकुल मे आकर भाँति-भाँति से नृत्य करने लगी। उनके साथ अनेक नौकर-चाकर थे जो चौडी करडियों में स्नानीय चूर्ण से छिडको हुई फूलो की मालाएँ और तश्तरियो मे कपूर के श्वेत खड लिए थे। कुमकुम से सुगधित अनेक प्रकार के मणिमय पात्र थे। हाथीदाँत की छोटी मजूषाओं दन्तशफरुक) मे चन्दन से ववलित पूगफल और आम्र के तैल[1] से मिक्त खदिर के केसर रखे थे। सुगन्धित द्रव्यो के चूर्ण से भरी हुई लाल थैलियाँ (पारिजात[2] परिमलानि पाटलानि पोट्लकानि, १३०), सिदूर की डिबियाँ, पिष्टातक[3] या पटवासकचूर्ण से भरे पात्र (सिदूरपात्राणि पिष्टातकपात्राणि, १३०) और लटकते हुए बीडो से लदे हुए छोटे-छोटे ताबूल के झाड लिए हुए परिजन लोग चल रहे थे (१३०)[4]।

शनैः शनैः उत्सव मे कुछ और गमक पैदा हुई। रनिवास के छोटे-बड़े सब लोग विभोर होकर आनन्दमग्न हो नाचने लगे। ऐसा सूक्ष्म चित्र केवल बाण की लेखनी से ही खीचा जाना सभव था—

१ नृत्य का जिन्हे अभ्यास न था ऐसे पुराने वशो के शर्मालु कुलपुत्र भी राजा के प्रेम से नाचने लगे।

२ राजा की मंद हँसी का सकेत पाकर मतवाली क्षुद्र दासियाँ सम्राट् के प्रिय पात्रो को खीच कर नाचने लगी।

३ मतवाली कटक-कुट्टनियो को आर्य सामन्तों के कठ मे हाथ डाले देख राजा भी हँस पड़े।

४ राजा की आँख का इशारा पाकर पाजी छोकरे गीत गा-गाकर सचिवों के गुप्त प्रेम की पोल खोलने लगे।

५ मदमस्त पनिहारिने बूढे साधुओ से लिपटकर लोगो को हँसाने लगी।

६ एक दूसरे से लाग-डॉट करनेवाले नौकरों के झुड आपस मे गाली-गलौज करते हुए भिड गए।

७. नृत्य में अनभिज्ञ, पर रनिवास की महिलाओं के कहने से जबर्दस्ती नाचते हुए अन्त:-पुर के प्रतिहारी दासियो के साथ नृत्य मे सम्मिलित हो गए (१३०)।

---

१. बाण ने और भी कई जगह सहकार से बनाए हुए तैल का उल्लेख किया है।

२ पारिजातसुगन्धिद्रव्यचूर्णम् (शकर)। यह पारिजातक चूर्ण सहकार, चंपक, लवली, लवग, कक्कोल, एला, कपूर के मिश्रण से बनता था जिसकी सुगधि अत्यन्त तीव्र होती थी। बाण ने अन्यत्र (पृ० २२, ६६) इसका उल्लेख किया है।

३. यहाँ बाण ने तीन प्रकार के सामान का उल्लेख किया है। पारिजातक-नामक सुगन्धित चूर्ण की लाल रंग की थैलियाँ, सिदूर भरी डिब्बियाँ और पिष्टातक या चावल के सूखे आटे मे सुगन्धित द्रव्य मिलाकर बनाए हुए चूर्ण की टिकियाँ।

४. विटकवीटक पचाशत्ताम्बूलपत्रं क्रियते (शकर)।

इस प्रकार फूलो के ढेरो से, मद्य के परनालो से, पारिजात की सुगन्धि से, कपूर की धूल से, नगाडो के शब्द से, लोगो की कलकल से, रासमडलियो से (रासकमडलै , १३०), माथे पर चदन के खोर से, एव अनेक तरह के दानो से सारे रनिवास मे उत्सव की भारी गमक भर गई। नवयुवक उछलते-कूदते धमा-चौकडी मचा रहे थे। चारण ताल के साथ नृत्य कर रहे थे। खेलते हुए राजकुमारो के परस्पर धक्कामुक्की करने से आभरण टूटकर मोती बिखर गए थे। सिंदूर-रेणु, पटवास-धूलि और पिष्टातक-पराग चारों ओर उड रहा था।

महलो में स्थान-स्थान पर वारविलासिनी स्त्रियाँ आलिंग्यक, वेणु, झल्लरी (झाँझ), तन्त्री-पटह अलाबु-वीणा, काहल आदि अनेक बाजो के मन्द-मन्द शब्दो के साथ अश्लील रासकपदो (सीठनो) को गाती हुई सिर पर पुष्पमाला, कानो मे पल्लव, माथे पर चन्दन-तिलक लगाए, चूडियों से भरी हुई भुजाओ को ऊपर उठाए, पैरो मे पडे हुए बाँके नूपुरों (पदहसक) को बजाती हुई, गीतियो की तरह रागो का उद्दीपन करती हुई, अनेक भाँति से नृत्य कर रही थी (१३१)।

इस वर्णन मे कई शब्द और बाजो के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। आलिंग्यक एक विशेष प्रकार का गोपुच्छाकृति मृदग था जो एक सिरे पर चौडा और दूसरे पर सँकरा होता था। अमरकोश (१, ७, ५) मे अक्य, आलिंग्य और ऊर्ध्वक तीन प्रकार के मृदग कहे है। कालिदास ने इन तीनो का एक साथ उल्लेख किया है (कुमारसम्भव ११। ३६) जिससे गुप्तकाल मे उनका प्रचार सिद्ध होता है (चित्र ३६)। झल्लरी आजकल की झाँझ थी। तन्त्री-पटहिका छोटा ताशेनुमा बाजा था जिसे डोरी से गले मे लटकाकर बजाते थे (चित्र ३७)। अनुत्तान अलाबुवीणा अलाबु की बनी हुई वीणा थी जिसकी तूबी नीचे की ओर होती थी। कास्यकोशी क्वणितकाहल बाजे का ठीक स्वरूप ज्ञात नही। शकर ने काहल को कास्यद्वयाभिघात लिखा है। सँभव है, यह एक नगाडा था जिसका नीचे का भाग फूल का बनाया जाता था। इसकी जोडी नौबतखाने मे बजाई जाती थी। वस्तुतः इन बाजों के द्वारा सम्मिलित नौबत बजती हुई वारविलासिनियो के पीछे चल रही थी।

अश्लीलरासकपदानि का तात्पर्य अश्लील सीठनों से भरे हुए गीत है। रासक शब्द का यह उल्लेख सबसे प्राचीन है। यहाँ रासा का अर्थ स्त्रियो मे गाए जानेवाले ग्राम-गीत ही ज्ञात होता है।

काश्मीर-किशोरी पद से केसर लगे हुए शरीरवाली कश्मीर की बछेडियों का उल्लेख किया गया है। इससे पूर्व नाचते युवको की उपमा काम्बोजदेशीय घोडो से दी जा चुकी है।

शासनपट्टो पर लगी हुई सिन्दूर की मुद्रा सभवतः उनके लिये चरितार्थ थी जो कपडो पर लिखे जाते थे।

पदहसक-नूपुर से तात्पर्य उन नूपुरो से था जिनकी आकृति गोल न होकर बाँकी मुडी हुई होती थी। आजकल उन्हे बाँक कहते है (चित्र ३८)।

राग का उद्दीपन करनेवाली गीतियो मे (१३२) संभवतः श्लेष से राग के साथ सबन्धित रागिनियों का तात्पर्य है। बाण ने ध्रुवपद-गान और बाण से पूर्व सुबन्धु ने विभास-राग का उल्लेख किया है, ऐसा पूर्व मे कहा जा चुका है।

सामन्तों की स्त्रियाँ, दास-दासियाँ, वारविलासिनियाँ जन्म-महोत्सव नृत्य मे भाग ले रही थी। उन्ही के साथ राजमहिषियाँ भी नृत्य मे कूद पडी (१३३)। उनके सिर पर धवल छत्र लगे हुए थे। दोनो तरफ कन्धो से उत्तरीय के लम्बे छोर लटक रहे थे जैसा हिंडोले पर झूलते समय होता है[1] (चित्र ३६)। वे बाँहो मे सोने के केयूर पहने थी। उनके शरीर पर लहरिया पट्टांशुक और कानो मे त्रिकटक आभूषण था। ऊपर कहा गया है कि यह आभूषण दो बड़े मोतियो के बीच मे पन्ने का नग जडकर बनाया जाता था (२२)।

इस प्रकार जन्म-महोत्सव बीतने पर हर्ष शनैः शनैः बढने लगा। उसकी ग्रीवा मे बाघ के नखो की पंक्ति सोने मे जडवाकर पहना दी गई थी[2] (चित्र ४०)। शस्त्र लिए हुए रक्षिपुरुष उसके चारो ओर तैनात रहने लगे (रक्षिपुरुषशस्त्रपंजरमध्यगते, १३४)। धातृ के हाथ की उँगली पकडकर जब वह पाँच-छः कदम चलने लायक हो गया, और जब राज्यवर्द्धन छठे वर्ष मे लग रहा था, तो यशोवती ने राज्यश्री को गर्भ मे धारण किया। उचित समय पर रानी ने कन्या को जन्म दिया जैसे आकाश से सुवर्णवृष्टि का जन्म होता है (महाकनकवदाना वसुधारामिव द्यौ, २३४)। बाण से पूर्व 'सुवर्णवृष्टि' का अभिप्राय साहित्य मे आ चुका था। कालिदास के रघुवंश मे (५, ३३) और दिव्यावदान (२१३, २२३) मे आकाश से सोने का मेह बरसने का उल्लेख किया गया है। गुप्तकाल मे जो अपार सुवर्णराशि फट पडी थी उसकी व्याख्या के लिये सोने के मेह का अभिप्राय साहित्य मे प्रचलित हुआ।

लगभग इसी समय यशोवती के भाई ने अपने पुत्र भंडि को जिसकी आयु आठ वर्ष की थी, राज्यवर्द्धन और हर्ष के सगी-साथी के रूप मे रहने के लिये दरबार मे भेजा। बालक भंडि के सिर पर अभी बाल काकपक्ष के रूप मे थे। बच्चो के सिर का यह केशविन्यास गुप्तकालीन कार्त्तिकेय की मूर्तियों मे पाया जाता है (चित्र ४१)। उसके एक कान मे नीलम का कुंडल था और दूसरे मे मोतियो का त्रिकटक। नीली और श्वेत आभा के मिलने से वह हरिहर की सम्मिलित मूर्ति-सा जान पडता था[3]। आधे शरीर मे विष्णु और आधे मे शिव की मिली हुई हरिहर-मूर्तियाँ जिनका यहाँ बाण ने उल्लेख किया है, पहली बार गुप्तकला मे बनने लगी थी। मथुरा की गुप्तकला मे वे पाई गई है (चित्र ४२)। उसकी कलाई मे पुखराज का कडा पडा हुआ था। गले मे सूत्र मे बँधा हुआ मूँगे का टेढा टुकडा सिंह-नख की तरह लगता था।

प्रभाकरवर्द्धन उसे देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। राजकुमारो ने भी उसको भाई की तरह माना। क्रमशः वे यौवन को प्राप्त हुए। उनके उरुदंड, प्रकोष्ठ, दीर्घ भुजाएँ, चौडा वक्षस्थल और ऊँचा आकार, ऐसा लगता था, मानो किसी महानगर की रचना मे स्तम्भ, द्वार-प्रकोष्ठ, अर्गलादंड, कपाट और प्राकार हों (१३६)। एक बार पिता प्रभाकरवर्द्धन ने दोनो कुमारो से स्नेहपूर्वक यौवनोचित उपदेश देते हुए सूचित किया कि मैंने तुम्हारे अनुचर के रूप मे मालवराजकुमार कुमारगुप्त और माधवगुप्त नाम के दो भाई नियुक्त किए

१ स्कन्धोभयपालीलम्बमानलम्बोत्तरीयलग्ना लीलादोलाधिरूढा इव प्रेंखन्त्य , १३३।

२ हाटकबद्धविकटव्याघ्रनखपंक्तिमंडितग्रीवके (१३४)।

३ एकेन इन्द्रनीलकुंडलांशुश्यामलितेन शरीरार्द्धेन इतरेण च त्रिकटकमुक्ताफलालोकधवलितेन सम्पृक्तावतारमिव हरिहरयोर्दर्शयन्त (१३५)।

है। यह कहकर प्रतीहार को उन्हें लाने का आदेश दिया। आगे-आगे अट्ठारह वर्ष का कुमारगुप्त और उसके पीछे माधवगुप्त उपस्थित हुए। कुमारगुप्त का मध्य भाग इस प्रकार कृश था जैसे खराद पर चढाया गया हो (उल्लिखितपार्श्वप्रकाशितकृशिम्ना मध्येन, १३८)। गुप्तकालीन मूर्तियो का कटि प्रदेश घडकर ऐसा सुडौल बनाया जाता है मानो खराद पर चढाकर गोल किया गया हो [1] (चित्र ४३)। कालिदास ने भी इस विशेषता का उल्लेख किया है [2]। उसके बाएँ हाथ मे माणिक्य का जडाऊ कडा था। कान मे पद्मरागमणि का कर्णाभरण था। खडी कोरवाले केयूर मे पत्रलता-सहित पुतली बनी हुई थी (उत्कोटि-केयूर पत्रभगपुत्रिका, १३९)। माधवगुप्त उसकी अपेक्षा कुछ लम्बा और गोरा था। उसके सिर पर मालती के फूलो का शेखर था। चौडी छाती लक्ष्मी के विश्राम के लिये शिलापट्ट के पलग की तरह थी जिसपर बलेवडा मोटा हार गेंडुआ तकिए (गडकउपधान= लम्बा गोल तकिया) की तरह सुशोभित था (१४०)। प्रवेश करते ही दोनो ने पृथ्वी पर लेटकर पचाग प्रणाम किया और राजा की आँख का सकेत पाकर बैठ गए। क्षण भर बाद प्रभाकरवर्द्धन ने उन दोनों को आदेश दिया, आज से तुम दोनो राजकुमारो के अनुगामी हुए। उन्होने 'जो आज्ञा' कहकर सिर झुकाया और उठकर राज्यवर्द्धन और हर्ष को प्रणाम किया। इन दोनो ने भी अपने पिता को प्रणाम किया। उस दिन से वे दोनो राज्य और हर्ष के सदा पार्श्ववर्ती बन गए।

राज्यश्री भी नृत्य, गीत आदि कलाओं मे प्रवीण होती हुई बढने लगी। कुछ समय बाद उसने यौवन मे पदार्पण किया। राजा लोग दूत भेजकर उसकी याचना करने लगे। एक दिन जब प्रभाकरवर्धन अन्त·पुर के प्रासाद मे बैठे थे तो बाह्यकक्ष्या मे नियुक्त पुरुष के द्वारा गाई जाती हुई एक आर्या उनके कान मे पडी—'नदी जैसे वर्षाकाल मे मेघो के झुकने पर अपने तट को गिरा देती है वैसे ही यौवन को प्राप्त हुई (पयोधरोन्नमनकाले) कन्या पिता को।' उसे सुनकर राजा ने और सबको हटा दिया और पार्श्वस्थित महादेवी से कहा— 'हे देवि, वत्सा राज्यश्री अब तरुणी हुई। मेरे हृदय मे हर समय इसकी चिन्ता बनी रहती है। जैसे-जैसे वरो के दूत आते है, मेरी चिन्ता बढती है। बुद्धिमान लोग वर के गुणो मे प्राय· कुलीनता पसन्द करते हैं। शिव के चरणन्यास की भाँति सर्वलोकनमस्कृत मौखरि वश राजाओ मे सिरमौर है। उसमे भी श्रेष्ठ अवन्तिवर्मा के ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मा ने इसकी याचना की है। यदि तुम्हारी अनुमति हो तो उसके साथ इसका विवाह कर दे।' महादेवी ने पति के इस वचन का समर्थन किया। कन्यादान का निश्चय कर लेने पर प्रभाकरवर्द्धन ने दोनो पुत्रो को भी उससे अवगत किया और शुभमुहूर्त मे ग्रहवर्मा के भेजे हुए प्रधान दूत के हाथ पर समस्त राजकुल की उपस्थिति मे कन्यादान का जल गिराया। ज्ञात होता है कि कन्या को वाग्दत्ता बनाने की यह उस युग की प्रचलित प्रथा थी।

प्रसन्न होकर जब ग्रहवर्मा का दूत लौट गया और विवाह के दिन निकट आए तो

१ देखिए, मथुरा से प्राप्त विष्णु मूर्ति, स० ई ६।

२ अवन्तिनाथोयमुदग्रबाहुर्विशालवक्षास्तनुवृत्तमध्य ।
आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यत्नोल्लिखितो बिभाति ॥ (रघुवश ६, ३२)
चक्रभ्रम = खराद (चक्राकारशस्त्रोत्तेजनयत्र)।

राजकुल मे अनेक प्रकार की तैयारियाँ होने लगी। बाण ने विवाहोत्सव मे व्यस्त राजकुल का वर्णन करते हुए पचास के लगभग भिन्न-भिन्न बातो का उल्लेख किया है। प्राचीन भारतीय साहित्य मे यह वर्णन बेजोड है। स्वय बाण के शताधिक वर्णनो मे जो हर्षचरित तथा कादम्बरी मे प्रस्तुत किए गए है, आसन्नविवाहदिवसो के इस वर्णन की तुलना मे रखने के लिये हमारे पास अन्य सामग्री कम ही है। इसमें ब्याह के अर्थ सैकडों प्रकार के काम-काज मे लिपटे हुए समृद्ध भारतीय घराने का ज्वलत चित्र खीचा गया है जिसमे स्त्री और पुरुष, हित-मित्र और सगे-सबधी एव अनेक प्रकार के शिल्पी अपने-अपने अनुरूप काम करते हुए ब्याह-काज मे हिस्सा बटाते है। सास्कृतिक सामग्री की दृष्टि से यह वर्णन विशेष ध्यान देने योग्य है, जैसे—

१. ब्याह के दिन पास आ गए, तो राजकुल की ओर से आमतौर पर सब लोगो की खातिर के लिये ताम्बूल (पान का बीडा), कपडे मे लगाने की सुगन्धि (पटवास या इत्र का फोया) और फूल बॉटे जाने लगे (उद्दामदीयमानताम्बूलपटवासकुसुमप्रसाधितसर्वलोकं, १४२)।

२ देश-देश से चतुर शिल्पियों के झुड के झुड बुलवाए गए (सकलदेशादिश्यमान-शिल्पि-सार्थागमन)।

३. राजा की ओर से जो राजपुरुष देहातो से सामान बटोरने के लिये छोडे गए थे वे गॉववालो को पकड-पकडकर अनेक प्रकार का सामान लदवाकर ला रहे थे (अवनिपालपुरुष-गृहीतसमग्रग्रामीणानीयमानोपकरणसम्भार)।

४. अनेक राजा तरह-तरह का जो भेट का सामान लाए, उसे प्रभाकरवर्द्धन के दौवारिक ला-लाकर रख रहे थे (राजदौवारिकोपनीयमानानेकनृपोपायन)।

५ राजा के विशेष प्रियपात्र लोग उन रिश्तेदारों को आदरपूर्वक ठहराने के काम मे व्यस्त थे जो निमत्रित होकर आए थे (उपनिमन्त्रितागतबन्धुवर्गसवर्गणव्यग्रराजवल्लभ)।

६. उत्सव में ढोल बजानेवाले ढोलिया चमार को पीने के लिये शराब दी गई थी। उसके नशे मे धुत्त होकर वह हाथ मे डका लिए हुए धमाधम ब्याह का ढोल पीट रहा था (लब्धमधुमदप्रचडचर्मकारकरपुटोल्लालितकोणपटुविघट्टनरणन्मंगलपटह)।

७ ओखली, मूसल, सिल आदि घर के सामान पर ऐंपन के थापे लगाए जा रहे थे (पिष्टपचागुलमड्यमानोलूखलमुसलशिलाद्युपकरण)।

८ अनेक दिशाओ से दूर-दूर से आए हुए चारण लोग जिस कोठरी मे जमा थे उसमे इन्द्राणी की मूर्ति के रूप में दई-देवता पधराए गए थे (अशेषाशामुखाविर्भूतचारणपरम्परा-प्रकोष्ठ प्रतिष्ठाप्यमानेन्द्राणीदैवतम् ।[1]

---

१ विवाहपद्धतियो के अनुसार विवाह में इन्द्राणी का पूजन आवश्यक है (विवाहे शची-पूजनं) नारदीयसहिताया—सपूज्य प्रार्थयित्वा ता शची देवी गुणाश्रयाम् इति। तथा च प्रयोगरत्नाकरे, ततोदाता पात्रस्थसितनण्डुलपुंजे शचीमावाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत्। तां च कन्या एव प्रार्थयेत्—देवेन्द्राणि नमस्तुभ्य देवेन्द्रप्रियभामिनि। विवाहं भाग्यमारोग्य पुत्रलाभंच देहि मे॥

९ सफेद फूल, चन्दनादि विलेपन, और वस्त्रो से राज-मिस्त्रियो (सूत्रधारो) का सत्कार किया गया। फिर वे ब्याह की वेदी बनाने के लिये सूत फटकने लगे (सितकुसुम-विलेपनवसनसत्कृतै. सूत्रधारैरादीयमानविवाहवेदीसूत्रपात)।

१० पोतनेवाले कारीगर हाथ मे कूँची लिए, कधो से चूने की हडी लटकाए, सीढी पर चढकर राजमहल, पौरी, चहारदीवारी और शिखरों पर सफेदी कर रहे थे (उत्कूर्चककरैश्च सुधाकर्परस्कन्धै. अधिरोहिणीसमारूढै. धवै. धवलीक्रियमाणप्रासादप्रतोलीप्राकारशिखरं)।

११ पीसे हुए कुसुम्भ के धोने से जो जल बह रहा था उससे आने-जानेवालो के पैर रँगे जा रहे थे (क्षुण्णक्षाल्यमानकुसुम्भकसभाराम्भःप्लवपूररज्यमानजनपादपल्लव)।

१२ दहेज मे देने योग्य हाथी-घोडो की कनारो से आँगन भरा हुआ था और उन्हे जाँचा जा रहा था (निरूप्यमाणयौतकयोग्यमातगतुरगतरगिताङ्गन)।

१३ गणना मे लगे हुए ज्योतिषी विवाहयोग्य सुन्दर लग्न शोध रहे थे (गणनाभियुक्तगणकगणगृह्यमाणलग्नगुण)।

१४ मकरमुखी पनालियो से बहते हुए सुगन्धित जल से राजकुल की क्रीडावापियाँ (छोटी-छोटी हौजें) भरी जा रही थी। (गन्धोदकवाहिमकरमुखप्रणालीपूर्यमाणक्रीडावापीसमूहम् [1] ।

१५. राजद्वार की ड्योढी के बाहरवाले कोठे में सुनारों के ठट्ठ सोना घडने मे जुटे थे जिसकी ठक-ठक वहा भर रही थी (हेमकारचक्रप्रक्रान्तहाटकघटनटाकारवाचालितालिन्दकम्)।[2]

१६ जो नई दीवारे उठाई गई थी उनपर बालू मिले हुए मसाले का पलस्तर करनेवाले मिस्त्रियों के शरीर बालू के कण गिरने से सन गए थे (उत्थापिताभिनवभित्ति-पात्यमानबहल-बालुका-कठकालेपाकुलालेपकलोकम्)। (यद्यपि दीवारो पर पलस्तर के निशान मोहेनजोदडो मे भी पाए गए है, किन्तु दीवारो पर पलस्तर करने का निश्चित साहित्यिक लेख यही सबसे पुराना है। नालन्दा मे सातवी शती के पलस्तर के अवशेष अभी तक सुरक्षित है।)

१७ चतुर चित्रकार मागलिक चित्र लिख रहे थे (चतुरचित्रकारचक्रवाललिख्यमानमगल्यालेख्यम्)।

१८. खिलौने बनानेवाले मछली, कछुआ, मगर, नारियल, केला, सुपारी के वृक्ष आदि भाँति-भाँति के मिट्टी के खिलौने बना रहे थे (लेप्यकारकदम्बकक्रियमाणमृण्मयमीनकूर्ममकर-नालिकेरकदलीपूगवृक्षकम्)।

---

१ पुरातत्त्व की खुदाई मे मकर, सिंह, हस, बकरा, मेढा आदि के मुँहवाली कितने ही प्रकार की टोटियाँ मिली है, किन्तु मकरमुखी टोटियो की सख्या सबसे अधिक है। राजघाट से मिली हुई इस प्रकार की कितनी ही टोटियाँ भारतकलाभवन काशी मे सुरक्षित है (चित्र ४४)। मिट्टी के जलपात्रो या करवो में भी इस प्रकार की टोटियाँ लगी रहती थी। बडे परनालो मे ये टोटियाँ बड़े आकार की होती थी जिन्हे मकरमुखमहाप्रणाल, (१६) कहा जाता था।

२ हेमकारहाटकघटन सुनारो का सोना घडना मुहावरा हिंदी में अभी तक चलता है जिसका अर्थ होता है 'सोना घडकर आभूषण बनाना'। सामान्यत गाहक अपना सोना सुनारो के घर पर दे आते है, किन्तु यहाँ अधिक काम होने से सुनार ही राजमहल मे बुला लिए गए थे।

१६. राजा लोग स्वय फेटा बाँध-बाँधकर अनेक प्रकार की सजावट के काम करने मे जुट गए, जैसे, कुछ सिदूरी रग के फर्श को माँजकर चमका रहे थे, कुछ ब्याह की वेदी के खभो को अपने हाथ से खडा कर रहे थे, कुछ ने उन्हे गीले ऐपन के थापो, आलता के रग मे रँगे लाल कपडो और आम एव अशोक के पल्लवो से सजाया था[1] ।

२० (अ) सामन्तो की सती रूपवती स्त्रियाँ सुहावने वेश पहने और माथे पर सेन्दुर लगाए शोभा और सौभाग्य से अलकृत बडे सवेरे ही राजमहल मे आकर ब्याह के काम-काज करने मे लग गई थी (१४३) ।

(आ) कुछ वर और वधू के नाम ले-लेकर मगलाचार के गीत गा रही थी (वधूवरगोत्रग्रहणगर्भाणि श्रुतिसुभगानि मगलानि गायन्तीभिः) ।

(इ) कुछ तरह-तरह के रगों मे उगलियाँ बोरकर कठियो के डोरों पर भाँति-भाँति की बिन्दियाँ लगा रही थी (बहुविधवर्णकादिग्धागुलिभि. ग्रीवासूत्राणि चित्रयन्तीभि.) ।

(ई) उनमे से कुछ जो चित्र-विचित्र फूल-पत्तियों का काम बनाने मे चतुर थीं, सफेदी किए हुए कलसों पर और कच्ची सरइयो पर माँडने माँड रही थीं (चित्र लिख रही थीं) (चित्रपत्रलतालेख्यकुशलाभि कलशाश्च धवलितान् शीतलशाराजिरश्रेणीश्च मडयन्तीभि)[2] ।

(उ) कुछ बाँस की तीलियो या सरकडे के बने खारे को सजाने के लिये कपास के छोटे-छोटे गुल्ले और ब्याह के कगनों के लिये ऊनी और सूती लच्छियाँ रग रही थी (अभिन्नपुटकर्पासतूलपल्लवाश्च वैवाहिककङ्कणोर्णासूत्रसन्नहाश्च रजयन्तीभिः । अभिन्नपुट का अर्थ शकर ने बाँस का चौकोर पिटारा किया है जिसे बहेलिये बनाते थे । वस्तुतः पच्छिमी जिलों मे और कुरुक्षेत्र के इलाके मे अभी तक यह चाल है कि विवाह और कर्णच्छेदन के समय लडके-लडकी को सरकडो के बने हुए एक पिटारे पर बिठलाते है जिसे खारा कहते है। उसी खारे से यहाँ बाण का अभिप्राय है । उसे सजाने के लिये कपास के छोटे-छोटे गाले भिन्न-भिन्न रँगो में रँगे जा रहे थे जैसा कि शकर ने लिखा है—तच्छिद्रान्तर पूरणाय कर्पासतूलपल्लवा रज्यन्ते । बाण ने कादम्बरी मे सूतिकागृह के वर्णन मे लिखा है कि सोहर के बाहर बने हुए गोबर के सथिये कई रँगो से रगी हुई कपास के फाहो से सजाए गए थे । कगन और दूसरे ब्याह-सम्बन्धी कामो के लिये कलावे रँगने की प्रथा अभी तक है । ये लाल-पीले और सफेद (तिरगे) होते है ।

---

१ क्षितिपालैश्च स्वयमाबद्धकक्ष्यै स्वाम्यर्पितकर्मशोभासम्पादनाकुलै सिंदूरकुट्टिमभूमीश्च मसृणयद्भि विनिहितसरसातर्पणहस्तान् विन्यस्तालक्त-पाटलाश्च चूताशोकपल्लव-लाञ्छितशिखरान् उद्वाहवितदिकास्तम्भानुत्तम्भयद्भि प्रारब्धविविधव्यापारम् । वेदी के चार कोनो मे चार लकडी के खभे खडे करने का रिवाज अभी तक कुरुक्षेत्र और पजाब मे प्रचलित है । विन्यस्तालक्तपाटल पद कादम्बरी के सूतिकागृहवर्णन मे भी आया है, जिसका अर्थ है कि आलता के रँग से रगने के कारण खभे लाल हो गये थे ।

२ चित्रों से मडित पुते हुए कलसो मे छाक का सामान भरकर देने की प्रथा अब भी प्रचलित है । पछाह मे उन्हे छकैडा (छाकभाड) कहा जाता है । सात सरैयाँ बीधकर उनके लटकन मडप मे शोभा के लिये लटकाए जाते है ।

(ऊ) कुछ बलाशना[1] औषधि घी मे पकाकर और उसे पिसे हुए कुमकुम मे मिलाकर उबटन एव सुन्दरता बढानेवाले मुखालेपन तैयार कर रही थी। पिसी हुई हलदी मे नीबू का रस मिलाकर उबटन के लिये कुमकुम बनाया जाता था। वर-कन्या के शरीर मे विवाह से पहले पॉच-छ दिन तक स्नान से पूर्व वह मला जाता है जिसे 'हल्द चढना' भी कहते है।

(ऋ) कुछ कक्कोल-जायफल और लौग की मालाएँ बीच-बीच मे स्फटिक जैसे श्वेत कपूर की चमकदार बडी डलियॉ पिरोकर बना रही थी (कक्कोलमिश्रा सजातीफला स्फुरत्स्फीतस्फाटिककर्पूरशकलखचितान्तराला लवगमाला रचयन्तीभि)। स्फाटिक कपूर शकर के अनुसार उस समय प्रचलित विशेष प्रकार के कपूर की सज्ञा थी[2]।

२१ इसके बाद बाण ने विस्तार के साथ उन वस्त्रो का विशेष वर्णन किया है जो विवाह के अवसर पर तैयार किए जा रहे थे। इस प्रकरण मे कुछ कठिन पारिभाषिक शब्द है जिनपर अभी तक कही भी स्पष्ट प्रकाश नही डाला गया[3]। बाण ने यहॉ निम्नप्रकार के वस्त्रो का वर्णन किया है।

(अ) बॉधनू की रॅगाई के कपड़े

बहुत प्रकार की भक्तियो के निर्माण मे नगर की वृद्ध चतुर स्त्रियॉ या पुरन्ध्रि बॉधनू की रॅगाई के लिये कपडो को बॉध रही थी। कुछ कपडे बॉधे जा चुके थे[4]। बॉधनू की रगाई को अग्रेजी मे टाई एड डाई (Tie and dye) कहते है। भारतवर्ष मे बॉधनू की रॅगाई गुजरात, राजस्थान और पजाब में अब भी प्रसिद्ध है। विशेषत. सागानेर अब भी इसका विख्यात केन्द्र है। वहॉ की चूनरी प्रसिद्ध है। चतुर स्त्रियाँ विशेषत: लडकियॉ अपनी कोमल अगुलियो से फुर्ती के साथ मन मे सोची हुई आकृति के अनुसार कपडे को चुटकी मे पकडकर डोरियो से बॉधती है। बॅधा हुआ कपडा रग में बोर दिया जाता है। सूखने पर डोरो को खोल देते है। बॅधाई की जगह रग नही चढता और उसी से कपडे मे विशेष आकृति बन जाती है। इस आकृति या अभिप्राय के लिये प्राचीन

---

१ बलाशना का अर्थ किसी कोश या आयुर्वेदिक ग्रथ मे नही मिला। शकर ने इसे पुष्पा नामक औषधि लिखा है। सम्भवत यह बला या बीजबन्द था। आजकल अगराग या उबटन पिसी हुई हलदी, सरसो और तेल को मिलाकर बनाया जाता है, परन्तु यहॉ तेल की जगह घृत मे पकाई हुई बलाशना का वर्णन है।

२ स्फाटिककर्पूराख्य: कर्पूरभेद:, शकर। बाण ने पहले भी स्फटिक की तरह श्वेत कपूर का उल्लेख किया है (स्फटिकशिलाशकलशुक्लकर्पूरखड, १३०)। वस्तुत कपूर, कक्कोल और लवग उस समय बनाई जानेवाली सुगन्धियों के आवश्यक अग समझे जाते थे (देखिए, पृ० २२ और ६६)।

३ कावेल के अग्रेजी अनुवाद एव श्री पी० वी० कणे के हर्षचरित नोट्स मे यह विषय अस्पष्ट है। और भी देखिए श्री मोतीचन्द्र जी कृत 'भारतीय वेश भूषा' पृ० १५७, जहॉ नेत्र और लाला तन्तुज पर प्रकाश डाला गया है।

४. बहुविधभक्ति निर्माणचतुर पुराणगैर्पुरन्ध्रिबध्यमानैर्बद्धैश्च।

संस्कृत शब्द था 'भक्ति'। उसी से हिन्दी भॉत बना है [१]। अन्य-अन्य भॉत की आकृतियो वाली चूनरी अब भी जयपुर की तरफ 'भॉतभतूल्या' और मेरठ की बोली मे भॉतभतीली कहलाती है। इन भॉतों के अनेक नाम है। पख की तरह हाथ फैलाए हुए स्त्रियो की आकृति सखियों की भॉत कहलाती है। तरह-तरह की चिडियों को चिडी चुडकले की भाँत कहते है। इसी प्रकार धनक (इन्द्रधनुष) की भॉत, मोरडी (मोरनी) की भॉत, लाड्ड की भॉत, चकरी की भॉत, पोमचे की भॉत (चार कोनो पर चार और बीच मे एक कमल के फुल्ले और शेष सब स्थान खाली), धानी भूगडे (भुने हुए धान के ऊपर भुने हुए चने की आकृति की बूँटी) की भॉत, डलिया या छावडी की भॉत, बीजडेल की भाँत, रास (नाचती हुई स्त्रियाँ) भॉत, बाघकुजर भॉत, आदि कितने ही प्रकार की आकृतियॉ बॉधनू के द्वारा कपडे को रॅग-कर उत्पन्न की जाती थी। कभी कभी एक कपडे को कई रगो मे एक दूसरे के बाद रगते है और पहली भॉत के अतिरिक्त अन्य स्थान मे बॅधाई करके दूसरी भॉत उत्पन्न करते है। भारतवर्ष की यह लोक-व्यापी कला थी जिसे बचपन मे ही स्त्रियाँ घरो मे सीख लेती थी। भिन्न ऋतुओं और अवसरो पर ओढी जानेवाली चूनरियों की भॉते अलग-अलग होती हैं, जैसे लड्डू की भॉत की केसरिया रॅग की चूनरी फागुन मे और लहरिया की सावन मे ओढी जाती है। स्त्रियों मे अन्य-अन्य प्रकार की भॉतों को बॉधने की कला परम्परा से अभ्यस्त रहती थी, इसीलिये बाण ने अनेक प्रकार की भक्तियों को जाननेवाली बडी-बूढी स्त्रियों द्वारा वस्त्रों की बॅधाई करने का उल्लेख किया है। बॉधनू की रॅगाई का यह उल्लेख सबसे प्राचीन है। (चित्र ४५)

(आ) वस्त्रो की रगाई।

प्राय ऐसा होता है कि स्त्रियॉ घरों मे वस्त्रो को बॉध देती है और तब वे रॅगने के लिये रॅगरेज को दे दिये जाते है। क्योंकि ब्याह की चूनरी और पीलिए की रॅगाई मागलिक है, इसीलिये इस अवसर पर रॅगनेवाले रॅगरेज को विशेष नेग देने की प्रथा है। उसी का बाण ने उल्लेख किया है कि अन्त.पुर की बडी-बूढी स्त्रियो के द्वारा रॅगने वालों को जो नेग या पूजा-भेंट दी जा रही थी उससे प्रसन्न होकर वे लोग उन वस्त्रो को रॅग रहे थे। एव जो रॅगे जा चुके थे उन्हे दोनों सिरो पर पकडकर परिजन लोग छाया मे सुखा रहे थे। आज भी जो वस्त्र चटकीले रॅगों मे रॅगे जाते है उन्हे छाया में ही सुखाया जाता है [२]।

(इ) छपाई के वस्त्र

बॉधनू के वस्त्रो के बाद बाण ने छपाई के वस्त्रो का उल्लेख किया है। इसमे दो प्रकार के वस्त्रो का वर्णन है। एक तो जिनपर फूल-पत्तियों के काम की छपाई आडी

---

१. अग्रेजी डिजाइन के लिये प्राचीन संस्कृत शब्द 'भक्ति' ही था। गुजरात मे इसका रूप भात (भक्ति भत्ति-भात) है। पाटन के पटोलो मे रगीन सूत की बुनाई मे भी आकृति के लिये भात शब्द चलता है, जैसे नारीकुजर भात, पानभात, रतनचौक भात, फुलवाडी भात, चोकडीभात, छावडी भात, रास भात, बाघकुजरभात।

२ आचारचतुरान्त पुरजरती-जनितपूजाराजमान-रजकरज्यमानै रक्तैश्च, उभयपटान्तलग्न परिजनप्रेखोलितैश्छायासु शोष्यमाणै शुष्कैश्च (१४३)।

लहरिया के रूप मे छापी जाती थी। सफेद या रगीन जमीन पर फूल-पत्ती की आकृतियो-वाले ठप्पो को आडे या टेढे ढग से छेवकर छपाई की जाती है। इसी से फूल-पत्तियो का जगला कपडे पर बन जाता है। इसके लिये बाण ने 'कुटिलक्रमरूपक्रियमाणपल्लव-परभाग' इस पद का प्रयोग किया है। इसमें चार शब्द पारिभाषिक है (१) कुटिल-क्रम (२) रूप (३) पल्लव (४ परभाग। कुटिलक्रम (कुटिल क्रमो येषाम्, शकर) का अभिप्राय था जिनके छापने की चाल (क्रम = चाल) सीधी रेख मे न जाकर टेढी अर्थात् एक कोने से सामने के कोने की तरफ चलती है। रूप का अर्थ ठप्पो से बनाई जानेवाली रेखाकृतियों से है। इसे अब भी रेख की छपाई या पट्ली छपाई कहते है। आकृति युक्त ठप्पे के लिये प्राचीन पारिभाषिक शब्द 'रूप' था, जैसा कि पाणिनिसूत्र रूपादाहतप्रशसयोर्यप् (५।२।१२०) मे रूप या ठप्पो से बनाए जानेवाले प्रचीन सिक्को[1] के अर्थ मे प्रयुक्त होता था। पल्लव का अर्थ है फूल-पत्ती का काम, बाण ने जिसे पत्रलता, पत्रावली, पत्रागुली कहा है। गुप्तकाल और उसके बाद की शिल्पकला एव चित्रकारी में फूल-पत्तियों के भॉति-भॉति के कटाव की प्रथा उन्नति की पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। अजन्ता की चित्रकला मे और अनेक वास्तुमूर्तियो मे इसका प्रमाण मिलता है। पत्रलता या पल्लव बनाने की प्रवृत्ति का सर्वोत्तम उदाहरण सारनाथ के धमेख स्तूप के बाह्य आवरण या शिला-पट्टों पर मिलता है। वस्तुत धमेख स्तूप का यह शिलाघटित आवरण असली वस्त्र की पत्थर में नकल है। स्तूप के शरीर पर इस प्रकार के जो कीमती वस्त्र चढाए जाते थे वे देवदूष्य कहलाते थे। बाण का तात्पर्य वस्त्रों पर जिस प्रकार की फूल-पत्तियो की छपाई से था उनका नमूना धमेख स्तूप की पत्रावली और पत्रभगो से समझा जा सकता है। चूनरी या साडी पर इनकी छपाई अवश्य ही रूप या ठप्पो को टेढे क्रम या टेढी चाल से छापने पर की जाती थी। इस पद में चौथा पारिभाषिक शब्द 'परभाग' है। स्वय बाण ने वस्त्रों के प्रसग मे उसका अन्यत्र प्रयोग किया है[2]। एक रंग की पृष्ठभूमि पर दूसरे रग में छपाई, कढाई, चित्रकारी या रगोली आदि बनाकर जो सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है उसे परभाग-कल्पना अर्थात् पहले पृष्ठभूमि के रग पर दूसरे रग की रचना कहा जाता है[3]। प्रस्तुत प्रकरण में वस्त्रों की एक रग की जमीन पर दूसरे रग के फूल-पत्ते ठप्पो की आडी चाल से छापे जा रहे थे, यही बाण का अभिप्राय है (चित्र ४६)।

(ई) कुकुम के थापो से छपाई

बाण ने एक दूसरे प्रकार के वस्त्रो का भी उल्लेख किया है जो विशेषतः वर के लिये ही तैयार किए जाते है। गीले कुकुम (नीबू के रस मे भीगी हल्दी) से सफेद वस्त्र पर हाथ से चित्तियाँ छोडकर उसे मागलिक बनाया जाता है, (आरब्धकुकुमपकस्थासक-च्छुरणै)। पजाब मे अभी कल तक यह प्रथा थी कि वर इसी प्रकार का जामा पहनकर घुडचढी के लिये जाता था।

---

१ रूपादाहतं रूप्य कार्षापणम्।

२ अलिनीलमसृणसतुलासमुत्पादितसितसमायोगपरभागै, २०६। शकर ने यहाँ पर परभाग का ठीक अर्थ किया है—परभागो वर्णस्य वर्णान्तरेण शोभातिशय।

३ यशस्तिकलचम्पू, भा० २, पृ० २४७, रगवल्लिषु परभागकल्पनम्।

(उ) वस्त्रो मे चुन्नट डालना

उद्भुजभुजिष्यभज्यमानभगुरोत्तरीयै —सेवक लोग उठे हुए हाथो से चुटकी दबाकर उत्तरीय या उपरने की तरह प्रयुक्त वस्त्रों मे चुन्नट डालकर उन्हे मरोडी देकर रख रहे थे। चुन्नट डालने के लिये अभी तक भाँजना शब्द प्रयुक्त होता है। भाँजे हुए उपरने को अन्य वस्त्रो की तरह मोडकर नहीं तहाया जाता, किन्तु उमेठकर कुडलित करके रख दिया जाता है। उसी के लिये यहाँ 'भगुर' शब्द है। सौभाग्य से अहिच्छत्रा से प्राप्त एक मिट्टी की मूर्ति (स ३०२) के गले मे भगुर उत्तरीय का स्पष्ट नमूना अकित पाया गया है जिसकी सहायता से उस वस्तु को समझा जा सकता है। भास्करवर्मा के भेजे हुए प्राभृतो मे क्षौम वस्त्रो का वर्णन है जो कु डली करके बेंत की करडियों मे रक्खे गए थे (२१७)। वे वस्त्र इसी प्रकार के भगुर उत्तरीय होने चाहिए जिन्हे गेडुरीदार तह के रूप मे करडियो मे रखते थे। (चित्र ४७)

वस्त्रो के भेद

इसके बाद बाण ने छः प्रकार के वस्त्र कहे है—क्षौम, बादर, दुकूल, लालातन्तुज, अशुक और नेत्र। इनमे से बादर का अर्थ कार्पास या सूती कपडा है। शेष पाँचों के निश्चित अर्थ के बारे में मतभेद है। अमरकोष में क्षौम और दुकूल को एक दूसरे का पर्यायवाची कहा है[1]। इसी प्रकार नेत्र और अशुक भी एक दूसरे के समानार्थक माने गए है[2]। किन्तु बाण के वर्णन से अनुमान होता है कि ये अलग-अलग प्रकार के वस्त्र थे। राजद्वार के वर्णन मे बाण ने अशुक और क्षौम को अलग-अलग माना है। अशुक की उपमा मदाकिनी के श्वेत प्रवाह से और क्षौम की दूधिया रग के क्षीरसागर से दी गई है[3]। अन्यत्र अशुक की सुकुमारता की उपमा दुकूल की कोमलता से दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि दोनो वस्त्र मुलायमियत मे एक-से होने पर भी भिन्न-भिन्न प्रकार के थे[4]। क्षौम वस्त्र, जैसा कि नाम से प्रकट है, कदाचित् क्षुमा या अलसी नामक पौधे के रेशो से तैयार होता था। यही सभवत. छालटीन था। भाँग, सन और पाट या पटसन के रेशों से भी वस्त्र तैयार किए जाते थे, पर क्षौम अधिक कीमती, मुलायम और बारीक होते थे। चीनी भाषा मे 'छु—म' एक प्रकार की घास के रेशो से तैयार वस्त्रो के लिये प्राचीन नाम था जो कि बाण के समकालीन थाङ् युग मे एव उससे पूर्व भी प्रयुक्त होता था[5]। यही

---

१ क्षौम दुकूल स्यात्, २।६।११३।

२ स्याज्जटाशुकयोर्नेत्रम्, ३।३।१८०।

३ मन्दाकिनीप्रवाहायमानमशुकै क्षीरोदायमान क्षौमै, ६०।

४ चीनाशुकसुकुमारे शोणसैकते दुकूलकोमले शयने इव समुपविष्टा, ३६।

५ मध्यएशिया से प्राप्त चीनी वस्त्रो का वर्णन करते हुए कहा गया है—

'The term *ma* has clearly been used as a complementary expression to names of other fibrous fabrics than hemp Thus the words *ch'u* or *ch u-ma* are used for the cloth made from the Chinese Boehmeria nivea This material, which when in finished articles, fabrics, etc resembles linen but is softer and looks fluffier, was thus used during the Han period as well as early T'ang It is also caleed *China grass* and under the name *ramie* has been used for underclothes in modern times' (Vivi Sylwan, *Investigation cf Silk from Edsen Col and Lop-nor*, Stolkholm (1949),

चीनी घास भारतवर्ष के पूर्वी भागों (आसाम-बगाल) मे होती थी। बगाल मे इसे कॉखुर कहा जाता है। मोटे तौर पर यह ज्ञात होता है कि क्षौम और दुकूल जिन्हे अमरकोष ने पर्याय माना है, रेशों से तैयार होनेवाले वस्त्र थे। इसके प्रतिकूल अशुक और नेत्र दोनों रेशमी वस्त्र थे।

क्षौम अवश्य ही आसाम मे बननेवाला एक कपडा था, क्योंकि आसाम के कुमार भास्कर वर्मा ने हर्ष के लिये जो उपहार भेजे थे उनमे क्षौम वस्त्र भी शामिल थे। ये कई रग की बेत की करडियों मे लपेटकर रखे गए थे और इस योग्य थे कि धुलाई बर्दाश्त कर सके (अनेकरागरुचिरवेत्रकरडकुडलीकृतानि शौचक्षमाणि क्षौमाणि, २१७)।

दुकूल

बाण ने दुकूल और दुगूल इन दोनों रूपों का प्रयोग किया है जो पर्याय ज्ञात होते है। यदि इनमे कोई भेद था तो वह अब स्पष्ट नही। दुगूल के विषय मे बाण ने लिखा है कि वह पुड्रदेश (पुड्रवर्धनभुक्ति या उत्तरी बगाल) से बनकर आता था। उसके बडे थान मे से काटकर चादर, धोती या अन्य वस्त्र बनाए जाते थे। बाण का पुस्तकवाचक सुदृष्टि इस प्रकार के वस्त्र पहने था (दुगूलपट्टप्रभवे शिखण्ड्यपागपाडुनी पौड्रे वाससी वसान , ८५)। दुकूल से बने हुए उत्तरीय, साडियाँ, पलग की चादरे, तकियों के गिलाफ, आदि नाना प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख बाण के ग्रथों मे आया है। सावित्री को दुकूल का वल्कल वस्त्र पहने हुए (दुकूलवल्कल वसाना, १०) और सरस्वती को दुकूल वल्कल का उत्तरीय ओढे हुए (हृदयमुत्तरीयदुकूलवल्कलैकदेशेन सछादयन्ती, ३४) कहा गया है। दुकूल-वल्कल और दुकूल का अन्तर यदि कुछ था तो स्पष्ट नही है। दुकूल भी पौधों की छाल के रेशों से ही बनता था। सभवत दुकूलवल्कल और दुकूल का अन्तर मोटी और महीन किस्म के कपडों का था। दुकूल शब्द की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। सभवत. कूल का अर्थ देश्य या आदिम भाषा मे कपडा था जिससे कोलिक (हि० कोली) शब्द बना है[1]। दोहरी चादर या थान के रूप मे विक्रयार्थ आने के कारण यह द्विकूल या दुकूल कहलाया।

लालातन्तुज

लालातन्तुज का अर्थ शकर ने कौशेय अर्थात् रेशम किया है। सभवत. यह पत्रोर्ण या पटोर रेशम था जिसे क्षीरस्वामी ने कीडों की लार से उत्पन्न कहा है[2]। गुप्तकाल मे पत्रोर्ण धुला हुआ रेशमी बहुमूल्य कपडा समझा जाता था[3]। यदि लालातन्तुज और पत्रोर्ण दोनों पर्याय हों तो यह वस्त्र भी अत्यन्त प्राचीन था। सभापर्व के अनुसार पुड्र, ताम्रलिप्ति, वंग और कलिग के राजा युधिष्ठर के लिये दुकूल, कौशिक और पत्रोर्ण तीन प्रकार के वस्त्र

---

p 171) Boehmeria nivea के लिये वाट ने चीनी नाम छुम *schouma*, बगाली कॉखुर *Kankhura* लिखा है डिक्शनरी आफ इकनोमिक प्राडक्टस्, भाग १, पृ० ४६८। यह पौधा आसाम, पूर्वी और उत्तरी बगाल मे बहुत होता है, ऐसा वहाँ उल्लेख है पृ०४६९। इसी से rhea नामक रेशा निकलता है।

१ गुजराती पटोले के मूल सस्कृत 'पट्टकूल' मे भी वही कूल शब्द है।

२ लकुचवटादिपत्रेषु कृमिलालोर्णाकृत पत्रोर्णम्, क्षीरस्वामी।

३ पत्रोर्णं धौतकौशेय बहुमूल्य महाधनम् , अमरकोश।

भेंट मे लाए थे[१]। कौटिल्य ने क्षौम, दुकूल और कृमितान वस्त्रों का उल्लेख किया है[२]। सम्भव है, कृमितान और लालातन्तुज एक ही रेशमी वस्त्र के नाम हो।

अंशुक

बाण के समय मे दुकूल के बाद सबसे अधिक अंशुक नामक वस्त्र का प्रचार था। अंशुक दो प्रकार का था, एक भारतीय और दूसरा चीन देश से लाया हुआ जो चीनांशुक कहलाता था। चीनांशुक का अत्यन्त प्रसिद्ध उल्लेख शकुन्तला में है (चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य)। बाण ने भी कई बार उसका उल्लेख किया है (३६, १६७, २४२)। अंशुक वस्त्र को कुछ विद्वान् मलमल समझते हैं। बाण ने अंशुक वस्त्र को अत्यन्त ही झीना और स्वच्छ वस्त्र माना है[३]। एक स्थान पर अंशुक को फूल और चिड़ियों से सुशोभित कहा गया है[४]। यह प्रश्न मौलिक है कि अंशुक सूती वस्त्र था या रेशमी। इस विषय मे जैन आगम के अनुयोगद्वार सूत्र की साक्षी का प्रमाण उल्लेखनीय है। इसमे कीटज वस्त्र पाच प्रकार के कहे गए है—पट्ट, मलय, अंसुग, चीनांसुय, और किमिराग[५]। इनमे पट्ट तो पाट-संज्ञक रेशम और किमिराग सुनहरी रंग का मूँगा रेशम ज्ञात होता है। बृहत्कल्पसूत्र(२। ३६६२) मे किमिराग के स्थान पर सुवण्ण पाठ से इसका समर्थन होता है। इससे स्पष्ट है कि पट्ट, अंशुक और चीनांशुक तीनों रेशम के कीड़ों से उत्पन्न वस्त्र थे।

नेत्र

हर्षचरित मे नेत्रनामक वस्त्र का पाँच जगह उल्लेख है। स्वयं हर्ष नेत्रसूत्र की पट्टी बाँधे हुए एक अधोवस्त्र पहने (७२) थे। यहाँ शंकर ने नेत्रसूत्र का अर्थ पट्टसूत्र किया है अर्थात् रेशमी डोरी जो धोती के ऊपर मेखला की तरह बाँधी जाती थी। पृष्ठ १४३ पर शंकर ने नेत्र का अर्थ पिंगा किया है और पृष्ठ २०६ पर नेत्र को पट-विशेष कहा है। नेत्र और पिंगा दोनों रेशमी वस्त्र थे, किन्तु वे एक दूसरे से कुछ भिन्न थे। बाण ने स्वयं हर्ष के साथ चलनेवाले राजाओं की वेशभूषाओं का वर्णन करते हुए नेत्र और पिंगा को अलग माना है (२०६)। बाण के अनुसार नेत्र धवल रंग का वस्त्र था (धौतधवल-नेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेण कंचुकेन, ३१) और पिंगा रंगीन वस्त्र था। यही नेत्र और पिंगा का मुख्य भेद जान पड़ता है। दोनो की बुनावट मे फूल-पत्ती का काम बना रहता था[६]।

---

१ वंगा कलिंगपतयस्ताम्रलिप्ताः सपुण्ड्रकाः।
दुकूलं कौशिकं चैव पत्रोर्णं प्रावरानपि ॥ (सभा० ४८, १७)।

२. अर्थशास्त्र, २।२३, पृ० ११४

३. सूक्ष्मविमलेन अंशुकेनाच्छादितशरीरा देवी सरस्वती (९)। बिसतन्तुमयेन अंशुकेन उन्नतस्तनमध्यबद्धगात्रिकाग्रंथि सावित्री (१०)।

४ बहुविधकुसुमशकुनिशतशोभितात् अतिस्वच्छादंशुकात्, (११४)।

५. अनुयोगद्वारसूत्र ३७, श्री जगदीशचन्द्र जैन कृत "लाइफ इन ऐंसियेंट इंडिया ऐज डेपिक्टेड इन जैन कैनन" पृ० १२९।

६ पिंगा रंगीन बूटेदार रेशमी वस्त्र का नाम था जिसका उल्लेख मध्यएशिया के खरोष्ठी लेखो मे आया है। अंग्रेजी मे इसे डैमस्क या यूनिफ़ार्म्ड फिगर्ड सिल्क कहा गया है। इसके विषय मे आगे पृ० २०६ की व्याख्या मे लिखा जायगा।

बाण ने कहा है कि नेत्र नामक वस्त्र फूल-पत्ती के काम से सुशोभित था (उच्चित्रनेत्रसुकुमार-स्वस्थानस्थगितजङ्घाकाण्डै, २०६)[१]। नेत्र की पहचान बंगाल में बननेवाले नेत्रसंज्ञक एक मजबूत रेशमी कपड़े से की जाती है जो चौदहवीं सदी तक भी बनता रहा[२]।

वस्त्रों के गुणों का उल्लेख करते हुए उन्हें साँप की केंचुली की तरह महीन (निर्मोक-निभ), छोटे केले के भीतर के गाभे की तरह मुलायम (अकठोररम्भागर्भकोमल), फूँक से उड़ जाने योग्य हलके (निःश्वासहार्य), और कुछ को ऐसे पारदर्शी कहा है कि वे केवल स्पर्श से ही जाने जाते थे (स्पर्शानुमेय)। ऐसे ही पारदर्शी वस्त्रों के लिये मुगलकाल में 'बाफ्त हवा' (बुनी हवा के जाले) विशेषण बना होगा।

इसके बाद बाण ने कुछ ऐसे वस्त्रों का वर्णन किया है जो वस्तुतः बिछाने-ओढ़ने, पहनने या सजावट के काम में लिए जा रहे थे। विवाह के अवसर पर जो दान-दहेज के लिए सुन्दर पलंग (शयनीय) थे उनपर सफेद चादरें (उज्ज्वल निचोलक) बिछाई गईं थीं। पलंग की सजावट के लिये हंसों की पंक्तियाँ लकड़ी पर खोदकर या बेलियों के रूप में बनाई गई थीं। वे चादर के पल्लों के इधर उधर गिरने से ढँक गई थीं (अवगुण्ठ्यमान-हंसकुलैः)। निचोलक को अमरकोष में प्रच्छद-पट[३] या चादर कहा है। बाण ने इस शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया है, एक चादर के अर्थ में दूसरे गिलाफ या खोल के अर्थ में। कुमार भास्कर वर्मा का भेजा हुआ आतपत्र निचोलक (खोल) में से निकालकर हर्ष को दिखलाया गया[४]। इसी प्रकार चमड़े की ढालों की कान्ति की रक्षा के लिये उनपर निचोलक चढ़े हुए थे (निचोलकरक्षितरुचां कार्दरङ्गचर्मणाम्, २१७)।

पहनने के लिये जो कञ्चुक तैयार किए जा रहे थे उनपर चमकीले मोतियों से कढ़ाई का काम किया गया था (तारमुक्ताफलोपचीयमानैश्च कञ्चुकैः)। कञ्चुक एक प्रकार का बाँहदार घुटनों तक लटकता हुआ कोट-जैसा पहनावा था। राजाओं की वेशभूषा का वर्णन करते हुए बाण ने कञ्चुक, वारबाण, चीनचोलक और कूर्पासक इन चार प्रकार के ऊपरी वस्त्रों का वर्णन आगे किया है (२०६)। अमरकोष के अनुसार कञ्चुक और वारबाण पर्यायवाची थे। एक जाति के दो पहनावे होते हुए भी बाण की दृष्टि में इनमें कुछ भेद अवश्य था। वारबाण का प्रयोग कालिदास के समय में भी चल गया था[५]। गुप्त सिक्कों पर समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि राजा जिस प्रकार का कोट पहने हैं वही वारबाण ज्ञात होता है। कुषाणों की देखा-देखी गुप्तों ने इस पोशाक को अपनाया। वारबाण और कञ्चुक में परस्पर क्या भेद था, यह आगे २०६ पृष्ठ की व्याख्या में स्पष्ट किया गया है। वारबाण कञ्चुक

---

१ फूलदार नेत्र कपड़े के बने मुलायम सूथनों में जिनकी पिंडलियाँ फँसी हुई थीं।

२ डा० मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ १५७।

३ प्रच्छद पट का अर्थ आस्तरण या चादर है। कादम्बरी जिस पलंग पर बैठी हुई थी उस-पर नीले अंशुक का प्रच्छद पट बिछा हुआ था (कादम्बरी वैद्य० पृ० १८६)।

४ स वचनान्तरमुत्थाय पुमान् ऊर्ध्वी चकार तत्, धौतदुकूलकल्पिताच्च निचोलकाद्-कोषीत्, २१५।

५ तद्योधवारबाणानाम्, (रघुवंश ४।५५) (रघुभटकञ्चुकानामिति मल्लि०)।

की अपेक्षा ऊँचा, मोटा चिलटे की तरह का कोट था जिसका ईरान में चलन था[१]। बाण ने जिस तरह कचुकों पर सच्चे मोतियों का काम बनाने का यहाँ उल्लेख किया है वैसे ही सातवें उच्छ्वास में राजाओं के वेश का वर्णन करते हुए वारबाणों पर भी सच्चे मोतियों के झुग्गों से बने फूल-पत्ती के कम का वर्णन किया है (तारमुक्तास्तबकितस्तवरक वारबाणैः, २०६)[२]। सासानी राजाओं को अपने कोट में मोतियों की टँकाई कराने का बहुत शौक था। भारतवर्ष में भी प्राप्त सासानी शैली की मूर्तियों में यह विशेषता पाई जाती है।

स्तवरक

राज्यश्री के विवाह में जो मडप बनाए गए थे उनकी छत स्तवरक के थानों को जोड़कर बनाई गई थी। राजाओं के वेश का वर्णन करते हुए भी बाण ने स्तवरक वस्त्र का उल्लेख किया है। शकर ने स्तवरक को एक प्रकार का वस्त्र माना है। यह वस्त्र ईरान में बनता था। पह्लवी भाषा में इसका नाम स्तब्रक् था। उसी से सस्कृत स्तवरक बना और उसी से फारसी इस्तब्रक् शब्द निकला। अरबी में इसी का रूप इस्तब्रक् हुआ जिसका अर्थ है भारी रेशमी किमखाब[३]। इस शब्द का प्रयोग कुरान में स्वर्ग की हूरों की वेश-भूषा के वर्णन में आया है। कुरान के टीकाकार भी इसे अन्य भाषा का शब्द मानते हैं[४]। वस्तुत. इस्तब्रक् सासानी युग के ईरान में तैयार होनेवाला रेशमी किमखाब का कपड़ा था। वह बहुमूल्य और सुन्दर होता था। ईरान के पच्छिम में अरब तक और पूरब में भारतवर्ष तक उस कपड़े की कीर्ति फैल गई थी और उसका निर्यात होता था। बाण ने हर्ष के दरबार में इस विदेशी वस्त्र का साक्षात् परिचय और नाम प्राप्त किया होगा। सूर्य की गुप्तकालीन मूर्तियों की वेश-भूषा ईरानी है। वराहमिहिर ने उसे उदीच्य वेष कहा है। इनके शरीर पर जरी के काम का कीमती वस्त्र दिखाया जाता था। सभवतः वही स्तवरक है। अहिच्छत्रा की खुदाई में मिली हुई मिट्टी की एक सूर्य-मूर्ति के शरीर पर पूरी आस्तीन का कोट है जिसकी पहचान स्तवरक से की जा सकती है[५]। (चित्र ४८) उसमें मोतियों के झुग्गे वस्त्र की कुल जमीन पर टँके हुए हैं। बाण ने स्तवरक की विशेषता कहते हुए इसका सकेत किया है (तारमुक्तास्तबकित)। अहिच्छत्रा से ही मिली हुई नर्तकी[६] की एक छोटी मिट्टी की मूर्ति का लहँगा इसी प्रकार मोतियों के लच्छों से सजा है। उसका वस्त्र भी स्तवरक ही

---

१ वारबाण का पह्लवी रूप बरवान (barvan), अर्माइक भाषा में वरपनक (varapanak), सीरिया की भाषा में गुरमानका (gurmanaqa) और अरबी में ज़ुरमानकह (zurmanaqah = a sleeveless woollen vest) है। और भी वारबाण पर देखिए, थीमे कृत लेख, जैड डी एम जी, ९१।९१।

२ स्तवकिता. सजातपुष्पनिकुरुम्बाकारा, शकर (२०६)।

३ स्टाइनगास, पर्शियन इगलिश डिक्शनरी, पृ० ५०।

४. ए० जेफरी, दी फोरेन वाकेबुलेरी आफ दी कुरान (गायकवाड ओरियण्टल सीरिज, स०७९), पृ० ५८,५९।

५ देखिए, वासुदेवशरणअग्रवाल-कृत 'अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी की मूर्तियाँ,' पृ० १११ और १३०, चित्र-स० १०२।

६ वही, पृ० ११३ और १६५, चित्र सख्या २८६।

जान पडता है। उसमे मोतियो की प्रत्येक लच्छी के नीचे एक-एक सितारा भी टँका हुआ है। बाणभट्ट ने जिसे 'तारामुक्ताफल' की टँकाई का काम कहा है वह यही सितारे-मोतियो का काम था (तारामुक्ताफलोपचीयमानकचुक)। मडप के नीचे स्तवरक की छत उसी प्रकार की जान पडती है जैसे मुगलकाल में शाही मसनद के ऊपर चार सोने के डडो पर तना हुआ कीमती चँदोवा होता था।

वहाँ नए रँगे हुए दुकूल वस्त्रों के बने पटवितान या शामियाने लगे हुए थे और पूरे थानों मे से पट्टियाँ और छोटे-छोटे पट फाडकर अनेक प्रकार की सजावट के काम मे लाए जा रहे थे[1]। पट सभवत. पूरा थान या और पटी लबी पट्टियाँ थी जो झालर आदि के काम मे लाई जा रही थी।

वहाँ खभो पर नेत्र-सजक कपडे जिनपर चित्र बने थे, लपेटे जा रहे थे[2]। जैसा ऊपर कहा गया है, बाण ने अन्यत्र भी उच्चित्र नेत्र वस्त्र का उल्लेख किया है जो सूथने बनाने के काम मे आता था (२०६)। उच्चित्र से तात्पर्य उन वस्त्रो से है जिनकी बुनाई मे भाँति-भाँति की आकृतियाँ डाल दी जाती थी (अ० फिगर्ड)। बाण के ही समकालीन ऐसे अनेक नमूने मध्य एशिया से प्राप्त हुए है। ये आकृतियाँ दो प्रकार की होती थी, एक वे जिनपर रेखा-उपरेखाओ और बिन्दुओं को मिलाने से चित्र बनते हैं और दूसरे वे जिनमे मछली आदि की आकृतियाँ बनती थी[3]।

पृंग

शकर के अनुसार नेत्र-नामक वस्त्र का पर्याय पृग था। यह शब्द मध्य एशिया के खरोष्ठी लेखो मे पाया गया है। जहाँ इसका रूप 'प्रिघ' है। बौद्ध-सस्कृत ग्रथ 'महाव्युत्पत्ति' मे पृग शब्द आया है जहाँ उसके पाठान्तर पृगा या पृगु मिलते है। पृगु का उल्लेख बौद्ध शब्दों के सस्कृत चीनी कोश फान्-यु चिएन यु-वेन् मे भी हुआ है[4]। पहलवी और फारसी में भी ध्वनि-परिवर्तन के साथ इसका रूप परद मिलता है[5]। उसी से पजाबी शब्द परादा बना है जिसका अर्थ इस समय बाल या जूडे मे डाला जानेवाला रेशमी फीता

---

१ अनेकोपयोगपाट्यमानै अपरिमितैः पटपटीसहस्र,
अभिनवरागकोमलदुकूलराजमानैश्च पटवितानै, (१४३)।

२ उच्चित्रनेत्रपटवेष्ट्यमानै स्तम्भै (१४३)।

३ देखिए, वावी सिल्वान (Vivi Sylwan) कृत इन्वेस्टीगेशंस ऑव सिल्क फ्राम एडसन-गोल ऐंड लॉप-नॉर (स्टाकहोल्म, १९४९) पृ० १०३-१११, फलक १-२।

४ श्रीप्रबोधचन्द्र बागची द्वारा सम्पादित, दो सस्कृत चीनी कोष, भाग १, पृ० २८०, शब्द-सख्या ५४१, इसका चीनी पर्याय लिङ् है। (बारीक झीना रेशमी वस्त्र, अ० डेमेस्क)।

५ देखिए, डबलू० बी० हैनिग, 'टू सेण्ट्रल एशियन वर्ड्स,' ट्रैन्जैक्शन्स् ऑव दी फाइलोलॉजिकल सोसाइटी, १९४५, पृ० १५१, जहाँ मध्यएशिया मे प्रचलित प्रिघ शब्द पर विस्तृत विचार करके उसे सस्कृत पृग का ही रूप माना है। और भी देखिए, मेरा लेख, सस्कृत-साहित्य मे कुछ विदेशी शब्द (सम फॉरेन वर्ड्स् इन ऐंश्येंट सस्कृत लिटरेचर, इडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग १७ (मार्च १९५१), पृ० १५-१७।

है[1]। मध्यएशिया के लेखो मे कपोत, श्वेत (कबूतरी और सफेद) रगो के पृ ग का वर्णन है। सुग्धी भाषा मे लिखी मानी धर्म की पुस्तको मे जो तुनहुआग से प्राप्त हुई, कपोत रग की पृग (कप्वथ् प्रय्क) का उल्लेख है। हेनिंग के मतानुसार पृग का अर्थ चित्र-शोभित इकरगी रेशमी वस्त्र था। यह वस्त्र मध्यएशिया से आता था अथवा यहाँ भी बनता था—इसका निश्चित प्रमाण इस समय उपलब्ध नहीं, क्योंकि अपने देश मे इतने प्राचीन वस्त्रो के वास्तविक नमूने उपलब्ध नहीं हुए।

इस प्रकार राज्यश्री के विवाह के लिये समस्त राजकुल मागलिक और रमणीय हो उठा एव भाँति-भाँति के कुतूहलो से भर गया। रानी यशोवती विवाह के बहुविध कामों को देखती हुई ऐसी लगती थी मानो एक से अनेक रूप हो गई हो। राजा ने भी जामाता की प्रसन्नता के लिये एक के ऊपर एक ऊँट और वामियों (घोडिया) की डाक लगा दी (विसर्जितोष्ट्रवामीजनितजामातृजोष, १४४)। मार्ग मे झडियाँ लगा दी गई, मगल वाद्य बजने लगे। मौहूर्तिक या ज्योतिषी उत्सुकता से विवाह-दिवस की बाट जोहने लगे। विवाह के दिन प्रात काल ही प्रतीहार लोगो ने सब फालतू आदमियो को हटाकर राजकुल को एकान्त-प्रधान बना दिया। उसी समय प्रतीहार ने आकर सूचना दी—'महाराज, जामाता के यहाँ से उनका ताबूलदायक पारिजातक आया है।' उसके भीतर आने पर राजा ने आदर के साथ पूछा—'बालक[2], ग्रहवर्मा तो कुशल से है?' पारिजातक ने कुछ पैर आगे बढकर, भुजाएँ फैलाकर, पृथ्वी मे मस्तक टेककर निवेदन किया-'देव, कुशल से है और प्रणाम-पूर्वक आपकी अर्चना करते है।' राजा ने यह जानकर कि जामाता विवाह के लिये आ गए है, कहा—'रात्रि के पहले पहर मे विवाह-लग्न साधनी चाहिए जिससे दोष न हो,' और उसे वापिस भेजा।

अब ग्रहवर्मा सायकाल लग्न-समय के निकट बरात के साथ उपस्थित हुआ। बरात की चढत से उठी हुई धूल दिशाओ मे फैल रही थी। सौभाग्यध्वज फहरा रहा था। ज्योतिषी लग्न-सम्पादन के लिये तैयार बैठे थे। विवाह-मगल-कलश और उसके ऊपर पुती हुई सफेद सरइयाँ यथास्थान टाँग दी गई थी। जलूस मे आगे-आगे पैदल लाल चँवर फटकारते चल रहे थे। उनके पीछे कान उठाए घोडो के झुड हिनहिनाते आ रहे थे। पीछे बडे-बडे हाथियो की पक्तियाँ थी जिनके कानो के पास चँवर हिल रहे थे। उनकी साज सज्जा सब सोने की थी। रगबिरगी झूलें (वर्णक, १४५) लटक रही थीं, और घटे घहरा रहे थे। नक्षत्रमाला[3] से अलकृत मुखवाली सुन्दर हथिनी के ऊपर वर ग्रहवर्मा बैठे थे। उसके आगे-आगे चारण लोग तालयुक्त गान करते चल रहे थे जिससे चिडियो के चहचहाने-जैसा शब्द हो रहा था। गन्धतैल पडने से सुगन्धित दीपक जल रहे थे, कुमकुम और पटवास-

---

१ तिब्बती भाषा का पुग शब्द जो सर्वसाधारण मे प्रयुक्त लाल भूरे रग का वस्त्र है, मूलत पृग से ही निकला हुआ जान पडता है। पुग के लिये देखिए श्रीमती प्रो० हानसेन (कोपेन हागेन) कृत मगोल कास्ट्यूम्स (१९५०), पृ० ९१, ९२। बाण ने इसी रग के वस्त्र के लिये पिशगपिग शब्द प्रयुक्त किया है।

२. नौकरो को पुकारने के लिये बालक और दारक, एव परिचारिकाओ के लिये दारिकाशब्द का प्रयोग मिलता है।

३ २७ मोतियो की माला-सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविशतिमौक्तिकै, अमर।

धूलि सब ओर उड रही थी। ग्रहवर्मा के सिर पर खिले मल्लिका-पुष्पो की माला थी जिसके बीच मे फूलों का सेहरा [1] सजा था। छाती पर फूलों के गजरे का वैकक्षक विलसित था। प्रभाकरवर्धन ने पैदल ही द्वार पर उसका स्वागत किया। वर ने नीचे उतरकर प्रणाम किया और राजा ने बॉह फैलाकर उसे गाढ आलिगन दिया। पुन. ग्रहवर्मा ने राज्यवर्धन और हर्ष का भी आलिंगन किया। तब हाथ पकडकर वर को भीतर ले गए एव अपने समान ही आसन आदि उपचारो से उसका सम्मान किया।

तभी, गम्भीर नामक राजा के प्रिय विद्वान् ब्राह्मण ने ग्रहवर्मा से कहा—'हे तात, राज्यश्री के साथ तुम्हे सबधित पाकर आज पुष्पभूति और मुखर दोनों के वंश धन्य हुए।' तत्काल ही ज्योतिषियो ने कहा –'लग्न का समय निकट है। जामाता कौतुकगृह मे चले।' इसके बाद ग्रहवर्मा अन्त पुर मे प्रविष्ट हुए और कौतुक-गृह के द्वार पर पहुँचे। वहाँ कुछ मान्य और प्रिय सखियो से और स्वजन स्त्रियो से घिरी हुई लाल अंशुक का घूँघट डाले, कान मे मोतियों की बालियाँ और पन्ने का कर्णाभरण पहने वधू राज्यश्री को देखा[2]। कोहबर मे स्त्रियो ने जमाता से लोकाचार के अनुसार जो कुछ होता है वह सब कराया और हँसोड स्त्रियों ने कुछ हँसी भी की। उसके बाद वर वधू का हाथ पकड़कर कोहबर से बाहर आया और विवाह-मडप मे रची हुई वेदी के समीप गया। यहाँ बाण ने पहले कोहबर और पीछे विवाह-वेदी के कृत्य का जो उल्लेख किया है वह पजाब का आचार है जो कुरुक्षेत्र मे भी प्रचलित रहा होगा। दिल्ली-मेरठ के क्षेत्र मे यह बदल जाता है। वहाँ वेदी के निकट अग्निसाक्षिक विवाह-कार्य पहले होते है, एवं कोहबर मे देवताओ के थापे के आगे स्त्रियो के पूजाचार बाद मे।

विवाह की वेदी चूने से ताजी पोती गई थी। निमत्रित होकर आए हुए लोग वहाँ जमा थे। चारों ओर पास मे रखे हुए कलसो से वह सुशोभित थी। कलसों के मुँह चौड़े थे (पचास्य)। पानी की तरी से नए उगे हुए जवारे उनके बाहर निकले हुए थे। अँधेरे मे रखे जाने के कारण उन घडोंने सूर्य का मुख नही देखा था। उनपर हलकी बन्नी या खरिया पुती थी।

ऊपर जिस वाक्य का अर्थ लिखा गया है वह हर्षचरित के अतिक्लिष्ट और अर्थ की दृष्टि से अस्पष्ट वाक्यो मे है। टीकाकार ने कई कूट कल्पनाएँ की है पर वे बाण के अर्थ को नही छू सकी। पूरा वाक्य इस प्रकार है—सेकसुकुमारयवाकुरदंतुरैः पचास्यै कलशैः कोमलवर्णिकाविचित्रै: अमित्रमुखैश्च उद्भासितपर्यंताम् (१४७)।

इसमे पचास्यै. का कावेल ने पॉच मुँहवाले (घड़े) और कणे ने सिंहमुखी अर्थ किया है। पचास्य का एक अर्थ सिह भी है, पर यहाँ ये दोनों अर्थ नही है। पंचास्य का अर्थ चौड़े मुँहवाला है। बाण जिस प्रथा का वर्णन कर रहे है वह इस प्रकार है। मागलिक अवसरो के लिये स्त्रियाँ घडो मे मिट्टी डालकर जौ बो देती है और इतना पानी

१ उत्फुल्लमल्लिका मुंडमाला मध्याध्यासित कुसुमशेखरेण शिरसा, १४५।

२ बाण प्राय कान में दो आभूषणो का वर्णन करते है—एक अवतंस जो प्राय फूलो का होता था और दूसरे कुडलादि आभूषण, १४७।

डालती है कि मिट्टी तर रहे। उस घडे को सूरज की धूप नही दिखाते, अँधेरी कोठरी मे रखते है। तब उसमे अकुर फूटकर बढने लगते है। दूसरे-तीसरे दिन आवश्यकतानुसार पानी का सेक या छिडकाव करते रहते है। लगभग दस-बारह दिन मे यवाकुर काफी बढ जाते है। इन्हे हिंदी में जवारा (पंजाबी मे खेत्री) कहते है। दशहरे के अवसर पर जवारो को मागलिक मानकर कानो मे लगाते है। दशहरा यवाकुरो का विशेष पर्व है। झुड की झुड स्त्रियाँ जवारो के चौडे मुँह के घडे या मिट्टी के पात्र सिर पर रखे हुए नृत्य-गान के साथ नगर या ग्राम की उत्सव-यात्रा करती है। हरे पीले यवाकुर अत्यन्त सुहावने लगते है। बाण का लक्ष्य इसी प्रकार के जवारो से भरे हुए मिट्टी के घडो से है। जवारे बोने के लिये चौडे मुँह के पात्र ही लिए जाते है। उन्हीं के लिये बाण का पचास्य (चौडे मुँहवाले) विशेषण है। अमरकोश रामाश्रमी टीका मे पचास्य का यह अर्थ स्पष्ट है (पच विस्तृतम् आस्य अस्य)[२]। बाण का पहला विशेषण सेक-सुकुमार-यवाकुर-दतुरै भी अब सार्थक हो जाता है। सेक का अर्थ हलका पानी का हाथ या छिट्टा है। सुकुमार पद इसलिये है कि जवारे दस-बारह दिन से अधिक के नही होते। दतुर इसलिये कहा गया कि वे घडे के बाहर निकल आते है। इस प्रकार जवारो से भरे हुए घडे तैयार हो जाने पर उन्हे रगीन मिट्टी या बन्नी[३] से हलका पोतकर मडप की सजावट के लिये वेदी के आस-पास रख दिया गया था।

इस वाक्य मे दूसरी गाँठ 'अमित्रमुख' विशेषण है। कावेल, कणे और शकर तीनों ने ही अमित्र का अर्थ शत्रु किया है। शत्रु की तरह भयकर मुखवाले, यह अर्थ कलसो के लिये असगत है। जवारे अँधेरे मे उगाए जाते है, यही अमित्रमुख का तात्पर्य है। जिन्होने मित्र या सूर्य का मुख नही देखा था, जिनके मुख मे सूर्य-प्रकाश नहीं गया था, अथवा जो सूर्याभिमुख नहीं हुए थे, ऐसे यवाकुरों से सुशोभित वेदि कलश थे।

पचास्य और अमित्रमुख कलशो का सीधा-सादा अर्थ जो वेदी की सजावट के पक्ष में घटता है, ऊपर लिखा गया है। किन्तु व्यजना से कवि ने भावी अमगल की सूचना भी दी है। जवारों के साथ घडे शेर के मुँह-जैसे लगते थे और ऐसा प्रतीत होता था, मानो शत्रुओं के मुँह दिखाई पड रहे थे। बाण की यह शैली है। आगे भी कलकी शशाकमंडल के आकाश मे उदय का वर्णन करते हुए गौडराज शशाक के उदय की व्यजना की गई है (१७८)।

वेदी के आस-पास मिट्टी की मूर्तियाँ हाथो मे मागल्य फल लिए हुए रखी गई थी जिन्हे अंजलिकारिका कहा गया है। शकर के अनुसार—अंजलिकारिकाभि मृण्मयप्रतिमाभि सालभजिकाभिर्वा। आजकल भी इस प्रकार की मिट्टी की मूर्तियाँ बनाई जाती है जिन्हें 'गूजरी' कहते है। वेदी के स्थान में वे सजावट के लिये रखी गई थी।

---

१. श्रीगुप्तजी के यहाँ चिरगाँव (बुन्देलखण्ड) मे जवारो का बहुत बडा उत्सव मुझे देखने को मिला जिससे बाण का अर्थ मै समझ सका।

२ पचि विस्तारे धातु से पच शब्द बनता है।

३ कोमलवर्णिकाविचित्रै, १४७। वार्णिक का अर्थ शकर ने खडिया (खटिका) किया है, किन्तु वर्णिका कुम्हारो की बन्नी या रंगीन मिट्टी हो सकती है।

विवाहाग्नि मे आचार्य ईधन डाल रहे थे। साक्षी रूप से उपस्थित ब्राह्मण धुआँ हटाने के लिये अग्नि फूँक रहे थे। विवाह मे पुरोहित या कर्मकर्ता मुख्य ब्राह्मण के अतिरिक्त कुछ ब्राह्मण उपद्रष्टा या साक्षी रूप से भी रहते है, वे ऊपर के काम करते है। अग्नि के पास हरी कुशा, अश्मारोहण के लिये सिल, कृष्ण मृगचर्म, घृत, स्रुवा और समिधाएँ रक्खी हुई थीं। लाजाहोम के लिये नए सूप मे शमी के पत्तो के साथ मिली हुई खीलें रक्खी थी। आज भी विवाह के लिये ये ही उपकरण सामान्यतः जमा किए जाते है। वधू के साथ ग्रहवर्मा वेदी के स्थडिल पर चढ़े और अग्नि के पास आए। होम के बाद दोनो ने अग्नि के चारो ओर भॉवरे ली और लाजाजलि छोडी। विवाह-विधि समाप्त होने पर जामाता ने वधू के साथ सास-ससुर को प्रणाम किया और वासगृह मे प्रविष्ट हुआ।

यहाँ बाण ने प्राचीन श्रीमन्त कुलो मे वर-वधू के चतुर्थीकर्म के लिये सम्पादित वासगृह का सुन्दर वर्णन दिया है। उसके द्वार-पक्ष या पक्खों पर एक ओर रति और दूसरी ओर प्रीति (कामदेव की दो स्त्रियां) की आकृतियॉ चित्रित की गई थीं। उसमे मगलदीप जल रहे थे। एक ओर फूलों से लदे रक्ताशोक के नीचे धनुष् पर बाण रखकर तिरछी ऐंची हुई मिचमिचाती ऑख से निशाना साधते हुए कामदेव का चित्र बना था[1]। अन्दर सफेद चादर से ढका हुआ पलग बिछा था जिसके सिरहाने तकिया रक्खा था[2]। (चित्र४६) उसके एक पार्श्व मे सोने की झारी (काचन आचामरुक, १४८) रक्खी थी और दूसरी ओर हाथी-दॉत का डिब्बा लिये हुए सोने की पुतली खडी थी। सिरहाने पानी भरा हुआ चॉदी का निद्रा कलश रक्खा था।

दान्त शफरुक या हाथीदॉत के डिब्बे का वर्णन पहले सामन्त-स्त्रियों की लाई हुई भेंटो मे किया गया है (१३०)। इसमे कत्था-सुपारी-रक्खा जाता था। शफरुक ऊॅचा उठा हुआ लम्बोत्तरा गोल डिब्बा ज्ञात होता है। आजकल इसे फरुआ कहते है जो लकडी का बनता है। हाथीदॉत के शफरुक मे कतरी सुपारी और सुगन्धित सहकार तेल मे भीगा हुआ खैर भरकर रक्खा था। निद्राकलश रखने की उस समय प्रथा थी। गधर्वलोक मे चन्द्रापीड के शयन के पास भी इस प्रकार के निद्रा-मगल-कलश का वर्णन किया गया है, (कादम्बरी १७८)।

वासगृह मे भित्तियो पर गोल दर्पण लगे थे। उनमे वधू-मुख के अनेक प्रतिबिम्ब पड रहे थे। ज्ञात होता है कि वासगृह की दीवारो का रूप कुछ-कुछ आदर्शभवन[3] (बाद के सीसमहल) की तरह था। गोल शीशों मे पडे मुख-प्रतिबिम्ब ऐसे लगते थे, मानो गवाक्षो मे से कौतुक देखने के लिये झाँकते हुए गृहदेवताओ की स्त्रियों के मुख हों। गवाक्षों मे से

१ एकदेशलिखितस्तबकितरक्ताशोकतरुतलभाजा अधिज्यचापेन तिर्यक्कूणितनेत्र-त्रिभागेन शरमृजूकुर्वता कामदेवेनाधिष्ठितम् (१४८)।

२ वासगृह मे पलंग पर बैठे वर-वधू के चित्र के लिये देखिए, औंधकृत अजन्ता, फलक ५७, गुफा १७ का चित्र।

१ तिलकमजरी (११ वी शती) मे आदर्शभवन का निश्चित उल्लेख है (पृ० ३७३)। सम्भवत सातवी शती के महलो मे भी सीसमहल कमरा बनने लगा था। आदर्श-भवन = गुजराती अरीसा महल, हिन्दी सीसमहल।

झाँकते हुए स्त्रीमुख गुप्तकाल की कला की विशेषता थी[1]। (चित्र५०) डा० कुमार स्वामी ने भारतीय रोशनदानों या खिडकिया (प्राचीन वातायन, पाली वातपान) के विकास का अध्ययन करते हुए बताया है कि शुगकाल और कुषाणकाल मे वातपान तीन प्रकार के थे--वेदिका-वातपान, जाल-वातपान, शलाका-वातपान, किन्तु गुप्तयुग की वास्तुकला मे तोरणों के मध्य में बने हुए वातायन गोल हो गए है। तभी उनका गवाक्ष (बैल की आँख की तरह गोल)[2] यह अन्वर्थ नाम पडा[3]। इन झरोखो मे प्राय स्त्रीमुख अकित किए हुए मिलते है। उसी के लिये बाण ने 'गृहदेवताननानीव गवाक्षेषु वीक्षमाण' (१४८) यह कल्पना की है।

इस तरह ससुराल मे दस दिन रहकर ग्रहवर्मा यौतक मे दी हुई सामग्री के साथ (यौतकनिवेदितानि शम्बलानि आदाय, १४८) वधू को विदा करा अपने स्थान को लौट गया।

---

१ कालिदास ने भी लिखा है कि झाँकते हुए पुरस्त्रियो के मुखो से गवाक्षो के झरोखे भरे हुए थे। सान्द्र-कुतूहलाना पुरसुन्दरीणां मुखै गवाक्षा व्याप्तान्तरा, रघु० ७५, ११।
२ तुलना कीजिए, अंग्रेजी 'बुल्स आई' गोल निशाना।
३. श्री आनन्द कुमारस्वामी, एन्शेण्ट इडियन आरकिटेक्चर, पैलेसज (प्रासाद) पृ चित्र।

पाँचवाँ उच्छ्वास

पाँचवाँ उच्छ्वास दुख और शोक के वर्णना से भरा है। इसका नाम ही 'महाराज-मरण-वर्णन' है। इसमे प्रभाकरवर्धन की मादगी, रानी यशोवती का शोक के आवेग मे सती होना, प्रभाकरवर्धन का देहावसान, और हर्ष एव राजकुल के शोक का अत्यन्त द्रावक वर्णन किया गया है। विषयारम्भ करते हुए बाण ने लिखा है—'काल जब करवट लेत है, अनेक महापुरुषो को भी एक साथ बिलट डालता है, जैसे पृथ्वी को सहस्र फणो परा धारण करनेवाला शेषनाग जब सुसताने के लिये एक मस्तक से दूसरे मस्तक पर बोझा बदलता है तो बडे-बडे पहाड उलट-पुलट जाते है।' बैल के सीग बदलने से भूकम्प आने के जनविश्वास की भाँति शेषनाग के फन बदलने से भूचाल होने का विश्वास भी बहुत पुराना था।

जब राज्यवर्द्धन कवच पहनने की आयु प्राप्त कर चुका तो प्रभाकरवर्द्धन ने उसे हूणो से युद्ध करने के लिये पुराने मन्त्रियो और अनुरक्त महासामन्तो की देखरेख मे सेना के साथ उत्तरापथ की तरफ भेजा। बाण ने प्रभाकरवर्द्धन को हूणहरिणकेसरी' कहा है। हूणो के साथ प्रभाकरवर्द्धन की भिडन्त ५७५ ई० के आसपास हुई होगी। यशोधर्मन् (मालवा के जनेन्द्र शासक) और नरसिह गुप्त बालादित्य ने हूण-सम्राट् मिहिरकुल को ५३३ ई० के लगभग मध्यभारत से उखाड दिया था। मिहिरकुल अपनी पुरानी राजधानी शाकल की ओर बढा, किन्तु वहाँ उसका भाई जमा बैठा था। अतएव उसने कश्मीर मे शरण ली और धोखे से उसे हडप लिया। वहाँ से अपने पुराने राज्य गधार पर धावा किया, और वहाँ के अन्य हूण शासक को मारकर स्वय राजा बन बैठा। ५४२ ई० मे उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के समय हूण कश्मीर और गन्धार मे जमे थे। ५४७ ई० के लगभग कोममा इडिको प्लेउस्ते ने लिखा है कि श्वेत हूण भारत के उत्तर मे थे और उनके तथा भारतवर्ष के बीच मे सिन्धु नदी सीमा थी। हूणों के इन्हीं दो राज्यो के विरुद्ध प्रभाकरवर्धन ने युद्ध किया होगा। उसे इसमे कितनी सफलता मिली यह निश्चित नहीं, क्योकि हम उसे हूणो को जीतने के लिये पुन. राज्यवर्द्धन को उत्तरापथ की ओर भेजते हुए पाते है। कश्मीर और विशेषत गधार बाण के उत्तरापथ मे सम्मिलित जान पडते है। कुवलयमालाकथा (७७८ ई०) के अनुसार तोरमाण उत्तरापथ का राजा था। सातवी शती के ऐतिहासिक भूगोल मे गन्धार और उससे लगे हुए प्रदेश उत्तरापथ के अन्तर्गत थे। उत्तरापथ की विजय का सिरदर्द प्रभाकरवर्द्धन के साथ अन्त समय तक रहा, इसीलिए उसने कवच धारण के योग्य होते ही राज्यवर्द्धन को अपरिमित सेना (अपरिमित-बलानुयातम् १५०) अनुभवी मन्त्रियों और स्वामिभक्त महासामन्तों के साथ हूण-युद्ध के लिये भेजा।

उस समय हर्ष की आयु लगभग १४—१५ वर्ष की थी, क्योकि वह राज्यवर्धन से लगभग ४ वर्ष छोट था (नवे वयसि वर्तमान· १५०)। राज्यवर्धन के साथ वह कुछ पडावों तक पीछे-पीछे गया, पर आगे उसकी रुचि शिकार खेलने की हुई और वह हिमालय की तराई

मे कुछ दिन तक आखेट करता रहा। वही रात के चौथे पहर मे एक दिन उसने बडा अशुभ स्वप्न देखा। एक शेर आग मे जल रहा है और बच्चो को छोडकर शेरनी भी आग मे कूद रही है। वह घबराकर उठ बैठा। उस दिन शिकार मे मन नही लगा। मध्याह्न के समय लौटकर बेत की शीतल पाटी (वेत्र-पट्टिका) पर जिसके सिरहाने धवल उपधान रक्खा था, चिन्तित बैठा था कि दूर से ही उसने कुरगक नाम के दूरगामी (दीर्घाध्वग) लेखहारक को आते हुए देखा। दीर्घाध्वग मेखलक (५२) के समान इसके सिर पर भी नीली पट्टी माला की तरह बँधी हुई थी जिसके भीतर लेख था[१]। चीर चीरिका वह कपडे का फीता था जो प्रायः मूर्तियो के माथे के चारो ओर बँधा हुआ मिलता है। उसके दोनो सिरे चिडिया की दोफकी पूँछ के ढग से पीठ के ऊपर फहराते हुए दिखाए जाते है। भारतवर्ष और सासानी ईरान दोनो ही जगह यह उस युग की वेषभूषा थी। उसके उत्तरीय पट के छोर कधे के दोनो ओर नीचे तक छहरा रहे थे। (अभिमुखपवनप्रेङ्खत्प्रवितत्तोत्तरीयपटप्रान्तवीज्यामानोभयपार्श्वम्, १५१)। हवा मे उडती हुई गन्धर्व-मूर्तियो मे भी उत्तरीय की यही छवि दिखाई जाती है।

कुरगक ने प्रणाम कर आगे बढकर लेख दिया। हर्ष ने स्वयं ही उसे लेकर बाँचा। लेखार्थ समझकर उसने पूछा—'कुरगक, पिताजी को कौन-सी बीमारी (मान्द्य. १५२) है?' उसने कहा—'देव, महान् दाहज्वर है'। सुनकर हर्ष को बहुत दु ख हुआ। तुरन्त उसने सामने खडे हुए युवक को घोडे पर जीन (पर्याण) कसवाने की आज्ञा दी। ज्ञात होता है, उस समय पदाति सैनिक के लिये आजकल के जवान की तरह 'युवन्' शब्द का व्यवहार होता था[१]। बाण ने यहाँ सैनिक अभिवादन की रीति का उल्लेख किया है। पदातियो के एक हाथ मे प्रायः तलवार रहती थी (दे० पृ० २१, कृपाणपाणिना)। उसे मस्तक से छुवाकर वे सैनिक अभिवादन की रीति पूरी करते थे। तुरन्त ही अश्वपाल (परिवर्धक, १५२) के लाए हुए घोडे पर सवार होकर वह चल दिया।

उसकी टुकडी मे अचानक कूच का सकेत देनेवाला शख बजा दिया गया (अकाड-प्रयाणसज्ञा शख, १५२)। तुरन्त चारो ओर से घुडसवार तैयार होकर चल पडे। चलते समय उसे तीन तरह के असगुन हुए। हिरन बाई ओर से निकले, कौआ सूर्य की ओर मुख करके सूखे पेड पर बैठकर काँव-काँव करने लगा और नगा साधु मैले-कुचैले शरीर से हाथ मे मोरछल लिए सामने दिखाई पडा (१५२)। शकुन-शास्त्र के अनुसार उपरोक्त तीनो बाते प्राचीन भारत मे अपशकुन समझी जाती थी। हिरन को उचित है कि सिह की परिक्रमा करता हुआ निकले, यदि वह सिह को अपना बायाँ देता है तो यह सिह के विनाश का सूचक है (विनाशमुपस्थित राजसिहस्य)। कादम्बरी मे कहा है कि हिरन यदि स्त्री की प्रदक्षिणा करता हुआ निकले तो वह उस स्त्री के लिये अशुभ है

१ लेखगर्भया नीलीरागमेचकरुचा चीर-चीरिकया रचितमुण्डमालकम्, १५१।
२ तुलना कीजिए पृ० २१, युवप्रायेण सहस्रमात्रेण पदातिबलेन।
३ पुर स्थितशिर कृपाण बिभ्राण बभाण युवानम्, १५२।
४ आग बुझानेवाले इजन के घटे की तरह, अथवा जेलो की पगली घटी की तरह अचानक कूच की शखध्वनि बिना रुके जोर-जोर से की जाती थी।

(प्रस्थितामिवानधीष्टदक्षिणवातमृगागमनाम्)। बृहत्संहिता (९५।१६) के अनुसार कौआ पूरब की ओर देखता हुआ यदि सूर्याभिमुख होकर बोले तो राज-भय होता है। नग्नाटक[1] से तात्पर्य नगे जैन साधु या दिगम्बर का था। मुद्राराक्षस (अक ४) मे अमात्य राक्षस ने क्षपणक-दर्शन को अशुभ कहा है।

वह जल्दी-जल्दी मार्ग लाँघता हुआ चला। भडि के कहने पर भी उसने भोजन नही किया और रात मे भी बराबर रास्ता तय करता रहा। बाण ने यहाँ कहा है कि राजा या राजकुमार की सवारी से पहले ही प्रतीहार हरावल की तरह भेज दिये जाते थे। वे लोग गाँववालो को पकड़कर मार्ग-सूचन के लिये रास्ते के किनारे थोडी-थोडी दूर पर खडा कर देते थे (पुरः प्रवृत्त-प्रतीहार-गृह्यमाण ग्रामीण परम्परा-प्रकटित-प्रगुणवर्त्मा, १५२)।

अगले दिन वह स्कन्धावार मे पहुँच गया। यह राजकीय छावनी स्थाण्वीश्वर में थी। उसने देखा कि स्कन्धावार मे बाजे-गाजे, उत्सव-हाट का सब काम बन्द है। वहाँ तरह-तरह के पूजा-पाठ और भूतोपचार हो रहे है। बाण ने इनका पूरा वर्णन दिया है, तथापि ये प्रथाएँ अत्यन्त भीषण होने के कारण तत्कालीन सस्कृति के लिये शोभास्पद नही कही जा सकतीं। एक ओर कोटि होम की आहुतियों का धुआँ यमराज के भैंसे के टेढे सींग की तरह उठ रहा था। स्नेही स्वजन उपासे रहकर हर को प्रसन्न करने मे लगे थे। राजघरानों के कुलपुत्र दियाली जलाकर सप्तमातृकाओ (मातृमडल) को प्रसन्न कर रहे थे। कही पाशुपतमतानुयायी द्रविड मुण्डोपहार चढाकर वेताल (आमर्दक) को प्रसन्न करने की तैयारी मे था[2]। कही आन्ध्रदेश का पुजारी अपनी भुजा उठाकर चडिका के लिये मनौती मान रहा था। एक ओर नये भर्ती हुए नौकरो (नव सेवक) के सिर पर गुग्गुल जला-कर महाकाल को प्रसन्न किया जा रहा था और इस पीडा से वे छटपटा रहे थे। बाण ने अन्यत्र लिखा है कि इस तरह सिर के आधे हिस्से पर गुग्गुल जलाने से कपाल की हड्डी तक जलकर दीखने लगती थी (१०३)। एक ओर आप्तश्रेणी के लोग अनिष्टबाधा निवृत्ति के लिये तेज छुरी से स्वय अपना मास काट-काटकर होम कर रहे थे (आत्ममास-होम)। कहीं राजकुमार लोग खुलेआम महामास की बिक्री की तैयारी मे थे। यह क्रिया शैवो मे कापालिक लोगों की थी जो अपने-आपको महाव्रती भी कहते थे। वे एक हाथ मे खट्वाग लिए रहते थे। महामास का विक्रय वेतालो के लिये किया जाता था। छठे उच्छ्वास मे भी महाकाल के मेले मे प्रद्योत के राजकुमार द्वारा महामास-विक्रय का उल्लेख है (१९९)।

बाजार मे घुसते ही हर्ष ने एक यमपट्टिक को देखा। सडक के लडको ने उसे घेर रक्खा था। बाएँ हाथ मे ऊँची लाठी के ऊपर उसने एक चित्रपट फैला रक्खा था जिस मे भयकर भैंसे पर चढे यमराज का चित्र लिखा था। दाहिने हाथ में सरकडा लिए हुए वह

1. हिन्दी का लुच्चा-लुगाडा शब्द सस्कृत के लुचित-न नाटक से बना है। नगे जैन साधु के लिये बाण ने क्षपणक शब्द का भी उल्लेख किया है (४८)। ये लोग हाथ मे मोर के पखो की पीछी रखते थे और बहुत दिनो तक स्नान न करने से अत्यन्त मैले रहते थे। दिवाकर मित्र के आश्रम के वर्णन में इन्हीं साधुओ को आर्हत कहा है (२३६)।
2. द्रविड धार्मिक के अभिचारो का खाका कादम्बरी के चडिकावर्णन मे विस्तार से खीचा गया है।

लोगो को चित्र दिखाता और परलोक मे मिलनेवाली नरक-यातनाओ का बखान कर रहा था[1]। बाण ने अन्यत्र कहा है कि यमपट्टिक लोग चित्र दिखाते समय जोर-जोर से पद्यबद्ध कुछ कहते जाते थे (उद्गीतक, १३८)। सम्भवत उनका विषय स्वर्ग-नरक के सुख-दु ख था। देवी देवताओ के चित्रपटो की प्रथा खूब चल गई थी। लक्ष्मीपट्ट, अनंगपट्ट आदि के अवतरण मिलते है। मध्य एशिया से लगभग बाण के समकालीन अनेक बुद्ध-पट सहस्र बुद्ध-गुफा-मन्दिर से प्राप्त हुए है।

हर्ष स्कन्धावार पार करके राजद्वार पर आया। ड्योढी के भीतर सब लोगो का आना-जाना रोक दिया गया था। जैसे ही वह घोड़े से उतरा, उसने सुषेण नामक वैद्यकुमार को भीतर से बाहर आते हुए देखा और पिता की हालत पूछी। सुषेण ने कहा—'अभी तो अवस्था मे सुधार नही है, आपके मिलने से कदाचित् हो जाय।' ड्योढी पर द्वारपालो ने उसे प्रणाम किया और वहाँ उसने अनेक प्रकार के पूजा-पाठ और उपचार होते हुए देखे। लगभग सभी धर्मो के अनुसार मन्त्रों का पाठ-जप और देव-पूजन चल रहा था। तत्कालीन समन्वय प्रधान धार्मिक स्थिति पर इससे प्रकाश पड़ता है। वहाँ दान-दक्षिणा दी जा रही थी, कुलदेवताओं का पूजन हो रहा था, अमृतचरु पकाना आरम्भ किया गया था, षडाहुति होम हो रहा था[2]। महामायूरी का पाठ चल रहा था। जैसा कि शकर ने लिखा है, महा-मायूरी बौद्धो की विद्या थी[3]। गृहशान्ति का विधान हो रहा था और भूतो से रक्षा के लिये बलि दी जा रही थी। संयमी ब्राह्मण सहितामत्रो का जप करने मे लगे थे। शिव के मन्दिर मे रुद्र-एकादशी (यजुर्वेद के रुद्र-सम्बन्धी ११ अनुवाक) का जप बैठा हुआ था। अत्यन्त पवित्र शैव भक्त विरूपाक्ष (शिव) को एक सहस्र दूध के कलशो से स्नान कराने मे लगे थे। राजद्वार के सामने खुले आँगन में राजा लोग जमा थे और भीतर से बाहर आनेवाले राजा के निकटवर्ती सेवकों से सम्राट् के स्वास्थ्य का हाल-चाल पूछ रहे थे। (१५४)

राजद्वार के बाहर के इस चित्र मे पूरा रग भरने के लिये बाण ने बाहर ही काम करनेवाले नौकरो (बाह्य परिजन) के आलापो का भी परिचय दिया है। वे लोग राजद्वार के बाहरी अलिद या द्वार से सटे हुए कोठों मे ठट्ठ बनाकर बैठे कानाफूसी कर रहे थे। दुःख से उनके मुख मलीन थे। कोई कहता, वैद्यो से ठीक चिकित्सा नही बन पडी, कोई व्याधि को असाध्य कहकर उसके लक्षण बताता, कोई अपने दुस्स्वप्नो की चर्चा करता, कोई कहता कि पिशाच ने राजा को धरा है, कोई दैवज्ञों की कही हुई बात सुनाता, कोई उत्पातो की चर्चा करता, कोई कहता, जीवन अनित्य है, ससार दुखो की खान है, कोई घोर कलिकाल की करतूत बताता, कोई देव को दोष देता, कोई धर्म को ही उलाहना देता, कोई राजकुल के देवताओ की निन्दा करता, कोई उन कुलपुत्रो के भाग्य की निन्दा करता जिनपर दुःख का पहाड टूट पडा था।

१ प्रविशन्नेवच विपणिवर्त्मनि कुतूहलकु बहलबालकपरिवृत मूर्ध्वयष्टिविष्कम्भविततें वाम-हस्तवर्तिनि भीषणमहिषाधिरूढप्रेतनाथसनाथे चित्रवति पटे परलोकव्यतिकर इतरकर-कलितेन शरकाडेन कथयन्त यमपट्टिक ददर्श, १५३।

२ प्रजापति आदि छ देवताओ के लिये दी जानेवाली छ आहुतियाँ।

३ महामायूरी विद्याराज्ञी बौद्धो के पचरक्षासग्रह मे से एक था। बावर मैनुस्क्रिप्ट के देवनागरी सस्करण 'नावनीतकं' के छठे-सातवे प्रकरणो मे महामायूरी का पाठ दिया हुआ है।

इस प्रकार वह राजकुल मे प्रविष्ट हुआ। अनेक प्रकार के ओषधिद्रव्य, तरल पदार्थों और सुगन्धियो से औटाए जाते हुए काढो, घृत और तैलो की गन्ध लेते हुए वह महल की तीसरी कक्ष्या मे पहुँचा। राजभवन मे तीन कक्ष्याएँ या चौक लगते थे, ऐसा मणिनारा के स्कन्धावार के सम्बन्ध मे कहा जा चुका है (६६)। चौथी कक्ष्या मे राजा का निजी आस्थानमडप होता था। बीमारी के समय प्रभाकरवर्धन चौथी से तीसरी कक्ष्या मे आ गए थे। वाल्मीकिरामायण मे भी कहा है कि महल मे तीन कक्ष्याएँ होती थी और तीसरी मे रनिवास रहता था। (अयो० २०। १२)[1]।

यहाँ थानेश्वर के राजभवन मे तीसरी कक्ष्या मे देवी यशोवती का धवलगृह था। उसी मे इस समय प्रभाकरवर्धन थे।

धवलगृह (हिन्दी धौराहर, धरहरा)—राजकुल के भीतर राजा और महादेवी के निवास का मुख्य महल धवलगृह कहलाता था। उसकी देहली पर अनेक वेत्रधारी प्रतीहारियों का कडा पहरा लगता था। उसके अदर लबी-चौडी वीथियाँ थी जो तिहरे पर्दे के पीछे छिपी थी (त्रिगुणतिरस्करणीतिरोहितसुवीथिपथे, १५५)। अजन्ता के चित्रो को देखने से वीथियो और पर्दों का क्रम कुछ समझ मे आता है। राजा साहब औधकृत अजन्ता पुस्तक के फलक ६७ पर विश्वन्तरजातक के एक दृश्य मे विश्वन्तर टापदार छोटे पायो की चौकी (पर्यङ्किका) पर बैठे है। उनके पीछे रगीन बटी हुई डोरी पर दौडती हुई नलकियो से लटकती रग-बिरगी लबी तिरस्करणी तनी हुई है। उसके पीछे एक ऊँची तिरस्करिणी और है और अन्त मे लाल पर्दा या कनात है जिसके बीच मे दीप्तिपट (छोटा पर्दा) भी दिखाया गया है। इन पर्दों के अदर की तरफ सुडौल खम्भो के ऊपर छत के पटाव समेत आँगन की ओर खुलते हुए दालान है। ये ही महल के अंदर की सुवीथियाँ है। फलक-सख्या ७७, ५७, ४१, और ३३ मे भी तिरस्करणी के अन्दर की ओर खम्भो के साथ बनी हुई वीथियाँ दिखाई गई है। ये वीथियाँ अत्यन्त सुन्दर और अलकृत होती थी। वीथियों और बाहर की दीवार के बीच मे दास-दासियो के आने-जाने के लिये गलियारा रहता था। उसे ही हर्षचरित मे वीथी-पथ कहा गया है। महल के भीतरी भाग मे पहुँचने के लिये पक्षद्वार भी होते थे। उपरोक्त पुस्तक के फलक ७७ पर वीथी के बाई ओर की दीवार या ओटे मे पक्षद्वार स्पष्ट दिखाया गया है (चित्र ५१)। इसी मे होकर लोग वीथी के भीतर आते-जाते दिखाए गए है।

बाण के ग्रन्थो से राजकीय स्कन्धावार, उसके भीतर बने हुए राजकुल एव उसके भीतर सम्राट् और महादेवी के निजी निवास के लिये निर्मित धवलगृह—इन तीनो के स्थापत्य का स्पष्ट चित्र उपलब्ध होता है। स्कन्धावार और राजकुल के विषय मे सक्षेप मे ऊपर कहा जा चुका है। धवलगृह का स्वरूप बाण के समय मे इस प्रकार था—धवलगृह की ड्योढी गृह-अवग्रहणी कहलाती थी। अवग्रहणी का अर्थ रोक-थाम या रोक-टोक करने की जगह

१. प्रविश्य प्रथमां कक्ष्यां द्वितीयायां ददर्श स ।
ब्राह्मणान्वेदसम्पन्नान् वृद्धान् राज्ञाभिसत्कृतान् ॥ (११)
प्रणम्य रामस्तान्वृद्धांस्तृतीयायां ददर्श स ।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च द्वाररक्षणतत्पराः ॥ (१२)

था, क्योकि राजद्वार मे बाहर से प्रविष्ट होनेवाले व्यक्ति यही पर रोके जाते थे और विशेष राजाज्ञा या प्रसाद जिन्हे प्राप्त था वे ही उसके भीतर प्रवेश पाते थे। गृहावग्रहणी मे गृह पद धवलगृह का ही अवशिष्ट रूप है। गौरव के लिये उसके साथ गृह पद आवश्यक था, इसलिये बोलचाल मे वह बचा रहा, फिर इसका साधारण अर्थ देहली हो गया[१]। यहाँ के कड़े प्रबन्ध की सूचना मे बाण ने कहा है कि इस स्थान पर बहुसख्यक वेत्रग्राही नियुक्त रहते थे और उनके अधिकार भी अन्य वेत्रग्राहियो की अपेक्षा अधिक थे। एक प्रकार से, गृहावग्रहणी के वेत्री लोगों का उसपर कब्जा माना जाता था और उनकी अनुमति के विना कोई भीतर-बाहर आ-जा नही सकता था। (गृहावग्रहणी ग्राहिबहुवेत्रिणि १५५)।

धवलगृह में भीतर चारों ओर कमरो की पक्ति होती थी। इसके लिये मूल शब्द 'चतुःशाल' था। चतुःशाल का ही 'चौसल्ला' रूप बनारस की बोली मे अभी तक प्रचलित है। यह शब्द उस स्थापत्य से लिया गया था जिसमे एक आगन के चारो ओर चार कमरे या दालान बनाए जाते थे। गुप्तकाल मे इस चतु.शाल भाग को 'सजवन' कहने लगे थे (अमरकोष)। बाण ने भी इसी शब्द का प्रयोग किया है। सजवन का अर्थ है वह स्थान जहाँ विशेष आज्ञा से लोग पहुँच सके[२]। सजवन या चतु.शाल स्थान धवलगृह की ड्योढी के भीतर थी, अतएव वहाँ तक पहुँचना कठिनाई से ही हो सकता था। संजवन या चतु शाल के विशाल आँगन मे बीचो-बीच राजा और रानियों के रहने का निजी स्थान था। इसकी ड्योढी के भीतर दो छोटे-छोटे पक्षद्वार थे, उन्ही से भीतर प्रवेश सम्भव था। यह कुल स्थान जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है तिहरी तिरस्करणी से घिरा रहता था। इसके भीतर तीन ओर सुवीथियाँ थी। अजन्ता की गुफाओ मे परिवार के साथ बैठे हुए जो राजा-रानियों के कई चित्र है, वे इन्ही वीथियो से सम्बन्ध रखते है। यही पक्षद्वारों के पास ऊपर जाने के लिये सोपानमार्ग बना होता था। ऊपर के तल्ले मे आगे की ओर तीन कमरे रहते थे जो विशेष-रूप से राजा-रानी के निजी कमरे थे। बीच मे प्रग्रीवक (उठने-बैठने का कमरा[३]), दाहिनी ओर वासगृह (सोने का कमरा) और बाई ओर सौध जिसकी छत अधिकाश खुली रहती थी। यहाँ रानी यशोवती स्तनाशुक को भी छोडकर चाँदनी में बैठती थी। वासगृह सबसे अन्तरग कमरा था जहाँ राजा-रानी विश्राम करते थे। यशोवती के वासगृह की दीवारो पर भित्तिचित्र बने हुए थे (१२७)। दाएँ-बाएँ के पार्श्वों में दालाननुमा जो स्थान था उसे प्रासादकुक्षि कहते थे। उसमे राजा अपने चुने हुए आप्त सुहृदो और रानियों के साथ अन्त पुर-सगीतक या उसी प्रकार की अन्तरग गोष्ठियो का सुख लेते थे। इसी तल्ले मे पीछे की ओर चन्द्रशालिका होती थी जो खम्भो पर बना हुआ खुला कमरा था। यहाँ विशेष रूप से चाँदनी में उठते-बैठते थे और रात्रि के उत्सव भी यही मनाए जाते थे।

इस प्रकार के धवलगृह की रचना का एक स्पष्ट चित्र हर्षचरित से प्राप्त होता है। स्कन्धावार, राजकुल और धवलगृह इन तीनो का सन्निवेश स्पष्ट समझाने के लिये परिशिष्ट

१ गृहावग्रहणी देहलीद्वारारम्भदेश , शंकर, १५५।

२ जु गतौ धातु से सजवन शब्द बनता है (सजवन्त्यत्र)।

३. प्रग्रीवक का पर्याय अमरकोश की रामाश्रमी टीका मे मुखशाला दिया हुआ है। धवलगृह के बीच में ग्रीवा के स्थान पर होने के कारण इसका यह नाम पड़ा।

मे उनके तलदर्शन (ग्राउड प्लान) के स्वरूप (नक्शे) चित्र मे अकित किए गए है। न केवल बाणभट्ट अपितु सस्कृत के अन्य काव्यो मे भी राजकुल के विविध भागो का उल्लेख बराबर आता है जो इन चित्रो की सहायता से स्पष्ट हो सकेगा।

प्रस्तुत प्रसग मे यह कहा गया है कि प्रभाकरवर्धन अपनी बीमारी की हालत मे धवलगृह मे थे। धवलगृह की उस समय क्या अवस्था थी यह भी प्रस्तुत वर्णन से ज्ञात होता है। वहाँ उस समय बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। पक्षद्वार बद कर दिया गया था। गवाक्ष या रोशनदान बंद कर दिए गए थे जिससे सीधी हवा न आ सके (घटित-गवाक्षरक्षितमरुति)। सोपान पर पैरो की आहट होने से प्रतीहारी विशेष कुपित होते थे। राजा का निजी अगरक्षक (ककटी, जो रक्षा के सब साधनो से हर समय लैस रहता था) अत्यन्त निकट न होकर कुछ हटकर बैठा था। आचमन का पात्र लिये हुए सेवक कोने मे खडा था। पुराने मन्त्री लोग चन्द्रशालिका मे चुप मारे बैठे थे। स्वजन स्त्रियाँ अत्यन्त विषादयुक्त अवस्था मे सुगुप्त प्रग्रीवक (मुखशाला) मे बैठी थी (बान्धवागना गृहीतप्रच्छन्नप्रग्रीवके, १५५)। सेवक लोग दुखी होकर नीचे सजवन या चतु शाला मे एकत्र थे। कुछ ही प्रेमी व्यक्तियो को धवलगृह मे अदर आने की आज्ञा मिल सकी थी। वैद्य भी ज्वर की गम्भीरता से डर गए थे। मन्त्री घबराए हुए थे। पुरोहित का बल भी फीका पड रहा था। मित्र, विद्वान्, मुख्य सामन्त—सभी दुःख मे डूबे थे। चामरग्राही और शिरोरक्षक (प्रधान अगरक्षक) दोनों दुख से कृश थे। राजपुत्रो के कुमार रात भर जागने से धरती पर ही पडकर सो गए थे [1]। कुल मे परम्परा से आए कुलपुत्र[2] भी शोक मे डूबे जा रहे थे। कचुकी, बदीगण, आसन्न सेवक-सब दु खी थे। प्रधान रसोइये (पौरोगव) वैद्यों के बताए पथ्य की बात ध्यान से सुन रहे थे। दुकानदार या अत्तार अनेक प्रकार की जडी-बूटियाँ (भेषज-सामग्री) जुटाने मे लगे थे। पीने के पानी के अध्यक्ष (तोयकर्मान्तिक) की बार-बार पुकार हो रही थी। तक्र की मटकियो को बरफ मे लपेटकर ठडा किया जा रहा था[3]। बरफ के प्रयोग के सम्बन्ध मे बाण का यह उल्लेख सबसे प्राचीन है। जाड़े मे हिमालय से लाकर बरफ का सचय भूमि के नीचे गड्ढे खोदकर उनमे यत्नपूर्वक रक्खा जाता था।

१ बाण ने राजपुत्र कुमारक का पहली बार प्रयोग विशेष अर्थ मे किया है। राजपुत्र का अर्थ यहाँ राजपूत जान पडता है। राजपूतो की विभिन्न शाखाओ के प्रधान घरानो से बाण का तात्पर्य ज्ञात होता है। उनके पुत्र सम्राट् के यहाँ बारी-बारी से उपस्थित रहने मे अपना गौरव मानते थे। ऐसी किसी प्रथा की सम्भावना सूचित होती है, पर इस विषय मे और प्रमाण-सामग्री की आवश्यकता है।

२ कुलपुत्रो का बाण ने कई बार उल्लेख किया है। वे ऐसे राजकुमार थे जिन्हे राजा और रानी पुत्र समझ करके स्वीकार कर लेते थे और जो राजकुल मे ही रहते थे। प्रभाकरवर्धन की बीमारी से दु खित होकर एक कुलपुत्र ने भक्ति के आवेश मे आकर अपने-आपको आग मे जला दिया। इस समाचार को सुनकर हर्ष ने कहा क्या-पिता (प्रभाकरवर्धन) इसके भी पिता न थे? क्या जननी (यशोवती) इसकी भी माता न थी? और क्या हम भाई न थे? (१६१)।

३ तुषारपरिकरितकरकशिशिरीक्रियमाणोदश्विति, १५५।

इस वर्णन मे सास्कृतिक वर्णन की दृष्टि से कुछ अन्य बाते इस प्रकार है। श्वेत गीले कपडे मे लपेटकर कपूर की सलाइयाँ ठडी की जा रही थी। नए बर्तनो के चारो ओर गीली मिट्टी लथेडकर उसमे कुल्ली करने की औषधि रक्खी हुई थी। लाल रग की कच्ची शक्कर की तेज गन्ध उठ रही थी। एक ओर घडोंची पर पानी भरी हुई बालू की सुराही रक्खी हुई थी (मञ्चिकाश्रितसिकनिलकर्करी, १५६)। उसपर रोगी की दृष्टि पडने से उसे कुछ शान्ति मिलती थी। पानी मे भीगी हुई सिरवाल घास मे लपेटी हुई गोले छींको पर टॅगी हुई थी। उनमे से रिसता हुआ जल वायु को शीतल कर रहा था[1]। गल्वर्क की सरैयों में भुजिया के सत्तू भरे हुए थे और पीले मसार की प्याली मे सफेद शक्कर रक्खी हुई थी (गल्वर्कशाराजिरोल्लासितलाजमक्तुनि पीतमसारपारीपरिगृहीत कर्कशर्करे, १५६)।

इस प्रसंग मे दो बाते ध्यान देने योग्य है—एक तो पाटल शर्करा (लाल या गुडिया शक्कर) और दूसरे कर्कशर्करा[2] या सफेद शक्कर (खॉड की चासनी को पकाकर और कूटकर बनाई हुई बूरा)। इन दोनो का पृथक्-पृथक् उल्लेख भारतीय शर्करा के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

गल्वर्क के शाराजिर और मसार की पारी, ये उस समय के रत्नपात्र थे जो राजकीय खान-पान मे काम आते थे। शाराजिर बाण मे कई जगह आता है। इसका मूल अर्थ मिट्टी की सराई था। शार और अजिर इन दो शब्दो के मिलने से यह बना है जिसका अर्थ है वह वस्तु जिससे ऑगन शबलित हो जाय। इस शब्द के प्रचलन का मूल कारण यह था कि कुम्हार चाक पर जो सरैयाँ बनाता जाता था वे ऑगन मे बालू की तह बिछाकर सूखने के लिये फैला दी जाती थी। यों सफेद और काले के मिलने से कुम्हार के घर का खुला ऑगन शबलित दिखाई पडता था। पारी का अर्थ पाली या कटोरी है। हिन्दी मे यह शब्द अब भी प्रयुक्त होता है।

गल्वर्क और मसार ये दोनो शब्द महत्त्वपूर्ण है। महाभारत, दिव्यावदान और मृच्छकटिक मे भी ये दोनो शब्द प्रयुक्त हुए है। मसार का रूप मुसार भी मिलता है। मसार सस्कृत अश्मसार से सम्बधित हो सकता है। पूर्व देश के राजा अश्मसार के बर्तन युधिष्ठिर के लिये भेट मे लाए थे। बहुत सम्भव है कि मसार बर्मा से आनेवाली यशब (अँग्रेजी जेड) का नाम था। बाण ने उसके आगे पीत विशेषण लगाया है। हलके

१ सरस शैवलवलयितगलद्गोलयन्त्रके, १५६। सिरवाल (शैवल) एक प्रकार की लम्बी घास है जो बहते पानी मे प्राय होती है। इसी से नदी को शैवलिनी कहते है। यह बहुत गरम होती है। बीच-बीच मे इसकी तह बिछाने से राब मे से शीरा टपककर अलग हो जाता है। यहाँ भी सम्भवत वही उद्देश्य था। सिरवाल की गरमी से गोल का पानी रिसकर बाहर आ रहा था और भाप बनकर उड रहा था।

२ कर्कश्वेत। सफेद घोडे को भी कर्क कहा गया है। दे० महाभाष्य, समाने च शुल्के वर्णे गौ श्वेत इति भवत्यश्व कर्क इति सूत्र १।२।७१, २।२।२९। कर्क राशि का जिसका अधिपति चन्द्रमा है, रग श्वेत माना गया है। उसी से कर्क शब्द का श्वेत अर्थ प्रसिद्ध हुआ।

पीले रंग की यशब को पीत मसार कहा गया ज्ञात होता है। दूसरा संग जिसके खान-पान के पात्र बनते थे हकीक था। उसी के लिये सम्भवत गल्वर्क शब्द प्रयुक्त होता था[1]।

इसके बाद काव्य की शैली से प्रभाकरवर्धन की रुग्णावस्था का वर्णन किया गया है (१५६)। उसमे प्रासंगिक रूप से यह सूचना आई है कि जब राज. लोग दूतो से भेंट करते थे तो वे उस अवसर के अनुरूप विशेष आभूषण पहनकर ठाट-बाट का प्रदर्शन करते थे[2]। जिस समय प्रभाकरवर्धन ने हर्ष को देखा उन्होंने उठने की कुछ चेष्टा की। हर्ष ने उन्हे प्रणाम किया। उन्होंने बडी कठिनता से इतना कह पाया—'हे वत्स, कृश जान पडते हो।' भंडि ने सूचना दी कि हर्ष को भोजन किए हुए तीन दिन हो चुके है। यह सुन प्रभाकरवर्धन ने गद्गद होकर रोते हुए कहा—'उठो आवश्यक क्रियाएँ करो। तुम्हारे आहार करने के बाद ही मै भी पथ्य लूँगा।' फिर क्षण भर वहाँ ठहरकर हर्ष धवलगृह से नीचे उतरा और अपने स्थान पर जाकर उसने दो चार कौर खाए। पुनः वैद्यो को अलग बुलाकर पिता की हालत पूछी। उन्होंने गोल मोल उत्तर दिया। उन वैद्यो मे रसायन नाम का एक वैद्यकुमार था जो अष्टांग आयुर्वेद का ज्ञाता और राजकुल के साथ वंशपरम्परा से सम्बन्धित था। हर्ष ने उससे पूछा—'सखे रसायन, सच्ची हालत बताओ। क्या कुछ खटके की बात है?' उसने उत्तर दिया—'देव, कल प्रातः निवेदन करूँगा।' इसके बाद हर्ष पुन. धवलगृह मे सम्राट् के समीप ऊपर गया। वहाँ रात में प्रभाकरवर्धन की हालत और बिगडी हुई थी। वे बहकी-बहकी बातें कह रहे थे। प्रात.काल होने पर हर्ष फिर नीचे उतर आया। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रभाकरवर्धन बीमारी की हालत मे धवलगृह के ऊपरी भाग मे थे। धवलगृह से राजद्वार तक हर्ष पैदल ही आया। राजद्वार पर उसका साईस (परिवर्तक=अश्वपाल, १६०) घोडा लिए उपस्थित था। किन्तु हर्ष पैदल ही अपने मन्दिर को लौटे। ज्ञात होता है कि राजद्वार के भीतर सम्राट् के अतिरिक्त अन्य कोई घोडे पर चढकर नही जा सकता था। यह नियम राजकुमारों के लिये भी लागू था।

वहाँ से उसने राज्यवर्धन को बुलाने के लिये तेज दौडनेवाले दीर्घाध्वग (लम्बी मंजिल मारनेवाले) संदेशहरों को और वेगगामी साँडनी सवारों (प्रजविनः उष्ट्रपालान्) को तला-ऊपरी दौडाया। इसी बीच मे उसने सुना कि एक कुलपुत्र ने सम्राट् के प्रति भक्ति

१ श्री सुनीतिकुमार चटर्जी ने गल्वर्क और मसार शब्दो पर विस्तृत विचार करते हुए यह सम्मति प्रकट की है कि संस्कृत मसार या मुसार शब्द चीनी 'मोसो' से जिसका प्राचीन उच्चारण 'मुवासार' था निकला है। चीनी शब्द को वे ईरानी शब्द बस्सद (=मूँगा) से लिया हुआ समझते है, किन्तु यह मत असंदिग्ध नही है।

गल्वर्क शब्द उनकी दृष्टि मे तामिल 'कल', तेलुगु 'कल्ल', सिंहली 'गल्ल' से सम्बन्धित है जिसका मूल अर्थ पत्थर था। गल्ल—गल्लवक से संस्कृत रूप गल्वर्क (गल्लु अर्क) बना। इसका अर्थ कीमती पत्थर या स्फटिक था। (सुनीतिकुमार चटर्जी, सम एटिमोलोजिकल नोट्स, श्री डेनिसन रास के सम्मान मे प्रकाशित अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ७१—७४)

२, उर.स्थलस्थापितमणिमौक्तिकहरिचन्दनचन्द्रकान्तं दूतदर्शनयोग्यमिवात्मानं कुर्वाणम्, १५६।

और स्नेह से अभिभूत होकर आग मे कूदकर जान दे दी है। हर्ष की प्रतिक्रिया हुई कि इसने अपने कुलपुत्रता धर्म को चमका दिया। इसका यह काम स्नेह के अनुसार ही हुआ, क्योंकि पिता प्रभाकरवर्धन और माता यशोवती क्या इसके भी पिता-माता न थे। कुलपुत्रो का राजकुल के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध इस कथन से सूचित होता है। उस दिन वह राजभवन मे नही गया। उत्तरीय से मुख ढककर अपने पलग पर पडा रहा।

दु.ख की उस अवस्था मे राजभवन की सब हँसी-खुशी जाती रही। परिहास, गीत-गोष्ठियाँ, लास्य, प्रसाधन, उपभोग, आहार-आपानमडल, बन्दिजनों के श्लोक-पाठ, सब कुछ बन्द से थे। इस समय राजधाम मे अनेक प्रकार के अशकुन होने लगे। बाण ने सोलह प्रकार के महोत्पात कहे है, जैसे भूकम्प, समुद्र की लहरो का मर्यादा छोडकर बढना, धूम-केतुओं का आकाश मे ऊँचे पर दिखाई देना, उन्ही का नीचे क्षितिज के पास दिखाई पडना, सूर्यमडल मे कबन्ध का दिखाई पडना, चन्द्रमा का जलते हुए कुडल के भीतर बैठना, लाली से दिशाओ का लहूलुहान हो जाना, पृथ्वी पर रक्त की वर्षा होना, दिशाओ का काले-काले मेघो से ओझल हो जाना, घोर वज्रपात होना, धूल-गुबार का सूर्य के ऊपर छा जाना, स्यारो का मुँह उठाकर रोना, प्रतिमाओं के केशो का धुँधुआना, सिहासन के समीप भौरो का उडना, कौओ का अन्तःपुर के ऊपर उडते हुए काँव-काँव करना, बूढे गृद्ध का सिंहासन मे जडे माणिक्य पर मासखड की तरह झपटना। इस प्रकार के अशुभ निमित्त या प्राकृतिक उत्पातों का विचार बाणभट्ट के समय काफी प्रचलित था। वराह-मिहिर-कृत बृहत्संहिता मे इस प्रकार के उत्पातो और अपशकुनो पर विस्तृत विचार किया गया है।

यशोवती की वेला नामक प्रतीहारी ने आकर हर्ष को सूचना दी कि महादेवी ने सम्राट् के जीते ही अनुमरण का भयकर निश्चय कर लिया है। वेला के वर्णन में क्वणित तुलाकोटिसंज्ञक नूपुर, शिजान रशना, तरगित उत्तरीयाशुक, धम्मिल्ल केशरचना का उल्लेख किया गया है। सास्कृतिक दृष्टि से तरगित उत्तरीय से तात्पर्य उस प्रकार की उत्तरीय-रचना से था जिसमे सामने छाती पर उत्तरीय मे बारीक शिकन या रेखाएँ दिखलाई जाती है। पत्थर और काँसे की मूर्तियों मे यह लक्षण मिलता है (चित्र ५२)। इस प्रकार की मूर्तियाँ सातवी शती मे बननी आरम्भ हो गई थी। यह बाण के अवतरण से ज्ञात होता है। पृष्ठ १९९ पर भी तरगित स्तनोत्तरीय का वर्णन आया है। धम्मिल्ल किस प्रकार की केशरचना को कहते थे इसके स्पष्टीकरण के लिये इस शब्द के मूल और व्युत्पत्ति पर ध्यान जाता है। सस्कृत द्रमिड या द्रविड सिंहली दमिल, यूनानी दमरिके, तमिल देश के प्राचीन नाम है। इसी से धम्मिल्ल शब्द की व्युत्पत्ति ज्ञात होती है। धम्मिल्ल केशरचना मे सिर के ऊपर केशों को भारी जूडे के रूप मे बाँध लिया जाता था जैसा कि अजन्ता की १७ वी गुफा मे अकित प्रेयसी के चित्र मे है (राजा साहब औध-कृत अजन्ता, फलक ६९)। (चित्र ५३) इस प्रकार का केश-विन्यास उत्तरी भारत मे सर्वप्रथम गुप्तकाल मे दक्षिणी प्रभाव से आया, कुषाणकालीन मूर्तियो मे धम्मिल्ल केशरचना नही मिलती।

उस दारुण समाचार को सुनकर हर्ष तुरन्त अन्त पुर मे आया। वहाँ मरणोद्यत राजमहिषियो के आलाप सुने। इन आलापो का वर्णन काव्य के बँधे हुए ढग पर है।

इस वर्णन मे उन पशु-पक्षियों एव लता वनस्पतियो की सूची है जो अत्यन्त प्रिय भाव से राजकीय भवन मे रक्खी जाती थी। काव्यो मे प्राय इनका वर्णन मिलता है।

भवन-पादपो मे जातिगुच्छ, भवन-दाडिमलता, रक्ताशोक अन्त पुर बाल बकुल, प्रियगुलतिका और राजभवन के द्वार पर लगा हुआ सहकार, ये नाम है। इन वनस्पतियों से सम्बन्धित राजाओं के विनोदों का भी उल्लेख मिलता है। रनवास मे यौवन-सुख, आमोद प्रमोद, उद्यान-क्रीडा और सलिल-क्रीडा आदि अनेक उपभोग-लीलाओं का राजकीय दिनचर्या और ऋतुचर्या मे निश्चित स्थान कल्पित किया गया था। कादम्बरी मे राजा शूद्रक की इस प्रकार की लीलाओं का कुछ वर्णन है (कादम्बरी वैद्य० पृ० ५७-५८)। गृहपक्षियों मे पजर-शुक-शारिका, गृहमयूर, हसमिथुन, चक्रवाकयुगल, गृहसारसी और भवनहसी एवं पशुओं मे गृहहरिणिका, पजरसिह और राजवल्लभ कौलेयक (१६५) के नाम हैं। ये भी अन्त.पुर के आमोद-प्रमोदो के जनक और साझीदार थे।

यशोवती के निजी सेवक और पार्श्वचरो मे चेटी, कात्यायनिका, धात्रेयी और कचुकी का उल्लेख किया गया है। कात्यायनिका बडी-बूढी ससार का अनुभव रखनेवाली स्त्री होती थी[1]। बाण की मित्र-मडली मे भी एक कात्यायनिका थी। धात्रेयी या धात्री-सुता का काम रानी का प्रसाधन करना था[2]। कचुकी पुरुष होते हुए भी रानी के पार्श्वचरो में सम्मिलित था। उसे बाण ने आयु मे अत्यन्त वृद्ध कहा है[3]। बूढे कचुकियो मे जो सबसे अधिक आयु के थे वे रानी के सेवक नियुक्त किये जाते थे, क्योंकि वे अत्यन्त विश्वसनीय और चरित्र-शुद्ध समझे जाते थे। रानी के चारो ओर जो सखियाँ रहती थी उनमे एक मुख्य थी जिसकी पदवी प्रियसखी की थी।

हर्ष ने अपनी माता को सती-वेश धारण किए हुए देखा (गृहीतमरणप्रसाधनाम्)। वे कुसुम्भी बाना पहने थी। उस समय विधवाएँ मरणचिह्न के रूप मे लाल पट्टाशुक धारण करती थी। उनके गले मे लाल कठसूत्र था। शरीर पर कु कुम का अगराग लगा था। अशुक के आँचल मे चिताग्नि की अर्चना के लिये कुसुम भरे थे। कठ मे पैरों तक लटकती माला थी। हाथ मे पति का चित्रफलक दृढता से पकडे हुए थी। पति की प्रासयष्टि का आलिगन कर रही थी। इस प्रासयष्टि या भाले में एक पताका लगी हुई थी और पूजा के लिये अर्पित की हुई एक फूलमाला भी टँगी हुई थी। पताका के साथ प्रासयष्टि मध्यकालीन राजपूत घुडसवारो की विशेषता थी। यह उनके सिक्कों पर अकित सवार-मूर्तियो से ज्ञात होता है (चित्र ५४)। विदित होता है कि इस अभिप्राय की कल्पना सातवीं शती मे हो चुकी थी।

हर्ष ने दूर से ही आँखों मे आँसू भरकर कहा—'माँ, तुम भी मुझ मन्दभाग्य को छोड रही हो। कृपा कर इस विचार से निवृत्त होओ।' यह कहकर चरणों मे गिर पडा। देवी यशोवती उसे इस प्रकार देखकर शोक से विह्वल हो गई और साधारण स्त्री की तरह मुक्त कठ से विलाप करने लगी। उनके इस रुदन में कहा गया है कि बडे पुत्र राज्य-

१ जरत्या संस्तुतया धार्यमाणाम्, १६५। यही हमारी समझ में आर्या कात्यायनिका थी (१६४)।

२. धात्र्याच निजया प्रसाधिताम्, १६५।

३. कंचुकिभिरतिवृद्धैरनुगताम् १६५।

वर्धन कही दूर पर थे और इस अवसर पर वे नही आ सके थे। दूसरे उनकी पुत्री राज्यश्री ससुराल मे थी और वे भी उस समय तक नही आई थी। शोक कुछ कम होने पर यशोवती ने हर्ष को स्नेह के साथ उठाया, उनके आँसू पूँछे और स्वय नेत्रो से जलधार छोडती हुई उन्हे अनेक प्रकार से समझाने लगी –'मै अविधवा ही मरना चाहती हूँ, आर्यपुत्र से विरहित हो जीना नही चाहती। हे पुत्र, ऐसी अवस्था मे मै ही तुम्हे मनाती हूँ कि मेरे मनोरथ का विरोध कर मेरी कदर्थना मत करो।' यह कहकर स्वय हर्ष के चरणों मे गिर पड़ी। हर्ष ने जल्दी से अपने पैर खींच लिए और झुककर तुरन्त माता को उठाया। माता के शोक को असह्य जानकर और उनके निश्चय को दृढ समझकर वह चुप होकर नीचे देखने लगा।

इस वर्णन-प्रसग में बाण ने सास्कृतिक दृष्टि से कई मार्के की सूचनाएँ दी है। रानी यशोवती चीनांशुक का उत्तरीय धारण करती थी (विधूयमानचामरमरुच्चलचीनांशुकधरौ पयोधरौ, १६७)। उनके सिर पर पहले सुवर्णघटो से अभिषेक किया गया था और तब ललाट पर महादेवीपद का सूचक पट्टबन्ध[१] बाँधा गया था। शरीर पर तरगित स्तनोत्तरीय पहने हुए थीं। वस्त्र के प्रकरण में तरगित पद का अभिप्राय पहले कहा जा चुका है (पृ० १६३)।

रानी यशोवती ने मुख धोने के लिये चाँदी के बर्तन मे से जो जल लिया उसका निम्नलिखित वर्णन बाण की श्लेषप्रधान शब्दावली, अपनी समकालिक कला की वस्तुओ को साहित्य मे उतारने की रुचि, और स्पष्टाक्षर शब्दो के द्वारा इष्ट अर्थ को कहने की असाधारण शक्ति का हर्षचरित और कादम्बरी मे सर्वोत्तम उदाहरण माना जा सकता है—

मग्नांशुकपटान्ततनुताम्रलेखालाञ्छितलावण्यकुब्जिकावर्जितराजतराजहंसास्यसमुद्गीर्णेन पयसा प्रक्षाल्य मुखकमलम्[२]। (१६६)

---

१ वराहमिहिर के अनुसार पट्ट सोने के होते थे और पाँच प्रकार के बनाए जाते थे—राजपट्ट, महिषीपट्ट, युवराजपट्ट, सेनापतिपट्ट और प्रसादपट्ट (जो राजा की विशेष कृपा का द्योतक था)। सख्या एक मे पाँच शिखाएँ, दो और तीन में तीन शिखाएँ, चार में एक शिखा होती थी। पाँचवे प्रसादपट्ट मे शिखा या कलँगी नही लगाई जाती थी। महादेवीपट्ट साढ़े दस इच लम्बा, बीच मे सवा पाँच इच चौडा, और किनारो पर इसकी आधी चौडाई का होता था (बृहत्सहिता ४८। २४)।

१. निर्णयसागर-सस्करण मे 'मग्नांशुक' से 'समुद्गीर्णेन' तक १६ शब्दो का एक ही समास माना गया है। वही ठीक है। श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री, कावेल और कणे ने लावण्य के ऊपर अनुस्वार मानकर पहले ९ शब्दो का समास अलग करके उसे मुख-कमल का विशेषण माना है। जैसा अर्थ देखने से स्पष्ट होगा इस प्रकार पाठ-सशोधन अनावश्यक है। उससे अर्थ का चमत्कार ही जाता रहता है। या यो कहना चाहिए कि समास तोड़ने से इसका शुद्ध अर्थ हो ही नही सकता। यह वाक्य मध्यकाल में भी दुरूह हो गया था। शंकर ने इसपर टीका-टिप्पणी बिलकुल नही की यद्यपि इसमे कई शब्द ऐसे है जिनका अर्थ खोलना चाहिए था। कश्मीर के पाठ मे भी यह समास तोड दिया गया था। लावण्य से अन्त होनेवाले वाक्यांश को 'मुखकमल' का विशेषण कर लेने से ज्यो-त्यो अर्थ बिठाने की इच्छा से ऐसा किया गया होगा।

निर्णयसागर के सस्करण मे कुब्जिका की जगह कुंजिका पाठ दिया गया है। यह छापे की भूल जान पडती है। अन्य सब सस्करणों में, कश्मीरी प्रतियो मे भी कुब्जिका पाठ है और पाँचों अर्थों की दृष्टि से वही साधु है।

इस वाक्य के पॉच अर्थ है और पाँचो मे श्लेष से प्रत्येक शब्द का अर्थ ठीक बैठता है एव शब्दों के स्वरूप को भी तोडना-मरोड़ना नही पडता। बाण ने 'निरन्तरश्लेषघनाः सुजातय.' (कादम्बरी, प्रस्तावना-श्लोक ६) कहते हुए जिस शैली को आदर्श माना है वह पाँचों अर्थो मे चरितार्थ होती है। राजहस के कई अर्थ है, (१) राजा (२) हंस (३) हस की आकृति का पात्र। सख्या (२) वाले हस के पक्ष मे साधारण हस, राजहंस, ब्रह्मा का हंस—इन तीनो को लक्ष्य करने से तीन अर्थ होते है जैसा नीचे दिखाया गया है।

पहला अर्थ, हसाकृति पात्र को लक्ष्य करके

चॉदी के राजहंस की आकृति के बने हुए पात्र के मुख से निकलता हुआ जल लेकर रानी ने मुँह धोया। वह पात्र एक कुब्जिका अर्थात् आठ वर्ष के वय की सुन्दरी कुआँरी कन्या की पुतली उठाए हुए थी। हाथीदाँत का शफरुक पात्र लिए हुए कनकपुत्रिका (सोने की पुतली) का उल्लेख पहले आ चुका है (१४८)। इस प्रकार का, वास्तविक चाँदी का, राजहस की आकृति का एक पात्र तक्षशिला से सिरकप की खुदाई मे प्राप्त हो चुका है। उसकी ऊँचाई ६३ इच है (चित्र ५५)। उसे रखने के लिये आधार की आवश्यकता स्पष्ट विदित होती है। कुब्जिका या कुआँरी कन्या के आकार की पुतली के हाथ मे यह पात्र पकडाया गया था। उसके मुख से जल की धारा निर्गत होती थी। कुब्जिका का विशेषण है मग्नाशुकपटान्त-तनुताम्रलेखालाछितलावण्य। इनमे मग्नाशुक और तनुताम्रलेखा, ये दो विशेषताएँ उस समय की कला से ली गई है। गुप्तकाल मे शरीर पर पहननेवाले वस्त्र इतने भीने होते थे कि वे शरीर से सटे जाने पडते थे, देह से उन्हे अलग पहचानना कठिन था। पत्थर और ताँबे की मूर्तियों से यह विशेषता स्पष्ट पहचानी जा सकती है। अंग्रेजी मे इस प्रकार के वेष को 'वैट ड्रेपरी' कहा गया है। बाण का मग्नाशुक पद अपने युग की भाषा मे उन वस्त्रो का यथार्थ परिचय देता है। वे शरीर से ऐसे अभिन्न थे जैसे पानी में भीगने से सट गए हो।

मूर्तियों मे ये वस्त्र शिकन आदि से पृथक् न दिखाकर सामने छाती पर एक पतली रेखा डालकर अकित किए जाते है। इसके कितने ही उदाहरण पत्थर और तॉबे की मूर्तियों मे देखे जा सकते है। इनकी डोरीदार किनारी के लिये पटान्त या वस्त्रान्त की तनु-ताम्रलेखा शब्द है। यह किनारी पतली ताँबे की डोरीनुमा होती थी। इससे यह भी ज्ञात होता है कि चॉदी का पात्र उठानेवाली कुब्जिका पुतली तॉबे की ही बनी थी। इस प्रकार के मग्नाशुक वस्त्र का छोर दिखानेवाली पतली किनारी का अत्यन्त स्पष्ट उदाहरण श्रीकुमारस्वामी की भारतीय कला का इतिहास[१] नामक पुस्तक की चित्र सख्या १५६ (ताँबे की गुप्तकालीन बुद्धमूर्ति) मे देखा जा सकता है (चित्र ५६)। छाती पर डाली हुई यह डोरी मूर्ति के ऊर्ध्वकाय भाग की जान है, इसीके लिये बाण ने लाछितलावण्य पद दिया है, अर्थात् उस धारी से पुतली की लुनाई निकल रही थी। उससे बाण का भाव साफ समझ में आ जाता है। इस प्रकार इस वाक्य मे मग्नाशुक, पटान्ततनुताम्रलेखा, कुब्जिका और राजतराजहस इन चारो पारिभाषिक शब्दो के अर्थ कला की सहायता से सुविदित हो जाते हैं। (चित्र ५५, ५६, ५७)

१, हिस्ट्री आव इंडियन ऐंड इडोनेशियन आर्ट, फलक ४०, चित्र १५९।

पूरे वाक्य का अर्थ इस प्रकार हुआ—शरीर से चिपटे हुए अशुक वस्त्र के छोर पर डाली गई पतली ताँबे की धारी से जिसका सौदर्य बढ रहा था, ऐसी कुब्जिका पुतली से झुकाकर पकडे हुए चाँदी के बने राजहस की आकृति के पात्र के मुख से निकलते हुए जल से रानी ने अपना मुख-कमल धोया।

दूसरा अर्थ, राजहस पक्षी को लक्ष्य करके

इस पक्ष मे कुब्जिका=सिंघाडा[1]। अशुक वह महीन सुतिया अँखुआ या रेशा जो सिंघाडे की सिर की ओर निकली हुई टूड के भीतर रहता है[2]। पट=छिलका। तनुताम्र-लेखा=वह हलकी लाल धारी जो गुलाबी-मायल सिंघाडे के छिलके पर दिखाई देती है। सिंघाडे के पक्ष मे कुब्जिकावर्जित' का पदच्छेद कुब्जिका+आवर्जित न करके कुब्जिका+वर्जित किया जाएगा। सिंघाडा गदले बरसाती पानी मे होता है और हस उस पानी को छोड़कर चले जाते है। वे शरद् के स्वच्छ जल मे उतरते है जब तालाबों में सिंघाड़े की बेल समाप्त हो लेती है। जैसे ही सिंघाडे की बेल तालाबों के पानी में फैलाई जाती है[3] हस मानों उस सकेत को पाकर मानसरोवर की ओर चल देते है। यही कुब्जिका-वर्जित पद से बाण का तात्पर्य है। अतएव इस पक्ष में यह अर्थ होगा—'छिपे हुए अखुवे के छिलके की किनारे पर पडी हुई महीन लाल धारी से सुहावने सिंघाड़े को छोडकर जानेवाले श्वेत राजहस के मुख से उछाले हुए जल से (सरोवर मे) कमल का मुख धोकर।'

तीसरा अर्थ, राजहंस के ही पक्ष मे

इस अर्थ मे कुब्जिकावर्जित का पदच्छेद स्वाभाविक रीति से कुब्जिका आवर्जित यही होगा। भिन्न-भिन्न पदो मे श्लेषार्थ इस प्रकार है—मग्न=जल के भीतर डूबी हुई। अशुक=किरणे। तनुताम्रलेखा=पतली लाल झलक। लाछित=चिह्नित। कुब्जिका=गर्दन मोडकर बैठने की मुद्रा। इस अर्थ मे यह कल्पना की गई है। प्रातःकाल के समय सूर्य की किरणे जल मे पड रही है। उनके बीच मे गर्दन झुकाए हस तैर रहा है और अपनी चोंच से जल को उछालकर कमल का मुख धो रहा है। इस चित्र के अनुसार वाक्य का अर्थ इस प्रकार होगा—'जल मे पडी किरणों के जालरूपी पट के चारो ओर

---

१. सिंघाडा—शृगाटक, सस्कृत वारिकुब्जक (वैद्यक-शब्दसिंधु, पृ० १०६५,), कुब्जक से ही स्त्रीलिंग मे कुब्जिका, अँग्रेजी Trapa bispinosa त्रापा बाइस्पिनोसा। वाट, डिक्शनरी आफ इकनोमिक प्राडक्टस, वाल्यूम् ६, भाग ४, पृ० ७३ के अनुसार तामिल मे सिंघाड़े को कुब्यकम् (कुब्जक) कहते है।

२ अशु सूत्रादिसूक्ष्मांशे (अमरकोश, रामाश्रमी टीका, १।४।३३)। अशु एव अंशुक. (स्वार्थ मे क प्रत्यय)=महीन सुतिया अँखुवा।

३ सिंघाडे का बीज न बोकर उसकी लत्ती (लतिका) या बेल डाली जाती है। गर्मी मे किसी तरह उसे जिलाए रखते हैं। पुष्य या चिरैया नक्षत्र मे (१९-२० जुलाई के लगभग) जब ताल बरसाती पानी से भर जाते है तब सिंघाडे की बेल रोपी जाती है। कविसमय के अनुसार बरसात के गदले पानी को हस छोडकर चले जाते हैं। इसी की ओर अर्थ की ध्वनि है।

झलकती हुई पतली लाल किनारी से सुशोभित, गर्दन मोडकर झुका हुआ श्वेत राजहस मुख से जल मे किलोल करता हुआ कमल के मुख को धो रहा है।

चौथा अर्थ, ब्रह्मा के हस के पक्ष मे

राजतराजहस का एक पदच्छेद यों है, राजतर + अजहस। राजतर=उत्तम, श्रेष्ठ। अजहस=प्रजापति ब्रह्मा का हस। मग्न=पानी मे भींगा हुआ। अशुकपट=धोती की तरह पहना हुआ वस्त्र। तनुताम्रलेखा=शरीर की लाल रेखा। कवि की कल्पना इस प्रकार है- क्षीरसागर मे विष्णु की नाभि से निकलते हुए कमल के आसन पर ब्रह्माजी अपने हस के ऊपर बैठे है। शरीर के निचले भाग मे वे गीली धोती (मग्नाशुकपट) पहने है। ऊपर लाल शरीर है। इस पक्ष मे तनु का अर्थ शरीर है। ब्रह्मा का शरीर लाल है, वे रजोगुण के अधिष्ठाता है[1]। उनके लाल शरीर की आभा से हस लावण्ययुक्त बन रहा है। ऐसा उत्तम हस कुब्जिकावर्जित मुद्रा मे बैठा हुआ मुख से क्षीर सागर का पय उछालता हुआ ब्रह्मा के कमलासन को पखार रहा है। पूरा अर्थ इस प्रकार होगा— 'गीले अशुक की धोती पहने ब्रह्मा के लाल शरीर के सपर्क से सुशोभित, दुबककर बैठा हुआ उन का श्रेष्ठ हस मुख से क्षीरसागर का पय लेकर कमलासन को धो रहा है।'

पाँचवाँ अर्थ, राजहस अर्थात् प्रभाकरवर्धन एव रानी यशोवती के पक्ष मे

राजत=गौरवर्ण। राजहस=राजा प्रभाकरवर्धन जो पुरुषो मे हस जाति के है। हस शश, रुचक, भद्र और मालव्य भेद से पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभाव,शरीर,लक्षण आदि कहे गए है[2]। वराहमिहिर ने बृहत्सहिता मे हस जातीय पुरुष को सर्वोत्तम कहा है। वही यह भी कहा गया है कि हसजाति के पुरुष का सेवक या पार्श्वचर कुब्जक पुरुष ही होना चाहिए[3]। कन्या-

---

१. रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजाना प्रलयेतमःस्पृशे।
अजाय सर्गस्थिति नाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नम॥
(कादम्बरी, पहला श्लोक)

रजोजुष्=ब्रह्मा, लाल, सत्ववृत्ति=विष्णु, नील, तम स्पृश=शिव, श्वेत।

२. जिसका बृहस्पति स्वक्षेत्री, स्वराशि मे, उच्च का होकर बैठा हो वह हस कहलाता है (बृहत्सहिता, ६८।२)। हस के शरीर-लक्षण बहुत विशिष्ट होते है (६८।२४)। खस देश, शूरसेन, गन्धार, गगा-यमुना का अतराल, इनपर वह शासन करता है (६८।२६)।

३ कुब्ज वह है जिसके शरीर का निचला भाग शुद्ध या परिपूर्ण न हो, पूर्वकाय कुछ क्षीण और झुका हो। वह व्यक्ति हसजाति के पुरुष का अनुचर बनता है (बृहत्सहिता ६८।३५ दे० मानियर विलियम्स, सस्कृत कोश, पृ० २९१।)। कुब्ज और वामन राजाओं के अन्त पुर के अनुचरो मे कहे गए हैं। दोनों मे भेद है। जिसका निचला भाग भग्न या झुका हो, ऊपर ठीक हो, वह वामन, और जिसका ऊपर का झुका हो वह कुब्ज कहलाता है—

सम्पूर्णांगो वामनो भग्नपृष्ठ किंचिच्चोरूमध्यकक्ष्यान्तरेषु।
ख्यातो राज्ञां ह्येष भद्रानुजीवी स्फीतो राजा वासुदेवस्य भक्त ॥६८।३२
कुब्जो नाम्ना य स शुद्धो ह्यधस्तात् क्षीण किंचित् पूर्वकाये ततश्च।
हसासेवी नास्तिकोऽर्थैरुपेतो विद्वान् शूर सूचक स्यात् कृतज्ञ ॥६८।३५।

रूप मे वह अनुचरी कुब्जिका कहाई। वह कुब्जिका दासी जब राजा को पानपात्र में मधुपान देती है तो उससे पानपात्र लेने के लिये राजा उसकी ओर आवर्जित होते या झुकते है और उस मधु को अपने मुख मे पीकर उसका गड्डूषसेक रानी के मुख पर डालते हैं। स्त्री-पुरुष मे परस्पर गड्डूषसेक कामविलास का अग था। कादम्बरी मे राजा शूद्रक के यौवनसुखों मे बाण ने इसका भी उल्लेख किया है (कादम्बरी वैद्य०, पृ० ५७)। राजाओं के आपान-मंडल के अनेक विलासो मे यह भी गिना जाता था। इस पद्य में वाक्य का अर्थ निम्नलिखित होगा—'सटे हुए अंशुक वस्त्र के छोर की पतली लाल किनारी से दीप्त सौन्दर्यवाली कुब्जिका (सुन्दरी कन्या के हाथ मे रक्खे हुए पानपात्र) की ओर झुके हुए गौरवर्ण हंसजातीय सम्राट् प्रभाकरवर्धन के मुख से निकले हुए तरल (मधु) गंडूष से (रानी यशोवती ने अपना) कमलरूपी मुख धोकर।'

'मग्नांशुकपटान्ततनुताम्रलेखलाञ्छितलावण्य' यह पद कुब्जिका के स्थान में राजा का विशेषण भी माना जा सकता है। गौरवर्ण राजा का वेश ठीक उससे मिल जाता है जो उपरोक्त बुद्धमूर्ति मे पाया जाता है[1]। उस दशा में वाक्य का अर्थ इस प्रकार होगा—

'मग्नांशुक उत्तरीय के छोर पर बनी हुई महीन लाल किनारी से जिनका सौन्दर्य झलक रहा है और जो कुब्जिका की ओर (मधुपान लेने के लिये) झुके है, ऐसे गौर वर्ण राजा के मुख से सिंचित गड्डूष-सेक से यशोवती ने अपना मुख-कमल प्रक्षालित करके।'

इस प्रकार यह वाक्य महाकवि बाण की उत्कृष्ट जडाऊ कृति है। अर्थों मे कुछ भी खींचातानी या कूट कल्पना नही करनी पड़ती। एक बार जब हम उन कला की परिभाषाओं तक पहुँच जाते है जिनका ज्ञान बाण के युग मे लोगो को स्वाभाविक था तो एक के बाद दूसरे रसभरे अर्थों के कोष खुलने लगते है[2]।

१. कुमारस्वामी, भारतीय कला का इतिहास, चित्र १५९।

२ ऊपर के अर्थों को लिखने के कुछ दिन बाद मुझे यह देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि कम-से-कम एक विद्वान् श्री डा० आर० सी० हाजरा ने इस वाक्य के पाठ और अर्थ पर विचार करने का प्रयत्न किया था (ए पैसेज इन बाणभट्टस हर्षचरित, पूना ओरियेंटलिस्ट, भाग १४ (१९४९), पृ० १३-२०)। डा० हाज़रा ने केवल एक अर्थ (चाँदी के राजहस-संज्ञक पात्र के पक्ष मे) ही दिया है। तो भी उनके लेख से मै 'कुब्जिका' का ठीक अर्थ समझ सका। मैने भी पहले कुबडी अर्थ किया था। पर श्री हाजरा ने तंत्रो के पुष्कल प्रमाणो से सिद्ध किया है कि कुब्जिका का वास्तविक अर्थ था 'आठ वर्ष की अविवाहिता कन्या'। रुद्रयामलतंत्र तथा अन्य तंत्रों में एक वर्ष से १६ वर्ष तक की आयु की कन्याओं की सज्ञाएँ बताते हुए अष्टवर्षा कन्या को कुब्जिका कहा है। (सप्तभिर्मालिनी साक्षाद्ष्टवर्षा च कुब्जिका, रुद्रयामल, पटल ६, श्लो० ९४)। मुझे यह नया अर्थ बिल्कुल समीचीन जान पड़ता है। विशेषत जब मैं महोली (मथुरा) से मिले हुए मधुपान के दृश्य मे अंकित, चषक लिए हुए, रानी के एक पार्श्व मे खडी हुई अनुत्पन्नस्त्रीव्यंजना कन्या को देखता हूँ (मथुरा म्यूजियम हैंडबुक, चित्र २४), तो मुझे कुब्जिका का यही अर्थ निश्चित प्रतीत होता है (चित्र ५७)। मैने श्री हाजरा द्वारा प्रदर्शित कुब्जिका के इस अर्थ को यहाँ अपना लिया है। अपने लेख के पूर्वार्ध मे श्री हाजारा ने मग्नांशुक से पहले के वाक्य

रानी यशोवती अन्तःपुर से पैदल ही सरस्वती के किनारे तक गई और वहाँ सती हो गई (१६८)।

हर्ष भी माता के मरण से विह्वल होकर बन्धुवर्ग को साथ ले पिता के पास आए। प्रभाकरवर्धन के शरीर मे थोडी ही प्राणशक्ति बची थी। उनकी पुतलियाँ फिर रही थी। हर्ष के फूट-फूटकर रोने का शब्द उनके कान मे पडा। बहुत धीमे स्वर मे उन्होंने उसके लिये कुछ अन्तिम वाक्य कहे—'पुत्र, तुम महासत्व हो। लोक महासत्त्व के आश्रय से ठहरता है, राजा का अश (राजबीजिता १६८) तो बाद की वस्तु है। तुम सत्त्वधारियो में श्रेष्ठ हो, कुल के दीपक हो, पुरुषों मे सिह हो। यह पृथ्वी तुम्हारी है। राज्यलक्ष्मी ग्रहण करो। लोक का शासन करो। कोश स्वीकार करो। राजसमूह को वश मे करो। राज्यभार सभालो। प्रजाओं की सर्वथा रक्षा करो। परिजनो का पालन करो। शस्त्रो का अभ्यास दृढ करो। शत्रुओ को शेष न रखना।' यह कहते-कहते उन्होंने आँखे मीच ली।

प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद उनकी शव-शिबिका काले चँवर लगाकर बनाई गई। काले अगरु के काष्ठ से चिता तैयार की गई। अनुमरण के लिये तैयार स्त्रियो ने प्रसन्नता से कानो मे हाथीदाँत की कर्णिका और सिर पर केसर की मु डमालिका पहनी। स्वय हर्ष, एवं सामन्त, पौर और पुरोहित कधा देकर अरथी को सरस्वती के किनारे ले गए और चिता पर रखकर अग्निक्रिया की।

हर्ष ने वह भयंकर रात्रि नगी धरती पर बैठे-बैठे बिताई। कुछ दिनों तक स्वामिभक्त अन्तरग सेवक कुशाओं पर सोते रहे। हर्ष सोचने लगा कि राज्यवर्धन की मृत्यु से एक बडा अभाव हो गया है। इस प्रसग मे बाण ने सत्यवादिता, वीरता, कृतज्ञता आदि कुछ गुणों का परिगणन किया है। वस्तुत गुप्तयुग मे चरित्र-सम्बन्धी गुणों पर बहुत जोर दिया जाने लगा था। मनुष्यो के नामो मे भी (जैसे वृतिशर्मा, सत्यशर्मा) इसकी छाप पाई जाती है। स्कन्दगुप्त के जूनागढ-लेख मे पर्णदत्त और चक्रपालित के गुणों की अलग-अलग सूचियाँ दी गई है जिनपर सम्यक् विचार करके उन्हे सुराष्ट्र का गोप्ता बनाया गया था। शुक्रनीति मे भी जो गुप्तशासन का परिचय-ग्रन्थ है, सार्वजनिक अधिकारियो के लिये आवश्यक गुणों की तालिकाएँ दी गई है। कालिदास ने सब गुणो में विनय (प्रशिक्षण के द्वारा उत्पन्न योग्यता) को प्रधान माना है। बाण ने कहा है कि प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद मानो अपदानो के लिये कोई स्थान न रहा (अपदानि अपदानानि १७०)। अपदान शब्द का मूल अर्थ वीरता का विलक्षण कार्य था। सभापर्व के युधिष्ठिरराजनीति-पर्व मे योद्धाओं को 'दत्तापदाना विक्रान्ताः' (५।३७, पूना) कहा गया है। संस्कृत अपदान से ही 'अवदान' शब्द बना है जो 'दिव्यावदान' 'बोधिसत्त्वावदान' आदि नामों में बोधिसत्त्वो के चरित्र-गुण-सबधी किसी लोकोत्तरकार्य के लिये प्रयुक्त होता था।

इसके बाद सम्राट् के फूल चुनकर कलश मे रक्खे गए और वे 'भूभृद्धातुगर्भकुम्भ' हाथियों पर रखकर विविध तीर्थस्थानो और नदियो को ले जाए गए। भारहुत-साँची की

में 'नखांशुपटलेन' का पाठ माना है (अस्रुप्रवाहपूरितमार्द्रं च किंचिच्च्युतमुत्क्षिप्य हस्तेन स्तनोत्तरीय तर गितमिव नखांशुपटलेन)। श्री हाजरा ने भी 'मग्नाशुक' समुद्गीर्णेन' तक के १६ शब्दों के समास को एक ही पद माना है।

प्राचीन कला मे बुद्ध की धातुगर्भमजूषाएँ इसी प्रकार हाथियों पर ले जाई जाती हुई दिखाई गई है। यह प्रथा बहुत प्राचीन थी और बाण के समय मे भी वह प्रचलित थी [१]। मृतक के लिये उबाले भात के पिंडे जल के किनारे दिए गए, उनका रग मोम के गोले की तरह सफेद था [२]।

अगले दिन प्रातःकाल हर्ष उठे और राजकुल से बाहर निकलकर सरस्वती के किनारे गए। राजमन्दिर मे सन्नाटा छाया हुआ था। अन्त:पुर मे केवल कुछ कचुकी रह गए थे। महल की तीन कक्ष्याओ मे काम करनेवाले परिजन अनाथ की तरह थे। राज-कुजर दर्पशात अपने स्तम्भ से बँधा विषाद मे चुपचाप खडा था और ऊपर बैठे महावत की आँख से आँसुओ की धारा बह रही थी। खासा घोडे (राजवाजि) जिन्हे मदुरापालक के रुदन से सम्राट् के देहावसान का सकेत मिल चुका था, दु.खित दशा मे चुपचाप आगन मे खड़े थे [३]। महास्थानमडप सूना पडा था और जयशब्द की ध्वनि इस समय वहाँ नहीं सुन पड रही थी [४]।

सरस्वती-तीर पर जाकर हर्ष ने स्नान किया और पिता को जलाजलि दी। मृतक-स्नान करने के बाद उसने बालो मे से जल नही निचोडा और धुले हुए दुकूल वस्त्रों का जोडा पहनकर छत्र के बिना और लोगों को हटानेवाले (निरुत्सारण) प्रतीहारो के बिना वह पैदल राजभवन को लौट आया (१७२) [५]।

इसके बाद धार्मिक इतिहास की दृष्टि से हर्षचरित का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकरण है (१७२)। इसमे बाण ने २१ धार्मिक सम्प्रदायो का उल्लेख किया है। इनमे से केवल चार के नाम दिए है और शेष १७ बिना नाम के ही कहे गए है। केवल उनके धार्मिक सिद्धान्तो और आचारों के बहुत ही गूढ सकेत से उन्हे पहचानना होगा। इनमे

१ पार्थिवास्थिशकलकलास्विव कलविककधराधूसरासु तारकासु भूभृद्धातुगर्भकुंभधारिषु विविधसर सरित्तीर्थाभिमुखेषु प्रस्थितेषु वनकरिकुलेषु (१७१)। यहाँ फूलो के रग की उपमा चिरौटे के कधे के धूसर रंग से दी गई है। रगो के विषय मे बाण का निरीक्षण अत्यन्त सूक्ष्म था।

२ फूल चुनने से पहले जौ के तथा फूल चुनने के बाद भात के पिंड दिए जाते हैं।

३ मन्दुरापालाक्रन्दकथिते वाजिरभाजि राजवाजिनि। बाण का यह मूलपाठ बिल्कुल शुद्ध था। राजकुजर के विषादिनि और निष्पन्दमन्दे विशेषण घोडो के लिये भी लागू है। श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री ने अनावश्यक ही कथिते के स्थान पर 'क्वथिते' या 'व्यथिते' पाठ सशोधन किया है। कश्मीरी पाठ 'कथिते' ही है।

४ शुद्धान्त अर्थात् धवलगृह तीसरी कक्ष्या में था। उसके बाहर दूसरी कक्ष्या थी जिसमे नौकर-चाकर जमा थे। उसके बाद पहली कक्ष्या थी जिसमे एक ओर खासा हाथी (राजकुजर) के लिये इभधिष्ण्यागार, बीच मे महास्थानमडप, और बॉयी ओर खासा घोडो (राजवल्लभतुरग) के लिये मन्दुरा थी—इस प्रकार राजकुल का संक्षिप्त मानचित्र बाण ने यहाँ फिर दोहराया है जिसका विस्तृत वर्णन दूसरे उच्छ्वास मे पहले किया जा चुका है।

५ लोगों को हटाकर राजा के चारो ओर बने हुए घेरे को बाण ने समुत्सारणपर्यन्तमडल (७१) कहा है।

से कुछ लोग तो हर्ष के साथ संवेदना प्रकट करने के लिये और समझाने के लिये आते है। शेष के लिये यह कल्पना की गई है कि प्रभाकरवर्धन के अत्यन्त प्रिय (राजवल्लभ) भृत्य, सुहृद् और सचिव जो सम्राट् से वियुक्त होने के शोक को न सह सके वे घरबार छोड़कर अपने-अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार साधु बन गए। यह तो कल्पना है, पर इस प्रसंग से लाभ उठाकर बाण ने भारत के धार्मिक इतिहास पर प्रकाश डालनेवाली बहुमूल्य सामग्री एक स्थान पर दे दी है। सोमदेव ने यशस्तिलकचम्पू (६ वीं शती) मे अनेक सम्प्रदायों का और उनके सिद्धान्तो का अच्छा परिचय दिया है। श्री हंदीकी ने अपने ग्रन्थ मे ऐतिहासिक दृष्टि से उनपर विस्तृत विचार किया है[१]। श्रीहर्ष के नैषधचरित मे एव प्रबोधचन्द्रोदय आदि नाटकों मे भी इन सम्प्रदायों के नाम और उनके मतों का सकेत मिलता है। किन्तु बाण का उल्लेख सातवीं शती के पूर्वार्ध का होने से अधिक महत्त्व का है। शकराचार्य के समय से पूर्व के विभिन्न दार्शनिक मतों और धार्मिक सम्प्रदायो के ऐतिहासिक विकास पर बाण की सामग्री प्रकाश डालती है। बाण ने आगे अष्टम उच्छ्वास मे दिवाकर मित्र के आश्रम मे रहनेवाले उन्नीस सम्प्रदायो के अनुयायियों के नाम गिनाए है (२३६)। उसी सूची से प्रस्तुत प्रकरण को समझने की कुंजी प्राप्त होती है। दिवाकर मित्र के आश्रम में नाना देशीय निम्नलिखित सिद्धान्ती लोग उपस्थित थे—१ आर्हत, २ मस्करी, ३. श्वेतपट, ४. पाडुरिभिक्षु, ५. भागवत, ६. वर्णी ७. केशलुचन, ८. कापिल, ६. जैन, १०. लोकायतिक, ११. काणाद, १२. औपनिषद्, १३. ऐश्वरकारणिक, १४. कारन्धमी, १५. धर्मशास्त्री, १६. पौराणिक, १७. साप्ततन्तव, १८. शाब्द, १६. पाचरात्रिक और अन्य (२३६)। जैसा हम देखेंगे, उक्तसूची मे और यहाँ के क्रम में भेद है, किन्तु इनके पहचानने की कुंजी वहाँ अवश्य छिपी है।

हर्षचरित के पाँचवे उच्छ्वास की सूची इस प्रकार है। प्रत्येक अक के नीचे दो अर्थ दिए गए है, पहला अर्थ भृत्य आदि के पक्ष मे है, दूसरा सम्प्रदायों के पक्ष में।

१. केचिदात्मान भृगुषु बबन्धु ।

अ कुछ ने भृगुपतन स्थान मे अपने-आपको नीचे गिराकर आत्माहुति दे दी। भृगुपतन या भृगुपाद स्थान हिमालय मे केदारनाथ के समीप है जहाँ मोक्षार्थी पर्वत से नीचे कूदकर शरीरान्त कर लेते थे[२]। प्राचीन विश्वास के अनुसार आर्त लोग असह्य दुःख से त्राण पाने के लिये भृगुपतन, काशी-करवट, करीषाग्नि-दहन और समुद्र मे आत्मविलय—इन चार प्रकारों से जीवन का अन्त कर डालते थे।

आ कुछ लोग भृगुओं में अनुरक्त हुए। यहाँ भागवतों से तात्पर्य है। भृगु ने विष्णु की छाती में लात मारी, फिर भी विष्णु ने उनका सम्मान किया। यह कथन विष्णु के चरित्र की विशेषता बताने के लिये भागवतों को मान्य था। मूल में भार्गव लोग रुद्र या शिव के भक्त थे। भार्गवों के साथ वैष्णवधर्म का समन्वय इस कथा का भाव है।

१. श्री डा० के० के० हंदीकी-कृत यशस्तिलक एंड इंडियन कल्चर।

२ श्रीकैलाशचन्द्र शास्त्री ने बबन्धु के स्थान पर बभंजुः पाठ सुझाया है जो बाण के श्लिष्ट अर्थ की दृष्टि से अशुद्ध है। बन्ध धातु के यहाँ दो अर्थ हैं, आत्मार्पण करना और अनुरक्त होना।

इस समन्वय का सबसे अच्छा प्रमाण महाभारत का वर्तमान रूप है जिसमें नारायणीय धर्म और भार्गवो के चरित्रो का एक साथ वर्णन है[1]।

२ केचित्तत्रैव तीर्थेषु तस्थुः।

अ कुछ तीर्थयात्रा के लिये गए और वही रह गए।

आ दूसरे पक्ष मे तीर्थ का अर्थ गुरु है। कुछ विद्याध्ययन के लिये आचार्यो के पास गए और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर वही रह गए। ऐसे लोग वर्णी कहलाते थे। वर्णी अपने व्रत के सूचक जटा, अजिन, वल्कल, मेखला, दड, अक्षवलय आदि चिह्न धारण करते थे। इसीलिए भारवि ने वर्णिलिगी पद का प्रयोग किया है (किरातार्जुनीय १।१)। बाण ने वत्स के भाई सारस्वत के विषय मे लिखा है कि उन्होंने अविवाहित रहकर इन्हीं चिह्नों को धारण करके जन्मभर तप किया[2]। कादम्बरी मे जटा, कृष्णाजिन, वल्कल, आषाढदड धारण करनेवाली तापसियों को वर्णी कहा गया है (वैद्य० २०८)।

३ केचिदनशनैः आस्तीर्णतृणकुशा व्यथमानमानसा. शुचम् असमामशमयन्।

अ कुछ लोग आहार त्याग कर अपना भारी शोक मिटाने लगे।

आ यहाँ निराहार रहकर प्रायोपवेशन के द्वारा शरीर त्यागनेवाले अथवा लबे-लबे उपवास करनेवाले जैन साधुओं से तात्पर्य है। ये श्वेताम्बरी साधु ज्ञात होते है। कादम्बरी में सित वसन पहननेवाली श्वेतपट तापसियो का उल्लेख है।[3] अन्यजैन सम्प्रदायों के लिये सख्या ७-८ देखिए।

४ केचिद् शलभा इव वैश्वानरं शोकावेगविवशः विविशुः।

अ कुछ शोक के आवेग से अग्नि मे प्रविष्ट हो गए।

आ धार्मिक पक्ष मे यहाँ चारो ओर आग जलाकर पचाग्नितापन करनेवाले साधुओं की ओर सकेत है। स्वयं पार्वती के सम्बन्ध मे कालिदास ने पचाग्नितापन का उल्लेख किया है।[4] सम्भवतः ये लोग शुद्धवृत्ति के शैव थे। मथुरा-कला मे पंचाग्नितापन करती हुई पार्वती की अनेक मूर्तियाँ मिली है, जो गुप्तकाल से शुरू होती है। अवश्य ही वे इसी प्रकार के शिवभक्तो की जान पडती है। इनके विपरीत पाशुपत घोर वृत्ति के शैव थे, जैसे भैरवाचार्य। बाण की मित्र-मंडली मे शैव वक्रघोण इसी प्रकार का शिवभक्त जान पडता है।

५ केचिद्दारुणदुःखदह्यमानहृदया गृहीतवाचः तुषारशिखरिणं शरणं ययुः।

अ कुछ मौनव्रत लेकर हिमालय पर चले गए।

---

१ इस विषय के विस्तार के लिये देखिए, श्री विष्णु सीताराम सुकथंकर के 'भृगुवंश और भारत' शीर्षक लेख का मेरा अनुवाद, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका।

२ आत्मनापि आषाढी कृष्णाजिनी वल्कली अक्षवलयी मेखली जटी भूत्वा तप· (३८)।

३ सितवसननिबिडनिबद्धस्तनपरिकराभि श्वेतपटव्यंजनाभि तापसीभि (वैद्य०, २०८)।

४ ततश्चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टि सवितारमैक्षत॥ (कुमार० ५।२०)।

आ. यहाँ वैयाकरण लोगो से तात्पर्य है जो पाणिनि की शब्द-विद्या के माननेवाले थे। स्वयं पाणिनि वाक् या शब्द-विद्या की साधना का व्रत लेकर हिमालय मे तप करने गए थे। दिवाकर मित्र की सूची में इन्हे 'शाब्दा' कहा गया है[1]।

६ क्वचिद् विन्ध्योपत्यकासु वनकरिकुलकरशीकरासारसिच्यमानतनव. पल्लवशयनशयिन. सन्तापमशमयन्।

अ कुछ विन्ध्याचल के जगलो मे पत्तो पर सोकर अपना सन्ताप मिटाने लगे।

आ सम्प्रदाय के पक्ष मे यहाँ पाडुरि भिक्षुओ से तात्पर्य ज्ञात होता है जो पहनने और शयनादि के लिये पल्लव अर्थात् श्वेत दुकूलवस्त्रों का प्रयोग करते थे। ज्ञात होता है, ये लोग ठाटबाट से रहनेवाले महन्त थे जो हाथी आदि भी रखते थे। निशीथचूर्णि (ग्रन्थ ४, पृ० ८६५) के अनुसार आजीवकों की सज्ञा पाण्डरिभिक्षु थी।[2] ये लोग गोरस का बिल्कुल व्यवहार न करते थे। इससे बाण का यह कथन मिल जाता है कि उनके शरीर जल से सींचे गये थे।

७. केचित्सन्निहितानपि विषयानुत्सृज्य सेवाविमुखाः परिच्छिन्नैः पिडकै अटवीभुव. शून्या जगृहुः।

अ. कुछ विषयों को त्याग कर अल्पाहार से कृश शरीर होकर शून्य अटवीस्थानो मे रहने लगे।

आ. यहाँ जैन साधुओं का वर्णन है जो चान्द्रायण आदिक अनेक प्रकार के व्रतो मे अत्यन्त नपा-तुला आहार (परिच्छिन्न पिंडक) लेते थे। इन साधुओं की पहचान यापनीय सघवाले साधुओं से की जा सकती है। यदि यह सत्य हो तो बाण के समय (सातवी शती) में इस सम्प्रदाय का खूब प्रचार रहा होगा। श्री नाथूरामजी प्रेमी के अनुसार यापनीय सघ के साधु मोरपिच्छि रखते थे, नग्न रहते थे, पाणितलभोजी थे, घोर अवमोदार्य या अल्पभोजन का कष्ट सक्लिष्ट बुद्धि के विना सहकर उत्तम स्थान पाने की अभिलाषा रखते थे और मुनियों की मृत देह को शून्य स्थान मे अकेली छोड देते थे (नाथूराम प्रेमी, यापनीय साहित्य की खोज, जैन-साहित्य और इतिहास, पृ० ४४,५६)। इन पहचानो को लेकर चलें तो बाण के वर्णन से यापनीयों के सम्बन्ध मे अच्छी जानकारी मिल जाती है। बाण ने मोर-पिच्छ रखनेवालों को क्षपणक (४८) और नग्नाटक (१५२ शिखिपिच्छिलाञ्छन') कहा है। यापनीय नंगे रहते थे, यही श्वेताम्बरों से उनका भेद था। यापनीयो के लिये भी उस समय क्षपणक और नग्नाटक ये दो विशेषण प्रयुक्त होते थे। तीसरी बात बाण ने यह कही है कि ये लोग बहुत दिन तक स्नानादि के विना रहकर शरीर को अत्यन्त मलिन रखते थे। सम्भवतः मलधारी विशेषण इन्ही के लिये प्रयुक्त होता था। अल्प भोजन से शरीर को कष्ट देने की बात तो यहीं मिलती है कि वे परिमित ग्रास खाकर रहते थे (पारिच्छिन्नैः पिंडकै, १७२)। शून्य स्थान या जगलों मे आश्रय लेने की बात का भी समर्थन बाण के इसी उल्लेख में है (अटवीभुवः शून्या जगृहुः)। 'सेवाविमुखा' शब्द मे भी श्लेष ज्ञात होता है। अविमुख अर्थात् नैगमेश-सज्ञक देवता की सेवा करनेवाले। नैगमेश ने ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ से तीर्थंकर को निकालकर क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ मे बदल दिया था। बाण से पूर्व और उनके समय में जैनो मे इस देवता की पूजा का विशेष प्रचार था। मथुरा

---

१ गुप्तकाल के वैयाकरणो या शाब्दिकों के वाग्व्यसन का पद्मप्राभृतकम् नामक भाण में चित्र खीचा गया है (चतुर्भाणी १, पृ० ८ से १० तक)

२. श्री भोगीलाल सडेसरा कृत गुजराती पंचतत्र, पृ० २३४ और ५१०।

एवं अहिच्छत्रा से कुषाण और गुप्तकाल की कई नैगमेश-मूर्तियाँ मिली है। बहुत सम्भव है कि यापनीय-सघ के अनुयायी लोगो मे नैगमेश की पूजा का विशेष प्रचार गुप्तकाल या उसके कुछ बाद भी जारी रहा।

८ केचित्पवनाशना धर्मधना धमद्धमनयो मुनयो बभूवु ।

अ. कुछ वायुभक्षण करते हुए कृशशरीर मुनि हो गए।

आ, यह दिगम्बर जैन साधुओं का वर्णन है। सब प्रकार का आहार त्याग कर वायुभक्षण से तपश्चर्या करते हुए वे शरीर को सुखाते थे। धमद्धमनयः विशेषण इन लोगों के लिये सार्थक था। उग्र तपस्या करते हुए बुद्ध को कृश और धमनिसस्थित कहा गया है। इसका उदाहरण गंधारकला में निर्मित तप करते हुए बुद्ध की मूर्ति है जिसमे एक-एक नस दिखाई गई है। बुद्ध ने तो इस प्रकार का उग्र मार्ग त्याग कर मज्झिमपटिपदा (बीच का रास्ता) अपना ली थी, किन्तु महावीर उसी मार्ग पर आरूढ रहे। दिवाकर मित्र के आश्रम की सूची में बाण ने जिन्हे केशलुंचन कहा है वे ये ही ज्ञात होते है और जिन्हें आर्हत कहा है वे यापनीय-संघ के। हिन्दी मे एक मुहावरा है लुचा-लुंगाड़ा। इसका लुचा पद लुंचित या केशलुंचन की ओर सकेत करता है। लुंगाड़ा शब्द नग्नाटक का अपभ्रंश रूप है। इस प्रकार लुचा-लुंगाडा पद में दिगम्बरी साधु और यापनीय-सम्प्रदाय के साधु, इन दोनों की ओर एक साथ सकेत विहित ज्ञात होता है। इस प्रकार यापनीयों की उस समय नग्नाटक, क्षपणक, आर्हत आदि कई सज्ञाएँ प्रचलित थी।

९ केचित् गृहीतकाषायाः कापिल मतम् अधिजगिरे गिरिषु (१७३)।

अ कुछ काषाय धारण करके गिरिकन्दराओं मे कपिलमत का अध्ययन करने लगे।

आ कपिलमतानुयायी साधुओं को बाण ने लंबी जटाएँ रखनेवाले (जटावलम्बी, ५०) कहा है। दिवाकर मित्र के आश्रम मे भी कापिलो का उल्लेख है। कपिलमतानुयायी साख्यवादी साधु मोक्षमार्ग का अनुसरण करते और काषाय वस्त्र पहनते थे (दे० याज्ञ० स्मृति ३।५७)।

१०. केचित् आचोटितचूडामणिषु शिरस्सु शरणीकृतधूर्जटयो जटा जघटिरे।

अ कुछ ने चूडामणि उतारकर शिव की शरण लेकर जटाएँ रख लीं।

आ. ये लोग पाशुपत शैव ज्ञात होते हैं। हर्ष के स्कन्धावार में पाशुपत साधु भी एकत्र थे। पाशुपतव्रतधारिणी परिव्राजिकाएँ माथे पर भस्म लगाकर हाथ में रुद्राक्ष की माला लिए शरीर पर गेरुए वस्त्र पहनती थी[1]। प्रथम शताब्दी ई० के बाद से मथुरा और समस्त उत्तरभारत मे पाशुपत शैवों का व्यापक प्रचार हो गया था[2]।

११ अपरे परिपाटलप्रलम्बचीवराम्बरसवीताः स्वाम्यनुरागमुज्जवल चक्रुः।

अ. कुछ लाल रंग का लम्बा चीवर पहनकर स्वामी के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करने लगे।

आ साधुओं के पक्ष में, लाल लम्बा चीवर अर्थात् संघाटी पहननेवाले भिक्षु स्वामी अर्थात् बुद्ध के प्रति अपना अनुराग प्रकट कर रहे थे। बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र भी अरुण

१. धवलभस्मललाटिकाभि अक्षमालिकापरिवर्तनप्रचलकरतलाभि पाशुपतव्रतधारिणीभिः धातुरागारुणाम्बराभिश्च परिव्राजिकाभि (कादम्बरी वैद्य० २०८)।

२ शकराचार्य ने पाशुपतदर्शन का खंडन किया है (शारीरकभाष्य, २।२।३७)।

चीवर-पटल पहने था (२३७)। कादम्बरी मे पक्के तालफल के छिलके की तरह लाल वस्त्र पहननेवाली और रक्तपट साधुओं का व्रत धारण करनेवाली तापसियों का उल्लेख है[1]। बाण ने बौद्धो के लिये जैन शब्द प्रयुक्त किया है। शकर ने हर्ष के स्कन्धावार में एकत्र जैन साधुओं का अर्थ शाक्य ही किया है (पृ० ६०)। इस युग के संस्कृत-बौद्ध-साहित्य में बुद्ध के लिए बराबर जिननाथ शब्द आया है। बाण ने बौद्ध भिक्षुओ को शमी कहा है।[2]

१२ अन्ये तपोवनहरिणजिह्वाचलोल्लिह्यमानमूर्तयो जरा ययुः।

अ कुछ तपोवन मे आश्रममृगों से चाटे जाते हुए वार्द्धक्य को प्राप्त हुए।

आ साधुओं के पक्ष मे, इसमे वैखानसों का उल्लेख है जो गृहस्थ-जीवन के बाद वानप्रस्थ-आश्रम तपोवन मे व्यतीत करते थे। भवभूति ने तपोवनो मे वृक्षों के नीचे रहनेवाले वृद्ध गृहस्थों को जो शमधर्म का पालन करते थे, वैखानस कहा है।[3] कालिदास ने भी कण्व के आश्रम मे शमप्रधान तपोधन साधुओ के आदर्श का वर्णन किया है। ज्ञात होता है कि कण्व का आश्रम भी वैखानसों के आदर्श पर ही सगठित था। इसीलिए उसमे स्त्रियों के भी एक साथ रहने की सुविधा थी। बाण से पहले गुप्तकाल मे ही वैखानस-धर्म ने महत्त्व प्राप्त कर लिया था। इस वैखानस-आदर्श मे कई धाराओं का समन्वय हुआ। उन्होंने गृहस्थधर्म को प्रतिष्ठा दी। गृहस्थाश्रम के बाद भिक्षु बनने का मार्ग भी खुला रखा, किन्तु स्त्री का परित्याग करके नहीं, बल्कि उसे साथ लेकर वानप्रस्थ-आश्रम मे शमधर्म का पालन करते हुए। उपलब्ध वैखानस-आगमो से एक बात और ज्ञात होती है कि वैखानसों ने धर्म के क्षेत्र मे एक ओर भागवतधर्म और पाचरात्रों की व्यूहपूजा को स्वीकार किया तो दूसरी ओर वैदिक यज्ञों को भी अपने पूजापाठ मे नये ढग से सम्मिलित करते हुए ग्रहण किया। इस प्रकार वैखानस-धर्म कई धाराओं को साथ लेकर गुप्तकाल के धार्मिक आन्दोलन मे युग की आवश्यकताओं के अनुसार विकसित हुआ। वसिष्ठ और जनक के जीवन उसके आदर्श थे। वस्तुतः वैष्णवों मे भी भागवत, पाचरात्र, वैखानस और सात्वत आदि भेद थे। दिवाकर मित्र के आश्रम में भागवत और पाचरात्रिकों का पृथक् उल्लेख हुआ है। पाचरात्रिक चतुर्व्यूह के माननेवाले थे। उन्ही मे कुछ लोग अपने को एकान्तिन् कहकर केवल वासुदेव विष्णु की उपासना करते थे। सात्वतों का सम्बन्ध प्राचीन नारायणीय धर्म से था। वे विष्णु के अन्य अवतारों—विशेषत. नृसिंह और वराह—को भी मानते थे। नृसिंह वराहमुखो के साथ विष्णु की अनेक मूर्तियाँ मथुरा-कला में मिली हैं। वे सात्वत-परम्परा मे ही ज्ञात होती हैं। वैखानस-धर्मानुयायी पचवीर अथवा सत्यपञ्चक के रूप में विष्णु और उनके चार अन्य साथियों या चतुर्व्यूह की उपासना करते थे। धार्मिक

---

१ परिणततालफलवल्कललोहितवस्त्राभिः रक्तपटवृतवाहिनीभि तापसीभि (कादम्बरी वैद्य० २०८)।

२ शाक्याश्रम इति शमीभि. (९८)।

३ एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटे वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमा शमिनो भजन्ते नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि (उत्तररामचरित १।२५)।
इससे ज्ञात होता है कि वैखानस लोग आतिथ्यधर्म मे निष्ठा रखते थे और तपोवन में स्वय उत्पन्न होनेवाले नीवारादि धान्यो से जीवनयात्रा चलाते थे।

इतिहास के लिये भागवतों के विविध सिद्धान्तों और आचारों का अन्वेषण महत्त्वपूर्ण है। साहित्य और कला दोनो पर उनकी छाप पडी थी।

१३ अपरे पुनः पाणिपल्लवप्रमृष्टैराताम्ररागैर्नयनपुटैः कमडलुभिश्च वारि वहन्तो गृहीतव्रता मुडा विचेरु ।

अ कुछ ने आँसू भरे हुए लाल नेत्रों को हाथो से पूँछकर और कमडलु के जल से धोकर सिर मुँडवा लिया और भूमि-शयन, एक बार भोजन आदि विविध व्रत ले लिए।

आ साधुओं के पक्ष मे, बाण यहाँ पाराशरी भिक्षुओं का वर्णन कर रहे हैं। दिवाकर मित्र के आश्रम की सूची मे पाराशरी नाम नही है, किन्तु हर्षचरित में अन्यत्र पाराशरियों का जो लक्षण बाण ने दिया है वह इससे बिल्कुल मिल जाता है। द्वितीय उच्छ्वास मे कहा गया है कि कमडलु के जल से हाथ-पैर धोकर चैत्यवन्दन करनेवाले लोग पाराशरी थे[1]। बाण ने अन्यत्र यह भी कहा है कि पाराशरी ब्राह्मणों से द्वेष करते थे (पाराशरी ब्राह्मण्यो जगति दुर्लभः १८१)। यह बात इनकी चैत्यपूजा-परायणता से भी प्रकट होती है। शकराचार्य ने 'जटिलो मुडी लुचितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेशः' इस पद्याश में चार प्रकार के प्रमुख सप्रदायो का उल्लेख किया है। जटिल (=कापिल), मुडी (=पाराशरी), लुचितकेश (=केशलुचन करनेवाले जैन) और काषायाम्बरधारी (=बौद्ध)। पाराशरी भिक्षुओं का उल्लेख तो पाणिनि की अष्टाध्यायी मे भी मिलता है[2], किन्तु चैत्यपूजा करनेवाले इन पाराशरियों का प्राचीन पाराशरी भिक्षुओं से क्या सबध था—इसे स्पष्ट करनेवाली इतिहास की कडियाँ अविदित है।

इसके आगे बाण ने हर्ष को समझाने के लिये आए हुए आठ अन्य प्रकार के लोगों का वर्णन किया है।

१४ पितृपितामहपरिग्रहागताश्चिरन्तना. कुलपुत्रा.।

अ वे पुराने कुलपुत्र जिनके पितृ-पितामह को सम्राट् का परिग्रह प्राप्त हुआ था और पीढी-दर-पीढी क्रम से जो लोग राजकुल की भक्ति करते चले आते थे, जो राजकुल मे कुलपुत्र सज्ञा से अभिहित होते थे, वे भी आए।

आ सम्प्रदाय-पक्ष मे यहाँ पाचरात्रिकों का उल्लेख है जो पितृ-पितामह के परिवार-क्रम से समुदित पचव्यूह अर्थात् वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, और साम्ब की पूजा करते थे। वासुदेव और सकर्षण की पूजा सबसे प्राचीन थी। आगे चलकर उस परम्परा मे प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि कुलपुत्र भी सम्मिलित कर लिए गए।

१५ वशक्रमाहितगौरवाश्च ग्राह्यगिर. गुरवः।

अ वशक्रम से पूजित ऐसे गुरुजन जिनकी बात मानी जाती थी, आए।

आ सम्प्रदाय-पक्ष मे यहाँ बाण ने सम्भवतः नैयायिकों का उल्लेख किया है। वे ही लोग निग्रहस्थानों की व्याख्या करते थे जिसका सकेत ग्राह्यगिर. पद मे है। अन्य

१ कमडलुजलशुचिशयचरणेषु चैत्यप्रणतिपरेषु पाराशरिषु (८०)। बाण की मित्र-मंडली मे पाराशरी, क्षपणक, मस्करी, शैव, धातुवादविद् भी थे। उन सबका यहाँ उल्लेख हुआ है।

२ पाराशर्यशिलालिभ्या भिक्षुनटसूत्रयो (४।३।११०) पाराशरिणो भिक्षव ।

समस्त दर्शनों के मध्य मे प्रमाणों पर आश्रित विवेचन-प्रणाली के कारण नैयायिक सबके गुरु समझे जाते थे। प्रत्येक दर्शन ईश्वर, जीव, जगत् के मतो को माने न माने, लेकिन षोडश पदार्थ और प्रमाण की तर्कसगत प्रणाली प्रत्येक को माननी पडती थी। 'वशक्रम से गौरव प्राप्त करनेवाले' यह विशेषण भी न्यायदर्शन के लिये ही चरितार्थ होता है। जैसा श्रीबलदेवउपाध्यायजी ने लिखा है—'आरम्भ मे न्याय और वैशेषिक स्वतन्त्र दर्शनो के रूप मे प्रादुर्भूत हुए। अपने उत्पत्तिकाल मे न्याय पूर्वदर्शन मीमासा का पुत्र था, परन्तु कालातर मे वह वैशेषिक का कृतक पुत्र बन गया[1]।

इनकी पहिचान दिवाकर मित्र के आश्रम की सूची में उल्लिखित ऐश्वरकारणिक दार्शनिकों से की जानी चाहिए। न्याय दर्शन ईश्वर को जगत् का निमित्त कारण मानता है, यही उसका मुख्य सिद्धान्त है[2]।

१६ श्रुतिस्मृतीतिहासविशारदाश्च जरद्द्विजातय'।

अ अर्थात् श्रुति-स्मृति-इतिहास के ज्ञाता तीन वर्णों के वृद्ध द्विजाति उपस्थित हुए।

आ यहाँ दिवाकर मित्र के आश्रम की सूची के धर्मशास्त्रियो से अभिप्राय है। धर्मशास्त्रों मे धर्म का मुख्य आधार श्रुति, स्मृति और सदाचार अर्थात् इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषों के आचार या कर्म कहा गया है[3]। द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य, इनके उल्लेख की सगति भी धर्मशास्त्रियों के साथ ही लगती है।

१७ श्रुताभिजनशीलशालिनो मूर्द्धाभिषिक्ताश्चामात्याः।

अ ज्ञान, कुल और शील से युक्त, मूर्द्धाभिषिक्त राजा लोग जो अमात्य पदवी के अधिकारी थे, हर्ष के साथ सवेदना प्रकट करने के लिये उपस्थित हुए।

आ सप्रदाय-पक्ष मे यह महत्त्वपूर्ण उल्लेख यज्ञवादी मीमासकों के लिये है। दिवाकर मित्र के आश्रम की सूची मे इन्ही को साप्ततान्तव कहा गया है। ऋग्वेद (१० । ५२ । ४, १० । १२४ । १) मे यज्ञ के लिये सप्ततन्तु विशेषण प्रयुक्त हुआ है। महाभारत मे भी यज्ञ को सप्ततन्तु कहा गया है। अतएव साप्ततान्तव और मीमासक दोनो एक ही थे। ये लोग श्रुति अर्थात् वेद को ब्राह्मणग्रन्थों पर आश्रित कर्मकाड का मूल स्रोत या आधार मानते थे (अभिजन=पूर्वजों का वासस्थान)। यज्ञ मे अवभृथ-स्नान करने के कारण इन्हे मूर्द्धाभिषिक्त कहा गया है।

यज्ञ-पक्ष में अमात्य शब्द का अर्थ है यज्ञशाला मे रहनेवाले (अमा=अग्निशरण या घर + त्य)। राजानः पद भी श्लिष्ट ज्ञात होता है। राजा अर्थात् सोम रखनेवाले (राजान.)[4]।

---

१ भारतीय दर्शन (१९४२) पृ० २३६।

२ श्रीबलदेव उपाध्यायकृत भारतीय दर्शन, पृ० २७४। और भी, शाकर भाष्य (२।२।३७)। वेदान्तदर्शन की न्याय से यह विशेषता है कि वह ईश्वर को निमित्त और उपादान कारण दोनो ही मानता है।

३ वेद स्मृति सदाचारो स्वस्य च प्रियमात्मन ।
एतच्चतुर्विध प्राहु . साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ (मनु० २ । १२)

४ अर्शादिभ्योऽच् (५ । २ । १२७)। जहाँ किसी वस्तु और उसके स्वामी दोनो के लिये एक ही शब्द हो वहाँ यह प्रत्यय होता है। अतएव राजा=सोम, सोमवाला।

इस वाक्य में अमात्य शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रश्न यह है कि मूर्धाभिषिक्त-राजा अमात्य कैसे हो सकते है। बाण ने उनके लिए किस स्थिति मे अमात्य पद का प्रयोग किया है। इसका उत्तर यह है कि अमात्य शब्द राजनैतिक क्षेत्र की एक विशेष पदवी का नाम था। गुप्त-अभिलेखों मे प्रयुक्त कुमारामात्य पद के अर्थ पर विचार करने से इस अमात्य शब्द का अर्थ समझ मे आ सकता है। अमात्य का एक अर्थ सखा या साथी भी था। परमभट्टारक सम्राट् के साथ सखाभाव या बराबरी का पद किसी का नही हो सकता था। कुमार राज्यवर्द्धन के लिये कुमारगुप्त और माधवगुप्त सखा नियुक्त किए गए थे। ज्ञात होता है कि बहुत पहले से कुमारो के बराबर सम्मान के भागी उनके सखाओं की नियुक्ति होने लगी थी। पीछे चलकर यही गौरवपूर्ण पद कुमारामत्य के रूप मे नियमित किया गया। कुमारामात्य पदवी मन्त्रिपरिषद् के मन्त्री, सेनापति आदि शासन के उच्चतम अधिकारियो को प्रदान की जाती थी। समुद्रगुप्त के प्रयाग-स्तम्भ-लेख मे हरिषेण के नाम के पहले तीन विशेषण प्रयुक्त हुए है १. साधिविगृहिक (सधि और विगृह का अधिकारी मन्त्रि-परिषद् का एक सदस्य) २ कुमारामात्य ३. महादड नायक। इनमे महादडनायक सैनिक पद (मिलिट्री रैंक) का द्योतक था। साधिविगृहिक शासनतंत्र के अधिकारपद (आफिस) का सूचक था और कुमारामात्य व्यक्तिगत सम्मानित पदवी का वाचक (टाइटिल)[१] था। प्रस्तुत प्रसग में मूर्धाभिषिक्त राजाओं को जो सम्राट् के अधीन थे, अमात्य अर्थात् कुमारामात्य का सम्भानित पद प्रदान किया गया था। यहाँ अमात्य का अर्थ मन्त्री नही है।

१८ यथावदभिगतात्मतत्त्वाश्च संस्तुता मस्करिणः।

अ. आत्मतत्त्व को ठीक प्रकार से अधिगत करनेवाले प्रसिद्ध मस्करी साधु भी उपस्थित हुए थे। यहाँ बाण ने स्वय ही सप्रदाय का नाम दे दिया है। पाणिनि ने मस्करी परिव्राजकों का उल्लेख किया है। कुछ इन्हे मखली गोशाल का अनुयायी आजीवक मानते है। बाण के समय मे इनके दार्शनिक मतो मे कुछ परिवर्तन हो गया होगा। अपने मूलरूप मे मस्करी भाग्य या नियतिवादी थे। जो भाग्य मे लिखा है वही होगा, कर्म करना बेकार है, यही उनका मत था। किन्तु बाण ने उनके मत का ऐसा कोई सकेत नही किया है।

१६ समदुःखसुखाश्च मुनयः।

अर्थात् दुःख-सुख को एक-सा समझनेवाले मुनि लोग। ये लोग सभवतः लोकायत मत के माननेवाले थे जिनके लिए सब-कुछ सुख या मौज ही है।

२०. संसारासारत्वकथनकुशलाः ब्रह्मवादिनः।

ससार की असारता का उपदेश देनेवाले ब्रह्मवादी शाकर वेदान्त के अनुयायियों का स्मरण दिलाते है। शंकराचार्य बाण से लगभग दो शती बाद हुए, किन्तु उपनिषदों पर आश्रित ब्रह्मवाद का ऊहापोह उनसे बहुत पहले ही आरभ हो गया था, ऐसा ज्ञात होता है। बाण ने दिवाकर मित्र के आश्रम में औपनिषद दार्शनिकों का उल्लेख किया है। हर्षचरित के टीकाकार शकर ने उसका अर्थ वेदान्तवादी किया है। कालिदास ने विक्रमोर्वशी के

१. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के मत्री शिखरस्वामी को भी कर्मदंडा लेख में कुमारामात्य कहा गया है। गुप्त-शासन में कुमारामात्य खिताब मन्त्रियो से लेकर विषयपति तक के लिये सुरक्षित था (दे० दामोदरपुर ताम्रपत्र, कोटिवर्षविषये तन्नियुक्तकुमारामात्य)।

मगलश्लोक में 'वेदान्तेषु' ऐसा उल्लेख किया है। वहाँ भी उसका अर्थ उपनिषद् ही किया जाता है। उपनिषदों पर आश्रित ब्रह्मवाद की परंपरा का आरंभ बहुत पहले ही हुआ। शकराचार्य तो उसके परमोत्कर्ष के द्योतक है।

२१ शोकापनयननिपुणाश्च पौराणिका ।

अर्थात् अनेक प्रकार के प्राचीन दृष्टान्त सुनाकर शोक को कम करनेवाले पौराणिक लोग भी उस समय वहाँ हर्ष के पास आए। दिवाकरमित्र के आश्रम की सूची में भी पौराणिकों का उल्लेख है। गुप्तकाल में पुराणों के उपबृहण और परिवर्द्धन पर विशेष ध्यान दिया गया था। तत्कालीन धर्म और संस्कृति के लिये उपयोगी अनेक प्रकरण पुराणों में नए जोड़े गए और नए पुराणों की रचना भी हुई, जैसे विष्णुधर्मोत्तरपुराण ठेठ गुप्तकाल की सास्कृतिक सामग्री से भरा है और उसी युग की रचना है। यह सब कार्य जिन विद्वानों के द्वारा सम्पन्न होता था वे ही पौराणिक कहलाते थे। तत्कालीन विद्या के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उनकी भी प्रतिष्ठित गणना थी।

इन लोगो के समझाने-बुझाने से हर्ष का शोक कुछ कम हुआ और उसके मन में परदेश गए राज्यवर्द्धन के विषय मे अनेक विचार आने लगे। यहाँ बाण ने राजवर्द्धन के जीवन की तुलना बुद्ध के जीवन से की है और यह कल्पना कीहै कि कहीं राज्यवर्द्धन भी बुद्ध की तरह आचरण न कर बैठे। बाँसखेड़ा-ताम्रपत्र-लेख में राज्यवर्द्धन प्रथम, उनके पुत्र आदित्यवर्द्धन और उनके पुत्र प्रभाकरवर्द्धन को परमादित्यभक्त कहा गया है एव प्रभाकरवर्द्धन के दो पुत्रों में से राज्यवर्द्धन को परमसौगत[1] और हर्ष को परममाहेश्वर कहा गया है। राज्यवर्द्धन के विषय में ताम्रपत्र के इस उल्लेख का विचित्र समर्थन हर्षचरित से होता है। श्लेष में छिपे होने के कारण अभी तक विद्वानों का ध्यान इसपर नही गया था। निम्नलिखित वाक्यों के अर्थों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

१. अपि नाम तातस्य मरण महाप्रलयसदृशमिदमुपश्रुत्यार्यो बाष्पजलस्नातो न गृह्णीयाद् वल्कले।

अर्थात् कही आर्य राज्यवर्द्धन महाप्रलय के सदृश इस मरण-दु ख को सुनकर रोते हुए वल्कल न पहन लें ,जैसे आर्य (बुद्ध) ने चार दृश्यो में मरण-संबंध घोर दु ख के विषय मे (अपने सारथि से) सुनकर दु ख से चीवर पहन लिए थे।

२ नाश्रयेद् वा राजर्षिराश्रमपदं।

कही राजर्षि राज्यवर्द्धन किसी आश्रम में प्रविष्ट न हो जाएँ, जैसे राजर्षि बुद्ध ने आलार कालाम के आश्रम मे प्रवेश किया था।

३. न विशेद् वा पुरुषसिंहो गिरिगुहां।

कही वह पुरुष-सिंह पर्वत की गुफा मे न चला जाए, जैसे शाक्यसिंह (गौतम) इन्द्रशैलगुहा में चले गए थे।

४ अम्रसलिलनिर्भरभरितनयननलिनयुगलो वा पश्येदनाथा पृथिवीं।

कही वह इस पृथिवी को अनाथ देखकर नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा न प्रवाहित करने लगे, जैसे बुद्ध ने भूमिस्पर्श मुद्रा के समय प्रकट हुई पृथिवी को मारधर्षण से अनाथ देख कर दु ख माना था।

१. परमसौगतस्सुगत इव परहितैकरतः, बाँसखेड़ा ताम्रपट्ट, पंक्ति ५।

५. प्रथमव्यसनविषमविह्वल स्मरेदात्मानं वा पुरुषोत्तम ।

कहीं वह श्रेष्ठ मनुष्य दु ख की इस पहली चोट से घबराकर संसार से विमुख होकर आत्मचिन्तन में न लग जाए, जैसे पुरुषोत्तम बुद्ध मारवर्षण के समय 'अत्ता' (आत्मा) का ध्यान करने लगे थे।

६. अनित्यतया जनितवैराग्यो वा न निराकुर्यादुपसर्पन्ती राज्यलक्ष्मी।

कही वह संसार की अनित्यता से वैराग्यवान् होकर आती हुई राज्यलक्ष्मी से विमुख न हो जाए, जैसे बुद्ध ने वैराग्य उत्पन्न होने के बाद बिम्बसार के द्वारा दी हुई राज्यलक्ष्मी को अस्वीकार कर दिया था।

७. दारुणदु खदहनप्रज्वलितदेहो वा प्रतिपद्येताभिषेकं।

कहीं इस दारुण दु खरूपी अग्नि से जलती हुई उसकी देह को अभिषेक की आवश्यकता न पड़े, जैसे बुद्ध ने महाकश्यप के आश्रम मे देह से अग्नि की ज्वालाएँ प्रकट होने पर जलधाराएँ प्रकट करके अभिषेक किया था।

८ इहागतो वा राजभिरभिधीयमानो न पराचीनतामाचरेत।

अथवा यहाँ लौट आने पर जब राजा लोग उससे सिंहासन पर बैठने की प्रार्थना करें तो वह पराङ्मुख न हो जाए, जैसे कपिलवस्तु मे लौटने पर बुद्ध ने शुद्धोदन के आग्रह करने पर भी राजकुल के भोगों के प्रति पराङ्मुखता दिखाई थी।

इस प्रकार मन में अनेक प्रकार के विचार लाते हुए हर्ष राज्यवर्द्धन के लौटने की बाट देखता रहा।

छठा उच्छ्वास

हर्ष ने इस प्रकार राज्यवर्द्धन की प्रतीक्षा करते हुए अशौच के दिन बिताए। इस प्रसंग में बाण ने मृतकसम्बन्धी कुछ प्रथाओं का वर्णन किया है जो आज भी प्रचलित हैं, जैसे—

१. प्रेत-पिंड खानेवाले ब्राह्मणों[1] को जिमाया गया (प्रथमप्रेतपिंडभुजि भुक्ते द्विजन्मनि, १७५)। दस दिन तक महाब्राह्मण जो मृतकपिंड खाते है, वे प्रेतपिंड भुक् कहलाते हैं। उस समय मृतक को प्रेत कहते है। ग्यारहवें दिन एकादशाह या सपिंडीकरण की क्रिया होती है। उसके साथ मृतक व्यक्ति पितरों में मिल जाता है। एकादशाह के दिन अशौच समाप्त हो जाता है, इसी के लिये बाण ने कहा है, गतेषु अशौचदिवसेषु (१७५)। दशाह पिंड तक जो ब्राह्मणभोजन होता है उसे बाण ने प्रथम-प्रेतपिंड-भोजन कहा है, क्योंकि अशौच समाप्त होने पर पुन तेरहवें दिन या उसके कुछ बाद ब्राह्मणभोजन होता है।

२. द्वितीय ब्राह्मणभोजन में उच्च कोटि के पाङ्क्तेय ब्राह्मण भाग लेते हैं जो यज्ञ, अग्निहोत्र आदि देवकार्य कराते है। इसी कारण दोनों प्रकार के ब्राह्मणों को अलग-अलग कहा है, यद्यपि दोनों के ही लिये द्विज शब्द का प्रयोग किया गया है। इन ब्राह्मणों को भोजन के अतिरिक्त दुबारा शय्यादान भी दिया जाता है। इसी के लिये बाण ने लिखा है-- राजा के निजी उपयोग की जो सामग्री--पलंग, पीढा, चॅवर, छत्र, बर्तन, सवारी, हथियार आदि— घर में थी, और अब जो आँखो मे शूल-सी चुभती थी वह शय्यादान के साथ ब्राह्मणों को दे दी गई। (चक्षुर्दाहदायिनि दीयमाने द्विजेभ्य शयनासनचामरातपत्रामत्र-पत्र शस्त्रादिके नृपनिकटोपकरणकलापे, १७५)।

३. मृतक के फूल तीर्थस्थानों मे जलप्रवाह के लिये भेज दिए गए (नीतेषु तीर्थ-स्थानानि कीकसेषु, १७५)। इसके विषय में कहा जा चुका है कि सम्राट् के धातुगर्भकुम्भ हाथियों पर रखकर विविध सरोवर, नदी और तीर्थों मे सिलाने के लिये रवाना किए गए थे (१७१)।

४. चिता के स्थान पर चैत्य-चिह्न स्थापित किया गया जो सुधा या गचकारी से बनाया गया था। शंकर ने चिताचैत्य का अर्थ श्मशान-देवगृह किया है। बाण के समय में इन चैत्यों की क्या आकृति थी इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु अनुमान होता है कि ये चैत्य-चिह्न वही थे जिन्हे अमरकोश मे 'एडूक' कहा गया है, जिनके अन्दर कीकसा या मृत व्यक्ति की शरीर-धातु का कोई अंश रख दिया जाता था[2]। गुप्तकाल में एडूक बनाने की प्रथा का परिचय विष्णुधर्मोत्तरपुराण से मिलता है। ये त्रिमेधिस्तूप की आकृति के होते थे अर्थात् क्रमश परिमाण मे कम होते हुए एक दूसरे पर बने तीन चबूतरों के ऊपर किसी देवचिह्न, शिवलिंग या प्रतिमा की स्थापना की जाती थी। अहिच्छत्रा की खुदाई

१. इन्हें आजकल अचारज, अचारजी (आचार्य) कहा जाता है।
२. एडूकं यदन्तर्न्यस्तकीकसम्, अमर २।२।४।

में इस प्रकार का एक एड्डक मिला है। महाभारत में भी कलियुगविषयक भविष्यवाणी में कहा गया है कि पृथ्व एड्डक-चिह्नों से भर जायग (वनपर्व १६० । ६५-६७)।

इसके बाद दो बातो का और उल्लेख है, एक राजगजेन्द्र या प्रभाकरवर्द्धन के खासा हाथी का वन में छोड दिया जाना , दूसरे स्यापे क प्रथा जो पंजाब मे अभी तक प्रचलित है, अर्थात् गत गाकर शोक मनाना और उस रूप मे स्यापा करने के लिये मृतक के यहाँ जाना। इसके लिये कविरुदितक शब्द का प्रयोग हुआ है।

जब यह हो चुका तो सब वृद्ध बन्धुवर्ग, महाजन और मौल (वशक्रमागत) मंत्र हर्ष के पास आए। शीघ्र ही उसने हूणयुद्ध से घायल होकर लौटे वडे भाई को देखा। राज्यवर्द्धन के शरीर के घावो पर लम्बी सफेद पट्टियाँ बँधी थी (हूणनिर्जयसमरशरव्रणबद्धपट्टकै दीर्घधवलै , १७६)। यह अनिश्चित है कि हूणों को दबाने में राज्यवर्द्धन कहाँ तक सफल हुए। इस समय पिता की मृत्यु के शोक से उनकी हालत बहुत खराब थी। शरीर कृश हो गया था। सिर पर चूडामणि और शेखर दोनो का पता न था। ज्ञात होता है कि उस समय दो आभूषण और तीसरी मुडमाला पहनने का रिवाज था। हर्ष के सिर पर भी दरबार के समय इन तीनों का वर्णन किया गया है (७४)। राज्यवर्द्धन के कान में इस समय इन्द्रनीलजटित बाली (इन्द्रनीलिका) के स्थान पर पवित्री पडी हुई थी।

इस प्रसंग में बाण ने लिखा है कि हडबडी में आने के कारण राज्यवर्द्धन के निजी परिजन या सेवक छूट गए थे या घिसटते साथ लग रहे थे। उनकी संख्या भी कम हो गई थी। वे इस प्रकार थे १. छत्रधार २ अम्बरवाही अर्थात् राजकीय वस्त्रो को साथ ले चलनेवाला ३. भृंगारग्राही अर्थात् जलपात्र ले चलनेवाला ४ आचमनधारी अर्थात् आचमन करने का पात्र थामनेवाला[1]। ५ ताम्बूलिक ६ खड्गग्राही, एव अन्य कुछ दासेरक।

राज्यवर्द्धन भीतर आकर बैठ गए। परिजन से लाए हुए जल से मुख धोकर ताम्बूलिक द्वारा दिए हुए तौलिए से उन्होने मुँह पूँछा। बहुत देर बाद चुपचाप उठकर स्नानभूमि में गए और वहाँ स्नान करके देवतार्चन के बाद चतु शाल की वितर्दिका में आकर चौकी पर बैठ गए[2]। बाण ने लिखा है कि वितर्दिका के ऊपर-नीचे पटाववाली छत थी (नीचापाश्रय)। ऊपर धवलगृह के वर्णन में जिसे संजवन कहा गया है उसी का दूसरा नाम चतु शाल था[3]। घर का चतु शाल भाग इस समय चौसल्ला कहलाता है। आँगन के चारो ओर बने हुए कमरे चतु शाल का मूलरूप था। इसी मे एक ओर उठने-बैठने के लिये बना हुआ कुछ ऊँचा चबूतरा गुप्तकाल में वितर्दिका या वेदिका कहलाता था जिसपर नीचा पटाव रहता था। आजकल की पटावदार बारहदरी जो चौसल्ले आँगन मे बनाई जाती है, इसी का प्रतिरूप है।[4]

हर्ष ने भी स्नान किया और पृथिवी पर बिछे हुए कालीन पर पास आकर बैठ गया। उस समय आकाश में शशाकमंडल का उदय हुआ। यहाँ बाणभट्ट ने श्लेष से गौडाधिप शशाक के भी उदय होने का उल्लेख किया है।

---

१. प्रभाकरवर्धन के आचमनवाही का उल्लेख ऊपर हो चुका है।

२. चतु.शालवितर्दिकायां नीचापाश्रयविनिहितैकोपबर्हायां पर्य किकायां निपत्य जोषमास्थत।

३ संजवन त्विद चतु शालं (अमर, २।२।६)।

४ काशी में चौसल्ले आँगन के एक भाग में पायो पर बारहदरी बनाई जाती है जिसे बंगला भी कहते हैं।

प्रकटकलकम् उदयमानम् विशंकटविषाणोत्कीर्णपंकसकरशंकरशकुरशक्कर-ककुदकूट-संकाशम् अकाशत आकाशे शशाकमंडलम् (१७८)।

अर्थात् चौडे सीगों से उछाली हुई मिट्टी से सने हुए शिव के तगड़े वृषभ के उभरे हुए ककुद के समान कलकित शशाकमडल आकाश मे उदय होता हुआ सुशोभित हुआ। इस वर्णन में शशाक की स्वर्णमुद्रा पर अकित शिव के साथ सामने बैठे हुए नन्दी एव आकाश मे उदित पूर्णचन्द्र का मानो यथार्थ चित्रण बाण ने किया है (चित्र ५८)। आगे आनेवाली विपत्तियों को श्लेष-द्वारा सूचित करने की प्रवृत्ति बाण की शैली की विशेषता है। राज्यश्री के विवाह की वेदी मे शोभा के लिये रखे हुए जवारों के कलशो का वर्णन करते हुए श्लेष-द्वारा दूसरा अर्थ यह सुझाया गया था कि सिहमुखी उन कलसों के जवारो से भरे हुए मुख ऐसे भयकर लगते थे जैसे शत्रुओ के मुख, मानों विवाह की वेदी पर ही आगे आनेवाले दुर्भाग्य की छाया पड़ गई थी।

इस अवसर पर प्रधान सामन्तों ने जिनकी वात टाली नही जाती थी (अनतिक्रमण-वचन), कह-सुनकर राज्यवर्द्धन को भोजन कराया। प्रात काल होने पर राजाओ के बीच में बैठे हुए हर्ष से राज्यवर्द्धन ने कहा—'मेरे मन मे दुर्निवार शोक भर गया है। राज्य मुझे विष की तरह लगता है। राज्यलक्ष्मी को इस प्रकार त्याग देने को मन करता है जैसे रग-बिरंगे कफन के वस्त्रो के घूँघट से सजाई हुई, लोगों का मन बहलानेवाली, बॉस के ऊपर लगी हुई टेसू की पुतली को डोम लोग फेंक देते है [1]। मेरी इच्छा आश्रमस्थान[2] में चले जाने की है। तुम राज्य-भार ग्रहण करो। मैने आज से शस्त्र छोड़ा।' यह कहकर खड्गग्राही के हाथ से तलवार लेकर धरती पर फेंक दी (१८०)।

इसे सुनते ही हर्ष का हृदय विदीर्ण हो गया। उसके मन में अनेक प्रकार के विचारों का तूफान उठ खडा हुआ। किन्तु वह कुछ बोल न सका और मुँह नीचा किये बैठा रहा। इसी वर्णन के प्रसंग में बाण ने अपने समकालीन समाज के विषय में कुछ फबतियाँ कसी हैं—'जिसमें अभिमान न हो ऐसा अधिकारी, जिसमें एषणा न हो ऐसा द्विजाति, जिसमें रोष न हो ऐसा मुनि[3], जिसमें मत्सर न हो ऐसा कवि, जो बईमानी न करे ऐसा बणिक्, जो खल न हो ऐसा धनी, जो ब्राह्मणद्वेषी न हो ऐसा पाराशरी भिक्षु, जो भीख न माँगता हो ऐसा परिव्राट्

१ बहुमृतपटावगुठनां रंजितरगां जनगमानामिव वंशवाह्यामनार्यां श्रियं त्यक्तुमभिलषति मे मन (१८०)। इस वाक्य का अर्थ पूर्व टीकाकारो ने स्पष्ट नही किया। कावेल ने बाण के जनगमानाम् पाठ को जनगमागना करने का सुझाव दिया है (पृ० २७६), जो अनावश्यक है। वस्तुत. यहाँ बाण ने टेसू की उस पुतली का उल्लेख किया है जिसे दिल्ली आदि की तरफ डोम, भगी तीन बाँसो के ऊपर लगाकर कफन मे प्राप्त रग-बिरगे कपडो से सजाकर गाजे-बाजे के साथ दशहरे पर निकालते हैं और फिर पानी मे सिला देते हैं। यह उनकी श्री देवी थी।

२ मूल मे आश्रम पद बौद्ध आश्रम के लिये ही प्रयुक्त हुआ ज्ञात होता है, जैसा दिवाकर मित्र का आश्रम था। अन्यत्र भी शमधर्मानुयायी भिक्षुओ के स्थान को शाक्य-आश्रम कहा गया है (९७-९८)।

३ दिगम्बर जैनसाधुओ को बाण ने केवल मुनि पद से अभिहित किया है (१७२)।

४ पाशुपत भैरवाचार्य को बाण ने अन्यत्र परिव्राट् कहा है।

(पाशुपत साधु)[?], जो सत्यवादी हो ऐसा अमात्य (कूटनीतिज्ञ मन्त्री), जो दुर्विनीत न हो ऐसा राजकुमार संसार मे दुर्लभ है' (१८१)।

राज्यवर्द्धन जब इस प्रकार बोल चुके तो पहले ही सहेजे हुए वस्त्र-कर्मान्तिक (सरकारी तोशाखाने के अधिकारी) ने रोते हुए वल्कल हाजिर किए। ये बातें हो ही रही थीं कि राज्यश्री का संवादक नाम का परिचारक रोता-पीटता सभा मे आकर गिर पड़ा। राज्यवर्द्धन के पूछने पर उसने किसी प्रकार कहा--'देव, जिस दिन सम्राट् के मरने की खबर फैली उसी दिन दुरात्मा मालवराज ने ग्रहवर्मा को जान से मार डाला और भर्तृदारिका राज्यश्री को पैरों में बेड़ी पहनाकर कान्यकुब्ज के कारावास मे डाल दिया। ऐसा भी सुना जाता है कि वह दुष्ट सेना को नायक से रहित समझकर थानेश्वर पर भी हमला करना चाहता है' (१८३)।

डाक्टर बूहलर ने मालवराज की पहचान देवगुप्त से की थी, जो सर्वसम्मत है, किन्तु मालवा को पंजाब मे माना था जो असम्भव है, क्योकि बाण के समय में मालव लोग अवन्ति में आ चुके थे और अवन्तिप्रदेश मालव कहलाने लगा था[1]। पंजाब से उखड़ने के बाद मालवों को हम जयपुर रियासत के कर्कोट नगर में पाते है। वहाँ से आगे बढते हुए वे गुप्तकाल में चौथी शती के लगभग मालवा में आकर बसे होगे। राजनीतिक घटनाएँ इंगित करती हैं कि जैसे ही चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अवन्ति से शकराजाओ का उन्मूलन किया वैसे ही मालव लोग अवन्ति में आकर अधिकृत हो गए। सम्भव है कि इस कार्य मे वे चन्द्रगुप्त के सहायक भी रहे हों। मंदसोर के लेखों (ई० ४०४ और ई० ४३६) मे मालव-संवत् का उल्लेख होने से भी यही विदित होता है कि मालव लोग पाँचवी शती से पहले मालवा में आ बसे थे। अतएव मालवराज का सम्बन्ध मध्यभारत मे स्थित मालवा से ही माना जा सकता है।

इस घोर समाचार को सुनकर राज्यवर्द्धन का सब विषाद जाता रहा और उसमें वीररस का संचार हुआ। उसके हृदय में शोक के आवेग की जगह कोप का आवेग भर गया। बायाँ हाथ म्यान पर एवं दाहिना भीषण कृपाण पर पड़ा और उसने हर्ष से कहा—'राजकुल, बांधव परिजन, पृथ्वी और प्रजाओं को तुम सँभालो, मै तो आज ही मालवराज के कुल का नाश करने के लिये चला। मेरे लिये यही चीवर और यही तप है कि अत्यन्त अविनीत इस शत्रु का दमन करूँ। हिरन शेर की मूँछ मरोड़ना चाहता है, मेंढक काले साँप के तमाचा लगाना चहता है, बछड़ा बाघ को बंदी बनाना चाहता है, पानी का साँप गरुड की गर्दन टीपना चाहता है, ईंधन स्वयं अग्नि को जलाना चाहता है, अन्धकार सूर्य को दबोचना चाहता है--यह जो मालवों ने पुष्पभूति-वंश का अपमान किया है। क्रोध ने अब मेरे मन की जलन को मिटा डाला है। सब राजा और हाथी यहीं तुम्हारे साथ ठहरेंगे। अकेला यह भंडि दस हजार घोड़ों की सेना लेकर मेरे पीछे चलेगा।' यह कहकर फौरन ही कूच का डंका (प्रयाण-पटह) बजाने का हुक्म दिया (१८४)। उसके इस प्रकार आदेश देने पर हर्ष ने कई प्रकार से पुनः आग्रह करते हुए कहा--'आर्य के प्रसाद से मै पहले कभी वंचित नहीं रहा। कृपा कर मुझे भी साथ ले चलें।' यह कह कर उसने उसके पैरो मे सिर धर दिया।

१ उज्जैन की शिप्रा नदी में मालवी स्त्रियो का स्नान-वर्णन (कादम्बरी, वैद्य० ५१)।

उसे उठाकर राज्यवर्द्धन ने कहा—'तात, इस प्रकार छोटे शत्रु के लिये भारी तैयारी करना उसे बड़ाई देना होगा। हिरन मारने के लिये शेरों का झुंड ले जाना लज्जास्पद है। तिनकों के जलाने के लिये क्या कई अग्नियाँ मिलकर कवच धारण करती है? और फिर, तुम्हारे पराक्रम के लिये तो अठारह द्वीपों की अष्टमंगलक माला पहननेवाली पृथिवी उपयुक्त विषय है। थोड़ी-सी रुई के लिये पर्वतों को उड़ा ले जानेवाले मरुतो की तैयारी नही होती। सुमेरु से टक्कर लेनेवाले दिग्गज कही बाँबी से भिड़ते है? मान्धाता की तरह तुम सुन्दर सोने की पत्रलताओं से सजे हुए धनुष को सकल पृथिवी की विजय के लिये उठाओगे। तो, तुम ठहरो। मुझे अकेले ही शत्रुनाश करने दो। इस क्षुधा में क्रोध का ग्रास अकेले ही खाने दो।' यह कहकर उसी दिन शत्रु पर चढाई कर दी।

इस प्रकरण मे कई सास्कृतिक महत्त्व के उल्लेख आए है। गुप्तकाल के भारतीय भूगोल मे पूर्वी द्वीपसमूह के भिन्न-भिन्न द्वीपो की गणना भी होने लगी थी। पुराणो व इस काल के अन्य साहित्य मे कुमारीद्वीप अर्थात् भारतवर्ष, सिंहलद्वीप (लंका), नग्नद्वीप या नारिकेलद्वीप (निक्कवरम् या निकोबार), इन्द्रद्युम्नद्वीप (अण्डमन), कटाहद्वीप (केड़ा), मलयद्वीप, सुवर्णद्वीप (सुमात्रा), यवद्वीप (जावा), वारुषकद्वीप (बरोस), वारुणद्वीप (बोर्नियो), पराणुपायनद्वीप (सम्भवत· फिलिपाइन), चर्मद्वीप[१] (=कर्मरग या कर्दरंग, मलयद्वीप मे), कर्पूरद्वीप (सभवत बोर्नियो का दूसरा नाम जहाँ से सर्वोत्तम कपूर आता था), कमलद्वीप (अरबी कमर, ख्मेर, कम्बोडिया), बलिद्वीप (बाली) इत्यादि[२] द्वीपों के नाम आते हैं। इस संख्या मे अठारह द्वीपों की गिनती होने लगी थी। बाण ने दो बार अट्ठारह द्वीपोंवाली पृथ्वी का उल्लेख किया है (१७६, १८५)। जैसे बाण ने दिलीप को अष्टादश द्वीपो मे अपना सिक्का बैठानेवाला कहा है (भ्रूलतादिष्टाष्टादशद्वीपे दिलीपे, १७६), वैसे ही कालिदास ने माहिष्मती के पूर्वकालीन राजा कार्तवीर्य को अष्टादश द्वीपों मे अपने यज्ञस्तम्भ खड़े करनेवाला कहा है[३]। वस्तुत द्वीपों की संख्या चार से क्रमश. बढ़ती हुई अठारह तक जा पहुँची थी। पुराणों में पहले चतुर्द्वीप, फिर सप्तद्वीप का वर्णन आता है। महाभारत आदिपर्व में राजा पुरूरवा को समुद्र के बीच में स्थित तेरह द्वीपों का शासक कहा गया है[४]। वस्तुतः पूर्वी द्वीपसमूह एक साथ प्राय द्वीपान्तर नाम से अभिहित किए जाते थे। कालिदास ने कलिंग और द्वीपान्तर के बीच में लवङ्गपुष्पों के व्यापार का

---

१. बृहत्संहिता, १२, ९।

२. मंजुश्रीमूलकल्प, भाग २ पृ० ३२२।

कर्मरङ्गाख्यद्वीपेषु नाडिकेरसमुद्भवे।
द्वीपे वारुषके चैव नग्नबलिसमुद्भवे॥
यवद्वीपे वा सत्त्वेषु तदन्यद्वीप समुद्भवा।
वाचा रकारबहुला तु वाचा अस्फुटतां गता॥
अव्यक्ता निष्ठुरा चैव सक्रोधप्रेतयोनिषु॥

३ संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूप.।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्त्तवीर्यः॥ (रघुवश ६।३८)।

४ त्रयोदशसमुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवा। आदिपर्व (पूना-संस्करण) ७०।१७।

उल्लेख किया है।[1] बाण ने इन द्वीपों से रत्नराशियों के ढेर कमाकर लानेवाले जहाजों का वर्णन किया है[2]।

अठारह द्वीपों की अष्टमंगलकमाला पहननेवाली पृथिवी (१८५) के इस उल्लेख मे अष्टमङ्गलकमाला शब्द भारतीय कला की सुन्दर परिभाषा से लिया गया है। साँची के महास्तूप से सम्बन्धित तोरणस्तम्भ पर उत्कीर्ण शिल्प में माङ्गलिक चिह्नों से बनी हुई मालाएँ या कठुले अङ्कित है। एक कठुले में ग्यारह और दूसरे मे तेरह माङ्गलिक चिह्न है[3]। पीछे चलकर कुषाणकाल में यह संख्या अष्टमाङ्गलिक चिह्नो तक ही सीमित हो गई और इस तरह की माला का नाम अष्टमङ्गलकमाला पड गया (चित्र ५६)। मथुरा के कुषाणकालीन आयागपट्टों पर ये चिह्न इस प्रकार है, यथा मीनमिथुन, देवविमानगृह, श्रीवत्स, वर्धमान, त्रिरत्न, पुष्पदाम, इन्द्रयष्टि या वैजयन्ती और पूर्णघट[4]। बाण के समय में अष्टमङ्गलकमाला नाम रूढ हो गया था, इसीलिये अष्टादश द्वीपों की अष्टमङ्गलकमाला यह कथन सभव हुआ। इस प्रकार की मालाएँ कृत्स्नपृथिवीजयार्थ प्रयाण करनेवाले सेनानी सर्वविधमगल के लिये धारण करते थे।

राज्यवर्द्धन के वीररस का वर्णन करते हुए बाण ने एक वाक्य लिखा है जो पहले कहे हुए 'मग्नांशुकपटातततनुताम्रलेखा ' वाले वाक्य (६६) की भाँति श्लेषात्मक अर्थों के चमत्कार एव ऐतिहासिक सामग्री के लिये विलक्षण है—दर्पात् परामृशन् नखकिरणसलिल-निर्झरै समरभारसभावनाभिषेकमिव चकार दिङ्नागकुंभकूटविकटस्य बाहुशिखरकोशस्य वाम पाणिपल्लव (१८३)।

कोश शब्द के यहाँ तीन अर्थ है १. म्यान, २. दिव्य परीक्षा और ३ बौद्धदार्शनिक वसुबन्धु-कृत अभिधर्मकोश नामक ग्रंथ। इनके अनुसार वाक्य के अर्थ इस प्रकार होगे।

पहला अर्थ, म्यान के पक्ष मे

गुप्तयुग के वीरवेष मे कटिबन्ध मे दाहिनी ओर छुरी-कटारी (असिपुत्रिका, छुरिका, दे० अहिच्छत्रा खिलौनों पर मेरा लेख, चित्र १८८, १९०) और बाँई ओर परतले में तलवार झूलती रहती थी। बाण का कहना है कि आवेश में राज्यवर्द्धन का बायाँ हाथ कटारी की तरफ गया और दाहिना पुनः कृपाण की ओर झपटा। बाहु एक विशेष प्रकार की तलवार थी जिसे इस समय की भुजाली कह सकते है। (तुलना कीजिए, करपालिका करौली और भुजपालिका = भुजाली)। इसकी लंबाई भुजा (बाहु कोहनी से अँगुली तक का भाग) के बराबर होने से इसका यह नाम पडा। वराहमिहिर ने उत्तम तलवार की लंबाई ५० अंगुल कही है। उसकी आधी २५ अंगुल की 'ऊन' कहलाती थी जिसे हिंदी मे अभी तक 'ऊना'

---

१ रघुवश, ६।५७। कुछ विद्वान् द्वीपान्तर की पहचान मलयद्वीप से करते है।

२ द्वीपोपगीतगुणमपि समुपार्जितरत्नराशिसारमपि पोतं (१८५)।

३ ग्यारह चिह्नोवाली माला में सूर्य, शुक्र, पद्मसर, अङ्कुश वैजयन्ती, पंकज, मीनमिथुन, श्रीवत्स, परशु दर्पण और कमल है। दूसरी माला में कमल, अङ्कुश कल्पवृक्ष दर्पण, श्रीवत्स, वैजयन्ती, पंकज मीनयुगल, परशु, पुष्पदाम, चक्र एवं दो चिह्न और हैं। देखिए मार्शल, साँची मौनूमेंट्स, भाग २, फलक ३७।

४ देखिए, वासुदेवशरण अग्रवाल कृत लखनऊ म्यूजियम गाइड बुक, मूर्ति-संख्या जे २४९, फलक ५।

कहते है। वस्तुतः छुरी, कटारी, करौली, भुजाली, ऊना सब तीस अंगुल से कम नाप की होती थी। तीस से ऊपर जाने पर तलवार का नाम निस्त्रिंश पड़ता था।

अजन्ता में बाहु या भुजाली का अकन पाया जाता है। उसके शिखर या ऊपरी भाग के पास म्यान पर गजमस्तक-जैसी आकृति का अलङ्करण बना हुआ है (औंध-कृत अजन्ता-फलक ३१) नीचे की पट्टी मे चित्रित बीच की दो भुजाओं मे दाहिनी ओर की बाहु नामक राजकीय भुजाली की म्यान गजमस्तक से अलकृत है (चित्र ६०)।

इतना समझ लेने पर बाण का शब्दचित्र स्पष्ट हो जाता है—'राज्यवर्धन का बायाँ हाथ दाहिनी ओर कमर में खोसी हुई भुजाली की मूठ पर गया जो गजमस्तक के अलंकरण से सुशोभित थी। या उस हाथ की नखकिरणों ने युद्ध का बोझा उठाने मे समर्थ उस म्यान-बद्ध भुजाली का मानों जलधाराओं से सम्मानपूर्ण अभिषेक किया।'

दूसरा अर्थ, दिव्यपरीक्षा के पक्ष मे

शङ्कर ने कोश का अर्थ एक प्रकार की दिव्य परीक्षा किया है। अभियुक्त व्यक्ति को सचैलस्नान कराकर मंडल मे खड़ा करके किसी देवमूर्ति के स्नान किये हुए जल की तीन अञ्जुलियाँ पिलाई जाती थी। यदि वह दोषी हुआ तो देवता के प्रकोप से उसकी मृत्यु तक हो जाना सम्भव माना जाता था[१]। इस पक्ष में 'समरभार' का पदच्छेद स + मर + भार होगा (मर = मरण, मृत्यु, भार = बोझा या दंड जो बिरादरी या देवता-द्वारा अभिशस्त व्यक्ति पर डाला जाय)। समरभारसभावनाभिषेक = वह स्नान जिसके फलस्वरूप मृत्यु तक होने की सम्भावना हो। बाहु = कोहनी से अंगुली तक का भाग, उसका शिखर = हाथ। जो अभिशस्त व्यक्ति दिव्यपरीक्षा देता था वह दर्पपूर्वक अन्त तक अपने को निर्दोष कहता था। अभिशस्त व्यक्ति बाएँ हाथ से परीक्षा का जल दाहिने हाथ की मुट्ठी मे लेकर पीता था, उसी से इस अर्थ की कल्पना हुई—

गजमस्तक की तरह विकट मुट्ठी बधा हुआ बायाँ हाथ दिव्यपरीक्षा के समय दाहिनी मुट्ठी को अपनी नखकिरणो से मानो मरणपर्यन्त दंड की सम्भावना का अभिषेक करा रहा था।

तीसरा अर्थ, अभिधर्मकोश-ग्रन्थ के पक्ष मे

इस अर्थ में विशिष्ट महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री सामने आती है। यहाँ 'कोश' का अर्थ है बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धुकृत[२] 'अभिधर्मकोश' नामक अत्यन्त प्रसिद्ध दर्शन-

---

१ श्रीकणे ने व्यवहारमयूख से निम्नलिखित उद्धरण दिया है :—

तमाहूयाभिशस्तन्तु मंडलाभ्यन्तरे स्थितम्।
आदित्याभिमुख कृत्वा पाययेत् प्रसृतित्रयम्।
पूर्वोक्तेन विधानेन स्नातमार्द्राम्बरं शुचिम्।
अर्चयित्वा तु त देवं प्रक्षाल्य सलिलेन तु।
एनश्च श्रावयित्वा तु पाययेत् प्रसृतित्रयम्।

और भी देखिए, याज्ञवल्क्यस्मृति २।९५।

२ वसुबन्धु पुरुषपुर (पेशावर) के एक ब्राह्मण-परिवार मे जन्मे थे। उन्होने चौथी शती के अन्तिम भाग मे 'अभिधर्मकोश' की रचना की। मूलग्रन्थ में ६०० कारिकाएँ और वसुबन्धु का स्वरचित भाष्य था जिसमे प्रमाण, चेतना, सृष्टि, नीतिधर्म, मोक्ष, आत्मा आदि प्रमुख

(शेष टिप्पणी पृ० १२२ पर)

ग्रन्थ। वसुबन्धु के ही अनुयायी दिङ्नाग चौथी-पॉचवी शती में हुए[1]। तारानाथ के अनुसार दिङ्नाग वसुबन्धु के शिष्य थे जो उनके शिष्यों में सबसे बडे विद्वान् और स्वतन्त्र विचारक थे। वे बौद्ध तर्कशास्त्र के जन्मदाता एव भारतीय दर्शन के क्षेत्र मे चोटी के विद्वान् माने जाते है। दिङ्नाग ने अपने दिग्गज पाडित्य से वसुबन्धु के 'अभिधर्मकोश' को सर्व शास्त्रों मे शिरोमणि प्रमाणित किया। उनका एक ग्रन्थ 'हस्तवलप्रकरण' या 'मुष्टिप्रकरण' प्राप्त है[2]। सम्भवतः इसी ग्रन्थ के कारण हाथ फेंककर विपक्षियों से शास्त्रार्थ करने की किवदन्ती दिङ्नाग के विषय में प्रचलित हुई। कालिदास ने मेघदूत[3] मे दिङ्नाग के स्थूल हस्तावलेपो' का जो उल्लेख किया है वह निश्चित ही सत्य पर आश्रित जान पडता है। उसी का उल्लेख बाण ने श्लेष से अपने ऊपर लिखे हुए वाक्य मे किया है। कालिदास के स्थूल हस्तावलेप (शास्त्रार्थ में बढ-बढकर हाथ फटकारना) का वास्तविक स्वरूप बाण ने दिया है कि दिङ्नाग सीधे हाथ मे अभिधर्मकोश लेकर बाएँ हाथ से उसकी ओर इशारा करते हुए शास्त्रार्थो में अपनी प्रतिभा से उत्पन्न नए-नए विचारों (भावना) द्वारा उसका मडन (अभिषेक) करते थे। बाण ने वसुबन्धु के कोश का दिवाकर मित्र के आश्रम मे भी उल्लेख किया है जहाँ शाक्य-शासन में कुशल रट्टू तोते उसका उपदेश कर रहे थे (२३७)। दिङ्नाग के पक्ष में वाक्य का अर्थ इस प्रकार होगा—

दिङ्नाग के मस्तक की कूट कल्पनाओ से विकट बना हुआ जो वसुबन्धु का अभिधर्मकोश था उसे आचार्य दिङ्नाग शास्त्रार्थो मे अपने दाहिने हाथ मे लेकर बाएँ हाथ से दर्पपूर्वक जब उसकी ओर सकेत करते थे, तब उनके बाएँ हाथ की नखकिरणो की सलिल-धार मानों वसुबन्धु के कोशग्रन्थ का भावनामय (विचारो के द्वारा) ऐसा स्नान कराती

विषयो का प्रामाणिक और अत्यन्त पांडित्यपूर्ण विवेचन किया गया था। मूल संस्कृत-ग्रन्थ अभी हाल मे प्राप्त हुआ है। परमार्थ ने (५६३ से ५६७ ई० तक) और श्युआन् च्युआङ् (६५१ से ६५४) ने चीनी भाषा मे उसके दो अनुवाद किए। तिब्बती भाषा मे भी उसका अनुवाद हुआ था। वसुबन्धु पहले सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के थे, परन्तु पीछे अपने बडे भाई की प्रेरणा से महायान के विज्ञानवाद के अनुयायी हो गए। ८० वर्ष की आयु में अयोध्या मे उनका देहान्त हुआ। (विंटरनिज, भारतीय साहित्य, भाग २, पृ० ३५५ से ३६१ तक)।

१ रैंडल दिङ्नाग को निश्चित रूप से ३५० और ५०० ई० के बीच मानते है। इनके अनेक ग्रन्थो मे से केवल न्यायप्रवेश मूल सस्कृत मे बच गया है।

२ विंटरनिज, भारतीय साहित्य, भाग २, पृ० ३५२, नजियो, चीनी त्रिपिटक, सं० १२५५ से ५६ तक, इस ग्रन्थ मे केवल ६ कारिकाओ मे संसार की अनित्यता सिद्ध की गई है। टामस, जे० आर० ए० एस०, १९१८, पृ० २६७।

३ दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान्। (मेघदूत १। १४)
दिङ्नागाचार्यस्य हस्तावलेपान् हस्तविन्यासपूर्वकाणि दूषणानि परिहरन्।
कालिदास ने यहाँ दिङ्नाग के तर्कप्रधान शास्त्रार्थो पर फबती कसी है।

थी, जिसमे शास्त्रार्थरूपी युद्धों के मचने से रसहीनता आ जाती थी (समर + भा + अरसम् + भावनाभिषेकम्)[१] ।

इससे यह ज्ञात होगा कि बाण ने अद्भुत काव्यमय कौशल से अपने युग मे प्रसिद्ध एक साहित्यिक अनुश्रुति का उल्लेख यहाँ किया है ।

राज्यवर्द्धन के चले जाने पर हर्ष अकेला अनमना होकर समय बिताने लगा (कथमपि एकाकी कालमनैषीत्) । एक दिन स्वप्न मे एक लोहे का स्तम्भ फटकर गिरता हुआ दिखाई दिया । वह घबराकर उठ बैठा और सोचने लगा—'क्यो दुःस्वप्न मुझे नही छोडते ! मेरी बाई आँख भी फडकती रहती है । तरह-तरह के दारुण उत्पात भी होते रहते है । सूर्य में कबन्ध दिखाई पडता है और राहु सूर्य पर झपटता हुआ लगता है । सप्तर्षि धुँआ छोडते है । दिशाएँ जलती है । आकाश से तारे टूटते है, मानों दिग्दाह की चिनगारियाँ हों । चन्द्रमा कातिहीन हो गया है । दिशाओं मे चारो ओर उल्कापात दिखाई पडता है । धरती को कँपानेवाला अन्धड धूल और बजरी उड़ाता हुआ राज्यनाश की सूचना देता है ।' इस प्रकार उत्पातों की बात सोचते-सोचते वह राज्यवर्द्धन की कुशल मनाने लगा (१८६) ।

बाह्य आस्थानमडप मे आकर बैठा ही था कि उसने राज्यवर्द्धन के कृपापात्र कुन्तल नाम के सवार को आते देखा[२] । उसने खबर दी कि राज्यवर्द्धन ने मालव की सेना को खेल-ही-खेल मे जीत लिया था, किन्तु गौडाधिपति की दिखावटी आवभगत का विश्वास करके वह अकेला शस्त्रहीन दशा मे अपने ही भवन मे मारा गया (१८६) ।

इतना सुनना था कि हर्ष में प्रचड कोप की ज्वाला धधक उठी । उसका स्वरूप अत्यन्त भीषण हो उठा । वह ऐसा लगता था, मानों शिव ने भैरव का अथवा विष्णु ने नरसिह का रूप धारण कर लिया हो[3] । ये दोनों अभिप्राय बाण ने अपने युग की मूर्तिकला से ग्रहण किए है (भैरवाकर शिव के लिये देखिए अहिच्छत्रा के खिलौनो पर मेरा लेख, चित्र-स० ३०० । नरसिहाकृति विष्णु के लिये वही, चित्र-स० १०८) । उसने गौडाधिपति को

१. इस अर्थ में समरभारसभावनाभिषेकम् का पदच्छेद इस प्रकार होगा—समर (शास्त्रार्थ युद्ध)+भा (प्रतिभा)+अरसम् (नीरस)+भावना (विचार)+अभिषेकम् । नख-किरणजल से स्नान वस्तुत (अरस) बिना जल का स्नान है । वह केवल भावनाभिषेक है । अभिषेक या स्नान की भावना कर लेना भावना-स्नान कहलाता है । वह कई प्रकार का है।
आग्नेय भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम् ।
आपो हिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्य गोरज स्मृतम् ॥
(रघुवश १ । ८५, मल्लिनाथ का श्लोक) ।
जल से वारुण स्नान, भस्म लगा लेने से आग्नेय, आपोहिष्ठा मत्र से ब्राह्म और गोधूलि से वायव्य स्नान होता है । पिछले तीन भावना अभिषेक हैं । वसुबन्धु के कोश का अभिषेक भी जलहीन होने के कारण केवल भावनाभिषेक था । उसका यह भी अर्थ है कि दिङ्नाग ने विचारो द्वारा उस ग्रन्थ को प्रचालित किया । अभिषेक का उद्देश्य शुद्धि है, (देखिए, रघुवश १ । ८५ तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षित) किन्तु दिङ्नाग द्वारा शास्त्रार्थ-समर के उत्पन्न हो जाने से उस अभिषेक में रसहीनता या कटुता उत्पन्न हो गई थी ।

२ कुंतल नाम बृहदश्ववारं राज्यवर्द्धनस्य प्रसाद-भूमिम् (१८६) ।

३. हर इव कृतभैरवाकार , हरिरिव प्रकटितनरसिंहरूप. (१८७) ।

बहुत बुरा-भला कहा—'झरोखे मे जलनेवाले प्रदीप को जैसे सिर्फ काजल मिलता है, वैसे ही इस कृत्य के द्वारा गौडाधिप के हाथ केवल अपयश ही लगेगा। सूर्य के अस्त हो जाने पर भी सत्पथ के वैरी इसी अधकार से निपटने के लिए अभी चन्द्रमा तो है ही। अकुश के टूट जाने पर भी दुष्ट गजेन्द्र (व्यालवारण) को विनय सिखाने के लिये केशरी के खरतर नख तो कहीं नहीं चले गए। तेजस्वी रत्नो को तराश मे बिगाड देनेवाले मूर्ख बेगडियो के समान पृथ्वी के कलक उस को कौन मृत्युदड न देगा[1] ? अब वह दुर्बुद्धि भागकर कहाँ जाएगा।' (१८८)

हर्ष इस प्रकार अपने उद्गार प्रकट कर ही रहा था कि सेनापति सिंहनाद जो प्रभाकर-वर्द्धन का भी मित्र था और पास में बैठा हुआ था, कहने लगा। यहाँ पर बाण ने वृद्ध सेनापति के व्यक्तित्व का अच्छा चित्र खीचा है। 'उसकी देहयष्टि साल वृक्ष की तरह लम्बी और हरताल की तरह गोरी थी। उसकी आयु बहुत अधिक हो चुकी थी, किन्तु वृद्धावस्था भी मानों उससे डर रही थी। उसके केश श्वेत थे। भौहें लटककर आँखों पर आ गई थीं। भीमाकृति मुख के सफेद गलगुच्छे गालों पर छाए हुए थे। झालदार दाढी सफेद चँवर की तरह लगती थी। चौडी छाती पर घावों के बड़े-बड़े निशान थे। वह ऐसी जान पडती थी, मानों पर्वत पर टाँकी से लेखो (वर्णाक्षरों) की लम्बी-चौडी पक्तियाँ खोद दी गई हो[2]। समुद्र-भ्रमण द्वारा उसने सब जगह से धन खीचकर जमा किया था[3]। वह सेनापति की समस्त मर्यादाओं का पालन करनेवाला था (वाहिनीनायकमर्यादानुवर्त्तनेन)। राजा का भार उठाने से वह घुट-पिटकर मजबूत हो गया था[4]। दुष्ट राजाओं को वश मे करने के लिये वह नागदमन-नामक शस्त्र की तरह था जो दुष्ट हाथियों को वश मे करने के लिये प्रयुक्त होता है। वीरगोष्ठियों का वह कुलपुरोहित था। वह शूरों का तुलादड, शस्त्रसमूह का ज्ञाता, प्रौढ वचन कहने मे समर्थ, भागती हुई सेना को रोककर रखनेवाला, बड़े-बड़े युद्धो के मर्म को जाननेवाला और युद्धप्रेमियों को खीच लाने के लिये आघोषणापटह के समान था (१८९-१९०)।

सिंहनाद ने अनेक प्रकार से हर्ष मे वीरता का भाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया और कहा—'अकेले गौडाधिपति की क्या बात है ? आपको तो अब ऐसा करना चाहिए जिससे किसी दूसरे की हिम्मत इस तरह का आचरण करने की न हो। जिस मार्ग पर तुम्हारे पिता-पितामह-प्रपितामह चले है, त्रिभुवन में श्लाघनीय उस मार्ग का परित्याग मत करो। जो झूठे विजिगीषु सारी पृथिवी को जीतने की लालसा से उठ खड़े हुए है उन्हे ऐसा कर दो कि

---

१. तादृशा कुवैकटिका इव तेजस्विरत्नविनाशका कस्य न बध्या (१८८)। रत्न-तराशी के सम्बन्ध मे बाण का यह उल्लेख मूल्यवान् है। इससे मालूम होता है कि राजा लोग अच्छे रत्नो के सही ढग से तराशे जाने के कितने पक्षपाती थे।

२ निशितशस्त्रटककोटिकुट्टितबहुबृहद्वर्णाक्षरपक्तिनिरन्तरतया च सकलसमरविजयपर्व-गणनामिव कुर्वन् पर्वत इव पादचारी। ज्ञात होता कि इस वाक्य मे कुट्टकगणित के अक और अक्षरों को पत्थर पर खोदकर उसके आधार से ज्योतिष के फलाफल का विचार करने की ओर सकेत है। कुट्टकगणित का आविष्कार ब्रह्मगुप्त ने किया था।

३ अब्धिभ्रमणेनानादरश्रीसमाकर्षणविभ्रमेण मदरमपि मदयन् (१८९)।

४ ईश्वरभारोद्वहनघृष्टपृष्ठतया हरवृषभमपि हसन्निव (१८९)।

उनके अंत:पुर की स्त्रियाँ गहरी साँस छोडने लगें। सम्राट् के स्वर्गवासी हो जाने पर एव राज्यवर्द्धन के दुष्ट गौड़ाधिप द्वारा डस लिए जाने से जो महाप्रलय का समय आया है इसमे तुम्ही शेषनाग की भाँति पृथिवी को धारण करने मे समर्थ हो। शरणहीन प्रजाओं को धैर्य बँधाओ और उद्धत राजाओं के मस्तक दाग कर पैरों के निशान अकित कर दो[1]। पिता के मारे जाने पर अकेले परशुराम ने दृढ निश्चय से इक्कीस बार समस्त राज्यवशो का उन्मूलन किया था। देव भी अपने शरीर की कठोरता और वज्रतुल्य मन से मानियो मे मूर्द्धन्य है, तो आज ही प्रतिज्ञा करके नीच गौडाधिप के नाश के लिये अचानक सैनिक कूच की सूचक झडी के साथ धनुष उठा लीजिए[2] (१६१–१६३)।

हर्ष ने उत्तर दिया—'आपने जो कहा है वह अवश्य ही करणीय है। जबतक अधम चंडाल दुष्ट गौडाधिप जीवित रहकर मेरे हृदय मे काँटे की तरह चुभ रहा है, तबतक मेरे लिये नपुसक की तरह रोना-धोना लज्जास्पद है। जबतक गौडाधम की चिता से उठता हुआ धुआ मै न देखूँ तबतक मेरे नेत्रो मे आँसू कहाँ? तो मेरी प्रतिज्ञा सुनिए—'आर्य के चरण-रज का स्पर्श करके मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि कुछ ही दिनों मे मैं इस पृथ्वी को गौड-रहित न बना दूँ और समस्त उद्दत राजाओं के पैरों मे बेडियाँ न पहना दूँ तो घी से धधकती हुई आग मे पतगे की तरह अपने शरीर को जला दूँगा।' इतना कहकर पास में बैठे महासन्धि-विग्रहाधिकृत अवन्ति को आज्ञा दी—'लिखो, पूर्व मे उदयाचल, दक्षिण मे त्रिकूट, पश्चिम मे अस्तगिरि और उत्तर मे गन्धमादन तक के सब राजा कर-दान के लिये, सेवा-चामर अर्पित करने के लिये, प्रणाम के लिये, आज्ञाकरण के लिये, पादपीठ पर मस्तक टेकने के लिये, अजलिबद्ध प्रणाम के लिये, भूमि त्यागने के लिये, वेत्रयष्टि लेकर प्रतिहार का कार्य करने के लिये, और चरणो मे प्रणाम करने के लिये तैयार हो जाएँ, अथवा युद्ध के लिये कटिबद्ध रहे। मै अब आया।'

महासन्धिविग्रहाधिकृत का पद शासन मे अत्यन्त उच्च था और गुप्तकाल से ही उसका उल्लेख मिलने लगता है। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति मे महादडनायक हरिषेण को साधिविग्रहिक कहा गया है। गुप्तकाल के बाद भी शासन में यह पद जारी रहा। एक प्रकार से इसका कार्य विदेशमन्त्री-जैसा था। शुक्रनीति में भी इसका उल्लेख है।

हर्ष की जो प्रतिज्ञा बाण ने यहाँ दी है वह उस युग मे समस्त पृथ्वी के जयार्थ दडयात्रा करनेवाले विजिगीषु राजाओ की घोषणा जान पडती है। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में

१ दमापतीनाम् शिरसु ललाटतपान् प्रयच्छ पादन्यासान् (१९३)। मस्तक पर पैरों के निशान का दिखाई पड़ना अत्यन्त दुर्भाग्य का लक्षण समझा जाता था। मथुरा-कला मे प्राप्त एक मस्तक पर इस प्रकार पादन्यास अकित पाए गए हैं। वह मूर्ति किसी दुर्भाग्य देवता की रही होगी। बाण ने स्वय आगे लिखा है—चूड़ामणिषु चक्रशंखकमललक्ष्माण.। प्रादुरभवन् पादन्यासा: राजमहिषीणाम् (२०१), अर्थात् हर्ष के दिग्विजयारंभ करने पर शत्रु-सामन्तों की स्त्रियों के मस्तक पर पैरो के निशान जिनमे शंख, चक्र, पद्म, शंख बने थे, प्रकट हो गए।

२ तदद्यैव कृतप्रतिज्ञो गृहाण गौड़ाधमजीवितध्वस्तये जीवितसंकलनाकुलकालाकांड-दडयात्राचिह्नध्वज धनु· (१९३)।

उसकी विजय-यात्रा को 'सर्व-पृथिवीविजय' का नाम दिया गया है एव उसमे राजाओं के साथ करदान, आज्ञाकरण, प्रणामागमन, प्रसभोद्धरण, परिचारिकीकरण आदि जिन नीतियो का वर्णन किया गया है उन्ही का उल्लेख हर्ष की प्रतिज्ञा मे बाण ने किया है। बाण ने प्रणाम करने के चार दर्जे कहे हैं— १ केवल सिर झुकाकर प्रणाम करना (नमन्तु शिरासि) २ अजलिबद्ध प्रणाम करना (घटन्तामजलय), ३. सम्राट् के चरणो तक सिर झुकाकर प्रणाम करना (सुदृष्ट क्रियतामात्मा मच्चरणनखेषु), ४. चरण की धूल अपने मस्तक पर चढाना (शेखरीभवन्तु पादरजासि), जिसमे सम्भवत: सिर को पादपीठ या पृथ्वी पर छुआ-कर प्रणाम करना पडता था। परिचारक बनने या सेवा के भी दो प्रकार थे, (१) चॅवर डुलाना जिसको बाण ने सेवाचामर अर्पित करना भी कहा है,[1] और (२) हाथ में वेत्रयष्टि लेकर दरबार मे प्रतिहार का काम करना।

इसी प्रसग मे बाण ने सर्वद्वीपान्तरसंचारी पादलेप का उल्लेख किया है, अर्थात् पैरो मे लगाने का ऐसा मरहम जिसकी शक्ति से सब द्वीपान्तरो मे विचरण करने की शक्ति प्राप्त हो (१८४)। जिस युग मे द्वीपान्तरों की यात्रा करने की चारों ओर धूम थी उसी युग मे इस प्रकार के पादलेप की कल्पना की गई होगी।

इस प्रकार अपने निश्चय की घोषणा करके वह बाह्य आस्थान-मडप से उठा (मुक्ता-स्थान, १९४), सब राजाओं को बिदा किया एव स्नान करने की इच्छा से सभा को छोडकर भीतर गया[2]। हर्ष अबतक बाह्य आस्थान-मंडप में था जो कि राजकुल के भीतर दूसरी कक्ष्या मे होता था। वही उसने कुन्तल से राज्यवर्धन की मृत्यु का समाचार सुना था। वही सेनापति सिंहनाद के साथ उसकी बातचीत हुई और उसने प्रतिज्ञा की। बाह्य आस्थान-मडप में ही राजा और सामन्त दरबार-मन्त्रणा आदि के लिये एकत्र होते थे। हर्ष ने आस्थान-मडप से उठते हुए उन्हें बिदा दी। बाह्य आस्थान-मडप से उठकर राजा धवलगृह के समीप मे बने हुए स्नानगृह मे जाते थे। बाह्य आस्थान-मडप या दरबार को केवल आस्थान (१८६), आस्थान-मडप अथवा आस्थान-भवन (का० वै० १५), महास्थानमडप (१७२) या सभा (१९४) भी कहा जाता था।

वहाँ से उठकर हर्ष ने समस्त आह्निक कृत्य किया। प्रतिज्ञा के फलस्वरूप उसका मन स्वस्थ के समान हो गया था। स्नान-भोजनादिक से निवृत्त हो वह प्रदोषास्थान मे थोडी देर बैठा और फिर शयनगृह में गया। प्रदोषास्थान अर्थात् रात्रि के समय भोजनादि से निवृत्त होने के बाद बैठने का एक मडप था। धवलगृह मे इसके निश्चित स्थान का सकेत नही किया गया, किन्तु दो सम्भावनाएँ हो सकती है, या तो भुक्तास्थानमंडप (दरबारए-खास) ही जो धवलगृह से मिला हुआ उसके पीछे होता था, प्रदोषास्थान का काम देता था, अथवा इससे अधिक सम्भव यह है कि धवलगृह के ऊपरी तल्ले मे जो चन्द्रशालिका थी वही

---

१. कैश्चित्सेवाचामराणीवार्पयद्भि , दूसरा उच्छ्वास, हर्ष के राजद्वार मे उपस्थित भुजनिजित शत्रु महासामन्त (६०)।

२. मुक्तास्थान विसर्जितराजलोक. स्नानारम्भकांक्षी सभामत्याक्षीत्, (१९४)। कादम्बरी में भी शूद्रक के विषय में ठीक यही वर्णन किया गया है—मध्याह्नशंखध्वनिरुदतिष्ठत् तमाकर्ण्य च समासन्नस्नानसमय· विसर्जितराजलोक क्षितिपतिरास्थनमंडपादुत्तस्थौ (वैद्य० पृ० १३)।

प्रदोषास्थान के काम आती हो। यही से उठकर राजा उसी तल्ले मे सामने की ओर बने हुए अपने शयनगृह मे सरलता से जा सकते थे, जैसा कि हर्ष के लिये यहाँ कहा गया है-- 'प्रदोषास्थान मे वह अधिक न ठहरा। उठकर निजी शयनगृह मे गया जहाँ परिजनो के जाने की भी पाबन्दी थी। वहाँ बिछे हुए शयनतल पर अगो को ढीले छोडकर पड रहा।' (प्रदोषास्थाने नातिचिर तस्थौ प्रतिषिद्धपरिजनप्रवेशश्च शयनगृह प्राविशत्, १६५)। रानी का वासभवन (१२७) जिसकी भित्तियो पर चित्र बने थे और राजा का शयनगृह दोनो धवलगृह के ऊपरी तल्ले में एक साथ ही होने चाहिएँ। प्रदोषास्थान मे अनेक दीपिकाओ के जलने का उल्लेख है, किन्तु शयनगृह मे एक ही दीपक का वर्णन किया गया है।

अगले दिन प्रातःकाल होने पर उसने प्रतिहार को आज्ञा दी - 'मै गजसाधनाधिकृत स्कन्दगुप्त से मिलना चाहता हूँ।' स्कन्दगुप्त का उल्लेख हर्ष के बाँसखेडा-ताम्रपत्र मे भी आया है जहाँ उन्हें महाप्रमातार महासामन्त श्रीस्कन्दगुप्त कहा गया है। बाण के उल्लेख से विदित होता है कि हर्ष की बडी हाथियों की सेना का अधिकार भी स्कन्दगुप्त को ही सौपा गया था।

स्कन्दगुप्त उस समय अपने मन्दिर मे था। ताबडतोड कई आदमी उसे बुलाने पहुँचे। अतएव अपनी हथिनी की प्रतीक्षा किये बिना ही वह पैदल राजकुल के लिये चल पडा। उसके चारों ओर गजकटक का शोर हो रहा था। उसकी आकृति से महाधिकार टपकता था और स्वाभाविक कठोरता के कारण वह निरपेक्ष होते हुए भी हुक्म देता-सा जान पड़ता था। उसकी चाल भारीभरकम थी। आजानु लबे दोनों बाहुदड आगे-पीछे हिलते हुए ऐसे जान पडते थे, मानों पत्थर के आलान-स्तम्भो की पक्ति दोनो ओर विरचित हो रही[1] हो। उसका होठ कुछ ऊँचा उठकर आगे की ओर लटका हुआ था[2]। नासा-वश लबा था। लबे केश स्वभाव से घुँघराले थे और उनकी लटे बाल लता के प्रतानों की तरह छल्लेदार थी। इसी प्रकार की बबरियाँ भी उसकी गर्दन पर पीछे फैली हुई थी (स्वभावभगुरकुन्तलबालवल्लरीवेल्लितबर्बरक, १६७)। स्वामी के प्रसाद मे ऊँचा उठा हुआ स्कन्दगुप्त राजकुल मे प्रविष्ट हुआ। उसने दूर से ही पृथ्वी पर दोनो हाथ और मौलि रखकर हर्ष को प्रणाम किया।

इस प्रसंग मे बाण ने हाथियो की सेना और उसमें नियुक्त अधिकारियों का विस्तृत वर्णन किया है। हर्ष के स्कन्धावार मे जब बाण ने प्रवेश किया था तभी उसने राजद्वार के बाहर हाथियों का बाडा देखा था। उस वर्णन में (५८) सेना के लिये हाथियों को प्राप्त करने के भिन्न-भिन्न स्रोतो का उल्लेख किया गया है। श्युआन् च्युआङ् के अनुसार हर्ष की सेना मे ६० सहस्र हाथी थे। बाण ने उसे अनेक अयुत या दस सहस्र हाथियों से युक्त

१. यह उपमा गजशाला में आमने-सामने गड़े हुए पत्थर के आलान खंभो की दो पंक्तियो से ली गई है।

२. ईषदुत्तुंगलम्बेन अधरबिम्बेन नवपल्लवकोमलेन कवलेनेव श्रीकरेणुकां विलोभयन्निव (१९६)। निचले होठ की यह विशेषता उस युग का शौक था। अजन्ता के चित्रों मे इसका स्पष्ट अकन किया गया है, दे० औंधकृत अजन्ता-फलक ६१, ७८, वज्रपाणि बुद्ध, गुफा १। पत्थर की मूर्तियो मे भी यह बात पाई जाती है।

सेना (अनेक-नागायुतबल, ७६) कहा है। प्रस्तुत प्रकरण मे उस सेना के विभिन्न अगो के संगठन पर प्रकाश डाला गया है।

हाथियो को पकडने के लिये (वारणबन्ध) बहुत से लोग पहाडी जंगल मे चारों तरफ किनारे से घेरा बना लेते और मडल को क्रमश सिकोडते हुए हाँका करते थे। यो हॉके के द्वारा खेदकर हाथियों को पकडने की प्रथा बहुत पुरानी थी। इस प्रकार का खेदा हर्ष की गज-सेना के लिये विन्ध्याचल के जगलो मे होता था। वही एक बडा जगल हर्ष के लिये सुलभ था। हाँका करनेवाले लोग हाथ मे ऊँचा बॉस लिए रहते जिसके सिरे पर मोर के पख बाँध लेते थे। पखो मे बने चदों पर पडनेवाली चमक हाथियो को भयभीत करती थी। इस प्रकार वारणबन्ध के लिये काम करनेवाले लोगो के समूह को अनायतमडल (जिनका घेरा सिमिटकर छोटा होता जाता था) कहा गया है। इस समय उनके मुखिया लोग गजसाधनाधिकृत स्कन्दगुप्त के सामने भागते हुए चल रहे थे[1]।

इसके अतिरिक्त हाथियों को फंसाने का दूसरा उपाय फुसलावा देनेवाली हथिनियो द्वारा था जिन्हें 'गणिका' कहते थे। उनमे जो हथिनी फॅसाने मे बहुत होशियार और अपने काम मे सिद्ध हो जाती थीं वे 'कर्मण्यकरेणुका' कहलाती थी। गणिका हथिनियों के अधिकारी बहुत दिनों से कटक मे आकर प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्हें अवसर मिला तो वे हाथी फुसलाने मे चतुर अपनी हथिनियों के करतब हाथ उठाकर सुनाने लगे[2]।

हाथी प्राप्त करने के लिए तीसरा उपाय यह था कि अटवीपाल या आटविक राजा स्वय नए-नए हाथियों को पकडकर सम्राट् की सेना के लिये भेजते रहते थे। सम्भवतः सम्राट् के साथ उनका यही समझौता था। अटवीपाल को ही यहाँ अरण्यपाल कहा गया है और राजद्वार के वर्णन मे उन्हें ही पल्लीपरिवृढ अर्थात् शबर-बस्तियो के स्वामी कहा है। आटविक लोग भी नए पकड़े हुए गजयूथों को लेकर हाथ मे ऊँचे अकुश लेकर कटक मे उपस्थित थे (१६६)।

हाथी प्राप्त करने का चौथा स्रोत हाथियों के लिये विशेषरूप से सुरक्षित जगल थे जो नागवन कहलाते थे। कौटिल्य ने हस्त्यध्यक्ष के लिये विशेषरूप से हस्तिवन की रक्षा का भार सौपा है (अर्थशास्त्र २। ३१)[3]। नागवन मे जगली हाथी राजा के शिकार के लिये विशेषत: रखाए जाते थे। अशोक ने पंचम स्तम्भ-लेख में यह स्पष्ट आदेश दिया है कि अमुक-अमुक दिनों मे (तीन चातुर्मासी, तिष्य नक्षत्र की पूर्णिमा, और प्रत्येक मास की चतुर्दशी, पूर्णिमा और प्रतिपद् को) नागवन मे जीव-वध नही किया जायगा[4]। नागवन को शिकार

१ उच्छ्रितशिखिपिच्छलांछितवशलतावनगहनगृहीतदिगायामै विन्ध्यवनैरिव वारणबन्धविमर्दोद्योगागतै पुर प्रधावद्भिरनायतमडलै (१९६)।

२ गणिकाधिकारिगणै चिरलब्धान्तरै उच्छ्रितकरैः कर्मण्यकरेणुकासकथनाकुलै (१९६)।

३ अर्थशास्त्र के अनुसार जगल दो प्रकार के थे, द्रव्यवन (लकड़ी आदि के लिये) और नागवन (केवल हाथियों के लिये)। द्रव्यवनपाल और हस्तिवनपाल, दोनों का वार्षिक वेतन ४०० कार्षापण था।

४ एतानि येव दिवसानि नागवनसि केवटभोगसि यानि अनानि पि जीवनिकायानि नो हन्तवियानि, पचमस्तम्भ लेख, रामपुरवा।

को सुविधा के लिये प्राय' अलग-अलग वीथियों मे बाँट लिया जाता था और प्रत्येक वीथी पर एक अधिकारी नियुक्त होता था जिसे नागवनवीथीपाल (१६६) या केवल नागवीथीपाल कहते थे। नागवन मे किसी नए झुड के देखे जाने की सूचना तुरन्त दरबार मे भेजने का आदेश था। अतएव नागवीथीपालो के भेजे हुए दूत अभिनव गजसमूह के सचरण की खबर देने के लिये कटक मे आए हुए थे[1]।

इतने हाथियो को खिलाना राज्य के लिये बडी भारी सिरदर्दी रही होगी। उनके लिये चारा जुटाने मे प्रजाओ का दिवाला पिट जाता था। बाण ने स्पष्ट लिखा है कि कटक मे एक-एक क्षण हाथियो के लिये चारे की बाट देखी जाती थी (प्रतिक्षणप्रत्यवेक्षितकरिकवलकूटैः, १६६)। निश्चय ही जो आता होगा वह तुरन्त सफाचट्ट हो जाता होगा। इनके लिये राज्य ने झुड-के-झुड डडा रखनेवाले प्यादे (कटक कदम्बक)[2] छोडे हुए थे जो हर गाँव, नगर और मडी मे चारा, भूसा और करब का सग्रह करके उसकी सूचना देते रहते थे[3]। (चित्र ६१)

इतने हाथियों को जमा कर लेने पर सेना के लिये उन्हें शिक्षित बनाने का काम था। इसके लिये महामात्रसज्ञक अधिकारी नियुक्त थे। उन्हे ही अर्थशास्त्र मे अनीकस्थ कहा गया है। उनका महामात्र नाम सकारण था। हाथियो की परिचर्या के लिये जितने अधिकारी और सेवक नियुक्त थे, महामात्रो का पद उन सबमे बडा था[4]। अर्थशास्त्र ने भी हाथियों की परिचर्या के लिये चिकित्सक के अतिरिक्त जो दस सेवक कहे है उनमे अनीकस्थ सबसे मुख्य है।

महामात्रों के कार्य के विषय मे बाण ने लिखा है कि वे चमडे का भरा हुआ हाथी का पुतला (चर्मपुट) तैयार करके उसके द्वारा हाथियों को युद्ध की शिक्षा देते थे[5]।

सैनिक कार्य के अतिरिक्त हाथी सवारी के काम मे भी आते थे। उन्हें कौटिल्य ने औपवाह्य कहा है। औपवाह्य हाथियों को तरह-तरह की चालों मे निकाला जाता था।

---

१ अभिनवगजसाधनसचरणवार्तानिवेदनविसर्जितैश्च नागवनवीथीपालदूतवृन्दैः (१९६)।

२ कटककदम्बक=पैदल सिपाही। ये बाएँ हाथ मे सोने का कड़ा पहने और डडा लिये रहते थे (वामप्रकोष्ठनिविष्टस्पष्टहाटककटक, २१)। कोणधारी अर्थात् लकुट लिए हुए। सम्भवत कटक पहनने की विशेषता के कारण ही इनकी संज्ञा कटक पडी। लकुट लिए हुए कटक-सज्ञक सिपाही की मूर्ति के लिये देखिए, मेरा अहिच्छत्रा के खिलौनो पर लेख, चित्र १९३।

३. प्रतिक्षणप्रत्यवेक्षितकरिकवलकूटै कक्टभगसग्रह ग्रामनगरनिगमेषु निवेद्यमानैः कटककदम्बकै, १९६।

४ मात्रा=पद, शक्ति, महा=बडा। महामात्र से ही हिन्दी महावत बना है। इस समय इस शब्द के मूल अर्थ का उसी प्रकार ह्रास हो गया है जैसे स्थपति से थबई (राज) और वैकटिक से बेगडी शब्दो के सम्बन्ध मे हुआ है।

५. महामात्रपेटकैश्च प्रकटितकरिकर्मचर्मपुटै.। करिकर्म=करिणा युद्धशिक्षा, चर्मपुटः= चर्मकृत. हस्त्याकारः, शकर।

इनमे सबसे मुख्य धोरणगति या दुलकी चाल थी। धोरण चाल की शिक्षा देनेवाले अधिकारी आधोरण कहलाते थे। अर्थशास्त्र में भी आधोरण परिचारकों का उल्लेख है। आधोरण लोग स्वभावतः हरी घास की मूठ देकर हाथियों को परचाते थे (हरितघासमुष्टीश्च दर्शयद्भिः, १९६)। वस्तुतः आधोरण अच्छे-अच्छे हाथी प्राप्त करके उन्हें बढिया चाल पर निकालने के लिये बड़े उत्सुक रहते थे, इसलिये बाण का यह कथन उपयुक्त है कि वे लोग नए पकड़े हुए हाथियों के झुंड में जो गजपति या मुख्य हाथी होते उन्हें विशेष रूप से माँगते थे और जब उस तरह के मनचाहे मत्त गयन्द उन्हे मिलते तो वे बहुत खुश होते थे। आधोरण लोग स्कन्दगुप्त को दूर हटकर प्रणाम कर रहे थे। वे यह भी बताने के लिये उत्सुक थे कि उन्हे मिले हुए हाथियो मे से किस-किसके मद फूट निकला था, अर्थात् कौन मदागम के योग्य यौवन दशा प्राप्त कर चुके थे।[1] जो हाथी बडी अवस्था प्राप्त होने पर जलूस के लिये चुन लिए जाते थे, उनपर डिंडिम या धौसा रखने का विशेष सस्कार किया जाता था। विशेष अवसरो पर उनसे जलूस का काम लिया जाता था, अन्यथा काम से उनकी छुट्टी थी। आधोरण लोग ऐसे हाथियो के लिये डिडिमाधिरोहण की विनती कर रहे थे।

एक प्रकार के अन्य परिचारकों का उल्लेख करते हुए बाण ने उन्हें कर्पटी कहा हैं। कर्पट का अर्थ चीरिका या कपड़े का फीता है। इसे ही बाण ने अन्यत्र पटच्चर कर्पट भी कहा है (५२)[2]। शिर से पटच्चर कर्पट या चीरा बाँधे हुए हाथियों के परिचारक अजन्ता के चित्रों मे मिलते है[3]। कर्पट का अलंकरण (अं० रिबन डेकोरेशन) सिर पर बाँधने का अधिकार सेवा से सन्तुष्ट प्रभु के प्रसाद से व्यक्तिविशेष को प्राप्त होता था। गज-जातक के चित्र में (अजन्ता गुफा १७) प्रासयष्टि लिए हुए आगे चलनेवाले तीन पैदलो एव हाथ मे रस्सी लिए हुए अन्य पैदल के सिर पर चीरा बँधा है, किन्तु उसी के बराबर में रस्सी का दूसरा सिरा थामे हुए व्यक्ति के बालों मे इस प्रकार का चीरा नही है। अवश्य ही इसका कारण वही है जिसका बाण ने उल्लेख किया है अर्थात् नौकरी के दौरान मे प्रभु-प्रसाद से व्यक्तिविशेष को इस प्रकार का सम्मानित चीरा पहरने का अधिकार मिलता था (प्रभुप्रसादीकृतपाटितपटच्चर, २१३)। इस प्रकार के सेवकों के लिये ही कर्पटी शब्द आया है। (चित्र ६२)

हाथियों के इस वर्णन में ये कर्पटी कौन से विशेष परिचारक थे, इसका भी निश्चय स्वय बाण की सहायता से किया जा सकता है। दर्पशात के वर्णन मे लेशिक-सज्ञक परिचारकों का उल्लेख आया है (६५)। लेशिक का अर्थ शंकर ने घासिक किया है। पृष्ठ २१२ पर बाण ने घासिकों के लिये ही प्रभुप्रसाद से चीरा (पाटितपटच्चर) प्राप्त करने

---

१ आधोरणगणैश्च मरकतहरितघासमुष्टीश्च दर्शयद्भि. नवग्रहगजपतीश्च प्रार्थयमानैश्च लब्धाभिमतमत्तमातंगमुदितमानसैश्च, सुदूरमुपसृत्य नमस्यद्भिश्च, आत्मीयमातगमदागमाश्च निवेदयद्भि, डिडिमाधिरोहणाय च विज्ञापयद्भि (१९६)। इस वाक्य में छः अन्तर्वाक्य है। उन सबका संबंध आधोरण-नामक परिचारको से है।

२ लेखहारक मेखलक के वर्णन मे पृष्ठप्रेङ्खत्पटच्चरकर्पटघटितगलितग्रन्थि., (५२)।

३. देखिए औधकृत अजन्ता, फलक ३०। गजजातक (गुफा १७)।

की बात कही है। अतएव यह स्पष्ट है कि कर्पटी से बाण का तात्पर्य हाथियों को घास, दाना, रातिब देनेवाले नौकरो से है। कौटिल्य के विधापाचक ये ही हो सकते है।

कर्पटी या घास-चारा देनेवाले परिचारको के बारे मे कहा गया है कि अपने काम में भूल हो जाने के कारण दडस्वरूप उनके हाथी ले लिए गए थे। इस दुःख से वे दाढी, बाल बढाए आगे-आगे चल रहे थे।[१] हाथियों को कम या खराब चारा देने की भूल के दंड-स्वरूप वे काम से छुडा दिए जाते थे।

कुछ लोग इस काम की नौकरी के लिये नए भी आए हुए थे और वे काम पर लगाए जाने की खुशी में दौड रहे थे [२]।

कौटिल्य ने अनीकस्थ और आधोरण के बीच मे आरोहक नाम के कर्मचारियों का उल्लेख किया है। हर्ष के समय तक ये विशेष परिचारक बराबर नियुक्त किए जाते थे। बाण ने उन्हे आरोह कहा है[३]। नियमित रूप से अलकृत हाथियो को सवारी के समय जो लोग चलाते थे उनकी सज्ञा आरोहक थी। उनका पद महामात्र से नीचा और आधोरण से ऊपर था। अर्थशास्त्र मे आधोरण के बाद हस्तिप-सज्ञक एक और कर्मचारी का उल्लेख है जिसका काम सवारी के अतिरिक्त समय मे हाथियों को टहलाना, चलाना आदि था। हर्षचरित मे जिन्हे निषादिन् कहा गया है वे हस्तिपक के समकक्ष थे। प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के समय अपने स्तभ से बँधा हुआ राजकुजर दर्पशात शोक में चुपचाप खडा था और उसके ऊपर बैठा हुआ निषादी रो रहा था (१७२)। अर्थशास्त्र की सूची में सर्वप्रथम हाथियों के चिकित्सक का उल्लेख है। बाण ने भी प्रस्तुत प्रसग मे इभ-भिषग्वर का सर्वप्रथम उल्लेख किया है। गजसाधनाधिकृत स्कन्दगुप्त उनसे खास-खास रुग्ण हाथियों के विषय में पूछ रहे थे कि पिछली रात उनका क्या हाल रहा [४]।

---

१ प्रमादपतितापराधापहृतद्विरददु खधृतदीर्घश्मश्रु भि अग्रतो गच्छद्भि (१९६)।

२. अभिनवोपसृतैश्च कर्पटिभि वारणाप्तिसुखप्रत्याशया धावमानै (१९६)।

३ आरोहाधिरूढिपरिभवेन लज्जमान अवज्ञागृहीतमुक्तकवलकुपितारोहारटनानुरोधेन (६७)।

४ हाथियो के परिचारकों की कौटिल्य और बाण के अनुसार तुलनात्मक सूची इस प्रकार है

	कौटिल्य		बाण
१	चिकित्सक	१	इभ-भिषग्वर
२	अनीकस्थ	२	महामात्र
३.	आरोहक	३	आरोह
४	आधोरण	४	आधोरण
५.	हस्तिपक	५	निषादी
६.	औपचारिक	६	
७.	विधापाचक	७	कर्पटी, लेशिक
८	यावसिक	८	
९	पादपाशिक	९	
१०	कुटीरक्षक	१०	
११	औपशायिक	११	

सब प्रकार के सिंगार-पटार से सजाई हुई हथिनी जिसे जलूस मे बिना सवारी के निकालते थे, श्रीकरेणुका कहलाती थी (१६६)।

स्कन्दगुप्त सम्राट् से कुछ दूर हटकर बैठ गया। हर्ष ने उससे कहा—'हमने जो निश्चय किया है वह आपने विस्तार से सुन लिया होगा। अत: शीघ्र ही प्रचार के लिए बाहर गई हुई गजसेना को स्कन्धावार में लौटने की आज्ञा दी जाय[1]। अब कूच मे थोडा भी विलम्ब न होगा।'

यह सुनकर स्कन्दगुप्त ने प्रणाम किया और प्रमाददोप से राजाओ पर आनेवाली विपत्तियो का विस्तृत वर्णन किया[2]। इसमे निम्नलिखित सत्ताईस राजाओ के दृष्टात लिए गए है—पद्मावती (पवाया) के नागवशी राजा नागसेन, श्रावस्ती के श्रुतवर्मा, मृत्तिकावती के सुवर्णचूड, कोई यवनेश्वर, मथुरा के बृहद्रथ, वत्सराज उदयन, अग्निमित्र के पुत्र सुमित्र, अश्मक के राजा शरभ, मौर्य राजा बृहद्रथ, शिशुनागपुत्र काकवर्ण[3], शुग देवभूति, मागधराज,

---

२ शीघ्रं प्रवेश्यन्ता प्रचारनिर्गतानि गजसाधनानि (१९७)। शकर ने प्रचार का अर्थ भक्षण अर्थात् चरना किया है। कौटिल्य के समय से ही हस्तिप्रचार पारिभाषिक शब्द था, हाथियो की सब प्रकार की शिक्षा हस्तिप्रचार का अर्थ था।

१ बाण मे राजाओ की दो प्रकार की सूचियाँ है, एक तो प्रमाददोष से व्यसनप्राप्त २८ राजाओ की (प्रमाददोषाभिषगवार्ता, १९८), और दूसरी २० राजाओ की सूची जिनके चरित्र मे कुछ-न-कुछ कलक था (८७-९०)। पहली सूची बाण की मौलिक है। दूसरी पुराने समय से चली आती थी। कौटिल्य ने इस प्रकार के अवश्येन्द्रिय राजाओ के १२ उदाहरण दिए है (अर्थशास्त्र १।६)। सुबन्धुकृत वासदवत्ता, कामन्दकीयनीतिसार, वराहमिहिर और सोमदेवकृत यशस्तिलकचम्पू मे भी सकलक राजाओ की सूचियाँ दोहराई गई है जिनमे नाम और उनकी सख्याओ मे भेद है।

२ श्री डी० आर० भडारकर ने इस वाक्य की व्याख्या करते हुए ठीक पाठ इस प्रकार माना है—आश्चर्यकुतूहली च दण्डोपनतयवननिर्मितेन नभस्तलयायिना यन्त्रयानेनानीयत क्वापि काकवर्ण. शैशुनागि नगरोपकंठे कठश्चास्य निचकृते निस्त्रिंशेन। काश्मीर-पाठ मे भी दो वाक्यो को मिलाकर एक ही वाक्य माना है और वही ठीक है। अर्थ इस प्रकार होगा—'अचरज की बातो मे कुतूहल दिखानेवाला शिशुनाग-पुत्र काकवर्ण युद्ध मे जीतकर लाए हुए यवन से निर्मित आकाशगामी यत्रयान मे उडाकर कही दूर पर किसी नगर नामक राजधानी के बाहर ले जाया गया और वहाँ तलवार से उसका कठ काट दिया गया।' श्री भडारकर का विचार है कि यवन से तात्पय हखामनि वश के ईरानी लोगो से है जिनका गन्धार पर राज्य था। शिशुनाग-पुत्र काकवर्ण ने उस शासन का अन्त किया और कुछ यवनो को जीतकर अपने यहाँ लाया। उनमे से एक ने आश्चर्यकारी उडनेवाला वायुयान बनाया और उस पर राजा को बैठाकर वह 'नगर' या जलालाबाद के पास जहाँ गंधार की राजधानी थी, उसे ले गया और उसे मार डाला। यह अर्थ समीचीन ज्ञात होता है। सम्भवत इसमे दारा प्रथम के गधार पर ईरानी साम्राज्य के अन्त कर देने की ऐतिहासिक घटना की कोई अनुश्रुति छिपी है। [भंडारकार, नोट्स आन ऐंश्येंट हिस्ट्री आव इडिया, भाग १, पृ० १६-१९]।

प्रद्योत के छोटे भाई कुमारसेन[१], विदेहराज के पुत्र गणपति, कलिंग के राजा भद्रसेन, करूष के राजा दध्र, चकोर देश के[२] राजा चन्द्रकेतु, चामुंडीपति पुष्कर, मौखरि क्षत्रवर्मा, शकपति, काशिराज महासेन, अयोध्या के राजा जारूथ, सुह्म के राजा देवसेन, वैरन्त के राजा रन्तिदेव, वृष्णि विदूरथ, सौवीर के राजा वीरसेन एवं पौरव राजा सोमक। बाण ने यह लंबी सूची अपने पूर्वकालीन ऐतिहासिक प्रवादों के आधार पर जो सातवीं शती में प्रचलित थे, प्रस्तुत की है। इस सूची के विषय में यह बात ध्यान रखने की है कि इसमें कल्पना का स्थान नहीं जान पड़ता। हमारे प्राचीन इतिहास की परिमित जानकारी के कारण इनमें से कुछ ही नामों की पहचान अबतक हो सकी है। शिशुनागवंश, वत्सवंश, प्रद्योतवंश, मौर्यवंश, शुंगवंश, नागवंश, गुप्तवंश आदि जिनके राजाओं का वर्णन बाण ने किया है वे भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध राजकुल हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से जिसपर सबसे अधिक विवाद हुआ है वह स्त्रीवेश में चन्द्रगुप्त के द्वारा शकपति के मारे जाने का उल्लेख है[३]।

स्कन्दगुप्त स्वामी के आदेश का विधिवत् सम्पादन करने के लिए उठकर बाहर चले गए। इधर हर्ष ने पहले राज्य की सारी स्थिति (प्रबन्ध) ठीक की, और फिर दिग्विजय के लिए सैनिक प्रयाण की आज्ञा दी[४]।

---

१ हर्षचरित के इस अंश पर श्री डा० डी० आर० भंडारकर ने नया प्रकाश डालते हुए लिखा है कि जब बृहद्रथवंश का विस्तृत साम्राज्य उत्तरभारत से अस्त हो गया तब अवन्ति में वीतिहोत्रों का शासन था। वीतिहोत्र तालजंघों में से थे। तालजंघ कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का पौत्र था। वीतिहोत्रों के सेनापति पुणक ने राजा को मारकर अपने पुत्र प्रद्योत (चण्डप्रद्योत) को अवन्ति का राजा बनाया। पर वह अग्नि धधकती रही और वीतिहोत्रों के सहयोगी तालजंघवंश के किसी व्यक्ति ने महाकाल के मंदिर में अवसर पाकर पुणक के पुत्र और प्रद्योत के छोटे भाई कुमारसेन को मार डाला। दन्तकथा ने इस तालजंघ को वेताल बना दिया है। अतिप्राचीन काल में महाकाल के मंदिर में महामांस-विक्रय या नरबलि होती थी। उसीसे लाभ उठाकर तालजंघ अपने षड्यंत्र में सफल हुआ। [इंडिअन कल्चर, भाग १ (१९३४), पृ० १३-१५, और भी श्रीसीतानाथ प्रधान, आशुतोष मुकर्जी सिल्वर जुबली वाल्यूम, ओरिटेलिआ, भाग ३, पृ० ४२५-२७] 'पुणिक के पुत्र प्रद्योत के छोटे भाई कुमारसेन को जब वह महाकाल के उत्सव में महामांस-विक्रय के सम्बन्ध में वाद-विवाद कर रहा था, किसी तालजंघ-वंश के पुरुष ने वेताल का रूप रखकर मार डाला।'

२ चकोर—श्री सिलवाँ लेवी ने लिखा है कि लाट देश (Larike) में जहाँ चष्टन (Tiastanes) का राज्य था, उज्जयिनी राजधानी से दक्षिण पश्चिम में 'चकोर' था (यूनानी Tiagaura) जो पहले गौतमीपुत्र के राज्य में था। गौतमीपुत्र शातकर्णी से दो पीढ़ी पहले वहाँ चकोर शातकर्णी की राजधानी थी। उसका नाम चन्द्रकेतु ज्ञात होता है। सम्भवत उसी को शूद्रक के दूत ने मार डाला था। [सिलवाँ लेवी, जूर्नल आशियातीक, १९३६, पृ० ६५-६६]

३ चन्द्रगुप्त द्वितीय के बड़े भाई रामगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी की याचना शकपति ने की थी जिसे रामगुप्त ने मान लिया था। किन्तु चन्द्रगुप्त ने स्त्रीवेष में जाकर शकपति को मार डाला। शंकर ने भी इस कहानी पर कुछ प्रकाश डाला है। [भंडारकर न्यूलाइट आन दी अर्ली गुप्त हिस्ट्री, मालवीय कारपोरेशनवाल्यूम, (१९३०) पृ० १८९०]

४ देवोऽपि हर्षः सकलराज्यस्थितीश्चकार। ततश्च प्रयाणं विजयाय दिशां समादिशति देवे हर्षे (२००)।

यहाँ बाण ने पुन. काव्यशैली का आश्रय लेकर हर्ष के प्रयाण के फलस्वरूप शत्रुओं मे होनेवाले दुर्निमित्तो की एक लम्बी सूची दी है जिसमें कई नवीनताएँ है।

१ यमराज के दूतों की दृष्टि की तरह काले हिरन इधर-उधर मडराने लगे।

२ आँगन मे मधुमक्खियों के छत्तो से उडकर मधुमक्खियाँ भर गई।

३ दिन में भी शृगाली मुँह उठाकर रोने लगी।

४ जगली कबूतर (काननकपोत) घरो मे आने लगे।

५ उपवनवृक्षों मे अकाल पुष्प दिखाई पड़े।

६ सभास्थान (आस्थानमडप) के खभो पर बनी हुई शालभजिकाओं के आँसू बहने लगे।

७ योद्धाओं को दर्पण मे अपना ही सिर धड से अलग होता हुआ दिखाई पडा।

८ राजमहिषियो की चूडामणि मे पैरो के निशान प्रकट हो गए[1]।

९. चेटियो के हाथ से चँवर छूटकर गिर गए।

१०. हाथियो के गडस्थल भौरो से शून्य हो गए।

११. घोडों ने मानों यमराज के महिष की गन्ध से हरे धान का खाना छोड दिया।

१२ झनझन ककण पहने हुए बालिकाओं के ताल देकर नचाने पर भी मन्दिर-मयूरों ने नाचना छोड दिया।

१३ रात मे कुत्ते मुँह उठाकर रोने लगे।

१४. रास्तों में कोटवी या नंगी स्त्री घूमती हुई दिखाई पडी[2]। केशव के अनुसार कोटवी अम्बिका का एक रूप था[3]। वस्तुतः कोटवी दक्षिणभारत की मूल देवी कोट्टवै थी जिसका रूप राक्षसी का था। पीछे वह दुर्गा या उमा के रूप मे पूजी जाने लगी। सम्भव है, उत्तरी भारत मे उसका परिचय गुप्तकाल में आया होगा। बाण के समय मे वह दुर्भाग्य की सूचक मानी जाने लगी थी और उत्तरभरत के लोग भी उससे खूब परिचित हो गए थे। अहिच्छत्रा के कई खिलौनों मे तर्जनी दिखाती हुई एक नगी स्त्री अंकित की गई है जिसकी मुद्रा से वह कोटवी की आकृति ज्ञात होती है[4]। (चित्र ६३)

---

१ यह अत्यन्त दुर्भाग्य का लक्षण समझा जाता था जिसका उल्लेख पहले भी हो चुका है (११३)।

२ हेमचन्द्र ने बाल खोले हुए नंगी स्त्री को कोटवी कहा है (नग्ना तु कोटवी, अभिधान-चितामणि, ३, ९८, टीका—नग्ना विवस्त्रा योषित् मुक्तकेशीत्यागम., कोटेन लज्जावशाद् याति कोटवी)।

३ कल्पद्रुकोश (१६६० ई०) पृ० ३९८, श्लोक १२७।

४ अहिच्छत्रा के खिलौनो पर मेरा लेख, पृष्ठ १५२, चित्र २०२—२०३। कोटवी देवी की पूजा के जो प्रमाण मुझे बाद में मिले उनसे तो ज्ञात होता है कि कोटवी की पूजा समस्त उत्तर-भारत में लोकव्यापी है। काशी-विश्वविद्यालय के आस-पास प्राचीन यक्ष और देवी की पूजा के चिह्नों की खोज करते समय कोटमाई का मन्दिर मिला जो इसी देवी का है। अभी ज्ञात हुआ कि अल्मोड़े जिले में लोहाघाट से बारह मील पर कोटलगढ स्थान है।

१५. महल के फर्शो मे घास निकल आई।

१६ योद्धाओ की स्त्रियों के मुख का जो प्रतिबिम्ब मधुपात्र मे पडता था उसमे विधवाओं-जैसी एक वेणी दिखाई पड़ने लगी।

१७. भूमि कॉपने लगी।

१८. शूरो के शरीर पर रक्त की बूँदे दिखाई पडी जैसे वधदड-प्राप्त व्यक्ति का शरीर लाल चन्दन से सजाया जाता है[१]।

१९. दिशाओ में चारो ओर उल्कापात होने लगा।

२० भयकर झझावात ने प्रत्येक घर को झकझोर डाला।

बाण ने १६ महोत्पात (अशुभ सूचक प्राकृतिक चिह्न, १६२–१६३), ३ दुर्निमित्र (१५२) और २० उपलिग कहे हैं जो अपशकुनो के ही भेद है। इन सूचियों में कई अपशकुन समान भी है। शकर ने कानन कपोत का अर्थ गृध्र किया है। किन्तु ऋग्वेद मे कपोत को यम और निर्ऋति का दूत और उडता हुआ बाण (पक्षिणी हेति, १० । १६५ । १–४) कहा है। आश्वलायन गृह्य सूत्र (३-७८) मे विधान है कि अगर जगली कबूतर घर पर बैठे या घोंसला बनावे तो 'देवाः कपोत' (ऋ० १० । १६५ । १-४) सूक्त से हवन करे। मुहाल मक्खियो का घर के आँगन मे भिनभिनाना उपलिग और भौरो का सिंहासन के पास उडना महोत्पात (१६३) कहा गया है। शाखायन गृह्य सूत्र (५-१०) के अनुसार शहद की मक्खियों का घर मे छत्ता लगाना असगुन है। उसी सूत्र के अनुसार (५-५-४) कव्वे का आधी रात के समय घर में कॉंव-कॉंव करना अशुभ है। [और भी देखिए, ओमेस ऐंड पोर्टेन्ट्स इन वैदिक लिटरेचर, आल-इडिया ओरियंटल कान्फ्रेंस, नागपुर, १९४६, पृ० ६५-७१]।

वहाँ की किवदन्ती है कि यह कोट्टवी का गढ़ था। कोट्टवी बाणासुर की माता थी। उसका आधा शरीर कवच से ढका हुआ और नीचे का आधा नंगा माना जाता है। कथा है कि एक बार महाबलि के पुत्र बाणासुर दैत्य का विष्णु से युद्ध हुआ। जितने असुर मारे जाते उनसे अधिक उत्पन्न हो जाते। तब देवो के प्रयत्न से महाकाली का जन्म हुआ। उसने असुरो का और कोट्टवी का बध किया। कोटलगढ़ का अर्थ है 'नंगी स्त्री का गढ़ या वास-स्थान' (अमृत बाजार पत्रिका, १५ मई १९५२, हिल सप्लीमेंट, पृ० ३)। इस सूचना से यह परिणाम निकलता है कि दक्षिण की कोट्टवै की पूजा हिमालय पर्वत के अभ्यन्तर तक में प्रचलित थी। लोक में और भी प्रमाण मिलने चाहिए।

सातवाँ उच्छ्वास

कुछ दिन बीतने पर हर्ष का सैनिक प्रयाण शुरू हुआ। उसके लिए ज्योतिषियों ने बहुत मेहनत से दण्डयात्रा के योग्य शुभ मुहूर्त निकाला। हर्ष की इस यात्रा को बाण ने चार दिशाओं की विजय का नाम दिया है। इसके स्वरूप की कुछ झाँकी पहले हर्ष की प्रतिज्ञा मे आ चुकी है। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति मे जिसे 'सर्वपृथिवीविजय' एव चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के उदयगिरि लेख में 'कृत्स्नपृथिवीजय' कहा गया है वही आदर्श हर्ष की चार दिशाओं की विजय करने की प्रतिज्ञा मे है। हर्ष ने विधिपूर्वक चाँदी और सोने के कलसों से स्नान करके भक्तिपूर्वक शिव की पूजा की और अग्निहोत्र किया। ब्राह्मणों को चाँदी-सोने के तिलपात्र बाँटे गए और सोने की पत्रलताओं से अकित खुर और सीगोंवाली असख्य गाएँ दान मे दी गईं। व्याघ्रचर्म पर भद्रासन बिछाकर उसपर सम्राट् विराजमान हुए।

वराहमिहिर ने वेदी पर व्याघ्रचर्म बिछाकर भद्रासन के ऊपर पुष्यनक्षत्र में सम्राट् के विशेष विधि से बैठने का उल्लेख किया है। भद्रासन सोने, चाँदी और ताबे मे से किसी एक का बनाया जाता था। ऊँचाई के हिसाब से वह तीन प्रकार का होता था। माडलिक के लिये एक हाथ (१८ इच), विजिगीषु के लिये सवा हाथ (२२½ इच) और समस्त राज्यार्थी अर्थात् महाराजाधिराज के लिये डेढ हाथ (२७ इच) ऊँचा होता था।[1] (चित्र ६४)

हर्ष की स्थिति इस समय विजिगीषु राजा की थी। तत्कालीन राजनैतिक शिष्टाचार के अनुसार चतुरन्त दिग्विजय के उपरान्त विजिगीषु को महाराजाधिराज की पदवी प्राप्त होती थी और तभी वह अपने योग्य सोने के डेढ हाथ ऊँचे भद्रासन पर बैठता था।

दिग्विजय के लिये प्रयाण करने से पूर्व जो विधि-विधान किया जाता था उसी का यहाँ उल्लेख है। उसमे सब शस्त्रों की चन्दनादिक से पूजा की गई। और फिर सम्राट् ने अपने शरीर पर सिर से पैर तक धवल चन्दन का लेप किया। पुन. दुकूल वस्त्रों का जोडा पहना जिसके कोनो पर हसमिथुन छपे थे (परिधाय राजहसमिथुनलक्ष्मणी सदृशे दुकूले, २०२)। सिर पर श्वेत फूलों की मुडमालिका और कानो मे मरकत के कर्णाभरण-सदृश सुन्दर दूब का पल्लव धारण किया। हाथ के प्रकोष्ठ मे मगलप्रद ककण पहना और शासनवलय भी धारण किया[2]। शासनवलय का अर्थ शकर ने मुद्राकटक किया है। यह वह कडा था जिसमे राजकीय मुद्रा पिरोई रहती थी। इस प्रकार के कटक और मुद्राएँ ताम्रपत्रों में पिरोए हुए कितने ही पाए गए हैं। बाण ने इसे ही अन्यत्र धर्मशासन-कटक कहा है[3]। पुरोहित ने उनके द्वारा पूजित होकर प्रसन्नता से हर्ष के सिर पर शान्ति-जल

१ बृहत्संहिता ४७। ४६-४७। अजन्ता के गुफाचित्रो मे अंकित भद्रासन के नमूने के लिये देखिए औध कृत अजन्ता, फलक ४१।

२ विनयस्य सह शासनवलयेन गमनमगलप्रतिसर प्रकोष्ठे (२०२)।

३ धर्म-शासन = धर्मार्थं ताम्रपत्र। हारीत के हाथ में पड़े हुए स्फटिक के अक्षवलय की तुलना धर्म-शासन-कटक अर्थात् ताम्रपत्रो में पिरोए हुए कड़े से की गई है (कादम्बरी)।

छिड़का। हर्ष ने सहयोगी राजाओं को कीमती सवारियाँ [1] भेजीं और रत्नजटित आभूषण बाँटे। इस अवसर की प्रसन्नता के उपलक्ष्य में दो काम और किए गए, एक तो कारागृह से बन्दी छोड़े गए, और दूसरे जिन लोगों से सम्राट् किसी कारणवश नाराज होकर उन्हें दडित या कृपा से वचित कर चुके थे उन्हें पुनः प्रसाददान दिया गया अर्थात् वे फिर से सम्राट् के प्रसाद के पात्र बनाए गए। बाण ने ऐसे व्यक्तियों मे तीन तरह के लोगों की गिनती है, एक कार्पटिक, दूसरे कुलपुत्र और तीसरे लोक। कार्पटिक उस प्रकार के राजकीय कर्मचारी थे जिन्हें कर्पट या सिर पर चीरा बाँधने का अधिकार था। इस सम्बन्ध मे प्रयुक्त कर्पट, पटच्चरकर्पट और चीरिका का अर्थ ऊपर लिखा जा चुका है। ये तीनों पर्यायवाची शब्द थे। दूसरी श्रेणी मे कुलपुत्र थे। यह शब्द उन राजघरानो के लिये प्रयुक्त होता था जिनका राजकुल के साथ पिता-पितामह के समय से सम्बन्ध चला आता था। उन घरानों के युवक कुलपुत्र कहलाते थे। राजा के प्रति इनकी विशेष भक्ति होती थी और ये सम्राट् के प्रसाद के भागी थे। बाण ने कई जगह कुलपुत्रों का उल्लेख किया है [2]। तीसरी कोटि मे लोक अर्थात् जनता के व्यक्ति थे। किसी कारणवश सम्राट् का कोपभाजन होने पर इन्हें अपने पदगौरव या मान की हानि सहनी पडती थी, जिसके लिये क्लिष्ट शब्द का प्रयोग किया गया है (क्लिष्ट-कार्पटिक-कुलपुत्र-लोकमोचितैः प्रसाददानैः, २०३)। वह प्रसाद से विपरीत अर्थ का द्योतक है।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है (१७६, १८५), इस समय सर्व पृथ्वी की कल्पना में समग्र भारतवर्ष और द्वीपान्तर के १८ द्वीपों की गणना की जाती थी। उन्ही अष्टादश द्वीपोंवाली पृथ्वी की विजय के लिये समुद्यत हर्ष की दाहिनी भुजा फडकी। इस प्रकार सब सुनिमित्तों के सामने होने पर प्रजाओं के जय शब्द के साथ वह राजभवन से बाहर निकला। नगर से थोडी दूर बाहर सरस्वती के किनारे घास-फूँस के बँगले छाकर उस अवसर के लिये एक दूसरा तृणमय राजमदिर तैयार किया गया था। उसमें ऊँचा तोरण बनाया गया था, (समुत्तम्भिततुगतोरण, २०३), वेदी पर सपल्लव हेमकलश रक्खा हुआ था, वनमालाएँ लटकाई गई थीं, श्वेत ध्वजाएँ फहराई गई थी। श्वेत वस्त्रों से चेलोत्क्षेप (भ्रमच्छुक्ल वाससि) हो रहा था और ब्राह्मण मगल पाठ कर रहे थे। ऐसे मंदिर में उसने प्रस्थान किया [3]।

वहाँ ग्रामाक्षपटलिक ने अपने समस्त लेखकों के साथ निवेदन किया—'देव, आपका शासन अव्यर्थ है, अतएव आज ही शासन दान का आरम्भ करें [4]।' ग्रामाक्षपटलिक गाँव का मुख्य अर्थ-अधिकारी था जिसे वर्तमान पटवारी समझा जा सकता है। उसके सहायक

१. महार्हवाहन।

२ हर्षचरित, पृष्ठ १३०, १५५, १६१, १६५, १६९।

३ घर से बाहर आ जाने पर और वास्तविक यात्रा पर चलने से पूर्व जो कही ठहरा जाता है, उसके लिये प्रस्थान शब्द अब भी लोक में चलता है।

४ करोतु देवो दिवसग्रहणमद्यैवावन्ध्यशासन शासनानाम् (२०३)। दिवसग्रहण= पहली ग्राहकी या बोहनी। शासन=ताम्रपट्ट या केवल पट पर लिखित अग्रहार ग्राम का ब्राह्मण या ब्राह्मणों को दान।

लेखक 'करणि' कहलाते थे। गुप्तशासन मे 'अधिकरण' सरकारी कार्यालय या दफ्तर को कहते थे। उसी के साथ सम्बन्धित लेखको की सज्ञा करणि थी। बिहार मे अभी तक कायस्थों की एक उपजाति का नाम 'करन' है। गया से प्राप्त समुद्रगुप्त के कूट-ताम्रपट्ट में ग्रामाक्षपटलाधिकृत का उल्लेख है। यह ताम्रपत्र जाली समझा गया है। इसमें जाल बनानेवाले ने अपनी बचत के लिये जिस ग्रामाक्षपटलाधिकृत का नाम दिया है उसे किसी दूसरे गाँव का बताया है[1]। इससे इतना निश्चित हो जाता है कि ताम्रपत्र मे दिये जानेवाले गाँव का पूरा हवाला और तत्सम्बन्धी पूरी जानकारी देने का काम ग्रामाक्षपटलिक का था। अमरकोश मे अक्षदर्शक और प्राड्विवाक को पर्यायवाची मानते हुए उसे व्यवहार (अदालत) का निर्णेता कहा गया है[2]। अक्षदर्शक और अक्षपटलिक इन दोनों नामों में अक्ष शब्द का अर्थ रुपये-पैसे का व्यवहार या आय-व्यय है। दिवानी अदालत का न्यायाधीश व्यवहार के मामलों का निर्णय करने के कारण अक्षदर्शक कहा गया है। इसी प्रकार अक्षपटलिक भी वह अधिकारी हुआ जो गाँव के सरकारी आय व्यय का सब हिसाब रखता था। पटल का अर्थ छत या कमरा है। (अमर २ । २ । १४)। अक्षपटल गाँव की राजकीय आय का दफतर था, और उसके अधिकारी की सज्ञा अक्षपटलिक थी।

अक्षपटलिक ने नई बनी हुई एक सोने की मुद्रा जिसपर बैल का चिह्न बना हुआ था, हर्ष के हाथ में दी[3]। सौभाग्य से हर्ष की वृषाक मुद्रा का एक नमूना सोनीपत से प्राप्त ताम्रमुद्रा के रूप में उपलब्ध है[4]। (चित्र ६५) इस मुद्रा पर सबसे ऊपर दाहिनी ओर को मुँह करके बैठे हुए बैल की मूर्ति है, जैसा कि बाण ने उल्लेख किया है। हर्ष परममाहेश्वर थे। अतएव यह बैल नन्दी वृष का चिह्न है। राज्याधिकार महामुद्रा पर उत्कीर्ण लेख में हर्ष के पूर्वजों का वही ब्योरा है जैसा बाँसखेडा-ताम्रपत्र मे मिला है। इसे 'पूर्वा' कहते थे।

हर्ष ने जैसे ही यह मुद्रा हाथ मे ली और पहले से सामने रखे हुए गीली मिट्टी के पिण्डे पर उसे लगाना चाहा कि वह हाथ से छूटकर गिर गई और सरस्वती नदी के किनारे की गीली मुलायम मिट्टी पर उसके अक्षर स्पष्ट छप गए। परिजन लोग अमगल के भय से सोच करने लगे, किन्तु हर्ष ने मन मे कहा—'सीधे-सादे लोगों की बुद्धि बाहरी वास्तविकता को ही ग्रहण कर पाती है। "पृथ्वी आपके एकच्छत्र शासन की मुद्रा से अंकित होगी" इस प्रकार का निमित्त सूचित होने पर भी ये नासमझ इसका कुछ और ही अथ लगा रहे हैं।'

इस महानिमित्त का हर्ष ने मन मे अभिनदन किया और सौ गाँव ब्राह्मणों को दान में दिए। प्रत्येक का क्षेत्रफल एक सहस्र सीर या हल भूमि था। 'सीरसहस्रसम्मितसीमाग्राम' यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि शिलालेखों मे देशो के नामों के साथ जो लबी-लबी संख्याएँ दी गई है और जिनका कुछ अर्थ अभी तक निश्चित नहीं हुआ, उसका कुछ सकेत

१ अन्यग्रामाक्षपटलाधिकृतद्यूतगोपस्वाम्यादेशलिखित (फ्लीट गुप्तशिलालेख, सं ६०)।

२. द्रष्टरि व्यवहाराणां प्राड्विवाकाक्षदर्शकौ (अमर २ । ८ । ५)।

३. वृषांकामभिनवघटितां हाटकमयीं मुद्राम् (२०३)।

४ फ्लीट गुप्त अभिलेख, स० ५२, पृ० २३१, फलक ३२ बी०। यह मुद्रा किसी ताम्रपत्र के साथ जुड़ी थी, मूल ताम्रपत्र खो गया है। मुद्रा की तोल लगभग डेढ़ सेर है।

इसमे मिलने की सभावना है। गुप्तकाल मे भूमि का जो बदोबस्त हुआ था उसमे, प्रत्येक गाँव का ब्यौरेवार क्षेत्रफल और उसपर दिये जाने वाले सरकारी लगान (भाग) की रकम निश्चित कर दी गई थी। क्षेत्रफल और राजकीय भाग का एक निश्चित सम्बन्ध स्थिर किया गया। शुक्रनीति मे कहा है कि एक कोस क्षेत्रफलवाले गाँव का लगान एक सहस्र चाँदी का कार्षापण था[1]। एक क्रोश क्षेत्रफल मे कितने हल भूमि होती थी इसका हिसाब जान लेने पर यह संख्या सार्थक हो जाती है। ज्ञात होता है कि प्रत्येक गाँव के नाम के साथ जितने हल भूमि उस गाँव मे थी उसकी सख्या और देश के नाम के साथ जितने कार्षापण लगान की आय उससे होती थी, उसकी संख्या शासन के काग़ज पत्रों मे दर्ज रहती थी।

वह रात हर्ष ने सरस्वती के किनारे छाए हुए बॅगले (तृणमय मन्दिर) मे बिताई। जब रात का तीसरा याम समाप्त हो रहा था तो कूच का नगाडा (प्रयाण-पटह २०३) गम्भीर ध्वनि से बजाया गया। कुछ ठहरकर जोर-जोर से डंके की आठ चोट मारी गई, इस तरह यह सूचित किया जाता था कि उस दिन का पड़ाव कितने कोस की दूरी पर किया जायगा[2]। यात्रा की दूरी के लिये शुक्र ने मनु के हिसाब से २००० गज का कोस माना है[3]। इस हिसाब से आठ कोस की यात्रा लगभग नौ मील की दूरी हुई। डंके की चोट पड़ते ही सैनिक-प्रयाण की तैय्यारी शुरू हो गई। सास्कृतिक सामग्री के भडार इस महत्त्वपूर्ण प्रकरण मे बाण ने निम्नलिखित वर्णन दिए है।

१ प्रयाण की कलकल और तैय्यारी (२०४—२०६)
२ राजाओ के समूह का वर्णन (२०६—२०७)
३ हर्ष का वर्णन (२०७—२०८)
४ राजाओं का प्रस्थान, और प्रस्थान करते हुए स्कन्धावार का आवास-स्थान के समीप से हर्ष द्वारा देखा जाना (२०६)
५ चलती हुई सेना मे सैनिकों की बातचीत (सलाप) (२१०)
६. सेना के चलने (सैन्य-सम्मर्द) से जनता को कष्ट (२११—२१२)
७. कटक देखकर हर्ष का अपने आवास मे लौटना, मार्ग में राजाओं के आलाप (२१३—२१४)

---

१ भवेत्क्रोशात्मको ग्रामो रूप्यकर्षसहस्रक (शुक्र० १ । १९३) । शुक्र के अनुसार राजकीय लगान के लिये प्राजापत्यक्रोश का ग्रहण होता था जिसकी लंबाई ५००० हाथ (=२५०० गज) थी। एक वर्गक्रोश अर्थात् एक गाँव का क्षेत्रफल २५०००००० वर्ग हाथ शुक्र ने कहा है (शु० १ । १९५)। यदि एक क्रोशात्मक क्षेत्रफल के गाँव मे १००० सीर भूमि मानी जाय तो १ सीर भूमि= २५००० वर्ग हाथ=२५० ×१०० वर्ग हाथ=१२५×५० वर्ग गज=६२५० वर्ग गज भूमि लगभग १¼ एकड़। मोटे हिसाब से एक सीर भूमि का लगान एक कार्षापण हुआ, क्योंकि सीर-सहस्रात्मक ग्राम का लगान एक सहस्र कार्षापण था।

२ प्रयाणक्रोशसख्यायकाः स्पष्टम् अष्टावदीयन्त प्रहाराः पटहे पटीयांस, २०३।

३ हस्तैश्चतु सहस्रैर्वा मनो क्रोशस्य विस्तर (शुक्र० १ । १९४)।

प्रयाण-समय की तैय्यारी के वर्णन में बाजे-गाजे बजना, छावनी मे जाग होना, डेरा-डडा उठाना, सामान लादना, भाँति-भाँति की सवारियो का चलना, घुडसाल और गजसाल का सामान बटोरना, प्रियजनों से बिदाई एव सैनिक कशमकश से आबादी की रौद और कष्ट आदि का वर्णन किया गया है। बाण के इस सतत्तर समासो के लम्बे वर्णन में एक क्रमिक व्यवस्था है जो सैनिक-प्रयाण के समयोचित चित्र पर ध्यान देने से समझ मे आ जाती है।

जैसे ही कूच का डका बज चुका, सैनिक-बाजे बजने लगे। पटह, नादीक, गुजा, काहल और शख—इन पाँच बाजों का शोर शुरू हो गया। नादीक को शकर ने मगलपटह कहा है। इसका निश्चित अर्थ अज्ञात है सम्भवतः बीन-जैसा बाजा हो जो कि कुषाण-काल की मूर्तियों मे मिलने लगता है और आज भी सेना मे प्रात. जागरण के समय बजाया जाता है। गुजा को पहले (४८) प्रयाणगुजा भी कहा गया है। शकर ने उसका अर्थ एक प्रकार का ढक्का दिया है। बाण ने उसकी ध्वनि को पुराने करंज वृक्ष की बजनेवाली फली के समान कहा है। (शिजानजरत्करजमजरीबीजजालकै. सप्रयाण-गुजा इव, ४६)। ज्ञात होता है कि यह लेजिम-जैसा बाजा था जिसमे से छरछराहट की ध्वनि निकलती थी। काहल के विषय में भी मतभेद है, किन्तु काहली नाम से अभी तक एक बाजा प्रचलित है जो लगभग दो फुट लंबा सुनार की फुँकनी की तरह का होता है जिसके निचले हिस्से में कुप्पीनुमा फूल होता है। कभी-कभी दो काहलियाँ एक साथ भी फूँकी जाती है। काहली मे से कूकने की-सी आवाज निकलती है (कूजत्काहले, २०४)।

क्रमश कटक मे कलकलध्वनि बढने लगी। सर्वप्रथम झाडू देनेवाले जमादार आदि आए और उन्होने नौकर चाकरों को जगाया[1]। उसी समय सेना को जगाने के लिये मूंगरी की तडातड चोटो के (घडियाल पर उत्पन्न शब्द से) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (धव्यमान) नुकीले पतले डडों से बजाए जाते हुए नक्कारों का शब्द दिशाओं में भर गया[2]। चारों ओर जाग हो गई। बलाधिकृतों ने सब पाटीपतियों को इकट्ठा किया। बलाधिकृत गुप्तकालीन सैनिक संगठन में महत्त्वपूर्ण पद था। सम्भवत एक वाहिनी[3] का अध्यक्ष बलाध्यक्ष कहलाता था। पाटीपति का अर्थ कावेल ने बारिकों के सुपरिण्टेण्डेण्ट किया है जो ठीक जान पडता है, क्योंकि बलाधिकृतों के लिये सेना की तैय्यारी का आदेश पाटीपतियों के द्वारा देना

१ परिजनोत्थापनव्यापृतव्यवहारिणि, २०४। कणे और कावेल ने व्यवहारिणि का अर्थ व्यापारी या सरकारी अधिकारी किया है जिसकी यहाँ कुछ सगति नही बैठती। वस्तुत. व्यवहारिका बुहारी की सज्ञा थी और व्यवहारिन् का अर्थ है बुहारनेवाला।

२. कोणिका=पेंदो मे कोणाकृति नक्कारा जो कीलनुमा पतले डडों से बजाया जाता है। जगाने के लिये मूंगरी से जल्दी-जल्दी घड़ियाल बजाई गई और फिर नगाडा बजना शुरू हुआ।

३ एक हाथी, एक रथ, तीन घोड़े, पाँच पैदल = १ पत्ति।
५ पत्ति=एक सेनामुख, ३ सेनामुख=१ गुल्म, ३ गुल्म=१ गण, ३ गण=१ वाहिनी, ३ वाहिनी=१ पृतना, ३ पृतना=१ चमू, ३ चमू=१ अनीकिनी; १० अनीकिनी=१ अक्षौहिणी। एक वाहिनी में ८१ हाथी, ८१ रथ, २४३ घोड़े और ४०५ पैदल होते थे। यह लगभग आजकल के बटालियन के तुल्य होगी।

ही उपयुक्त था। वैन्यगुप्त के गुणैधर-ताम्रपट्ट में महासामन्त विजयसेन को पंचाधिकरणोपरिक पाट्युपरिक कहा गया है। वहाँ भी पाटी का यही अर्थ अर्थात् सैनिकों के रहने की लंबी बारिकें ही जान पड़ता है। पाटीपतियों को जब बलाधिकृत की आज्ञा मिली तो सेना में सहस्रों उल्काएँ (मशालें) जल उठीं।

इसके बाद रात के चौथे पहर में आनेवाली दासियाँ (याम-चेटी) अपने काम पर आ गईं और उनकी आहट से ऊँचे अधिकारी जो स्त्रियों के पास सोए थे, उठ बैठे।

प्यादों की कड़ी डॉट से निषादियों (हाथीवानों) की नीद हवा हो गई और वे आँख मलने लगे (कटककटुनिर्देशनश्यन्निद्रोन्मिषन्निषादिनि, २०४)[1], हाथियों के झुण्ड (हास्तिक) और घोड़ों के ठट्ट (अश्वीय) भी जाग पड़े।

लहजे से शब्दों का उच्चारण करते हुए प्यादे धम-धम करते हुए कुदालों से तम्बुओं के धरती में गड़े फाँसेदार आँकुड़ों को खोदने लगे[2]। इसके बाद हाथियों के गड़े खूँटे उखाड़े जाने से जजीरें खनखनाने लगीं (शिजानहिंजीर)। घोड़ों के पास भी जब उनके खोलनेवाले पहुँचे तो उन्होंने अपने पिछले पैरों के खुर मोड़कर उठा दिए। और उनके पैरों में पड़े हुए खटकेदार कड़े (निगडतालक) खोल दिए गए[3]। जो मैमत हाथी थे उनके पैरों में विशेष रूप से बाँधनेवाली जंजीरें पड़ी हुई थीं (सदानश्रृङ्खला, जो अंदू के साथ पैरों में पहनाई गई थीं)। उन्हें लेशिक या घसियारे खोलने लगे तो खनखन का शोर चारों ओर भर गया[4]।

इसके बाद डडे-डेरों के बटोरने और लदाई का काम शुरू हुआ। हाथियों की पीठ को घास के लंबे मुट्ठों से झाड़कर गर्द साफ की गई और उनपर कमाए हुए चमड़े की खालें डाल दी गईं[5]। गृहचिन्तक (मीर-खेमा) के नौकर-चाकर (चेटक = खेमाबरदार) तबू (पटकुटी), बड़े डेरे (काण्डपटमण्डप), कनात (परिवस्त्रा) और शामियाने (वितानक) लपेटने और खूँटों के मुट्ठे चपटे चमड़े के थैलों मे भरने लगे।

---

१ निषादी = एक प्रकार के हस्तिपरिचारक (१७२, १९६) जिनकी व्याख्या पहले हो चुकी है। निर्णयसागर प्रेस का 'कटुककटुक' पाठ अशुद्ध है। कश्मीर-संस्करण का 'कटुकटु' भी अपपाठ है। मूल पाठ कटककटु होना चाहिए। हाथियों के सम्बन्ध में 'कटक' नामक परिचारकों का उल्लेख ऊपर हो चुका है (कटककदम्बक = प्यादों के समूह, १९६)।

२. रटत्कटक। कटक = प्यादा।

३ निर्णयसागर-संस्करण में 'उपनीयमाननिगड़तालक' पाठ अशुद्ध है। कश्मीरी पाठ 'शिजानहजीरेपनीयमान' है, यही शुद्ध है। पदच्छेद करके अपनीयमान 'निगड-तालक' पद बनेगा। तालक = ताला। शकर ने तालपत्र अर्थ किया है जो अशुद्ध है। कावेल इस वाक्य को नहीं समझे।

४ इस कार्य के लिये नियुक्त कर्मचारियों को कौटिल्य में पादपाशिक कहा गया है (२।३२)।

५ यह लद्दू हाथियों का वर्णन है। कश्मीरी पाठ 'प्रस्फोटितप्रमृष्टचर्म' है। प्रस्फो-टित = झाड़ी हुई, प्रमृष्ट = मुलायम, चिकनी।

अब सामान की लदाई शुरू हुई। भडार ढोने के लिये नालीवाहिक (फीलवान) बुलाए जाने लगे[1]। सामान लादने के हाथी दो प्रकार के थे, एक सीधे हाथी जिन्हे निषादियो ने लाकर चुपचाप खडा कर दिया। उनपर सामन्तों के डेरो मे भरा हुआ सामान, प्याले और कलसो की पेटियों के समूह[2] लाद दिए गए। दूसरे पाजी हाथी थे जिनपर काठ-कबाड, खाट-पीढे आदि उपकरण सम्भार नौकर दूर से फेंककर लाद रहे थे।

अब चलने की हड़बडी होने लगी। मुटल्ली दूतियाँ सेना के साथ चल नही पा रही थी, इसलिये दूसरे उन्हे घसीटते ले चल रहे थे। उनका हाथ और बीच का भाग[3] एक ओर को टेढा हो गया था जिन्हे देखकर कुछ लोग हँस रहे थे। रग-बिरगी झूलो (शारशारी) की मोटी रस्सियों (वरत्रागुण) के कसे जाने से जिनके झूमने में बाधा पड़ रही थी (आहित-गात्र-विहार) ऐसे कद्दावर और मिजाजदार हाथी चिंघाड रहे थे। पीठ पर लादी जाती कंडालो[4] के डर से ऊंट बलबला रहे थे।

इसके बाद जलूस मे बढिया सवारियाँ आईं। अभिजात राजपुत्रों के द्वारा भेजे गए पीतल-जडे (कुप्ययुक्त) वाहनो में कुलीन कुलपुत्रों की आकुल स्त्रियाँ जा रही थी[5]। सवारी के हाथियों के आधोरण गमन-समय में अनुपस्थित अपने नए सेवकों को ढुँढवा रहे थे।

---

१. भाण्डागारवहनवाह्यमानबहुनालीवाहिके (२०४), नाली = नुकीली तीर जैसी-छड़, इसे कान में चुभाकर हाथी को चलाते हैं। लद्दू हाथियों के फीलवान नाली और सवारी के महावत अकुश रखते थे।

२ निषादिनिश्चलानेकपारोप्यमाणकोशकलसपीडापीडसकटायमानसामन्तौकसि (२०४), कोश = कोसा या प्याला, पीडा = पेटी या पिटारी, आपीड = खचाखच।

३ जाघनिकर। जाघनि = जघनप्रदेश, नितम्बभाग।

४ कंठालक = ऊँटो पर सवारियो के बैठने के लिये पीठ के इधर-उधर लटकनेवाला किचावा। इसमें सारा शरीर भीतर आ जाता है और सिर बाहर निकला रहता है, जिससे इसका नाम कंठालक पड़ा होगा।

५ अभिजात-राजपुत्र-प्रेष्यमाण-कुप्रयुक्ताकुल-कुलीन-कुलपुत्र-कलत्रवाहने (२०५), इसका अर्थ कावल और कणे के अनुसार यह है—उच्च राजपुत्रो से भेजे गए गुण्डे दूत कुलीन कुलपुत्रों की स्त्रियो के वाहनो को घेरे हुए थे। इस प्रसग में यह अर्थ जमता नही। अभिजात राजपुत्र और कुलीन कुलपुत्रो का यह व्यवहार बुद्धिगम्य नही होता। हमारी समझ में 'कुप्रयुक्त' अपपाठ है। शुद्ध पाठ कुप्ययुक्त था। कुप्य का अर्थ था पीतल और कुप्ययुक्त = पीतल के साज से अलकृत। आज भी बढ़िया राजकीय सवारियाँ तरह-तरह के पीतल के सामान से सजाई जाती हैं जिन्हें माँजकर चमाचम रखते हैं। बाण का तात्पर्य यह है कि बड़े राजपुत्रो की ऐसी जड़ाऊ रथ-बहलियाँ कुलीन कुलपुत्रो की घबराई हुई स्त्रियो को घर भेजने के लिये माँग ली गई थी। कुलपुत्र परिवार-सहित प्राय राजकुल में रहते थे। हर्षचरित भर में यही एक ऐसा स्थल है जहाँ सभी पोथियों के पाठों को न स्वीकार करके मैंने अपनी ओर से कु-प्रयुक्त की जगह *कुप्य-युक्त पाठ-संशोधन किया है। अर्थ की दृष्टि से *कुप्य-युक्त पाठ ही ठीक बैठता है जो अन्य आदर्श पोथियो में जाँचने योग्य है।

प्रसाद पाए हुए पैदल (प्रसादवित्त-पत्ति) राजा के खासा घोडो को पकडकर ले चल रहे थे[1] (२०५)।

सजी-बजी चाटभट सेना के हरावल दस्ते चौडे छोपे हुए निशानोंवाले वेष से सजे थे[2]। स्थानपालों के घोडे का ठाठ और भी बढा चढा था। उनकी पलानें लटकती हुई लवणकलायी, किंकिणी और नाली से सुशोभित थी एव ज़ेरबन्द (तलसारक) से बँधी हुई थी[3]।

इस वाक्य मे पॉच पारिभाषिक शब्द है। कावेल और कणे द्वारा या अन्यत्र उनका अर्थ स्पष्ट नही हुआ। स्थानपाल कोटले या गढ़ियों के रूप मे बनी हुई चौकियों के गढपति ज्ञात होते है। वे जिन घोडों पर सवार थे उनके सामने की ओर लाल जेरबन्द या तलसारक बँधा हुआ था। तलसारक का मूल अर्थ है घोडे को तल अर्थात् नीचे की ओर रखनेवाला जिससे वह पिछले पैरो पर खड़ा न हो सके। पीछे वह शोभा के लिये भी बाँधा जाने लगा। तलसारक का एक सिरा घोडे के मुँह के नीचे की पट्टी और दूसरा तंग में बॉधा जाता है।

लवणकलायी बिलकुल अप्रसिद्ध शब्द है। शकर के अनुसार हिरन की आकृति की लकडी की पुतलियाँ बनाकर घोडों की जीन से लटकाई जाती थी उन्हे लवणकलायी कहते थे। किसी अंश में शकर का अर्थ ठीक है। कुमारगुप्त की अश्वारोही भाँति की स्वर्णमुद्रा पर (भाँति ३, उपभाँति डी) घोड़ों की टाँगों के पास इस प्रकार के अलंकार लटके हुए मिलते है। खड़े हुए हिरन के संमुख दर्शन का रेखाचित्र बनाया जाय तो उसकी आकृति से यह अलंकरण मिलता हुआ है, अतएव शंकर का दारुमयीमृगाकृति विवरण वास्तविक परंपरा पर आश्रित जान पड़ता है। वस्तुत. अमरावती के शिल्प मे उत्कीर्ण घोडों की मूर्तियों पर भी इस प्रकार की सजावट मिलती है। यूनानी और रोमदेशीय घोड़ों की सजावट के लिये भी इस प्रकार की आकृति का प्रयोग

---

१ प्रसाद। नौकरी में अच्छे काम करनेवालो के लिये तरक्की का सूचक चिह्न जो एक चीरे के रूप में सिर पर बाँध लिया जाता था। बाण ने प्रसादलब्ध मुंडमालिका पहने हुए दौवारिक पारियात्र (६१) और प्रभुप्रसाद से प्राप्त पाटित-पटच्चर या कपडे का फीता बाँधे हुए घासिक सेवक (२१३) का वर्णन किया है। वल्लभ शब्द सम्राट् के निजी या खासा घोड़ो के लिए प्रयुक्त हुआ है (भूपालवल्लभतुरग, ६४)। ये घोडे राजद्वार के भीतर की मदुरा मे रखे जाते थे। वारवाजि का अर्थ वे कोतल घोडे है जो राजा या खास सवारी के घोड़े के पीछे सजाकर इसलिये ले जाते थे कि पहले घोड़े के थक जाने पर बारी से उस पर सवारी की जा सके।

२ चारभट का दूसरा रूप चाटभट ज्ञात होता है जो कितनी ही बार शिलालेखो मे प्रयुक्त हुआ है (फ्लीट, गुप्त-अभिलेख, महाराज हरितन् का खोह ताम्रपट्ट, पृ० ९८, टिप्पणी २)। चारु=रगीन वर्दी-युक्त। नासीरमडल=अग्रभाग मे रहनेवाला हरावल दास्ता। आडबर=सजावट। स्थूलस्थासक=पोशाक पर छोपे हुए मोटे थापे। इसका स्पष्ट नमूना अजन्ता में मिलता है। (औध-कृत अजन्ता, फलक ३३, पहली गुफा मे नागराज-द्रविड-राज-चित्र में द्रविडराज के पीछे का सिपाही जो स्थूलस्थासको से छुरित पोशाक पहने हुए है)।

३ स्थानपालपर्याणलम्बमानलवणकलायीकिंकिणीनालीसनाथतलसारके (२०५)।

होता था। यह किसी धातु की बनती थी और ऊपर के गोल टुकड़े में नीचे कोरदार चन्द्राकृति लगाकर बनाई जाती थी जिसे यूनानी भाषा मे 'फलरा[१]' कहते थे। (चित्र ६६) नाली का अर्थ शंकर ने घोड़ों को तरलपदार्थ पिलाने के लिये बाँस की नली किया है किन्तु यह कल्पित है। दिव्यावदान के अनुसार नाली सोने की नलकी थी जो पूँछ मे पहनाई जाती थी[२]।

चलने के समय घुड़साल की अवस्था का कुछ और विशेष परिचय भी दिया गया है। (खासा घोड़ों पर नियुक्त) वल्लभपाल-संज्ञक परिचारक घोड़ों की बाँधने की अवरज्जणी रस्सी की बींडी बनाकर लिए हुए थे और घोड़ों को रोग और छूत से बचाने के लिये साथ मे बन्दर ले चल रहे थे[३]।

प्रातःकाल घोड़ों को व्यायाम (प्राभातिक योग्या) कराने के बाद जो रातिब दिया गया था उसके तोबड़ो (प्रारोहक) को परिवर्द्धकों ने आधा खाने की दशा में ही उतार लिया[१]। घसियारे एक दूसरे की आवाज पर चिल्ला-चिल्लाकर शोर कर रहे थे। चलते समय की हड़बड़ी में नौसिखुए जानदार घोड़े मुँह उठाकर चक्कर खाने लगे (भ्रमदुत्तुङ्गतरुण तुरंगम) जिससे घुड़साल में खलबली मच गई। हथिनियों सवारी के लिये तैयार हो चुकीं तो ओरोहकों के पुकारने पर स्त्रियाँ जल्दी से मुखालेपन (हथिनियों के मुँह पर माँडने-बनाने की सामग्री) लेकर आईं। हाथी-घोड़े चल पड़े तब पीछे छोड़े हुए हरे चारे के ढेरों को

---

१. '*Phalara* (pl *phalerae*) used once in Homer to signify an appendage to a helmet The word is elsewhere used of the metal discs or crescents with which a horse's harness was ornamented' [Cornish, *Concise Dictionary of Greek and Roman Antiquities*, p 471, fig 806]

२ तस्य तु पुच्छ सौवर्णायां नालिकायां प्रक्षिप्तम् (दिव्यावदान, पृ० ५१४)। ईरान में सासानी युग में भी घोड़ो की पूँछ में पहनाई जानेवाली नलकी उनके जिरहबख्तर का अंग थी। [सी० हुआर्ट, ऐंश्येंट पर्शिअन ऐंड ईरानिअन सिविलिजेशन, पृ० १५०, 'The head, tail and breast of the horse are likewise covered with coat of mail.']

३ घुड़साल में बन्दर रखने का उल्लेख साहित्य मे कितनी ही बार आता है। जायसी ने लिखा है—'तुरय रोग हरि माथे आए'। यह विश्वास था कि घोड़े की बीमारी साथ में रहनेवाले बन्दर के सिर आ जाती है।

१. परिवर्द्धकाकृष्यमाणार्धजग्धप्राभातिकयोग्याशनप्रारोहके (२०५)। प्रारोहक चमड़े का चौड़े मुँह का तोबड़ा, पंजाब मे अभी तक कुँओं से पानी उठाने के मोठ, चरस या पुर को परोहा (प्रारोहक, उठानेवाला) कहते हैं। उसी की तरह का होने से तोबड़ा भी प्रारोहक कहा गया। परिवर्धक कर्मचारियों का काम घोड़ों पर साज कसकर उन्हें सवारी के लिये हाजिर करना था (परिवर्धकोपनीततुरंगमारुह्य, १५२) प्रारोहक का पाठान्तर शंकर ने प्रौढ़िक दिया है (योग्याशनार्थं प्रसेवक)। प्रौढ़िक से पोढ़िय बना है जो कन्हेरी के गुफा लेखों में प्रयुक्त हुआ है (पानीयपोढिय=पानी रखने की छोटी हौदी)। सम्भव है, मूल पाठ प्रौढिक (=थैला या तोबड़ा) रहा हो, जिसे बाद मे सरल करने के लिये प्रारोहक कर दिया गया।

(निर्घास-सस्यसंचय) लूटने के लिये आसपास के दुकड्हे लोग आ पहुँचे। गधे भी साथ में चले और छोकरों के ठट्ठ (चेलचक्र)[1] उनपर उचककर बैठ गए। चूॅ-चूॅ करते हुए पहियोंवाली सामान से लदी लढिया गाडियों की लीक मे (प्रहत वर्त्म) डाल दिया गया[2]। जो सामान मॉगने पर फौरन देने योग्य था उसे बैलो पर लादा गया[3]। रसद का सामान देनेवाले बनियों के बैल पहले ही रवाना कर दिए गए थे, किन्तु वे (या उन्हे हॅकानेवाले नौकर) घास के लोभ मे देर लगा रहे थे[4]। महासामन्तो के रसोडे (महानस) आगे ही (प्रमुख) भेज दिए गए थे। झडी-बरदार (ध्वजवाही) सेना के सामने दौड़कर चल रहे थे[5]। भरे हुए डेरो (कुटीरको) से निकलते हुए सैनिक अपने प्रिय जनों से गले मिल रहे थे (२०५)।

इस प्रकार सेना के प्रस्थान करने पर भीड-भब्भड मे जनता को हानि भी उठानी पडती थी। शहर और देहात दोनो जगह इतने भारी मजमों के चलने से जो तबाही आती थी, बाण ने उसका सच्चा चित्र खीचा है। हाथियो ने रास्ते मे पडे घरो (मठिका) को पैरो से रौद डाला, लोग बेबसी से जान लेकर मेठो[6] (हस्तिपक) पर ढेले फेंकते हुए भागे। पकड न पा सकने के कारण मेठो ने पास खडे लोगो को साक्षी बनाकर संतोष किया। उस धक्कमधक्के

१. चक्रीवत् गर्दभ। शकर के अनुसार 'चक्रीवत् गर्दभ उष्ट्रो वा', किन्तु गर्दभ' अर्थ ही ठीक जान पड़ता है, क्योंकि ऊँटो का वर्णन ऊपर आ चुका है। चेल का अर्थ शकर ने वस्त्र या बालक किया है, चेलचक्र का अर्थ छोकरे हा अधिक उपयुक्त है।

२. सामान लदी हुई गाडियाँ एक बार लीक मे डाल दी जाती हैं और ऊँघते बैलवानों के साथ रेंगती रहती है, रथादि वाहनों की भाँति वे शीघ्रता से बचाकर नहीं निकाली जाती।

३. अकाण्डदीयमान-भाण्डभरितानडुहि (२०५)। कावेल ने अर्थ किया है—'oxen were laden with utensils momentarily put upon them' वास्तविक बात यह है कि पडाव पर पहुँचकर ही खोला जानेवाला सामान गाड़ियो में और तुरन्त आवश्यकता का सामान बैलो पर लादा गया।

४ निकटघासलाभलुभ्यल्लम्बमानप्रथमप्रसार्यमाणसारसौरभेये (२०५)। सारसौरभेय का अर्थ कठिन है। कावेल और कणे के अनुसार, तगडे बैल। सार का अर्थ जल, दूध-दही, या मित्र सामन्त भी है। किन्तु इस प्रसग मे इनमे से कोई अर्थ मेल नही खाता, प्रथम प्रसार्यमाण की सगति नही बैठती। हमारी सम्मति मे सार और सारण एकार्थक है और सारणिक का अर्थ था बंजारे या चलनेवाले बनिए (a travelling merchant, मानियर विलियम्स)। सगतिपरक अर्थ यह है कि कटक के साथ चलनेवाले बनिए रसद का प्रबन्ध करने के लिये अपने बैलो के साथ आगे ही भेज दिए गए थे। इसी तरह सामन्तो के घोडे भी आगे ही चलतू कर दिए गए थे। इसीलिये दोनो का एक साथ वर्णन सार्थक है।

५ सैनिक जुलूसो में अब भी यही प्रथा है। ध्वजा सबसे आगे रफ्तार के साथ चलती है।

६ मेण्ठ=हाथियो के खिदमतगार। हिन्दी में मेठ मदद पर काम करनेवाले व्यक्तियो के नायक के लिये प्रयुक्त होता है। यहाँ भी सम्भवत मेण्ठ हाथियों से सम्बन्धित छोटे नौकरो के जमादार थे।

में छोटी बस्तियाँ तितर-बितर हो गई, और उनमें रहने वाली छोटी गृहस्थियाँ जान लेकर भागीं[1]। बंजारों के सामान से लदे हुए बैल शोर-शार से बिदककर भाग निकले[2]।

ज्ञात होता है, उस युग के सैनिक प्रयाण में रनिवास भी साथ रहने लगा था। गुप्त-कालीन युद्धों में जो बाल्हीक-सिन्धु तक लड़े जाते थे, यह प्रथा न रही होगी। उस समय का सैनिक अनुशासन अधिक कड़ा था। पीछे सम्भवत कुमारगुप्त के समय अंत पुर के लोग भी प्रयाण के समय साथ रहने लगे। बाण का कथन है कि अन्त पुर की स्त्रियाँ हथिनियों पर बैठकर निकलती थीं, उनके सामने मशाल लिए हुए लोग चलते थे जिसके संकेत से जनता मार्ग छोड़कर हट जाती थी[3]। दीपिकालोक का प्रतीक सम्भवतः जान बूझकर रक्खा गया था जिससे 'असूर्यम्पश्या राजदारा' की भ्राति बनी रहे।

'ऊँचे तगण[4] घोड़ो पर जिनकी बढ़िया तेज दुल्की से बदन का पानी भी न हिलता था, मजे में बैठे हुए खक्खट उनकी चाल की तारीफ कर रहे थे। लेकिन खच्चरों पर तकलीफ से बैठे हुए दक्खिनी सवार फिसले पड़ते थे।'

तगण देश का उल्लेख पाण्डुकेश्वर मे प्राप्त उत्तर गुप्तकालीन ताम्रपट्टों में आता है। यह गढवाल के उत्तर का प्रदेश था। यहाँ के टाँगन घोड़े प्रसिद्ध थे। खक्खट का अर्थ शंकर ने 'वृद्धा.' किया है। पर हमारी सम्मति में बाण ने यहाँ हर्ष की सेना की एक विशेष वीर टुकड़ी का उल्लेख किया है। कश्मीर-प्रति का शुद्ध पाठ 'खक्खट क्षत्रिय' है। खक्खट क्षत्रिय प्राचीन खोक्खड़ ज्ञात होते है, जो अपने को राजपूत मानते है और अपने प्रमुख व्यक्तियों को राजा कहते हैं। यह अत्यन्त प्राचीन जाति समझी जाती है जो व्यास के पूर्व मे और झेलम चनाब नदियों के बीच मध्य पंजाब मे बसी है। ये वीर और लड़ाके होते है। इनकी बस्तियों (तलवंदियो) में घोड़े अच्छे होते है[5]। हर्ष की सेना में पंजाब की इस वीर लड़ाकू जाति की एक टुकड़ी थी, यह बहुत सम्भव है, और प्राचीन खक्खट नाम से उसीका उल्लेख समझा जा सकता है।

प्रयाण-समय में देश-देशों के राजा भी हर्ष की सहायता के लिये एकत्र हुए। बाण ने उनके पृथक् नामो या देशों का परिगणन न करके केवल वेषभूषा या टीमटाम का वर्णन

१ व्याघ्रपल्ली=जगल मे अस्थायी रूप से बनाई हुई झोपडियो की छोटी बस्तियाँ। शुक्रनीति के अनुसार (जो गुप्तकाल की सस्कृति की परिचायक है) एक क्रोश क्षेत्रफल की बस्ती ग्राम और उससे आधी पल्ली कहलाती थी (भवेत् कोशात्मको ग्राम ' ग्रामार्द्धक पल्लिसज्ञ, १।१९३)। व्याघ्रपल्ली, ऐसे स्थान मे बनी हुई पल्ली जहाँ बाघ लगता हो, अथवा बाघ लगने लायक घना जगल हो।

२ कलकलोपद्रवद्द्रवद्-द्रविणबलीवर्द-विद्राणवणिजि (२०६)।

३ पुरःसरदीपिकालोकविरलायमानलोकोत्पीडप्रस्थितान्त पुरकरिणीकदम्बके (२०६)।

४ कश्मीर प्रतियो में तुंगण के स्थान पर तगण पाठ है जो ठीक है।

५. इबटसन ए ग्लॉसरी आफ दी ट्राइब्स ऐंड कास्टस् आफ दी पजाब, भाग २, पृ० ५३९-४५। खोक्खड़ो की दंतकथाओ मे उनका सबंध भरत-दशरथ, व ईरान के हखामनि शासक एव सिकंदर से जोड़ा जाता है। कपूरथला का खोखरैन (खक्खटायन) इलाका इन्ही के नाम पर है।

किया है। यह स्कन्धावार राजद्वार के बाहर एकत्र हो रहा था (२०७)। पहले भी धवलगृह (राजा का आवास), राजकुल और स्कन्धावार का पारस्परिक सम्बन्ध और भेद स्पष्ट किया जा चुका है (दूसरा उच्छ्वास और चौथा उच्छ्वास)। यहाँ भी बाण ने बारीकी के साथ फिर उसका निर्वाह किया है। आगे कहा गया है कि हर्ष ने आवासस्थान के पास से प्रस्थान करते हुए स्कन्धावार को देखा (२०६-१०)। उसे देखता हुआ वह कटक अर्थात उस स्थान में आया जहाँ राजाओं के शिबिर लगे थे। यह भी स्कन्धावार का ही एक भाग था। वहाँ राजाओं (पार्थिव-कुमारो) की उत्साहप्रद बातचीत सुनता हुआ उनके साथ मदिरद्वार अर्थात् राजमंदिर (राजकुल) के द्वार तक आया और उन्हें यहीं से बिदा कर दिया। राजमंदिर के भीतर वह घोड़े पर सवार ही प्रविष्ट हुआ। बाह्यास्थान-मंडप (दीवाने आम) के पास घोड़े से उतरकर वहाँ स्थापित आसन पर जाकर बैठा और वहाँ भी जो लोग एकत्र थे उन्हे विसर्जित करके तब भास्कर वर्मा के दूत से भेंट की [1]। वास्तुसन्निवेश की दृष्टि से बाण के ये वर्णन पूरे उतरते है।

राजाओ के वर्णन मे बाण ने निम्नलिखित क्रम रक्खा है—हाथी और घोड़े पर उनकी सवारियाँ, वेषभूषा, शरीर के निचले भाग और ऊपरी भाग में पहने हुए विविध वस्त्र, कान के आभूषण, शिरोभूषा, जुलूस का रफ्तार पकडना, हाथियों का वेग से चलना, घोड़ों का सरपट जाना, चारभट सेना का प्रयाण और बाजों की ध्वनि।

हाथियों पर चढे हुए आधोरण स्वर्णपत्रलता से अलंकृत शाङ्ग (सींग का बाजा) हाथ मे लिए थे। शाङ्ग का उल्लेख कालिदास ने पारसीकों के साथ रघु के युद्ध-वर्णन में किया है। घोडों पर चढे हुए पारसीक सीग की बनी हुई तुरही बजाकर युद्ध करते थे [2]। यहाँ भी शाङ्ग का यही अर्थ उपयुक्त है, जैसा कि ऊर्ध्वध्रियमाण पद से सूचित होता है। राजाओ के अन्तरंग सहायक पास के आसन पर तलवार लिए बैठे थे एवं ताम्बूलिक चंवर डुला रहे थे। हाथियो के पीछे की ओर बैठे हुए (पश्चिमासनिक) परिचारक चमड़े के बने हुए विशेष प्रकार के तरकशों में भरे हुए छोटे हलके भालों के (भिन्दिपाल) मुट्ठे लिए हुए थे [3]। (चित्र ६७)

---

१. मदिरद्वारि चोभयत सबहुमानं भ्रूलताभ्या विसर्जितराजलोक, प्रविश्य चावततार, बाह्यास्थानमडपस्थापितमासनमाचक्राम प्रास्तसमायोगश्च क्षणमासिष्ट (२१४)।

२ शाङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत् (रघु० ४-६२)। मल्लिनाथ ने शाङ्ग का एक अर्थ धनुष और दूसरा अर्थ सीगी किया है। कूजित पद से दूसरा अर्थ ही ठीक जान पड़ता है। अमिआनुस मारसेलीनस ने सासानी योद्धाओ का वर्णन करते हुए लिखा है कि वे तुरही बजाकर युद्ध का संकेत देते थे। 'दि सिग्नल फार बैटिल वाज गिवेन बाइ ट्रम्पेट्स' (सी० हुअर्ट, एशेंट पर्सिया, पृ० १५१)।

३ भस्त्राभरण। शंकर के अनुसार एक प्रकार का तरकश, बाण रखने के तरकशों से भिन्न प्रकार का चमड़े का भाथी के जैसा होता था। भिन्दिपाल के दो अर्थ मिलते हैं, पत्थर मारने का गोफण और छोटा भाला जो नली मे रखकर चलाया जाता था। वस्तुत भिन्दिपाल का मूल अर्थ गोफण ही रहा होगा, क्योकि खेत आदि के रक्षक (यवपाल, खेत्तपाल आदि) उसमें गुल्ले-गोलियाँ रखकर फेंकते थे। पीछे उसी ढग पर नलकी में रखकर चलाए जानेवाले छोटे भाले या तीर का भी वही नाम पड़ा।

घुड़सवारों की पलानो में आगे पीछे उठे हुए सोने के नलको मे पत्रलता के कटाव बने थे[१] (चित्र ६८)। पलानों के पार्श्व मे गोल तंग कसे होने से (परिक्षेप पट्टिकाबंध) वे अपनी जगह निश्चल थीं। उनके ऊपर पट्टोपधान (पट्ट या रेशम का बना गुदगुदा बिछावन) बिछा था जिसपर शरीर को स्थिर साधकर राजा बैठे हुए थे। पलान के इधर-उधर रकाबें झूल रही थीं (प्रचलपादफलिका २०६)। राजाओं के पैरो के कड़ों के साथ टकराने से उनका खनखन शब्द हो रहा था। ऊपर कहा जा चुका है कि रकाब का अकन शुंगकालीन मथुरा की मूर्तियों में मिलने लगता है[२]। बाण के समय में वह आम बात हो गई थी और पुरुष भी उसका इस्तेमाल करने लगे थे।

राजाओं की वेषभूषा में तीन प्रकार के पाजामो—स्वस्थान, पिंगा, सतुला—और चार प्रकार के कोटों—कचुक, चीनचोलक, वारबाण, कूर्पासक—का वर्णन है। पाजामों का आम रिवाज शकों के समय मे प्रथमशती ई० पू० से इस देश में आरम्भ हुआ। प्रथम शती की मथुरा-कला मे तो इसके अनेक प्रमाण मिलने लगते है। शक-कुषाण-युग के बाद सलवार-पाजामों का वेष गुप्तराजाओं ने सैनिक वर्दी के लिये जारी रक्खा। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर सम्राट् स्वय इसी वेष में जो उदीच्यवेष कहलाता था, अंकित किए गए है। बाण मे उल्लिखित पाजामों के भेद इस प्रकार है।

१ स्वस्थान[३] या सूथना, जिसकी तंग मोहरियो मे पिंडलियाँ कसी हुई थी (स्थगितजघाकाड)। स्वस्थान शब्द मे ही यह संकेत है कि इस प्रकार का पाजामा अपनी जगह या पिंडलियो पर कसा रहता था। यह नेत्रसंज्ञक रेशमी वस्त्र का बना या जिसपर फूल-पत्ती का काम था (उच्चित्र नेत्र)। इस प्रकार के फूलदार कपडे और तग मोहरी का पाजामा पहने हुए एक नर्तकी स्त्री देवगढ के मन्दिर मे चित्रित की गई है। ऊपर वस्त्रो के प्रकरण मे नेत्र-सज्ञक रेशमी वस्त्र का वर्णन किया जा चुका है (चित्र ६६)।

२. पिंगा, यह ढीली सलवार नीचे पिंडलियो तक लम्बी होती थी, इसलिए शंकर ने इसे जंघिका या जघाला (जघा=पिंडलियो का भाग) भी कहा है[४]। पिंगा नाम की

---

१ पुराने ढंग की काठियो में लकड़ी की उठी हुई खूँटियो पर पीतल का खोल चढ़ाकर आगे-पीछे नले बनाए जाते थे, जिनके ऊपरी सिरो पर फूल-पत्ती के कटाव का काम बना दिया जाता था। जीन के आगे की ओर तो ये अवश्य बनते थे और विशेष उठे हुए होते थे। अजन्ता (गुफा १७) मे विश्वन्तरजातक के चित्र मे इस प्रकार की काठी और नलक अत्यत स्पष्ट है। (दे० औधकृत अजन्ता, फलक ६५ मे अकित घोड़े की काठी)

२ श्री डा० कुमारस्वामी द्वारा प्रकाशित मथुरा के प्रथम शती ई० पू० के एक सूचीपत्थर पर रकाब में पैर डाले स्त्री-मूर्ति बनी है। उनके अनुसार रकाब का प्रयोग इस देश मे ससार में सर्वप्रथम हुआ (बुलेटिन बोस्टनम्यूजियम, अगस्त १९२६, स० १४४, सिक्स रिलीफस फ्राम मथुरा, मूर्ति सं० ३)

३. उच्चित्रनेत्रसुकुमारस्वस्थानस्थगितजंघाकाडै (२०६, काश्मीरी शुद्ध पाठ)। स्वस्थान की जगह निर्णयसागरीय सस्करण मे स्वस्थ गगन (स्वस्थगन) अपपाठ है। शंकर ने भी स्वस्थान पाठ ही ठीक माना है।

४. पिंगा जंघिका। अन्ये जंघालेत्याहु। (शंकर)

उत्पत्ति कैसे हुई ? इस प्रश्न का उत्तर यह ज्ञात होता है कि मध्यएशिया से पृंग नाम का रेशमी वस्त्र भारत में आता था। मध्यएशिया के शिलालेखों में इस वस्त्र का कई बार उल्लेख आया है। बौद्धों के महाव्युत्पत्ति ग्रन्थ में भी पृंगा वस्त्र का उल्लेख है। पृंगा वस्त्र से बहुधा तैयार की जानेवाली सलवारों के लिये भी पृंगा नाम प्रचलित हो गया होगा। पृंगा का ही प्राकृतरूप पिंगा है। राज्यश्री के विवाह-प्रकरण में उल्लिखित वस्त्रों की व्याख्या करते हुए शंकर ने पृंगा को नेत्र का पर्याय कहा है। नेत्र और पृंगा दोनों रेशमी वस्त्र थे जिनमें फूल पत्तियों की बुनावट रहती थी। पर नेत्र प्राय सफेद रंग का और पृंगा रंगीन होती थी। नेत्र शब्द का प्राकृत रूप नेत अब भी एक प्रकार का महीन रेशमी वस्त्र है जो बंगाल में बनता है। वस्त्र के लिए इस शब्द का प्रयोग कैसे हुआ ? दीघनिकाय में घोड़े के गले की गोल बटी हुई रस्सी को नेत्त कहा है (सारथिव नेत्तानि गहेत्वा)। महाभारत में नेत्र शब्द मथानी की डोरी के लिये प्रयुक्त हुआ है जिसे हिंदी में नेती या नेत कहते है। बटी हुई नेती की तरह शरीर मे लपेटकर गठियाए जानेवाले रेशमी पटकों के लिये नेत्र शब्द का प्रयुक्त होना स्वाभाविक है। कुषाण कालीन पटके चपटे और गुप्त कालीन बटे हुए गोल होते थे। जिस महीन रेशमी वस्त्र के पटके बनते थे वह भी कालान्तर मे नेत्र कहा जाने लगा। संभव है, पृंग नामकवस्त्र भी पटको के काम आते थे और इसी आधार पर नेत्र और पृंग एक दूसरे के पर्याय बन गए। बाण ने पिंगा का वर्णन करते हुए इसे पिशंग या उन्नाबी (कलछौंह लिए लाल) रँग की कहा है। पिशंग पिंगा के पहले जुड़ा हुआ कार्दमिक पटकल्माषित विशेषण ध्यान देने योग्य है। कार्दमिक रंग का अर्थ कर्दम के रंग से रँगा हुआ वस्त्र है। कात्यायन के एक वार्तिक (४।२।२) में शकल (मिट्टी के ठीकरे) और कर्दम (कीचड़) से कपड़े रंगे जाने का उल्लेख है। कार्दमिक पट या राखी रंग की पट्टी सलवार के निचले अंश मे पिंडलियों के ऊपर पहनी जाती थी, उसी का संभवत यहाँ बाण ने उल्लेख किया है। अहिच्छत्रा से प्राप्त[1] एक पुरुषमूर्ति कोट और सलवार पहने हुए है। सलवार के निचले हिस्से में पिंडलियों के ऊपर तक पट्टी बँधी हुई है। बाण का तात्पर्य इसी प्रकार के पहनावे से ज्ञात होता है। (चित्र ७०)।

३ सतुला। शंकर के अनुसार सतुला अर्धजंघिका या अर्धजंघाला अर्थात् घुटनों के ऊपर तक का पहनावा था जिसे आजकल का घुटन्ना या जांघिया कह सकते है। बाण ने सतुला का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया है—अलिनीलमसृणसतुलासमुत्पादितसितसमायोगपरभागैः, अर्थात् राजा लोग गहरे नीले रंग के जो जांघिये पहने हुए थे उनमें सफेद पट्टियों का जोड़ डालने के कारण उनकी शोभा और बढ़ गई थी। शंकर के अनुसार समायोग सिलाई करनेवाले कारीगरों का पारिभाषिक शब्द था (व्यापृतकेषु प्रसिद्ध, २०७)। परभाग का अर्थ एक रंग की जमीन पर दूसरे रंग की सजावट है[2]। सतुला या घुटन्ने के कई उदाहरण अजन्ता के गुफा-चित्रों एवं गुप्तकालीन कला मे मिलते है। सौभाग्य से अजन्ता की गुफा सं० १७ में चित्रित एक

---

१ देखिए अहिच्छत्रा के खिलौने, पृ० १५९, चित्र-संख्या, २५२।

२. परभागो वर्णस्य वर्णान्तरेण शोभातिशयः, शंकर।

पुरुषमूर्ति सफेद पट्टियो के जोडवाली भौराले रंग की वैसी ही सतुला पहने हुए है जैसी[1] का बाण ने वर्णन किया है। (चित्र ७१)।

चार प्रकार के कोटों के नाम और पहचान इस प्रकार है—

१, कचुक—कुछ राजा गोरे शरीर पर लाजवर्दी नीले रग के कंचुक पहने हुए थे (अवदातदेहविराजमानराजावर्तमेचकै कंचुकै)। कादम्बरी में चंडाल-कन्या नीला कचुक पहने हुए कही गई है जो पैरो की पिडलियों तक नीचा लटकता था (आगुल्फावलम्बिना नीलकचुकेनावच्छिन्नशरीराम्, का० १०)। अजन्ता की गुफा १ मे पद्मपाणि अवलोकितेश्वर-मूर्ति के बाएँ ओर खडी हुई चामरग्राहिणी पैरों तक लम्बा लाजवर्दी रग का कंचुक पहने है (औध-कृत अजन्ता, फलक २६)। सरस्वती की सखी मालती सफेद बारीक रेशम का आप्रपदीन (पैरों तक लम्बा) कंचुक पहने हुए थी[2]। अजन्ता-गुफा १७ मे विश्वन्तरजातक के एक दृश्य मे सफेद रग का कचुक या पैरों तक लम्बा आस्तीनदार कोट पहने हुए एक पुरुष दिखाया गया है। इससे ज्ञात होता है कि कंचुक पैरों तक लम्बा बॉहदार कोट था जिसका गला सामने से बद रहता था। (चित्र ७२)।

२, वारबाण—वारबाण भी कचुक की तरह का ही पहनावा था, किन्तु यह कंचुक की अपेक्षा कुछ कम लम्बा, घुटनों तक नीचा होता था। जैसा नाम से प्रकट है, यह युद्ध का पहनावा था। सासानी ईरान की वेषभूषा से यह भारतवर्ष में लिया गया। काबुल से लगभग २० मील उत्तर खैरखाना से चौथी शती की एक संगमरमर की सूर्यमूर्ति मिली है। वह घुटने तक लबा कोट पहने हुए है जो वारबाण का रूप है। ठीक वैसा ही कोट पहने अहिच्छत्रा के खिलौने मे एक पुरुषमूर्ति मिली है[3]। यह भी पूरी आस्तीन का घुटनो के बराबर लम्बा कोट था। मथुरा-कला मे प्राप्त सूर्य और उनके पार्श्वचर दड और पिगल की वेषभूषा में जो ऊपरी कोट है वह वारबाण ही ज्ञात होता है[4]। इसमे सन्देह है कि वारबाण मूल मे सस्कृत भाषा का शब्द है। यह किसी पहलवी शब्द का सस्कृत रूप ज्ञात होता है। इसका फारसी रुप 'बरवान', अरमाइक भाषा मे' 'वरपानक', सीरिया की भाषा मे इन्ही से

१ औध-कृत अजन्ता, फलक ६८, और भी देखिए, गुफा १७ मे चामरग्राहिणी, फलक ७३। फलक ६५ में विश्वन्तर और उसकी पत्नी दोनो सतुला पहने है और उनमे भी खडी पट्टियो का जोड है। और भी देखिए, अहिच्छत्रा के खिलौने, चित्र १०७, अग्नि की मूर्ति में खडी पट्टियो वाला घुटन्ना।

२ धौतधवलनेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेण आप्रपदीनेन कचुकेन तिरोहिततनुलता (३१)। महीन कचुक के भीतर से उसकी गोरा देह झलक रही थी (छातकचुकान्तरदृश्यमानैराश्यानचदनधवलैरवयवै, ३२)।

३ अहिच्छत्रा के खिलौने, चित्र ३०५, पृ० १७३, एशेन्ट इडिया।

४. मथुरा-सग्रहालय, मूर्ति सं० १२५६, सूर्य की सासानी वेषभूषा मे मूर्ति जो ठीक उस सूर्य-प्रतिमा-जैसा कोट पहने है जो काबुल से २० मील उत्तर खैरखाना गॉव से मिली थी। मथुरा सं० मूर्ति स० २६९ सूर्य-प्रतिमा, कुषाण काल की मूति। स० ५१३, पिगल की मूर्ति जो कुलह टोपी और घुटने तक नीचा कोट पहने है। मथुरा में और भी आधे दर्जन मूर्तियों में यह वेषभूषा मिलती है।

मिलता जुलता 'गुरमानका' और अरबी मे 'जुरमानकह्'[1] रूप मिलते है जो सब किसी पहलवी मूल शब्द से निकले होने चाहिए। (चित्र ७३)।

बाण के अनुसार वारबाण स्तवरक नामक वस्त्रविशेष के बने हुए थे। बाण ने दो बार स्तवरक का उल्लेख किया है, एक यहाँ स्तवरक के बने वारबाणों का वर्णन है और दूसरे राज्यश्री के विवाहमहोत्सव के प्रसग मे जहाँ मडपो की छतें स्तवरक वस्त्रो की बनी हुई कही गई हैं (१४३)। शकर ने इसे एक प्रकार का वस्त्र कहा है। सस्कृत-साहित्य के अन्य किसी प्रमाण से स्तवरक वस्त्र पर प्रकाश नही पडता। बाण ने ही पहली बार इस शब्द का प्रयोग किया है। पीछे बाण की अनुकृति पर लिखनेवाले धनपाल ने भी इस शब्द को अपने वर्णनो मे बिना समझे हुए ढाल लिया। हम ऊपर कह चुके है कि सस्कृत स्तवरक का मूलरूप पहलवी 'स्तब्रक्' था जिससे अरबी 'इस्तब्रक[2]' और फारसी 'इस्तब्रक्' की उत्पत्ति हुई। यह वस्त्र सासान-युग के ईरान मे तयार होकर पूर्व मे भारत और पश्चिम मे अरब तक ले जाया जाता था। हर्ष के राजमहल में बाण ने उसका परिचय प्राप्त किया। सूर्य की उदीच्य वेशधारी मूर्त्तियो के कोट का कपडा कामदानी और सजा हुआ दिखाया जाता है जो स्तवरक का नमूना ज्ञात होता है। प्राय इन मूर्तियो का पहनावा सासानी राजकीय वेशभूषा से मिलता है। इन कोटो मे प्राय मोतियो का टँकाव देखा जाता है। बाण ने भी लिखा है कि स्तवरक पर मोतियो के झुग्गे टँके हुए थे (तारमुक्तास्तबकित, ७०६)। अहिच्छत्रा की खुदाई मे दो मिट्टी के खिलौने ऐसे मिले है जिनके वस्त्रो पर मोतियो के झुग्गे टँके हुए है। इनमे एक सासानी ढग की सूर्यमूर्ति है और दूसरी नीचा लहगा पहने हुए नर्तकी की। इनमें मोतियो के प्रत्येक झुग्गे के नीचे एक सितारा भी टँका हुआ है जिसकी पहचान बाण के 'तारमुक्ता' से की जा सकती है[3]। (चित्र ४८)।

३ **चीनचोलक**—बाण ने राजाओ के तीसरे वेष को चीनचोलक कहा है। निश्चय ही यह पहनावा जैसा कि नाम से प्रकट है, चीन देश से लिया गया था। यह भी ज्ञात होता है कि चीनचोलक कचुक या अन्य सब प्रकार के नीचे के वस्त्रो के ऊपर पहना जाता था। सम्राट् कनिष्क की मूर्ति मे[4] नीचे लबा कचुक और ऊपर एक सामने से धुराधुर खुला हुआ चोगा जैसा कोट दिखाया गया है, वह चीनचोलक हो सकता है। मथुरा से मिली हुई सूर्य की कई मूर्तियो मे भी इस प्रकार के खुले गले का ऊपरी पहनावा पाया गया है। यह वेष मध्यएशिया से आनेवाले शक लोग अपने साथ लाए होंगे और उनके

---

१. फारसी *barvan* , Aramaic *varapanak,* Syriac *gurmanaka,* Arabic *zu manaqah,* a sleevelss woollen coat (Transactions of the Philogical Society of London, 1945, p 154, footnote, Henning).

२ कुरान मे स्वर्ग की हूरो की वेशभूषा के वर्णन में इस्तब्रक का उल्लेख हुआ है। कुरान के सभी टीकाकार सहमत है कि यह शब्द मूल अरबी भाषा का न होकर बाहर से लिया गया है (ए० जेफरी, दी फारेन वाकेबुलरी आव दी कुरान, गायकवाड प्राच्य-पुस्तक-माला, संख्या ७९, पृ० ५८, ५९)।

३ देखिए मेरा लेख—अहिच्छत्रा टेराकोटाज, चित्र १०२ और २८६।

४ मथुरा म्यूजियम हैंडबुक, चित्र ४।

द्वारा प्रचारित होकर भारतीय वेष-भूषा मे गुप्तकाल मे और हर्ष के समय तक भी इसका रिवाज चालू रहा। सत्य तो यह है कि यह वेष बहुत ही सम्भ्रान्त और आदर सूचक समझा गया। अतएव उत्तर-पश्चिम भारत मे सर्वत्र नौशे के लिये इस वेष का रिवाज लोक मे अभी तक जारी रहा जिसे 'चोला' कहते है। चोला ढीला-ढाला गुल्फों तक लबा, खुले गले का पहनावा है जो सबसे ऊपर धारण किया जाता है। विवाह-शादी मे अभी तक इसका चलन है। मथुरा से प्राप्त चष्टन की मूर्ति मे भी सबसे ऊपरी लबा वेष चीनचोलक ही ज्ञात होता है जिसका गला सामने से तिकोना खुला हुआ है। कनिष्क और चष्टन के चीनचोलक दो प्रकार के है। कनिष्क का धुराधुर बीच मे खुलनेवाला है और चष्टन का दुपरती जिसमे ऊपर का परत बॉई तरफ से खुलता है और बीच में गले के पास तिकोना भाग खुला दिखाई देता है। कनिष्क-शैली का चीन-चोलक मथुरा-सग्रहालय की डी० ४६ सज्ञक मूर्ति मे और भी स्पष्ट है, केवल वस्त्र के कटाव मे कुछ भेद है। मध्यएशिया से लगभग सातवी शती का एक ऐसा ही चोलक प्राप्त हुआ है[1]। इस स्थल मे मूल पाठ अपचित चीनचोलक था जिसे सरल बनाने के लिये 'उपचित ' कर दिया गया। शकर की टीका मे और प्राचीन काश्मीरी प्रतियो मे 'अपचित' पाठ ही है जिसका अर्थ कोशो के अनुसार 'पूजित, सम्भ्रान्त या प्रतिष्ठित' है। बाण का तात्पर्य यही है कि कुछ राजा लोग सम्मानित चीनचोलक की वेषभूषा पहने हुए थे। (चित्र ७४)

४ कूर्पासक--राजाओ का एक वर्ग नाना रगो से रँगे जाने के कारण चितकबरे कूर्पासक पहने हुए था (नानाकषायकबुरैः कूर्पासकै, २०६)। कूर्पासक का पहनावा गुप्त काल मे खूब प्रचलित रहा होगा। अमरकोश ने कूर्पासक का अर्थ चोल किया है। कूर्पासक स्त्री और पुरुष दोनो का ही पहनावा थोड़े भेद से था। स्त्रियो के लिये यह चोली के ढग का था और पुरुषो के लिए फतुई या मिर्जई के ढग का। इसकी दो विशेषताएँ थी, एक तो यह कटि से ऊँचा रहता था[2], और दूसरे प्रायः आस्तीन-रहित होता था। वस्तुत कूर्पासक नाम इसीलिये पडा, क्योकि इसमे आस्तीन कोहनियो से ऊपर ही रहती थी। मूल मे कूर्पासक भी चीनचोलक की ही तरह मध्यएशिया की वेषभूषा मे प्रचलित था और वही से इस देश में आया। कूर्पासक के जोड की आधुनिक पोशाक वास्कट है, लेकिन एशिया के शिष्टाचार के अनुसार वास्कट सबसे ऊपर पहनने का वस्त्र माना जाता है जबकि पश्चिमी

---

१ वाइवी सिलवान, इन्वेस्टिगेशन आफ सिल्क फ्राम एड्सन गोल एंड लॉप-नार (स्टाकहोम, १९४९) प्लेट० ८ए, लाप मरुभूमि से प्राप्त पुरुष का चोलक जिसका गला तिकोना खुला है। इसी पुस्तक मे पृ० ६३ पर चित्र-स० ३२ मे एक मृण्मय मूर्ति में चीनलोचक का अति सुन्दर उदाहरण उत्तरी वाई वश (३८६-५३५) के समय का है जिसका ढग चष्टन-मूर्ति के चोलक से मिलता है।

२ 'चोली दामन का साथ है' इस मुहावरे का तात्पर्य यही है कि दामन या लँहगा कटिभाग में जहाँ से शुरू होता है, ऊपर की चोली वहाँ समाप्त होती है। चोली और दामन दोनों मिलाकर पूरा वेश बनता है, अत. दोनों का साथ अनिवार्य है।

सभ्यता में वास्कट भीतर पहनने का वस्त्र है[१]। समस्त मंगोलिया प्रदेश चीनी, तुर्किस्तान और पख्तून प्रदेश में भी फतुई पहनने का रिवाज सार्वदेशिक था और वह पूर्ण और सम्मानित पहनावा माना जाता है। फतुई या फितूरी, बन्द, कब्जा, चोली एक ही मूल पहनावे के नाम और भेद है। वही पहनावा गुप्तकाल मे कूर्पासक नाम से प्रसिद्ध था।

बाण के अनुसार कूर्पासक कई रँगों से रगे रहते थे (नानाकषायकर्बुरैः २०६)। उसकी युक्ति यह जान पडती है कि सर्वप्रथम वस्त्र पर किसी हलके रग का डोब दिया जाता था, फिर क्रमश. हरड बहेडा आवला और आम की पत्ती आदि कसैले पदार्थों से अलग-अलग रंग तयार करके उसमे वस्त्र को डोब देते थे। प्रत्येक बार बाँधनू की बँधाई बाँधने से वस्त्र के अलग-अलग हिस्सों मे अलग रंग आ जाता था। आज भी इस पद्धति से वस्त्र रँगे जाते है, और कषायों को बदल बदलकर रँगने से वस्त्र मे चितकबरापन (कर्बुरता) उत्पन्न की जाती है। जैसा कहा जा चुका है, कूर्पासक स्त्री और पुरुष दोनो का पहनावा था। अजन्ता के लगभग आधे दर्जन चित्रों में स्त्रियाँ बिना आस्तीन की या आधी बाँह की चोलियाँ पहने हैं जिनमें कई रगों का मेल दिखाया गया है। एक ही चोली मे पीठ का रग और है और सामने का कुछ और। महाराज औध-कृत अजन्ता पुस्तक के फलक ७२ मे यशोधरा बिना आस्तीन का कूर्पासक पहने है जिसपर बाँधनू की बुदकियाँ पडी है। फलक ७७ मे रानी और कई अन्य स्त्रियाँ कूर्पासक पहने है। एक चित्र मे पीठ की ओर कत्थई और सामने लाल रग से कूर्पासक रँगा गया है और उसपर भी बडी बुदकियाँ डाली गई है। फलक ७५ (गुफा १) के चित्र मे नर्तकी दो रग का पूरी बाँह का कूर्पासक पहने है। फलक ५७ पर (गुफा १७) दम्पती के मधुपान दृश्य में झारी लिए हुए यवनी स्त्री आधी बाँह का कर्बुर कूर्पासक पहने है। (चित्र ७५)।

५. आच्छादनक—'कुछ राजाओं के शरीर पर सूआपंखी रंग की झलक देनेवाले आच्छादनक नामक वस्त्र थे।' आच्छादनक की पहचान अपेक्षाकृत सरल है। मथुरा-सग्रहालय की कुछ मूर्तियों में जो सूर्य और उनके पार्श्वचरों की है, सासानी वेषभूषा का आवश्यक अग एक प्रकार की छोटी हल्की चादर है जो दोनो कधों पर पडी हुई और सामने छाती पर गठियाई हुई दिखाई गई है। यही आच्छादनक है जिसे अग्रेजी मे एप्रन कहा जाता है। मूर्ति-सख्या डी० १ और ५१३ मे आच्छादनक का अंकन बिल्कुल स्पष्ट और निश्चित ज्ञात होता है। अजन्ता के चित्रों मे भी आच्छादनक दिखाया गया है। गुफा-सख्या एक में नागराज और द्रविडराज के चित्र मे बीच मे खडे हुए खड्गधारी सासानी सैनिक के कधों और पीठ पर लाजवर्दी रग का धारीदार आच्छादनक पडा हुआ है। (चित्र ७६)।

१ 'इन यूरोपियन ड्रेस दि वेस्टकोट इज यूरड ऐज ए सार्ट आफ अण्डर गार्मेण्ट कवर्ड बाई ए जैकेट। इन एशिया, हाउएवर दिस शार्ट स्लीवलेस गार्मेण्ट इज वोर्न ओवर ए लाग फुल स्लीव्ड कैफ्टन ऐज ऐन ओवर-गार्मेण्ट ... ' ट्वेन्टी-टू वेस्टकोट्स आफ दि आर्डिनरी काइन्ड हैव बीन ब्राट होम फ्राम मगोलिया। दे फाल इन टू थ्री ग्रूप्स—१ वेस्टकोट्स विथ क्लोसिग टु दि राइट ड्यू टु ओवरलैपिंग, २ वेस्टकोट्स विथ सेण्ट्रल ओपेनिग एंड ३. वेस्टकोट्स विथ लूज फ्रन्ट-पार्ट। हेनी हेराल्ड हेन्सन, मंगोल कास्ट्यूम्स (कोपेन्हेगेन: १९५०), पृ० ७० ।

ऐसा जान पडता है कि लाजवर्दी कचुक, स्तवरक के वारबाण, चीनचोलक और कूर्पासक इन चार विभिन्न शब्दों के द्वारा बाण ने चार भिन्न-भिन्न देशों के पहनावो का वर्णन किया है। गोरे शरीर पर लाजवर्दी रग का कचुक पहननेवाले ईरानी (ईरान के दक्षिण-पश्चिमी भाग के) लोग थे। स्तवरक का वारबाण पहननेवाले सासानी या पहलव उत्तरपूर्वी ईरान और बाह्लीक-कपिशा (अफगानिस्तान) के लोग थे। चीनचोलक का पहनावा स्पष्ट ही चीनियों का था जिसका परिचय भारतवासियो को मध्यएशिया के स्थलमार्ग के यातायात पर चीनी तुर्किस्तान और चीन की पश्चिमी सीमा के सधिप्रदेश में हुआ होगा। कूर्पासक पहनावा मध्यएशिया या चीनी तुर्किस्तान मे बसे हुए उइगर तुर्कों और हूणो से इस देश में आया होगा। जैसा आगे ज्ञात होगा, शिरोभूषा के वर्णन मे भी बाण ने देशभेद से विभिन्न पहनावों का उल्लेख किया है।

इसी प्रसग में बाण ने राजाओ के शस्त्र, आभूषण और शिरोभूषा के सबंध मे भी कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं। उनके शरीर कसरती थे। नियमित व्यायाम के कारण चरबी छंट जाने से पतले बने हुए कटि प्रदेश मे सुन्दर पटके बँधे हुए थे (व्यायामोल्लुप्तपार्श्व-प्रदेशप्रविष्टचारुशस्त्रै., २०७)। शस्त्र का अर्थ शंकर ने पट्टिकाडोर अर्थात् पटका किया है। कमर में पटका बाँधने की प्रथा मध्यकाल से बहुत पूर्व गुप्तकाल में ही चल चुकी थी। किसी-न-किसी रूप मे पटका बाँधना उदीच्यवेष का जो शकों के साथ यहाँ आया, आवश्यक अग था। राजा लोग कानों मे कई प्रकार के आभूषण पहने हुए थे जैसे लोल या हिलते हुए कुडल, पत्राकुर कर्णपूर और कर्णोत्पल। चलते समय राजाओं के हार इधर-उधर हिलते हुए कभी कान में लटकते हुए कुडलों में उलझ जाते थे, तब साथ के परिजन शीघ्रता से उन्हें सुलझा देते थे। कुछ राजा कानों मे फूल-पत्तियों के कटावों से युक्त पत्राकुर कर्णपूर पहने हुए थे और उनके सिर पर सामने की ओर अलकों को यथास्थान रखने के लिये बालपाश नामक आभूषण सुशोभित था। बालपाश सोने की लम्बी पत्ती थी जिसमे सामने की ओर मोतियों के झुग्गे और मुक्ताजाल (मोतियो के जाले या सतानक) लटकते थे। (चित्र ७७)। अजन्ता के चित्रो में इस प्रकार के बालपाश प्राय पाए जाते है। नागराज और द्रविड़राज (गुफा १)[1] दोनों के सिर पर बालपाश बँधे हुए हैं जिनमे मोतियों के जाले और झुग्गे स्पष्ट दिखाई पडते है। इसी चित्र मे अन्य पात्रों के सिर पर भी बालों को बाँधने के लिये सुनहली पट्टी दिखाई गई है, किन्तु उसमे मोतियों के जाले और झुग्गे नही है केवल बीच मे सीमन्त से लटकता हुआ एक झुग्गा दिखाया गया है। अमरकोश मे बाल-पाश या बालपाश्या (बालों को यथास्थान रखनेवाला आभूषण) का पर्याय पारितथ्या भी है। माथे के चारों ओर घूमी हुई होने के कारण बालपाश का नाम पारितथ्या पडा। यह गुप्तकालीन नया शब्द था, जिस प्रकार चतु.शाल के लिये नया शब्द सजवन प्रचलित हुआ था। सोने की पतली पत्ती से बालों को बाँधने का रिवाज सिंधु-सभ्यता में भी था। मोहनजोदड़ो की खुदाई मे इस प्रकार के कई आभूषण मिले है जो दस-बारह इच लबे हैं और जिनके दोनों किनारों पर बाँधने के लिये छेद है। दक्षिण-पूर्वी पजाब मे अभी तक इसका प्रचार है, यह आभूषण वहाँ की भाषा में 'पात' कहलाता है। बाण ने लिखा है

१ औंध-कृत अजन्ता, फलक ३३

कि कानों के कर्णपूर और सिर के बालपाश चलने से आपस में टकराते थे। वस्तुत. बालपाश आभूषण तो बालों पर बँधा रहता था, किन्तु उसके साथ लटकते हुए मोतियों के झुग्गे कर्णपूरों में लगकर बजते थे (चामीकरपत्राङ्कुरकर्णपूरकविघट्टमानवाचालबालपाशैः, २०७)। पत्राकुर कर्णपूर वह आभूषण था जिसमें छोटे मुलायम किसलय के समान पत्रावली का अलंकरण बना रहता था। (चित्र ७८)।

कुछ राजा कानो मे कर्णोत्पल पहने थे। उनकी कमलनाले सिर पर बँधे उष्णीषपट्ट के नीचे खाँसी होने के कारण अपनी जगह स्थिर थीं। उष्णीषपट्ट बाण की समकालीन वेषभूषा का पारिभाषिक शब्द था। यह कपड़े का नहीं, बल्कि सोने का बना हुआ होता था जो उष्णीष या शिरोभूषा के ऊपर बाँधा जाता था। केवल राजा, युवराज, राजमहिषी और सेनापति को सिर पर पट्ट बाँधने का अधिकार था। पाँचवें प्रकार का पट्ट प्रसाद-पट्ट कहलाता था जो सम्राट् की कृपा से किसी को भी प्राप्त हो सकता था। बाण ने अन्यत्र यशोवती के लिये महादेवी-पट्ट का उल्लेख किया है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, बृहत्सहिता (४८-२-४) मे इन पाँचों प्रकार के पट्टों की लंबाई, चौडाई और शिखा या कलगियों का विवरण दिया हुआ है।

कुछ राजाओं के सिर केसरिया रग के कोमल उत्तरीयों से ढके थे, और कुछ दूसरे नृपति क्षौम के बने खोल पहने थे जिनमे चूडामणि का खंड खचित या टँका हुआ था। खोल का पर्याय शिरस्त्र दिया गया है (शकर)। वस्तुतः सस्कृत खोल ईरानी कुलह का रूपान्तर है। केसरिया रग का उत्तरीय या बडा रूमाल सिर पर लपेटे हुए राजाओं के वर्णन में भी बाण दो विभिन्न देशों की वेषभूषा का वर्णन कर रहे है जैसा कि विभिन्न प्रकार के कोटों के वर्णन मे कहा जा चुका है। ये दो वेष चीन और ईरान के पहनावे को सूचित करते है। सौभाग्य से अजन्ता[1] के नागराज और द्रविडराज-संवाद नामक चित्र में दोनों प्रकार की वेषभूषा पहने हुए दो परिजन अंकित किए गए हैं। एक ईरानी है जो सिर पर खोल अर्थात् कुलहटोपी या बुद्बुदाकार शिरस्त्र पहने है। (चित्र ७९) इसकी मुखाकृति, वेषभूषा और तलवार की मूठ, अंगिया और गट्टे ईरानी है। दूसरा पुरुष जो दाहिनी ओर पीछे खड़ा हुआ है, चीन देश का है और उसके सिर पर जैसा कि बाण ने लिखा है, कुकुम या केसर से रगा हुआ रुमाल बँधा है। (चित्र ८०)।

इसी प्रसग मे तीसरी प्रकार की शिरोभूषा को मोरपख से बने हुए छत्र की आकृति का शेखर कहा गया है जिसके फूलों पर भौरे मँडरा रहे थे[2]। मायूरातपत्र या मोरपखी छत्र के ढग की शिरोभूषा की निश्चित पहचान तो ज्ञात नहीं, किंतु हमे यह भी पूर्वकथित दो वेषों की तरह विदेशी ही जान पडती है। इसका ठीक रूप अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी के खिलौनों की कुछ विदेशी आकृतियो मे देखा जा सकता है। उदाहरण के लिये, 'अहिच्छत्रा के खिलौने' विषयक लेख के चित्र-सख्या २२३, २२७, २४२, २४३ के मस्तकों की शिरो-

१ राजा साहब औंध-कृत अजन्ता, फलक ३३, गुफा १।

२ मायूरातपत्रायमाणशेखरषट्पदपटलैः २०७। 'मायूरातपत्रायमाण' काश्मीरी प्रति का पाठ है, वही शुद्ध है, न कि मायूरपत्रायमाण। बाण ने स्वय मायूरातपत्रों का वर्णन हर्ष के स्कन्धावार में (पृ० ६०) किया है।

भूषा देखने से बिल्कुल मायूरातपत्र या मोरपंखों के बने हुए छाते का भान होता है। चित्र-सख्या २२३ में तो मोरपख के जैसे गोलचद्रक भी अलग-अलग खड़े हुए पखों के निचले भाग मे बने है।

इसके बाद हाथी और घोडो पर सवार राजाओ का एवं रग-बिरगी ढाले लिए हुए धरती छोडकर आसमान की ओर उछलनेवाले पैदल सैनिकों का वर्णन किया गया है। रग-बिरगी झूलों (शारिकशारि) से ढके हुए जवान पट्ठे हाथियों (वेगदड) पर सवार राजा लंबी दूरी तय करके आए थे[1]। हाथियों की इस टुकड़ी के पीछे चारभट सिपाहियों की पैदल सेना थी। वे लोग चटुल (चचल) एव डामर अर्थात् जान हथेली पर लेकर लडनेवाले और मरने-मारने पर उतारू थे। चारभट पैदल सेना की टुकडी का उल्लेख प्राय. दानपत्रों में आता है, जिनमे राजा की ओर से यह ताकीद की जाती थी कि दान में दिए हुए अग्रहार गाँव मे ऐसे सिपाही प्रवेश न करें। आगे चलकर ये केवल डामर ही कहलाने लगे। डामरों के उत्पातों का उल्लेख कल्हण की राजतरगणी मे प्राय मिलता है। काशी की तरफ बरात के जुलूस में तलवार लिए हुए कुछ लडवैये अभी तक चलते है जिन्हें इस समय बाका कहते हैं। हमारी सम्मति मे ये लोग प्राचीन डामरों की ही नकल है। बरात का जुलूस फौजी जुलूस के ढग पर बनता है जिसमें गाजा-बाजा, कोतलघोड़े, झडियाँ, निशान, हाथी, घोड़े, ऊँट, धौसे आदि रहते हैं। अतएव बाँकों को डामर चारभटों के प्रतिनिधि मानना सभव है।

बाण ने लिखा है कि डामर सिपाही हाथो मे गोल ढाल (चर्ममडल) लिए हुए थे। ये ढाले चितकबरे कार्दरग चमड़े की बनी हुई थी[2]। भास्कर वर्मा के भेजे हुए भेंट के सामान की सूची मे भी सुन्दर गोल आकार की कार्दरग ढालों का उल्लेख हुआ है जो सुनहले पत्तों के कटाव से सजी हुई थीं[3]। कार्दरग पर टिप्पणी करते हुए टीकाकार शकर ने लिखा है कि कार्दरग एक देश का नाम था (२१७)। श्री सिलवा लेवी और प्रबोधचन्द्र बागची ने दिखाया है कि कार्दरग भारतीय द्वीपसमूह (हिंदेशिया) के अन्तर्गत एक प्रसिद्ध द्वीप था जो कार्दरग या चर्मरग भी कहलाता था[4]। मजुश्रीमूलकल्प मे हिन्देशिया के द्वीपों के नामों की गिनती में सबसे पहले कर्मरग का उल्लेख है[5]। वराहमिहिर ने बृहत्सहिता (१४।६) में आग्नेय दिशा के द्वीपों का वर्णन करते हुए चर्मद्वीप का नाम भी लिखा है। कर्मरग का ही एक नाम नागरंग द्वीप भी था।

---

१ मार्गागतशारिकशारिवाहवेगदंडै.। वेगदंड = तरुणहस्ती (शंकर, २०७)।

२ चंचच्चामरकिर्मीरकार्दरङ्गचर्ममण्डलमण्डनोड्डीयमानचटुलडामरचारभटभरितभुवनान्तरै., २०७।

३ रुचिरकांचनपत्रभंगभंगुराणामतिबन्धुरपरिवेशानां कार्दरगचर्मणा सभारान् (२०७)।

४ प्रि आर्यन ऍंड प्रि-ड्रैवीडियन इन इंडिया (भारत मे आर्य और द्रविड़ो से पूर्वकाल की परंपराएँ), पृ० १०६।

५. कर्मरगाख्यद्वीपेषु नाडिकेरसमुद्भवे।
द्वीपे वारुषके चैव नग्नबलिसमुद्भवे।
यवद्वीपे वा सत्त्वेषु तदन्यद्वीपसमुद्भावा।
अर्थात् कर्मरग, नाडिकेर, वारुषक (सुमात्रा के पास बरोस द्वीप), नग्न द्वीप (नीकोबार), बलिद्वीप और यवद्वीप। (मंजुश्रीमूलकल्प, भा० २, पृ० ३२२)।

कार्दरंग द्वीप की ढालें गोल होती थीं। बाण ने उसके लिये बन्धुरपरिवेश (सुन्दर घेरेवाली) शब्द का विशेष प्रयोग किया है (२१७)। इतना और कहा गया है कि इन ढालों के चारों ओर चमचमाती हुई छोटी-छोटी चौरियाँ (चचच्चामर) लगी हुई थीं। यही उनकी सुन्दरता का कारण था। काले चमड़े पर रंगबिरंगी चौरियों के कारण ढालें चितकबरी (किर्मीर) लग रही थी। ढालों की सजावट के लिये उनके गोल घेरे के किनारे पर फुदनों की तरह छोटी-छोटी चौरियाँ लगाई जाती थी। बाण की लगभग सम-कालीन महिषासुरमर्दिनी की एक अहिच्छत्रा से प्राप्त मूर्ति मे इस प्रकार की चौरियाँ स्पष्ट दिखाई गई है जिससे बाण का अर्थ समझने मे सहायता मिलती है[1]। (चित्र ८२)।

कुछ राजा लोग सरपट चलते हुए कम्बोज देश के तेज घोडों पर सवार थे। वे सैकडों की सख्या मे सफ बाँधकर चल रहे थे। उनके सुनहले साज (आयान=अश्वभूषण) झमाझम बजते हुए अपने शब्द से दशों दिशाओं को भर रहे थे [2]।

सैकडों की सख्या मे तडातड बजते हुए नगाडो का घोर शब्द कानो को फोड़े डालता था (निर्दयप्रहतलम्बापटहशतपटुरवबधिरीकृतश्रवणविवरै, २०७)। लम्बापटह को शकर ने तमिला अर्थात् तबला कहा है। ये गले मे लटकाकर चलते हुए बजाए जाते थे, इस कारण बाण ने इन्हे लम्बापटह और तन्त्रीपटहिका (१३१) कहा है। दरा (कोटा) के गुप्तकालीन मन्दिर के मुखपट्ट पर इस प्रकार के लबापटह या तासे का चित्रण हुआ है।[3] (चित्र ३७)।

ऐसे अनेक राजाओं से जिनके नाम पुकार-पुकारकर बताए जा रहे थे, राजद्वार भरा हुआ था।

अगले दिन सूर्योदय हो चुकने पर बार-बार शखध्वनि होने लगी जो इस बात की सूचक थी कि अब सम्राट् सेना का मुआयना करके कमान ग्रहण करेंगे। सेना के व्यूहबद्ध प्रदर्शन या परेड के लिये समायोग[4] शब्द का प्रयोग किया गया है। ज्ञात होता है कि सैनिक अभियान का पहला श्रीगणेश समायोग-ग्रहण से प्रारम्भ होता था। सज्ञा-शख की ध्वनि होने के कुछ ही देर बाद सम्राट् सु दर सजी हुई खासा हथिनी पर जो पहली ही बार सैनिक प्रयाण पर निकली थी, राजभवन से बाहर आए। उनके सिर पर मगलातपत्र लगा था जिसका डडा बिल्लौर का था तथा जिसके ऊपर माणिक्यखड जड़े हुए ऐसे लगते थे, मानों सूर्य के उदय को देखकर वह कोप से तमतमा उठा हो। सम्राट् नवीन नेत्र या रेशम का बना हुआ केले के गाभे की तरह मुलायम और अंगों से सटा हुआ कंचुक पहने थे। इससे ज्ञात होता है कि हर्ष इस समय फौजी पोशाक या उदीच्यवेष में थे। कंचुक के अति-रिक्त उनका दूसरा परिधान क्षीरोदक नामक श्वेत वस्त्र का बना था। क्षीरोदक वस्त्र का उल्लेख वर्णरत्नाकर (चौदहवीं शती का प्रारभ, पृ० २१) और जायसी के पद्मावत मे आया

१ अहिच्छत्रा के खिलौने एंशेंट इडिया, अंक ४ पृ० १३४, चित्र १२३। और भी देवगढ़ के मदिर की मूर्तियो में इस प्रकार चौरियों से सजी हुई ढाल का सु दर अंकन मिलता है (देवगढ़ एलबम चित्र १०३)।

२ आस्कन्दत्काम्बोजवाजिशतशिजानजातरूपायानरवमुखरितदिङ्मुखै पृ० २०७।

३ जनरल यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, १९५०, दरा मालवे का गुप्तकालीन मंदिर, पृ० १६६।

४. समायोग=सेना का व्यूहबद्ध प्रदर्शन (समायोगस्तु संयोगे समवाये प्रयोजने, मेदिनी)।

है [1]। कम आयु में ही वे इन्द्र पदवी पर आसीन हो गए थे। उनके दोनो ओर चँवर डुलाए जा रहे थे और मस्तक पर चूडामणि सुशोभित थी। होठो पर ताम्बूल की लाली थी, गले मे बडा लबा हार (महाहार) सुशोभित था। तिरछी भौह से मानो तीनो लोकों के राज ओ को करदान का आदेश दे रहे थे। अपने भुजदडो से मानों उन्होने सप्तसमुद्रों की रक्षा के लिये ऊँचा परकोटा खीच दिया था। सारी सेना की आँखे उनपर लगी थी सब राजा उनके चारों ओर समुत्सारण (भीड को हटाकर सम्राट् के चारो ओर अवकाश-मडल बनाने का काम) कर रहे थे। सम्राट् के आगे-आगे आलोक शब्द का उचारण करनेवाले दंडधर जनसमूह को हटाते हुए चल रहे थे। दडधर लोग व्यवस्था स्थापन मे बडी कडाई का व्यवहार करते थे [2]। वे अपने अधिकार के रोबीलेपन से शीघ्रतापूर्वक इधर-उधर आ-जा रहे थे। उनके भय से लोग चारों ओर छिटक रहे थे। उनका अनुशासन इतना कडा था, मानों वायु को भी विनय की शिक्षा दे रहे थे, सूर्य की किरणो को भी वहाँ से हटा रहे थे, और सोने की वेत्र-लताओं के प्रकाश से मानो दिन का आना भी उन्होंने रोक दिया था।

इस प्रकरण मे बाण ने कई पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है जिनका सास्कृतिक महत्त्व है, जैसे सकलभुवनवशीकरण चूर्ण, जिसके विषय मे उस समय जनता में विश्वास जम गया था, जैसा कि अष्टागसग्रह के 'निःशेषलोकवशीकरणसिद्धयोग' के उल्लेख से ज्ञात होता है। सिन्दूरच्छुरितमुद्रा अर्थात् सिदूर में भरकर लगाई जानेवाली मुद्रा या राजमोहर वह थी जिसका प्रयोग शुरू में कपड़े पर लिखे हुए दानपट्टों पर किया जाता था। महाहार वह बडा हार था जो प्राय मूर्तियो मे दोनो कन्धों के छोर तक फैला हुआ मिलता है (चित्र ८३)। आलोक वह शब्द था जिसे उच्चारण करते हुए प्रतिहार लोग राजा के आगे चलते थे [3]।

सर्वप्रथम राजा लोग आ-आकर हर्ष के सामने प्रणाम करने लगे। कुछ सोने के मुकुट जिनके बीच में मणि जडी थी, कुछ फूलों के शेखर, और कुछ चूडामणि पहने थे। प्रणाम करते हुए राजाओ को भिन्न भिन्न प्रकार से सम्राट् सम्मानित कर रहे थे। 'किसी को केवल तिहाई खुले हुए नेत्रों की दृष्टि से, किसी को कटाक्ष या अपागदृष्टि से, किसी को समग्र दृष्टि या भरपूर आँखों से देखकर, किसी को और भी अधिक ध्यान से देखते हुए जिसमें भौएँ कुछ ऊपर खिच जाती थी, किसी को हल्की मुस्कराहट (अर्धस्मित) से, किसी को और अधिक मुख की प्रसन्नता (परिहास) से, किसी को चतुराई भरे दो-एक शब्दों से (छेकालाप), किसी को कुशल-प्रश्न पूछकर, किसी को प्रणाम के उत्तर मे स्वय प्रणाम करके, किसी को अत्यन्त बढे हुए भ्रूविलास और वीक्षणरुचि से, और किसी को आज्ञा देकर।' इन-इन रूपों मे राजाओं के मान-पद और योग्यता के अनुसार उनके मानवनी प्राणों को

---

१ चंदनौटा खीरोदक फारी। बाँस पोर झिलमिलकै सारी।
जायसी शुक्लजी सस्करण में (पृ० १५८, २२।४४।७।) में खरदुक पाठ है जो अशुद्ध है। श्रीलक्ष्मीधर-कृत सस्करण (पृ० ९२) में खिरोदक पाठ टिप्पणी में दिया है जो शुद्ध और मूल पाठ था। श्रीमाताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित सस्करण में खीरोदक शुद्ध पाठ दिया गया है।

२ व्यवस्थास्थापननिष्ठुरै। २०८।

३. लोक इति ये वदन्ति ते आलोककारकाः, शकर।

मानों वह मोल ले रहा था। राजाओं ने जो कुछ उसे दिया था, भिन्न-भिन्न रूपों में वह मानों उनका मूल्य चुका रहा था। बाण पहले कह चुके है कि सम्राट् के साथ सबधित राजाओं की कार्यानुसार अनेक कोटियाँ थी, जैसे करदान, चामरग्रहण, शिर से नमस्कार, आज्ञाकरण, पादधूलि लेना, अजलिबद्ध प्रणाम, वेत्रयष्टि-ग्रहण, चरणनखो मे प्रणाम इत्यादि (१९४)। भिन्न-भिन्न कोटियो के अनुसार हर्ष भी राजाओं के साथ यथोचित सलूक कर रहे थे।

जिस समय राजाओं का प्रस्थान शुरू हुआ, बाजों की प्रतिध्वनि दिशाओं मे व्याप्त हो गई। मैमन्त हाथियो की मदधाराएँ बहने लगी, सिन्दूर-धूलि उडने लगी, दुन्दुभियो की ध्वनि व्याप्त हो गई, चँवर-समूह चारों ओर डुलाए जाने लगे, घोडो के मुख का फेन चारों ओर उडने लगा, सुनहले दडवाले छत्रों से सफेद तगर के फूलों की भाँति दिशाएँ भर गईं, मुकुटमणियो से दिन और खिल उठा, घोडो के सुनहले और रुपहले साजों की खनखनाहट से कान फूटने लगे[१]। चारो ओर दृष्टि फेंककर सम्राट् ने जब अपनी सेना को देखा तो राजद्वार के समीप से प्रस्थान करते हुए स्कन्धावार को देखकर वह स्वय भी आश्चर्य मे डूब गया[२]।

चलते हुए कटक मे अनेक सलाप सुनाई पड रहे थे—'चलो जी।' 'भाई, देर क्यों लगा रहे हो।' 'अरे, घोडा लग कर रहा है[३]।' 'भले आदमी, पाँव टूटे की तरह रेंग रहे हो, और ये आगेवाले लोग हमारे ऊपर गिरे पडते हैं।' 'रामिल, देखो, कही धूल में गायब न हो जाओ।' 'वाह, फटे हुए थैले मे से सत्तू कैसे गिर रहे है[४]।' अरे भाई, ऐसी हड़बडी क्या कर रहे हो?' 'अबे, बैल लीक छोडकर कहाँ घोडों के बीच भागा जाता है।' 'अरी धीवरी, कहा घुसी पडती है।' 'ओ हथिनी की बच्ची, हाथियों मे जाना चाहती है।' 'वाह! चने की बोरी कैसी टेढी होकर झर रही है[५]।' 'मै चिल्ला रहा हूँ, फिर भी तू नही सुनता।' 'अरे' गड्ढे मे गिरोगे क्या?' 'ओ बकवादीन्, चुपचाप बैठ।' 'ए काँजीवाले, तेरा घड़ा तो फूट गया[६]।' 'अरे मट्ठर पडाव पर पहुँचकर ही गन्ना चूस लेना।' 'बिगड़े, बैल को सँभालो।' 'लौडे (चेट), कबतक बेर बीनता रहेगा, चल, दूर जाना है।' 'द्रोणक आज ही तित्तिर-बित्तिर करने लगा, अभी तो सेना की यात्रा लबी पडी है।' 'अकेले इस

१. राजतैर्हिरण्मयैश्च मडनकभाडमडलै, ह्रादमानै, २०९।
मडनकभांड=घोडों को मांडने अर्थात् सजाने का साज-समान जो सोने-चाँदी का बनता था और चलने से खन-खन शब्द करता था।

२ स्वयमपि विसिष्मिये बलानां भूपाल सर्वतो विक्षिप्तचक्षुश्चाद्राक्षीदावासस्थान-सकाशाद् प्रतिष्ठमान स्कन्धावारम्, २१०।

३ काश्मीरी प्रतियों मे 'लघति तुरगमः' शुद्ध सार्थक पाठ है जो निर्णयसागर-संस्करण में बिगड़कर त्वगति हो गया है।

४. गलति सक्तुप्रसेवकः, २१०।

५. गलति तिरश्चीना चणकगोणिः, २१०।

६. सौवीरककुम्भो भग्नः, २१०।

दुष्ट को छोडकर हमारी पगत मिली हुई चल रही है[1]।' 'आगे रास्ता ऊबड-खाबड है।' 'ओ बुड्ढे, कहीं राब की गगरी न फोड डालना।' 'गडी, चावलों का बोरा भारी है, बैल के मान का नहीं।' 'अबे टहलुवे, सामने उडद के खेत में से बैलो के लिये एक पूली तो दराँत से जल्दी काट ले[2]।' कौन जाने, यात्रा मे चारे का क्या प्रबन्ध रहेगा[3]।' 'यार (धव), बैलों को हटाए रहो, इस खेत मे रखवाले है।' 'सग्गड गाडी लटक गई, तगडा (धुरधर) धौला बैल उसमे जोतो।' 'ए पगले, स्त्रियों को रौंद डालेगा? क्या तेरी आँखे फूट गई है[4]?' 'धत तेरे हस्तिपक की! मेरे हाथी की सूँड पर चढा हुआ खिलवाड़ कर रहा है।' ओ पियक्कड़, धक्कामुक्की के फेर मे पडकर लगे कीचड़ मे लोटने[5]।' 'ऐ भाई, दुखियों के साथी, कीचड मे फँसे बैल को निकाल लो।' 'छोकरे, इधर भाग आ, हाथियों के भीड-भडक्के में पड गया तो काम तमाम हो जायगा।' इस प्रकार कटक मे तरह-तरह के बोल सुनने में आ रहे थे।

और भी, बाण ने प्रयाण करती हुई सेना के एक दूसरे पक्ष का वर्णन किया है। सेना के प्रयाण से नौकर-चाकर, जनता, किसान, देहात के लोगों आदि पर जो बीतती थी उनके दु ख-सुख की मिली-जुली झाँकी बाण ने प्रस्तुत की है। एक जगह छुटभैये नौकर दाँत फाड़ रहे थे और मुफ्त में मिलनेवाले अन्न से मुटाकर खिलखिलाते हुए कटक की प्रशसा के पुल बाँध रहे थे। घोड़े हाथियों के लिये जो हरी फसल (सस्यघास) कटवाकर मँगाई गई थी उसमें से जो बच गया था उसे भीडकर मनचाहा आहार प्राप्त करके बढिया

---

१. विनैकेन निष्ठुरकेण निष्ठेयमस्माकम्, २१०।
इस वाक्य का अर्थ अस्पष्ट है, वजन के अनुसार ऊपरी अर्थ किया गया है। काश्मीरी प्रतियो में और निर्णयसागर मूल ग्रन्थ में 'निष्क्रेयम् पाठ है, किंतु फ्यूरर ने 'निष्ठेयम्' पाठान्तर दिया है। टीकाकार शकर ने भी निष्ठेयम्' पाठ मानकर निष्ठा का श्लेष अर्थ किया है जिसका तात्पर्य पंक्तिबद्ध सैनिकों का एक दूसरे से मिलकर चलना ज्ञात होता है। निष्ठुरक गाली की तरह से है जिसका अर्थ शरीर से निर्दय' किया जा सकता है, अर्थात् स्वय तेज चलकर दूसरो को कष्ट देनेवाला। यदि निष्क्रेयम् पाठ ही प्राचीन माना जाय तो अर्थ इस प्रकार होगा—इस एक दुष्ट को छोड़कर और हम सब ठीक (कर्तव्य से उऋण) हैं।

२ दासक माषीणादमुतो द्राग् दात्रेण मुखघासपूलक लुनीहि। माषीण = माष या उड़द का खेत। मुखघास = वह चारा जिसके मुट्ठे दो मुट्ठे नोचकर जुते हुए बैलो को खिला दिए जाएँ।

३ को जानाति यवसगत गतानाम्, २१०। इसका अर्थ कावेल और कणे दोनों ने साफ नहीं किया। 'हमारे चले जाने पर चारे मे छिपाई हुई उडद की पूली को कौन निकालेगा (कणे)।' किन्तु ऊपर का ही अर्थ शब्द और प्रकरण दानो का दृष्टि से उपयुक्त ज्ञात होता है, 'यात्रा में (गतानाम्) घास-चारे का हालचाल (यवसगतम्) कौन जाने, कैसा होगा?'

४ यक्षपाखित नाम भी हो सकता है अथवा वह व्यक्ति जिसपर यक्ष आया हुआ हो।

५. सम्मकर्दमे स्खलसि, २१०।

भोजन से वे लोग फूल रहे थे[1]। इस तरह की दावत का मजा लेनेवाले लोग सेना में नीची श्रेणी के नौकर-चाकर ही थे, जैसे मेठ (हाथियो के मेठ जो सम्भवत सफाई के काम पर नियुक्त थे), वंठ (कुँवारे जवान पट्ठे जो हाथ में सिर्फ डंडा या तलवार लेकर पैदल ही हाथी से भिड़ जाते थे, चित्र ८४)[2], वठर (अहमक या उजड्ड), लम्बन (गर्दभदास या लद्दू नौकर जिससे गधे की तरह सब काम लिया जा सके), लेशिक (घसियारे, घोडो के टहलुवे), लुंठक (लूटपाट करनेवाले), चेट (छोटे नौकर-चाकर), शाठ (धूर्त या शठ), चंडाल (अश्व-पाल या घोडो को तोबडों मे दाना खिलानेवाले और सफाई करनेवाले नौकर)। इस श्रेणी के लोग तो कटक-जीवन से खुश थे , पर बेचारे बुड्ढे कुलपुत्र सेना की नौकरी से दु खी थे। किसी तरह गाँवो से मिले हुए मरियल बैलो पर सामान लादकर बिना नौकर-चाकर के वे घिसट रहे थे और स्वयं अपने ऊपर सामान लादकर चलने के कष्ट और चिन्ता से सेना को कोस रहे थे--'बस, यह यात्रा किसी तरह पूरी हो जाय, फिर तो तृष्णा का मुँह काला, धन का सत्यानाश , नौकरी से भगवान बचाए। सब दु खो की जड अब इस कटक को हाथ जोडता हूँ।'

कही काले कठोर कंधों पर मोटा लट्ठ रखे हुए राजा के वारिक नामक विशेष अधिकारी, सम्राट् के निजी इस्तेमाल की विविध सामग्री जैसे सोने का पादपीठ, पानदान 'ताबूल-करंक,' पानी का कलसा, पीकदान और नहाने की द्रोणी को ले चलने की हेंकड़ी मे इठलाते हुए लोगों को धक्के देकर बाहर निकाल रहे थे[3]।

रसोई के लिये भाँति-भाँति का सामान ढोनेवाले भारिक या बोझिये भी जनता के ऊपर हेकडी दिखाने मे कम न थे। वे आगे आनेवाले लोगो को हटाते हुए चलते थे। उनमे

१. स्वेच्छामृदितोद्दामसस्यघासविघससुखसम्पन्नान्नपुष्टै , २११। सस्यघास = हरी फसल जिसमे दाने पड गए हो , वह सेना मे जानवरो को खिलाने के लिये लाई गई थी। उसका खाने से बचा हुआ भाग विघस था (विघस=भोजन-शेष, अमरकोश)। मटर की फलियो, बूट, हरे जौ, गेहूँ की बालियो को मीडकर (स्वेच्छामृदित) दाने निकालकर मडल मे बैठे हुए मेठ, वठ आदि फके मार रहे थे। उद्दाम=प्रभूत, मनचाहा अर्थात् पीछे बचा हुआ अन्न भी काफी मात्रा मे था। सुखसम्पन्नान्न=सुख या मजे के साथ मिला हुआ अन्न।

२. अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी के एक गोल डिब्बे पर इस प्रकारके शरीरबल से युक्त हाथी का मुकाबला करते हुए एक वठ का चित्र दिया गया है, शरीर पर चढ़े मांसकूट से वह भी देखने मे हाथी-जैसा ही लगता है (अहिच्छत्रा के खिलौने, एनशिएट इंडिया, भाग ४, पृ० १६१, चित्र २६१)।

३. सम्राट् का निजी सामान (पार्थिवोपकरण), १ सौवर्णपादपीठी, २ पर्यंक, ३ करक, ४ कलश, ५ पतद्ग्रह, ६ अवग्राह (स्नानद्रोणी)। वारिक=सम्राट् के निजी सामान और माल-असबाव की रक्षा के उत्तरदायी विशेष कर्मचारी। राजा विष्णु सेन के शिलालेख (५९२ ई०) में कई बार वारिक कर्मचारियो का उल्लेख आया है जो सम्राट् की निजी भूमि से प्राप्त अन्नादि की सार-सम्भाल रखते थे (प्रोसिडिंग्स बम्बई ओरिएटल कान्फेन्स, १९४९, पृ० २७५)। नालदा के मुद्रालेखो मे भी वारिक कर्मचारियो का उल्लेख है।

से कुछ सूअर के चमडे की बद्धियों में बकरे लटकाए चल रहे थे। कुछ हिरनों के अग्रभाग और चिड़ियों के ठट्ट के ठट्ट लटकाए ले चल रहे थे। कुछ लोग खरगोश के छोटे बच्चे, सागपात, बाँस के नरम अंकुर रसोई के लिये लेकर चले जा रहे थे। कुछ दूध-दही के ऐसे हंडे लिए थे जिनके मुँह सफेद कपडों से ढंके थे और एक तरफ गीली मिट्टी पर मोहर लगा दी गई थी। सामान ढोनेवाले अंगीठी (तलक), तवा (तापक), तई (तापिका), सलाखें (हस्तक), राँधने के लिये ताँबे के बने बर्तन (ताम्रचरु), कडाही आदि बर्तनों से भरे हुए टोकरे लेकर चल रहे थे। कमजोर बैलो को हाँकने के लिये गाँवो से पकडकर जो नौकर (खेट-चेटक) बुलाए गए थे वे सब कुलपुत्रों पर ताना कसते हुए कह रहे थे—'मेहनत हम करेंगे, लेकिन फल के समय दूसरे ही उचक्के आ धमकेंगे।' कहीं राजा को देखने की इच्छा से गाँवों के लोग दौडकर आ रहे थे। मार्ग में जो अग्रहार गाँव पडते थे उनके अनपढ़ आग्रहारिक लोग मंगल के लिये ग्राम-महत्तरों के हाथो मे जलकुंभ उठवाए हुए आ रहे थे। कुछ लोग दही, गुड, शक्कर और पुष्पों की करंडियाँ पेटियों मे बन्द करके भेंट में जल्दी से ला रहे थे। कुछ लोग क्रोधित कठोर प्रतीहारियो के डराने-धमकाने से दूर भागते हुए भी गिरते-पडते राजा पर ही अपनी दृष्टि गडाए थे। वे पहले भोगपतियों की झूठी शिकायत कर रहे थे, या पुराने सरकारी अफसरों की सराहना कर रहे थे, या चाट-सैनिकों के पुराने अपराधों को कह सुना रहे थे। दूसरे लोग सरकारी कर्मचारियों से मन मिलाकर 'सम्राट् साक्षात् धर्म के अवतार है।' इस प्रकार की स्तुति कर रहे थे। किन्तु कुछ लोग ऐसे थे जिनकी पकी खेती सेना के लिये उजाड दी गई थी। वे उसके शोक मे अपनी गृहस्थी के साथ बाहर निकलकर प्राणो को हथेली पर रक्खे निडर होकर कह रहे थे—कहाँ है राजा ? किसका राजा ? कैसा राजा[१] ? इस प्रकार राजा को बोली मार रहे थे।

सेना के चलने से जो कलकल ध्वनि हुई उससे जंगल मे छिपे हुए खरगोशों का झुंड बाहर निकल आया। बस डडा लिए हुए तेज व्यक्तियों के समूह उनपर टूट पड़े और जैसे खेतों के ढेले तोड़े जाते है ऐसे उन्हे मारने लगे (गिरिगुडकैरिव हन्यमानैः)। वे बेचारे जान लेकर इधर-उधर भागे, पर बहुतों को भीड ने सँभाल लिया और बोटी-बोटी नोच ली। लेकिन कुछ खरहे टाँगों के बीच में घुसकर निकल जाने मे ऐसे होशियार थे कि घुडसवार के कुत्तों को भी अपनी टेढी-मेढी भगदड से झाँसा देकर निकल भागे[२], यद्यपि उनपर चारों

१. क्व राजा=कहाँ है राजा, अर्थात् क्या यह राजा के योग्य है। कुतो राजा=कहाँ का राजा चलके आया है, अथवा आया कही का राजा। कीदृशो वा राजा=कैसा है राजा, अथवा ऐसा ही होता है राजा क्या (२१२)।

२ इसमें खरगोशो के झुंड के शिकार का सजीव वर्णन है। जैसे ही खरहो का झुंड निकला, डंडा लिए हुए व्यक्ति उनपर टूट पड़े और उन्हें पद-पद पर ऐसे कूटने लगे जैसे खेत के डलो को तोड़ते हैं। इतने मे वे छितराकर भागे (इतस्तत संचरद्भि), तब भीड ने कुछ को एक साथ दबोचकर काम तमाम कर दिया (युगपत्परापतितमहाजनग्रस्तैस्तिलशो विलुप्यमानै)। लेकिन खरगोश भी पक्के थे, उनमे से कितने ही जानवरो की टाँगो के बीच में घुसकर निकल भागने मे चतुर थे और घुडसवारो के शिकारी कुत्तो को भी आड़े-तिरछे भागकर (कुटिलिका) बुत्ता दे सकते थे। यद्यपि उनपर ढेला, डंडा फरसा, कुदाल, फावड़ा आदि से एक साथ हमला किया गया, पर फिर भी आयुर्बल शेष रहने से कुछ बचकर भाग ही निकले। मालूम होता है कि जंगल मे बसे हुए खरहो की मांद को कुदाल-फावड़ो से खोदकर उनका शिकार किया जाता था।

ओर से ढेले, पत्थर, डंडे, टेढी छड़ी, कुठार, कील, कुदाल, फड़ुवा, दराँती, लाठी जो कुछ भी हाथ में पड़ा उसी से हल्ला बोल दिया गया था।

कहीं घसियारों के झुंड भूसे और धूल से लथपत थे और गठरी में से गिरे हुए दूब के नालों का जाल-सा उनके शरीर पर पूरा हुआ था। घोड़ों पर कसी हुई पुरानी काठी के पीछे की ओर उनके दराँत लटक रहे थे। पलान के नीचे बची-खुची रद्दी ऊन के टुकड़ों से जमाए हुए गुदगुदे और मैले नमदे घोड़ो की पीठ पर पड़े हुए थे[1]।

घासिक लोग हिलता हुआ चोलक (एक प्रकार का ऊँचा कोट) पहने हुए थे। उन्हें प्रभु-प्रसाद के रूप में पटच्चर-चीरिका या कपड़े का फाड़कर बनाया फीता सिर से बाधने को मिला था जिसके दोनो छोर पीछे की ओर फहरा रहे थे। इसी को चीरिका भी कहा जाता था। ऊपर लेखहारक मेखलक के वर्णन में पीठ पर फहराते हुए पटच्चर कर्पट का उल्लेख हुआ है (५२)। हाथियों के वर्णन मे इसी प्रकार का चीरा बाँधनेवाले कर्मचारियों को कर्पटिन् कहा गया है (१६६)। यह चिह्न सम्राट् की कृपा का सूचक समझा जाता था (चित्र ६२)।

कटक में एक तरफ कुछ सवारों की टुकड़ी आनेवाले गौड़युद्ध के विषय में चबाव कर रही थी[2]। कहीं सब लोग दलदल को पाटने के लिये घास-फूँस के पूले काटने में जुटे थे। कहीं उजड्ड ब्राह्मण डर से भागकर पेड के ऊपर चढ़े हुए गाली-गलौज कर रहे थे और नीचे खड़े दंडधर बेंत से उन्हे धमका रहे थे। वस्तुत बाण ने यहाँ इस बात की ओर संकेत किया है कि जिन ब्राह्मणो को राजाओं से अग्रहार में गाँव मिले हुए थे उनके दानपट्टों की यह शर्त थी कि उनपर सरकारी सेनाओं के पड़ाव या उधर से गुजरने के कारण किसी तरह का लाग, दंड-कर या सामग्री देने का बोझ न पड़ेगा। प्राचीन प्रथा के अनुसार अग्रहार में दिए हुए गाँव सब लाग-भाग से विशुद्ध माने जाते थे। इस समय सैनिक-प्रयाण के कारण उन गाँवों से भी दंडधर लोग कुछ वसूल करना या ऐंठना चाहते थे। इसी पर सरकारी कर्मचारी और अग्रहारभोगी ब्राह्मणों मे झगड़ा हो रहा था। वेत्री लोगो ने अपनी हेकड़ी में डराना-धमकाना चाहा तो ब्राह्मण बिचारे डरते हुए भाग कर पेड पर जा चढे और वहीं से अपने वाग्बाणों का प्रयोग करने लगे। इसी प्रकरण मे ऊपर कहा जा चुका है कि कुछ आग्रहारिक लोग अपने गाँवों से बाहर आकर राजा का स्वागत करने के लिये दही, गुड़ और खंडशर्करा भर-भर-कर बंद पेटिया लेकर आ रहे थे और फिर भी दंडधारी सैनिक उनको डाँट-फटकार बतलाकर और डरा-धमकाकर दूर भगा रहे थे। पुराने भोगपति और चाट-सैनिकों के जुल्मों की शिकायत करने की इच्छा रखते हुए भी गाँववालो के लिये सम्राट् तक अपना दुखड़ा पहुँचाने

१. शीर्णोर्णाशकलशिथिलमलिनमलकुथैं, २१३। मलकुथ=मलपट्टी छविरित्यर्थः, शंकर। मलपट्टी वह नमदा हुआ जो पलान के नीचे अब भी घोड़ो की पीठ पर बिछाया जाता है। यह गुलगुला या नरम होता है, शिथिल का अर्थ यहाँ लुजलुजा या नरम ही है। छीज में बची हुई ऊन को जमा कर नमदे बनाए जाते हैं और फिर उनमें से इच्छित लंबाई-चौड़ाई के टुकड़े काट लिए जाते है। इसी को बाण ने शीर्णोर्णाशकल कहा है।

२ एकान्तप्रवृत्ताश्ववारचक्रचर्व्यमाणागामिगौडविग्रहम् २१३। इस वाक्य का कुछ अंश (चर्व्यमाणागामिगौडविग्रह) लेखक-प्रमाद से २१२ पृष्ठ के क्वचिदेकान्तप्रवृत्त इत्यादि वाक्य मे प्राचीन काल मे ही मिल गया था।

ा कोई साधन न था। इस तरह बाण ने जनता के कष्टों की सच्ची झाँकी दी है। न केवल ैनिक-प्रयाण के समय, बल्कि हाथियों के शिकार मे हाका करने के लिये भी लोग पकड बुलाए ाते थे। प्रभाकरवर्धन की बीमारी के समय हर्षवर्धन को जब यकायक लौटना पडा तो उसकी ात्रा के मार्ग को सूचित करने के लिये जबर्दस्ती पकडे गए आसपास के गॉवों के लोगों को ात-दिन खडा रहना पडा था[१]।

कहीं गॉव के लोग कुत्तों को घसीटकर ला रहे थे और कुलुंठक[२] उन्हे अपने फॉंसों में बॉध रहे थे। गॉव के लोग सेना या शिकार के लिये बडे कुत्तो को लुंठकों के हवाले कर रहे थे। राजपुत्र एक दूसरे से होड लगाकर घोडे दौडाते हुए आपस मे टकरा जाते थे। इस प्रकार के कटक का मुआयना (वीक्षण) करके हर्ष समीपवर्ती राजकुमारो के साथ अनेक आलापों का सुख लेते हुए आवास को लौटे। अभी तक वे करेणुका या हथिनी पर सवार थे। जब वह हथिनी राजमदिर या राजकुल के द्वार पर पहुँची तो सम्राट् ने भौहो के इशारे से राजाओ को बिदा कर दिया और राजद्वारके भीतर पहली कक्ष्या में प्रविष्ट होकर बाह्य आस्थान-मंडप या दरबारे-आम के सामने हथिनी पर से उतर गए और आस्थानमंडप में रक्खे हुए आसन पर जा बैठे।

इस प्रसंग में बाण ने राजाओं के साथ हर्ष के वार्तालाप का विवरण भी दिया है। इसमे नाना भॉति से युद्धयात्रा से पूर्व हर्ष को प्रोत्साहन दिया गया था, जैसे—'मान्धाता ने दिग्विजय का मार्ग दिखाया। उसपर चलकर अप्रतिहतरथवेग से रघु ने थोडे ही समय मे दिशाओं को शान्त कर दिया। पाडु ने अकेले धनुष से समस्त राजचक्र को अपना करद बना लिया। राजसूययज्ञ के समय अर्जुन ने चीन देश पार करके हेमकूट पर्वत पर गन्धर्वों को जीत लिया। विजय के मार्ग मे अपने ही संकल्प का अभाव एकमात्र बाधा होती है। जैसे किन्नरराज द्रुम[३] बरफ से ढका हिमालय-जैसा रक्षक पाकर भी साहस के अभाव मे कुरुराज दुर्योधन का किंकर हो गया। ज्ञात होता है कि पूर्व के राजा अच्छे विजिगीषु न थे, क्योंकि थोड़े-से ही धरती के टुकडे मे एक साथ भगदत्त, दन्तवक्त्र, रुक्मि, कर्ण, दुर्योधन, शिशुपाल, साल्व, जरासंध, जयद्रथ आदिक राजा घिचपिच करके रहते रहे। युधिष्ठिर कैसे आत्मसन्तोषी थे जिन्होंने अर्जुन की दिग्विजय होते हुए भी अपने राज्य के समीप ही किंपुरुष देश के राज्य को सहन कर लिया। चडकोश राजा आलसी था जिसने सारी धरती को जीत लेने पर भी स्त्रीराज्य मे प्रवेश नही किया। तुषारगिरि और गन्धमादन

---

१ पुर.प्रवृत्त प्रतीहारगृह्यमाणग्रामीणपरम्पराप्रकटितप्रगुणवर्त्मा, १५२।

२ कुलुंठक का अर्थ शंकर ने कुत्तो को बॉधने का डडा किया है। कोशो मे यह शब्द नही मिलता। सम्भव है, शकर के इस अर्थ के सामने कोई प्रामाणिक परम्परा रही हो, अथवा उसने प्रकरण के अनुसार यह अर्थ अपने मन से लगाया हो। हमारे विचार से मेठ, वठ, वठर (२११) आदि सूची के लुंठक-सज्ञक कर्मचारी और कुलुठक एक ही है जिनका काम शिकार वगैरह के लिये कुत्तो की देखभाल करना था। कुलुठक का पाठान्तर कुलुंडक भी है जिसका अर्थ कुलुंडी या कलाबाजी करनेवाले नट ज्ञात होता है जो कजर या सॉसियो की तरह शिकारी कुत्ते पालते और आखेट में सहायक होते थे।

३. महाभारत, सभापर्व, २८।१

पर्वतों में फासला ही कितना है ? उत्साही के लिये तुरुष्कों का देश हाथ भर है। पारसीकों का प्रदेश बित्ता भर है। शकस्थान खरहे के पैर का निशान मात्र है। परियात्र मे तो सेना भेजना ही व्यर्थ है, वहाँ मुकाबले के लिये कोई दीखता ही नही। दक्षिणापथ उसके लिये जो शौर्य का धनी है सुलभ है। दक्षिणी समुद्र की हवाएँ दर्दुर पर्वत तक पहुँचकर उसकी गुफाओं को सुगन्धित करती है, उनमे दूरी है ही कहाँ, और दर्दुर के निकट ही तो मलयाचल है, एवं मलयाचल से मिला हुआ ही महेन्द्रगिरि है।

इस वर्णन में कई बातें भौगोलिक दृष्टि से महत्त्व की है। सभापर्व के अनुसार अर्जुन उत्तरी दिशा की दिग्विजय के सिलसिले में बाह्लीक, दरद और कम्बोज (बल्ख, गिलगित और पामीर) देशों को जीतकर परमकम्बोज देश (कम्बोज के उत्तर-पूर्व) में घुसा और वहाँ से ऋषिकों या यूचियों के देश में जहाँ ऋषिको के साथ उसका शिव और तारकासुर की भाँति अत्यन्त भयंकर सग्राम हुआ। मूल महाभारत में चीन देश का नाम न होने पर भी बाण ने अर्जुन के चीन देश जाने की बात लिखी है और वह ठीक भी है, क्योंकि यूची या ऋषिक पाँचवी शताब्दी ई० पूर्व में, जिस समय का यह प्रकरण है, उत्तरी चीन में ही थे। इस बात का ठीक परिचय बाण के समकालीन महाभारत के विद्वानो को था कि ऋषिकों की दिग्विजय के लिये अर्जुन चीन देश तक गए थे[१]। ऋषिकों की विजय से लौटते हुए अर्जुन किंपुरुषदेश में आए और वहाँ से हाटकदेश में गए जहाँ मानसरोवर था। हाटक देश तिब्बत का ही एक भाग था और वहीं हेमकूट पर्वत था। महाभारत में यद्यपि हेमकूट का नाम नहीं है, किन्तु बाण ने महाभारतीय भूगोल का स्पष्टीकरण करते हुए उसका उल्लेख किया है।

इस प्रकरण मे अलसश्चण्डकोश का उल्लेख सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। श्रीसिलवाँ लेवी ने इसकी ठीक पहिचान अलसन्द या सिकन्दर से की थी[२]। सिकन्दर-सम्बन्धी आख्यानों का पूरा कथासागर ही यूनान से अबिसीनिया (अफ्रीका) और ईरान तक फैल गया था। उसके अनुसार सिकन्दर ने समस्त पृथ्वी जीतकर अन्त मे एमेजन नामक स्त्रियो के राज्य

१. महाभारत, सभापर्व २७। २५ २८।

२. मैमोरियल सिलवाँ लेवी (सिलवाँ लेवी-लेख-सग्रह) पृ० ४१४। इसी फ्रेंच लेख का अग्रेजी अनुवाद (श्री प्रबोचन्द्र बागची कृत) एलेक्जेंडर ऐंड एलेक्जेण्ड्रिया इन इण्डिअन लिटरेचर, इण्डिअन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग १२ (१९३६), पृ०१२१-१३३ पर प्रकाशित हुआ है। श्री लेवी का कथन है कि स्यूडो-कैलिस्थनीस ने सिकन्दर का कल्पना से भरा हुआ एक जीवन प्रस्तुत किया था। वही सब देशों मे फैल गया। उसीके अ० २५-२६ में अमेजनों के देश को अपनी विजय के अन्त मे जीतकर सिकन्दर के पच्छिम लौटने का वर्णन है। श्री लेवी का सुझाव है कि मूल शब्द अलसन्द था, उसी का सस्कृत अलसचण्ड हुआ। जब बाण ने पूर्वपद अलस (आलसी) को अलग कर लिया तो नाम के लिये केवल चंड बच रहा। इसी मे कोश जोड़कर चंडकोश नया नाम बाण ने बना डाला और श्लेषद्वारा उसमे नए अर्थ का चमत्कार उत्पन्न किया। चण्डकोश राजा (वह जिसमे वृषशक्ति बड़ी उग्र थी) आलसी था जो चण्डकोश होते हुए भी स्त्री-राज्य में नही घुसा, दूर से ही लौट गया। (लेवी का लेख; पृ० १२३)।

को पत्र भेजकर विजित किया, पर स्वय उसमे प्रवेश नहीं किया। यह स्त्री-राज्य एशिया माइनर में ब्लैक सी और एजियन सी के किनारे था। यूनानी इतिहास-लेखक कतिअस के अनुसार जब सिकन्दर विजय करता हुआ एशिया मे आया तो एमेजन देश की रानी थलेस्त्रिस् उससे मिलने आई[1]। सिकन्दरनामे की यह एक प्रसिद्ध कथा हो गई थी कि सिकन्दर ने स्त्री-राज्य को दूर से ही अपने आधिपत्य में लाकर उसे अछूता छोड दिया था। उसी कहानी का उल्लेख बाण ने किया है[2]।

सातवी शती के पूर्वार्ध में भारतवर्ष का विदेशों के साथ जो सम्बन्ध था उसकी भौगोलिक पृष्ठभूमि बाण ने संक्षिप्त किन्तु अपने स्पष्ट ढग से दी है। चीनी तुर्किस्तान तुरुष्कों का देश था जहाँ उइगुर तुर्क जो बौद्धधर्मानुयायी थे, बसे हुए थे। वे भारतीय संस्कृति के प्रेमी, कला और साहित्य के संरक्षक थे। उनकी संस्कृति के अनेक प्रमाण और साहित्यिक अवशेष चीनी तुर्किस्तान की मरुभूमि के नगरों की खुदाई में मिले है। उधर पश्चिम में सासानी युग का ईरान देश पारसीकों का देश कहलाता था जिनका उल्लेख रघुवंश (४।६०) मे कालिदास ने भी किया है। शकस्थान ईरान की पूर्वी सीमा पर स्थित था। दूसरी शती ई० पू० में जब शक लोग हूणों के दबाव से बाह्लीक से दक्षिण की ओर हटे तो वे पूर्वी ईरान और अफगानिस्तान की सीमा पर आकर जमे। तभी से वह प्रदेश शकस्थान कहलाने लगा। प्रथम शती ई० पू० के मथुरा से मिले हुए खरोष्ठी भाषा के सिंहशीर्षक लेख मे मथुरा और तक्षशिला के शक-क्षत्रपो का इतिहास बताते हुए उनके मूलदेश शकस्थान का भी उल्लेख आया है। प्रतापी गुप्तो ने शाहानुशाही शकों और उनकी मुरुंडशाखा के राज्य को उखाड़ फेंका था और बाण के समय मे शकों का कोई राज्य नही बचा था। फिर भी शकस्थान यह देश का नाम बचा रह गया था जैसा कि पश्चिम दिशा के जनपदो मे वराहमिहिर ने भी (बृहत्सहिता १४। २१) उसका उल्लेख किया है।

पारियात्र पर्वत के मालवा प्रदेश में हर्ष का राज्य हो गया था। किन्तु दक्षिणापथ में चालुक्यराज पुलकेशिन् के कारण उसकी दाल नही गली।

हर्ष इस समय अपने उस महल के बाह्य आस्थान-मंडप मे थे जो अस्थायी रूप से बाँस-बल्लियों से बना लिया गया था। आस्थान-मडप में आकर उसने समायोग बर्खास्त होने की सूचना दी (प्रास्तसमायोग) और क्षणभर वही ठहरा। आस्थान-मडप से ही समायोग (फौजी परेड) का आरंभ हुआ था और वहीं पर्यवसान भी हुआ। कादम्बरी मे चन्द्रापीड की दिग्विजय का प्रारम्भ भी आस्थान-मंडप से ही कहा गया है।

इसी समय प्रतीहार ने आकर सूचना दी—'देव, प्राग्ज्योतिषेश्वर-कुमार ने हंसवेग नामक अपना अन्तरंग दूत भेजा है जो राजद्वार पर है (तोरणमध्यास्ते)।' सम्राट् ने कहा, 'शीघ्र उसे बुलाओ'। यद्यपि प्रतीहार किसी दूसरे को भेजकर भी हसवेग को बुलवा सकता था, किन्तु बाण ने लिखा है कि हर्ष ने हंसवेग के प्रति जो आदर का भाव प्रकट किया,

---

१. देखिए, लैम्प्राएर-कृत क्लासिकल डिक्शनरी, पृ० ४२, ४३, और भी, टाइम्स द्वारा प्रकाशित सेंचुरी साइक्लोपीडिया आफ नेम्स, पृ० ४८।

२. मुझे इस पहचान की सूचना सबसे पहले अपने मित्र श्रीमोतीचन्द्रजी से मिली, इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

उससे प्रेरित होकर और कुछ अपने स्वभाव की सरलता से प्रतीहार स्वयं ही हंसवेग को लेने बाहर आया। तब हंसवेग ने भेंट की सामग्री लानेवाले अनेक पुरुषों के साथ राजमन्दिर में प्रवेश किया[1] और पाँच अगों से पृथ्वी को छूते हुए प्रणाम किया[2]। हर्ष ने सम्मानपूर्वक 'आओ, आओ,' कहा और हसवेग ने आगे बढकर पादपीठ पर अपना मस्तक रखकर पुन प्रणाम किया। उसी मुद्रा में सम्राट् ने उसकी पीठ पर हाथ रक्खा। तब राजा ने तिरछे शरीर को कुछ और झुकाते हुए चामर-ग्राहिणी को बीच से हटाकर दूत की ओर अभिमुख हो प्रेम-पूर्वक पूछा—'हंसवेग, श्रीमान् कुमार तो कुशल से है।' उसने उत्तर दिया—'जब देव इतने स्नेह, सौहार्द और गौरव से पूछ रहे है तो वे आज सब प्रकार कुशली हुए।' कुछ देर बाद उसने पुन: कहा—'चारों समुद्रों की लक्ष्मी के भाजन देव को देने योग्य प्राभृत दुर्लभ है, फिर भी हमारे स्वामी ने पूर्वजो द्वारा उपार्जित आभोगनामक यह वारुण आतपत्र सेवा में भेजा है। इसके अनेक कुतूहलजनक आश्चर्य देखे गए है।' इत्यादि कहकर खड़े होकर अपने नौकर से कहा—'उठो, और देव के सामने वह छत्र दिखाओ।' यह सुनते ही उस पुरुष ने उठकर छत्र को ऊँचा किया और सफेद दुकूल के बने हुए गिलाफ (निचोलक) में से उसे निकाला। निकालते ही शकर के अट्टहाससा उसका श्वेत प्रकाश चारों ओर भर गया, मानों क्षीरसागर का जल आकाश मे मंडलाकार छा गया हो, शरत्कालीन मेघ आकाश में गोष्ठी कर रहे हों, अथवा चन्द्रमा का जन्मदिन दिखाई दिया हो। इस प्रकार हर्ष ने आश्चर्यपूर्वक उस अद्भुत महत् छत्र को ध्यानपूर्वक देखा। छत्र के चारों ओर मोतियों के जालक लटक रहे थे (मौक्तिकजालपरिकरसितम्, २१६)। मौक्तिकजाल के नीचे छोटी-छोटी चौरियाँ लटक रही थी (चामरिकावलिभि विरचितपरिवेशम्, २१६)। उसके शिखर पर पंख फैलाए हंस का चिह्न बना था। छत्र क्या था, लक्ष्मी का श्वेतमंडप[3], श्वेतद्वीप का बालरूप[4] ब्रह्मवृक्ष का फूला हुआ गुच्छा-सा लगता था (चित्र ८५)।

जब हर्ष छत्र देख चुके तो भृत्यों ने (कार्मी) अन्य प्राभृतो को भी क्रम से उघाड़-कर दिखाया जो इस प्रकार थे—१ अलंकार या आभूषण जिनपर भाँति-भाँति के लक्षण या

---

१ प्रभूतप्राभृतभृतां पुरुषाणां समूहेन महतानुगम्यमान प्रविवेश राजमन्दिरम्, २१४।

२ अष्टाग प्रणाम दडवत् होता है, किन्तु पचांग प्रणाम मे घुटनो को मोड़कर हाथो की अ जुलि को आगे रखकर उसे सिर से छूते है

३. श्वेतमंडप = चाँदनी मे विहार करने के लिये ऐसा मंडप जिसकी समस्त सजावट या घटा श्वेत रग की हो। यह प्रसन्नता की बात है कि सातवी शती में इस प्रकार के मंडपो की कल्पना अस्तित्व मे आ चुकी थी। बाद मे भी यह परम्परा अक्षुण्ण रही। ठाकुरजी के मदिर में रंग-रंग की सजावट या घटाओ के मंडप या बगले अभी तक बनाए जाते है।

४ श्वेतद्वीप का उल्लेख, पृष्ठ ५९ और २५८ पर भी आया है। इसी प्रकार कादम्बरी, पृ० २२९, वासवदत्ता, पृ० १०३ में भी श्वेतद्वीप का नाम आया है। महाभारत के अनुसार नारद ऋषि क्षीरोदसागर के समीप श्वेतद्वीप में जाकर नारायण की पूजा करते है। बृहत्कथा-मंजरी के अनुसार नरवाहनदत्त श्वेतद्वीप मे गया था। कथासरित्सागर के अनुसार नरेन्द्रवाहनदत्त ने श्वेतद्वीप में हरिपूजन किया और विष्णु ने प्रसन्न हो उसे अप्सराएं दी (अलकारवती, लम्बक ९, तरंग ४, श्लोक २०) इत्यादि, देखिए, कीथ-कृत-सस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० २७९। बाण के समय में श्वेतद्वीप की कल्पना कहानी का विषय बन गया था।

चिह्न ठप्पे से बनाए गए थे (आहतलक्षण) और जो भगदत्त आदिक राजाओ के समय से कुल में चले आ रहे थे। प्राय इस प्रकार के विशिष्ट आभूषण प्रत्येक राजकुल मे रहते थे। उनके विषय मे यह विश्वास जम जाता था कि वे वश-संस्थापक के प्रसादरूप में प्राप्त हुए थे, और भी उनके विषय में आश्चर्यजनक चमत्कार की बाते कही जाती थी।

२ चूडामणि या शिरोभूषण के अलंकार जो अत्यन्त भव्य प्रकार के थे।

३. अनेक प्रकार के श्वेत हार।

४. क्षौमवस्त्र जो शरत्-कालीन चन्द्रमा की तरह चिट्टे रंग के थे और जिनकी यह विशेषता थी कि वे धोबी की धुलाई सह सकते थे। ये क्षौम के बने वस्त्र उत्तरीय ज्ञात होते हैं जिनको बाण ने अन्यत्र (१४३) भगुर उत्तरीय कहा है। इन वस्त्रो को मॉडी देकर इस प्रकार से चुना जाता था कि वे गोल हो जाते थे और लंबान में चुन्नट डालने के कारण उनमें गॅडेरियों-सी बन जाती थीं (देखिए, अहिच्छत्रा के खिलौने, चित्र ३०२)। इस प्रकार के उत्तरीय वस्त्रों की तह अन्य वस्त्रो की भाति असम्भव थी। इसी कारण बाण ने लिखा है कि ये वस्त्र बेंत की करडियों मे कुडली करके या गेंडुरी बनाकर रक्खे जाते थे। (चित्र ४७) बेंत की बनी हुई जिन करंडियों में आसाम से वस्त्र रखकर आते थे वे भी बेंत को कई रगों में रगने से रंग-बिरगी बनाई जाती थीं (अनेकरागरुचिरवेत्रकरडकुंडलीकृतानि शरच्चन्द्रमरीचिरुचि शौचक्षमाणि क्षौमाणि, २१७)।

५. अनेक प्रकार के पानभाजन या मधु पीने के चषक आदि जो सीप, शख और गल्वर्क के बने हुए थे और जिनपर चतुर शिल्पियो ने भॉति-भॉति की उकेरी (नक्काशी) का काम किया था। गल्वर्क सम्भवत. हकीक का प्राचीन नाम था और उसी का सहयोगी मसार संगे यशब था जिनका पूर्व मे (१५६) उल्लेख किया जा चुका है (कुशलशिल्पिलोकोल्लिखिताना शुक्तिशखगल्वर्कप्रमुखाना पानभाजननिचयानाम् , २१७)।

६ कार्दरग द्वीप से आई हुई ढालें जिनकी आब की रक्षा के लिये उनपर खोल चढे थे। ये ढालें आकृति में गोल थी और उनका घेरा सुदर जान पडता था। पहले कहा जा चुका है कि इनके चारों ओर छोटी-छोटी चौरियों की एक किनारी रहती थी (चित्र८२)। इनके काले चमडे पर सुनहली फूल-पत्तियों के कटाव खचित थे। ऊपर कहा जा चुका है कि कार्दरंग का ही दूसरा नाम कर्मरंग या चर्मरंग द्वीप था, यह मलयद्वीप का एक भाग था (निचोलकरक्षितरुचा रुचिरकाचनपत्रभगभगुराणाम् अतिबधुरपरिवेशाना कार्दरगचर्मणा सम्भारान्)।

७ भोजपत्र की तरह मुलायम जातीपट्टिकाएँ। हमारी समझ से ये आसाम के बने हुए मूँगा रेशम के थान थे जिनपर जाती अर्थात् चमेली के फूलों का काम बना हुआ था। शकर के अनुसार जातीपट्टिका एक प्रकार के बढिया पटके थे जो कटिप्रदेश में बॉधने के काम आते थे (भूर्जत्वक्कोमला स्पर्शवती जातीपट्टिका , २१७)।

८. नरम चित्रपटो (जामदानी) के बने हुए तकिए जिनके भीतर समूर या पक्षियों के बाल या रोएँ भरे थे। चित्रपट वे जामदानी वस्त्र ज्ञात होते है जिनमें बुनावट मे ही फूल-पत्ती अथवा अन्य आकृतियो की भॉति डाल दी जाती थी। बंगाल इन वस्त्रों के लिये सदा से प्रसिद्ध रहा है।

९. बेंत के बुने हुए आसन जिनका रंग प्रियगुमंजरी की तरह कुछ ललछौंही पीली झलक का था (प्रियंगुप्रसवपिंगलत्वंचि आसनानि वेत्रमयानि)।

१० अनेक प्रकार के सुभाषितों से भरी हुई पुस्तकें जिनके पन्ने अगरू की छाल पीट कर बनाए गए थे। इससे ज्ञात होता है कि बाण के समय में सुभाषित या नीतिश्लोकों का संग्रह प्रारम्भ हो गया था। उस युग से पूर्व के भर्तृहरिकृत शतकत्रय प्रसिद्ध है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि आसाम की तरफ़ भोजपत्र और ताड़पत्र दोनों के स्थान पर अगरु की छाल से पुस्तकों के पत्र बनाते थे (अगरुवल्कलकल्पितसंचयानि सुभाषित भाजि पुस्तकानि, २१७)।

११. हरी सुपारियों के झुग्गे जिनमे पल्लवों के साथ सरस फल झूल रहे थे। इनका रंग पके लाल परवल की तरह ललछौंह और हरियल पक्षी की तरह हरियाली लिये था। सरस पूगफलों में से रस चुचिया रहा था (परिणत पाटलपटोलत्विषि तरुणहारीत-हरिंति चीरक्षारीणि पूगाना पल्लवलम्बीनि सरसानि फलानि, २१७)।

१२. सहकारलताओं के रस से भरी हुई मोटी बास की नलियाँ जिनके चारों ओर कापोतिका के लाल पीले पत्ते बँधे हुए थे। सहकार एक प्रकार का सुगन्धित आम था जिसके फल से सहकार नामक सुगंधित द्रव्य बनता था।[1] बाण ने स्वय कई स्थलों पर सहकार के योग से एक सुगन्धित पदार्थ बनाने का उल्लेख किया है (२२, ६६, १३०)। वराहमिहिर की बृहत्सहिता से भी ज्ञात होता है कि सहकार रस के योग से उस समय अत्यत श्रेष्ठ सुगन्धि तैयार की जाती थी।[2]

१३. काले अगरु का तेल भी इसी प्रकार की मोटी बास की नलियो में भरकर और पत्तों में लपेट कर लाया गया था (कृष्णागरुतैलस्य स्थवीयसी वैणवी· नाडी)।

१४. पटसन के बने हुए बोरो में भरकर काले अगरु के ढेर लाये गए थे जिसका रंग घुटे हुए अजन की तरह था (पट्टसूत्र प्रसेवकार्पितान्‌कृष्णागरुण राशीन्‌)।

१५. गरमी मे ठडक पहुंचाने वाले गोशीर्ष नामक चन्दन की राशिया। श्रीसिलवा लेवी के मतानुसार पूर्वीद्वीपसमूह में तिमोरनामक द्वीप गोशीर्ष कहलाता था और वहा का चन्दन भी इसी नाम से प्रसिद्ध था।

१६. बरफ के शिला खंड की तरह ठढे सफेद और साफ कपूर के डले।

१७. कस्तूरी के नाफे (कस्तूरिकाकोशक)।

१८ कक्कोल के पके फलों से युक्त कक्कोल पल्लव। कक्कोल और उसका पर्याय तक्कोल सम्भवत शीतलचीनी का नाम था। कक्कोल या तक्कोल नगर मलयप्राय द्वीप के पच्छिमी किनारे पर था जो कक्कोल के लदान का खास बदरगाह था।

---

१. सहकार—सुगन्धद्रव्यभेद सहकारफलेनैवक्रियते (शकर पृ० २२)।

२. जातीफलमृगकर्पूरबोधित ससहकारमधुसिक्तै बहवो पारिजातारचतुर्भिरिच्छा परिगृहीतै (बृहत्सहिता ७६।२७)।
बृहत्संहिता के गन्धयुक्ति प्रकरण मे अनेक प्रकार की सुगन्धियां बनाने का विधान किया है और यहा तक लिखा है कि विभिन्न द्रव्यो के संयोग से १७४७२० प्रकार की गध बन सकती थी(७६। २१)।

१९. लवंगपुष्पों की मजरी। कालिदास के अनुसार लवंग पुष्प के वृक्ष द्वीपान्तर अर्थात् पूर्वी द्वीपसमूह में मलय से लाए जाते थे। (द्वीपातरानीतलवंगपुष्पै, रघु० ६।५७)।[1]

२०. जायफल के गुच्छे (जातीफलस्तबकाना राशीन्)।

२१. जस्ते की कपडे-चढी कलसी या सुराहियों मे अत्यत मीठा मधुरस भरकर लाया गया था (अतिमधुरमधुरसामोदनिर्हारिणी चोलककलशी)। चोलक कलशी पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ था चोलक या कपडा चढी हुई कलसी[2]। अब भी राजस्थान आदि में कपड़ा चढी हुई सु दर जस्ते की सुराहिया चादी के मुखडे के साथ बनाईजाती हैं जिनमें पानी बहुत ठंढा रहता है। मधुरस का अर्थ शंकर ने द्राक्षा अथवा मकरंद किया है। भिन्न-भिन्न पुष्पों का मधुरस चोलक कलशियो में भरा हुआ था जिसकी भीनी सुगन्धि (आमोद) बाहर फैल रही थी।

२२. काले और सफेद रंग के चंवर।

२३. चित्रफलकों के जोडे (आलेख्यफलक संपुट) जिनमें भीतर की ओर चित्र लिखे थे और उनके एक ओर तूलिका एवं रंग रखने के लिये छोटी अलाबू की कुप्पिया लटक रही थीं (अवलम्बमानतूलिकालाबुकान् लिखितानालेख्यफलकसपुटान्)।

२४. भाति-भाति के पशु और पक्षी, जैसे सोने की शृ खलाओं से गर्दन में बंधे हुए किन्नर, वनमानुष, जीवंजीवक,[3] जलमानुषो के जोडे, चारो ओर सुगन्धि फैलाते हुए कस्तूरी हिरन, घरों में बिचरनेवाली विश्वासभरी पालतू चवरी गाए, बेंत के पिंजडो में सुभाषित कहने वाले शुक-सारिका पक्षी, मूंगे के पिंजडो मे बैठे हुए चकोर[4]।

२५. जलहस्तियों के मस्तक से निकलने वाले मुक्ताफल से जडे हुए हाथीदात के कुंडल। जलहस्ती या जलेभ से तात्पर्य दरियाई घोड़ा है जिसके मस्तक की हड्डी को खराद पर चढा कर सम्भवत गोल गुरिया या मोती बनाते थे।

शुक सारिकाओं के वर्णन मे लिखा है कि उनके बेत के पिंजडों पर सोने का पानी चढा हुआ था (चामीकर रसचित्रवेत्र पंजर)। यह अवतरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इससे ज्ञात होता है कि सुवर्णद्रव (लिक्विड गोल्ड) बनाने की विधि बाण के समय ज्ञात थी और उसका आम रिवाज था। कादम्बरी में भी मिट्टी की गुरियों से बनी हुई माला का उल्लेख है जिनपर सोने के रस की बुंदकिया डाल दी गई थी (काचनरसखचिता मृण्मयगुटिकाकदम्बमालाम्, कादम्बरी वैद्य० पृ० ७१)। जैनग्रन्थ निशीथचूर्णि में तो

१. द्वीपांतर—मलय (ग्रेटर इंडिया सोसायटी जर्नल, भाग ९, द्वीपांतर शीर्षक लेख)

२. शकर ने चोलक का पदच्छेद च उल्लक किया है और उल्लक का अर्थ सुगधिफल विशेष का रस या आसव भेदकिया है।

३ बौद्ध संस्कृत साहित्य के अनुसार जीवंजीवक दो सिरवाला बडा काल्पनिक पक्षी था। यहाँ वनमानुषो और जलमानुषो के साथ उसका ग्रहण ठीक ज्ञात होता है। तक्षशिला में सिरकप के मन्दिर में दो सिरवाले एक गरुडपक्षी की आकृति बनी है जो जीवंजीवक ज्ञात होता है।

४. चकोर लाल रंग पसंद करता है, अतएव आज भी उनके पिजड़ो मे मुंगे के दाने लगाए जाते हैं।

यहाँ तक कहा गया है कि उस समय सुवर्णद्रुति (लिक्विडगोल्ड) से सूत रंगने की प्रथा थी। इस समय सोने का द्रव बनाने की विधि प्राचीन परम्परा के जाननेवालों को अज्ञात है। केवल पश्चिम में कुछ कारखाने ही इसे तैयार करते है [१]।

छत्र देखते ही हर्ष का मन अतीव प्रसन्न हुआ और उसने उसे अपने पहले सैनिक प्रयाण में शुभ शकुन माना। प्राभृत सामग्री के वहाँ से हटालिये जाने पर उसने हंसवेग से आराम करने के लिये कहा और उसे प्रतीहार-भवन में भेजा।

प्रतीहार-भवन राजद्वार के भीतर राजकुल का एक अंग था। जिस समय भंडि जो हर्ष का मामा था हर्ष से मिलने आया वह भी प्रतीहार-भवन में ही ठहराया गया था। हर्ष ने स्वयं राजकुल की निजी स्नानभूमि में स्नान किया, किन्तु भंडि ने प्रतीहार भवन में स्नान-ध्यान किया। उसके बाद भडी को राजकुल की रसोई में बुलाकर सम्राट् ने उसके साथ ही भोजन किया (२२६)। इससे यह स्पष्ट है कि प्रतीहार-भवन राजकुल के अन्दर ही होता था[२]।

हर्ष बाह्यास्थान मंडप से उठकर स्नान भूमि मे गए और स्नानादि से निवृत्त हो पूर्वाभिमुख होकर आभोगछत्र के नीचे बैठे। उसकी शीतल छाया से वे अत्यन्त प्रसन्न और विस्मित होकर सोचने लगे—'आमरण मैत्री के अतिरिक्त इस प्रकार के सुन्दर उपहार का बदला (प्रतिकौशलिका) और क्या हो सकता है? भोजन के समय हर्ष ने हंसवेग के लिये अपने लगाने से बचा हुआ चन्दन, सफेद कपडे से ढके हुए चिकने नारियल में रखकर भेजा। और उसके साथ ही अपने अग से छुआए हुए परिधानीय वस्त्र-युगल, मोतियों से बना हुआ परिवेश नामक कटिसूत्र और माणिक्यखचित तरंगक नामक कर्णाभरण, एवं बहुतसा भोजन का सामान भेजा। इस प्रकार वह दिन व्यतीत हुआ और सन्ध्या का अंधकार चारों ओर फैल गया। प्राची दिशा गौडेश्वर के अपराध से डर कर मानों काली पड़ गई। कुछ देर में राजा के सैनिक-प्रयाण की वार्ता के समान चन्द्रमा का प्रकाश आकाश में फैल गया। प्रतिसामन्तों के नेत्रों की निद्रा न जाने कहाँ चली गई (२१८)। इस समय हर्ष वितान के नीचे लेटे थे। नौकरों को विसर्जित करके उन्होंने हसवेगसे संदेश सुनाने के लिये कहा।

---

१ डा० मोतीचन्द्र कृत भारतीय वेषभूषा पृ० १५१। इस प्रकरण के समझने में मुझे अपने मित्र श्री मोतीचन्द्र जी से बहुत सहायता मिली है जिसके लिये मैं उनका अतिशय आभारी हूँ। विशेषत चोलक कलसी, जातीपट्टिका, चित्रपट और चामीकर रससचित्रवेत्रपंजर इन पारिभाषिक शब्दो को मैं उन्ही के बताने से जान सका हूँ।

२. मुझे प्रतीहार-भवन की इस स्थिति के बारे मे पहले सन्देह हुआ कि जिस राजद्वार के भीतर केवल सम्राट् और राजकुल के अन्य सदस्य रहते थे उसमें प्रतीहारो के रहने का स्थान कैसे सभव था, किन्तु पीछे 'हैम्पटन कोर्ट पैलेस' नामक लदन के ट्युडर कालीन महल का नक्शा देखने का अवसर प्राप्त हुआ तो ज्ञात हुआ कि राजड्योढ़ी के भीतर एक ओर 'लार्डचम्बरलेस कोर्ट' के लिये स्थान रहता था। यही भारतीय राजमहल में प्रतीहार भवन था। अवश्य ही दौवारिक महाप्रतीहार के लिये बाह्यास्थान मंडप के समीप आवासगृह रहता होगा। यही बाण के इन उल्लेखो से लक्षित होता है। हर्ष के महल, ईरानी महल, मुगलकालीन महल, यहाँ तक की अग्रेजी महलो में भी कई बातो में पारस्परिक समानताएँ थी जिनके विषय मे अन्त के परिशिष्ट में ध्यान दिलाया गया है।

उसने प्रणाम कर कहना शुरू किया—'देव, पूर्वकाल मे वराह और पृथ्वी के सम्पर्क से नरक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बड़ा वीर था। बाल्यावस्था मे ही लोकपाल उसे प्रणाम करने लगे। उसने वरुण से यह छत्र छीन लिया। उसके वंश में भगदत्त, पुष्पदत्त, वज्रदत्त प्रभृति बड़े-बड़े राजा हुए। उसी परम्परा में महराज भूतिवर्मा का प्रपौत्र, चन्द्रमुख वर्मा का पौत्र, कैलासवासी स्थितिवर्मा का पुत्र सुस्थिरवर्मा नाम का महाराजाधिराज उत्पन्न हुआ। सुगृहीत नाम उस राजा की रानी श्यामा देवी से भास्करद्युति नामक पुत्र जिसका दूसरा नाम भास्कर वर्मा है उत्पन्न हुआ। बचपन से ही उसका यह संकल्प था कि शिव के अतिरिक्त दूसरे किसी के चरणों मे प्रणाम न करूँगा। इस प्रकार का त्रिभुवनदुर्लभ मनोरथ तीन तरह से ही पूरा होता है, या तो सकलभुवनविजय से, या मृत्यु से, अथवा प्रचडप्रतापानल आप सदृश अद्वितीय वीर की मित्रता से। तो प्राग्ज्योतिषेश्वर देव के साथ कभी न मिटनेवाली मैत्री चाहते है। यदि देव के हृदय भी मित्रता का अभिलाषी हो तो आज्ञा हो जिससे कामरूपाधिपति कुमार देव के गाढालिगन का सुख अनुभव करें[१]। प्राग्ज्योतिषेश्वर की लक्ष्मी आपके मुखचन्द्र में अपने नेत्रों की तृप्ति प्राप्त करे। यदि देव उसके प्रणय को स्वीकार न करते हों तो मुझे आज्ञा हो कि मै अपने स्वामी से क्या निवेदन करूँ ?' (२२०-२१)

उसके इस प्रकार कहने पर हर्ष ने जो कुमार के गुणों से उनके प्रति अत्यन्त प्रेमासक्त हो चुके थे कहा—'हंसवेग, कुमार का संकल्प श्रेष्ठ है। स्वयं वे भुजाओं से पराक्रमी है, फिर धनुर्धर मुझे अपना मित्र बनाकर वे शिव को छोडकर और किसे प्रणाम करेंगे ? उनके इस सकल्प से मेरी प्रसन्नता और बढी है। तो ऐसा यत्न करो कि अधिक समय तक हमें कुमार से मिलने की उत्कण्ठा न सहनी पड़े (२२१)'।

इनके अनन्तर बाण ने राजसेवा स्वीकार करनेवाले व्यक्तियो को, उनके दु ख-सुख की भाँति-भाँति की मनोवृत्तियों के, उनके द्वारा किये जानेवाले कुत्सित कर्म, काट कपट, उखाड़ पछाड़, खुशामद और चापलूसी के विषय मे विचित्र उद्‌गार प्रकट किए है। यह प्रकरण विश्व साहित्य में अद्वितीय है। सरकारी नौकरी की हिजो या निन्दा मे शायद ही आज तक किसी ने ऐसी पैनी बातें लिखी हो। बाण के ये अपने हृदय के उद्‌गार है जो उसने हंसवेग के मुख से कहलवाए है। राजदरबारो की चाटुकारिता, स्वार्थ से सने हुए भृत्यों और अभिमान में डूबे हुए राजाओं का जो दमघोट् वातावरण उन्होने घूम फिर कर देखा था उन्होंने उसकी खरी आलोचना अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की समस्त शक्ति को समेट कर यहाँ की है। वे तो राजसेवकों को मनुष्य मानने के लिये भी तैय्यार नही—'बिचारे राजसेवक को भी यदि मनुष्यों मे गिना जाय, तो राजिल को भी सर्प मानना पडेगा, पयाल की भी धान में गिनती करनी होगी। मानधनी के लिये क्षणभर भी मानवता के गौरव के साथ जीना अच्छा, किन्तु मनस्वी के लिये त्रिलोकी के राज्य का उपभोग भी अच्छा नही यदि उसके लिये सिर झुकाना पड़े[२]।

१ इस परस्पर आलिंगन का चित्र खीचने के लिये बाण ने लिखा है—'कुमार की कटकमणि देव की केयूर मणि से आलिंगन में उस प्रकार रगड खाएगी जैसे मंदराचल के कटक विष्णु के केयूर से टकराए थे।'

२ वराक सेवकोऽपि मर्त्यमध्ये, राजिलोऽपि वा भोगी, पुलाकोऽपि वा कलमः। वरं क्षणमपि कृता मानवता मानवता, न मतो नमतस्त्रैलोक्याधिराज्योपभोगोऽपि मनस्विन.२२५।

सेवक अपने को धिक्कारता है और सोचता है कि वह धन मिट जाए, उस वैभव का सत्यानाश हो, उन सुखो को डंडौत है, उस, टीमटाम से भगवान् बचावे जिसकी प्राप्ति के लिये मस्तक को पृथ्वी पर रगडना पडे [१]।

राजसेवक केवल मुँह से मीठी बात करनेवाला मुखविलासी नपुंसक है, सडे मास का कीडा है, मर्द की शकल में बेगिनती का पुतला[२] है, सिर पर पैरों की धूल लगानेवाला चलता फिरता पाँवडा है, लल्लो-चप्पो करने मे नरकोयल है, मीठे बोल उचारनेवाला मोर है, धरती पर सीना घिसने वाला कछुआ है, वह चापलूसी का कुत्ता है, दूसरे के लिये शरीर को मोडने-तोडने में वेश्या की भाँति है[३]। जीवन वाले व्यक्तियों मे वह फूंस की तरह है, सिर मटकाने में गिरगिट है, अपने आपको सिकोड कर रखने वाला झाड चूहा है[४]। पैरों की चंपी का अभ्यासी पडवाया है[५], कराभिघात सहने में कन्दुक, एवं कोणाभिघात (इसका दूसरा अर्थ लकुटताडन भी है,) का अभ्यस्त वीणादण्ड है।' (२२४–२२५)

'भृतक का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं होता। उसके पाप कर्मों का भी कोई प्रायश्चित्त है ! उसे सुधारने का क्या उपाय ? वह शान्ति के लिये कहाँ जाय ? उसके जीवन का भी क्या नमूना ? पुरुषोचित अभिमान उसमें कहाँ ? उसके सुख-विलास कैसे ? भोगों के सम्बन्ध मे उसके विचार ही क्या ? यह दारुण दास शब्द घोर दलदल की तरह सबको नीचे ढकेल देता है[६]।

अच्छे-भले पुरुष को भी जो नौकरी के लिये बाध्य होना पडता है, जो मनोवृत्ति मनुष्य को राजसेवा के लिये प्रेरित करती है, उसका विवेचन करते हुए बाण ने लिखा है—'बहुत दिनों की दरिद्रता बुड्ढी मा की तरह पुरुष को नौकरी की ओर ढकेलती है। तृष्णा असन्तुष्ट स्त्री की भाँति उसे जोर लगाती है। अनेक वस्तुओ की चाहना करने वाले यौवन में उत्पन्न मनहूस विचार उसे नौकरी के लिये सताते है। दूसरो की याचना से मिलनेवाले बडे पद की लालच उसे इस ओर खीचती हैं। उसकी कुंडली मे पडे हुए बुरे ग्रह उसे इस परेशानी में डालते है। पूर्वजन्म के खोटे कर्म पीछे लग कर उसे इधर ढकेलते है। अवश्य ही वह दुष्कृती है जो राजकुल मे प्रवेश करने का विचार मन मे लाता है। वह उस व्यक्ति की

---

१ धिक्तदुच्छ्वसितं, उपयातु तद्धन निधन, अभवनिर्भूतिरस्तु तस्या, नमो भगवद्भ्य स्तेभ्य सुखेभ्य, तस्यायमंजलिरैश्वर्यस्य, तिष्ठतु दूर एव सा श्री शिवं स· परिच्छदः करोतु, यदर्थं मुत्तमाङ्गं गा गमिष्यति, २२४।

२ नरक=कुत्सितो नर (कुत्सित अर्थ में क प्रत्यय)।

३ वेश्याकाय करणबन्धक्लेशेषु। करणबन्ध कामशास्त्र के आसन अथवा रतिबन्ध वेश्याएँ शरीर को कष्ट देकर भी जिन्हे सीखती है (२२४)।

४ जाहक आत्मसंकोचनेषु २२५। जाहक—जाहड्—झाड्।

५ प्रतिपादक पादसंवाहनासु। पलंग के पाए का बोझ उठानेवाला प्रतिपादक या पड़वाया (वह लकडी या पत्थर का ठीहा जिसपर पलग के पाए टेके जाते हैं)। पादसँवाहना =पैर चपी (२२५)। जाहक-जाहड़-झाड़

६ अपुण्यानां कर्मणामाचरणाद् भृतकस्य किं प्रायश्चित्त, का प्रतिपत्ति क्रिया, क्व गतस्य शान्ति., कीदृशं जीवित, क. पुरुषाभिमान, कि नामानो विलासा, कीदृशी भोगश्रद्धा, प्रबलपक इव सर्वमधस्तान्नयति दारुणो दासशब्द २२४।

तरह है जिसकी इन्द्रियों की शक्ति ठप हो गई हो, किन्तु भाँति-भाँति के सुख भोगने की झूठी साध मन में भरी हो।' (२२३)

नौकरी के लिये जब कोई राजद्वार की ओर मुँह उठाता है तो किसी को तो द्वार के बाहर ही द्वाररक्षक लोग रोक देते है और वह बन्दनवार के पत्ते की तरह वही झूरता रहता है। वहाँ के दु ख सह कर किसी तरह राजकुल की ड्योढी के भीतर प्रवेश भी हो गया तो दूसरे लोग उस पर टूट कर हिरन की तरह कुटियाते है। चमडे के बने हुए हाथी[1] की तरह बार-बार प्रतिहारों के घूंसे खाकर धकिया दिया जाता है। धन कमाने के लिये राजकुल में गया हुआ वह ऐसे मुँह लटकाए (अधोमुख) रहता है जैसे गडे खजाने के ऊपर लगाये हुए पौधे की डाल नीचे झुकी हो। चाहे वह कुछ न भी माँगे तो भी वह राजद्वार के भीतर दूर तक प्रविष्ट हुआ जोर के साथ बाहर फेंक दिया जाता है, जैसे धनुष बाण को भीतर खीच कर वेग से छोड देता है। चाहे वह किसी के मार्ग का काटा न हो और अपने आपको चरण सेवा में लगाए रक्खे, तो भी वे उसे निकालकर दूर फेंक देते है। कही असमय मे स्वामी के सामने चला गया तो उसकी कुपित दृष्टि उसे जला कर नष्ट ही कर देती है जैसे अनाडी कामदेव देवताओ के फेर में पड़ कर शिव के द्वारा जल गया था। किसी तरह से यदि राजकुल मे रह गया, तो डाट-फटकार सहते हुए भी उसे अपने मुँह पर लाली बनाए रखनी पडती है। प्रतिदिन प्रणाम करते-करते उसका माथा घिस जाता है। त्रिशकु की तरह दोनों लोको से गया-बीता वह रात दिन नीचे मूंडी लटकाए रहता है। थोड़े से टुकडो के लिये वह अपने सब सुख छोड़ने पर तैय्यार हो जाता है। जीविका कमाने की अभिलाषा मन में लिये वह अपने शरीर को खपाता रहता है। कभी-कभी अपनी स्त्री को भी छोड कर राजकुल के लिये जघन्य कर्मों में लगा हुआ कुत्ते की तरह शरीर दड तक सहता है[2]। कभी बे-आबरू होकर भोजन पाता है, पर फिर भी सब कुछ सहता रहता है (२२२)।

राजकुल में अनेक प्रकार के सेवक होते थे उनके कर्म और स्वभावों को ध्यान मे रख कर बाण ने यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्णन दिये है।

'कुछ ऐसे है जो कौए की तरह जीभ के चटोरेपन मे अपना पुरुषार्थ खोकर आयु को व्यर्थ गँवातें रहते हैं[3]। पिशाच जैसे श्मशान के पेडो के चक्कर काटे ऐसे ही कुछ लोग नासपीटी बढोतरी पाकर बदमिजाज हुए राजा के मुँहलगे मुसाहिबो के पास मडराते रहते है[4]। कुछ लोग राजारूपी सुग्गों की मीठी-मीठी बाते सुनकर बच्चो की तरह भुलावे मे पडे रहते है। राजा का जादू एक बार जिस पर पड गया वह उसके हुक्म से क्या कुछ नही कर डालता ? वह अपने झूठमूठ के जौहरों का बाना बनाए हुए सदा नम्रता दिखाता है, लेकिन उसका तेज बुझा रहता है, जैसे चित्रलिखित धनुष चढी प्रत्यंचा से झुका हुआ भी बाण चलाने की शक्ति

१ करिकर्मचर्मपुट = हस्तियुद्ध सम्बन्धी सैनिक अभ्यास के लिये बनाया हुआ चमड़े का पूरा हाथी (२२२)। इसका बाण ने पहले भी उल्लेख किया है (१९६)।

२ शुन इव निजदारपराङ्मुखस्य जघन्यकर्मलग्नमात्मानं ताडयत. २२२। बाण का यह श्लेषमयवाक्य गूढ़ है

३ यह इशारा विदूषक पर घटता है।

४. श्मशान पादपस्येव पिशाचस्य दग्धभूत्या परुषीकृतान् राजवल्लभानपसर्पत', २२२।

नही रखता[१]। वह झाडू से बटोरे हुए कूडे की तरह श्री–हीन होता है[२]। उसे प्रतिहार और प्यादे (कटुकैरुद्वेज्यमानस्य) घुडक लेते है। जब राजद्वार की सेवा से टका-पैसा नहीं मिलता तो मन में वैराग्य उत्पन्न होकर गेरुआ धारण कर लेने की इच्छा करने लगता है। चाहे रात का भी समय हो वह बाहर फेंक दिया जाता है जैसे मातृबलि के पिंडे को राह में डाल देते है। वह मोटी-झोटी रहन-सहन से अनेक प्रकार के दुःख उठाता है। आत्मसमान को पीछे डाल कर भी झुकता रहता है। अपने आपको बेइज्जत करके वह मुँह से उनकी खुशामद करता है जो केवल सिर झुकाने से प्रसन्न नही होते। निष्ठुर प्रतिहारो की मार खाते-खाते वह बेहया हो जाता है। दीनता के वश उसका हृदय बुझ जाता है और आत्मसम्मान की रक्षा करने[३] की शक्ति से वह रहित हो जाता है। कुत्सित कर्म करते-करते सरकारी नौकरों में उदार विचार नही रह जाते। वह केवल पैसे के फेर में कष्ट बटोरता है, और अपने साधन बढाने की युक्ति मे कमीनेपन को बढा लेता है।' (२२३)

'जब देखो उसकी तृष्णाजलि बनी रहती है। स्वामी के पास जाने में कुलीन होते हुए भी अपराधी की भाँति थरथर कापता रहता है। चित्र मे लिखे फूल की तरह सरकारी नौकर बाहर से देखने मे सुन्दर लगते हुए भी फल देने मे ठनठन होता है[४]। बहुत कुछ ज्ञान मस्तिष्क मे भरा होने पर भी मौके पर उसके मुँह से अनजान की तरह बात नही फूटती। शक्ति होने पर भी काम के समय उसके हाथ कोढी की तरह भिंचे रह जाते है। अपने से बराबर दर्जे के व्यक्तियों को यदि तरक्की मिल जाती है[५] तो सरकारी नौकरी बिना आग के जलने लगता है, और यदि मातहत को उसके बराबर ओहदा मिल गया[६] तो साँस निकले बिना भी मानो मर जाता है। पद घटने से तिनके की तरह वे प्रतिष्ठा खो देते है। दुःख की वायु का झोंका उन्हें रात दिन दहकाता रहता है। राजभक्त होने पर भी हिस्सावाँट मे उन्हें कुछ नही मिलता। उनकी सब गर्मी हवा हो जाती है, पर भाई बन्धुओ को सताना नही छोडते। मान बिल्कुल रहता ही नही, फिर भी अपना पद छोडकर टस से मस नही होते। उनका गौरव घट जाता है, सत्त्व चला जाता है और वे अपने आपको बिल्कुल बेच डालते है[७]। राजसेवक अपनी वृत्ति का स्वय मालिक नही होता। उसका अन्तरात्मा सदा सोच-विचार के वशीभूत रहता है। खाट से उठते ही प्रणाम करने का उसका स्वभाव बन जाता है जैसे दग्धमुंड सम्प्रदाय के साधु करते है। घर के विदूषक की तरह रात दिन मटकना और दूसरों को हँसाना ऐसी ही उसकी चेष्टा रहती है। कभी-कभी तो सरकारी नौकरी

---

१ चित्र धनुष इवालीक गुणाध्यारोपणैकक्रियानित्यनम्रस्य निर्वाण तेजस, २२३।

२ सम्भवत यह राजमहल के छोटे कर्मचारियों की ओर सकेत है जो राजमहल मे फूलमाला नही पहन सकते थे (निर्माल्यवाहिन)।

३ दैन्यसंकोचितहृदयावकाशस्य इव अहोपुरुषकिया परिवर्जितस्य, २२३।

४ दर्शनीयस्यापि आलेख्यकुसुमस्य इव निष्फलजन्मन २२३।

५ समसमुत्कर्षेषु निरनिपच्यमानस्य, २२४।

६ नीचसमीकरणेषुनिरुच्छ्वासं म्रियमाणस्य २२४।

७ निसत्वस्यापि महामाँसविक्रय कुर्वत, २२४। श्मशान में जाकर महा-माँस बेचने की साधना करनेवाले को महासत्त्व होना चाहिए, किन्तु सरकारी नौकर निसत्त्वहोते हुए भी अपने शरीर का माँस विक्रय कर देता है।

अपने वंश को ही जलानेवाला कुलागार हो जाता है। एक मुट्ठी घास के लिये मूडी चलाने वाले बैल की तरह राजसेवक है। सिर्फ पेट भरना ही जिसका उद्देश्य है वह ऐसा मास का लोथडा है।' (२२४)

राज सेवा या सरकारी नौकरी मे लगे हुए लोगों के लिये बाण की फबतियाँ और फटकार अपने ढग की एक है। नौकरी करने वालों की मनोवृत्ति और कुकर्मों का सूक्ष्म विश्लेषण बाण ने किया है। सम्भव है तत्कालीन राजशास्त्र के लेखकों ने भी दफतरों में और राजदबार मे काम करनेवाले सरकारी कर्म-चारियों की मनोवृत्तियों और करतूतों का विवेचन किया हो और वहाँ से उक्त वर्णन का रग भरा गया हो। किन्तु इसमे सन्देह नही कि बाण स्वय भी अत्यन्त पैनी बुद्धि के व्यक्ति थे जो प्रत्येक विषय के अन्तर मे पैठ कर पूरी तरह उसका साक्षात्कार करते थे। उन्होंने निकट से राजकुल मे काम करने वालो को देखा-पहचाना था और उनके स्वभाव की विशेषताओ का अध्ययन किया था। नौकरी करके राजदरबार के ठाट-बाट मे बाण ने अपने व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता नही गँवाई। तटस्थ आलोचक की भाँति वे राजकुलों के और राजकर्मचारियो के दोषों की समीक्षा कर सके। उनका यह वाक्य ध्यान देने योग्य है—'मानधनी के लिये क्षण भर भी मानवोचित पौरुष का जीवन अच्छा, किन्तु झुककर त्रिलोकी का राज्य-भोग भी मनस्वी के लिये अच्छा नही (२२५)।'

यदि देव हमारे इस प्रणय को स्वीकार करेंगे तो प्राग्ज्योतिषेश्वर को कुछ ही दिनो में यहाँ आया हुआ जानें' यह कहकर हसवेग चुप हो गया और शीघ्र ही बाहर चला गया।

हर्ष ने भी वह रात कुमार से मिलने की उत्कठा मे बिताई। प्रातःकाल अपने प्रधान दूत के साथ अनेक प्रकार की वापिसी भेंटसामग्री (प्रतिप्राभृत प्रधान प्रतिदूताधिष्ठित, २२५) भेजते हुए हसवेग को बिदा किया। स्वय शत्रु पर चढाई करने के लिये सेना का प्रयाण उस दिन से बराबर जारी रक्खा।

एक दिन हर्ष ने लेखहारक के मुख से सुना कि राज्यवर्धन की सेना ने मालवराज की जिस सेना को जीत लिया था उस सबको साथ लेकर भडि आ रहा है और पास ही पहुँच गया है। इस समाचार ने भाई के शोक को फिर हरा कर दिया और उसका हृदय पिघल गया। सब काम-काज छोड कर वह निजमदिर मे राजकीय परिवार के साथ ठहरा रहा। और प्रतिहार ने सब नौकर-चाकरों को ताकीद कर दी कि बिल्कुल चुपचाप रहें और आहट न होने दें (प्रतिहार निवारण निभृत नि शब्द परिजने, २२५)। राजमहलों का यह नियम था कि जब शोक का समय होता या अन्य आवश्यकता होती, तो सब आज्ञाएँ केवल इशारो से दी जातीं और सब परिजन चुपचाप रह कर काम करते जिससे राजकुल मे बिल्कुल सन्नाटा रहे। प्रभाकरवर्धन की बीमारी के समय ऐसा ही किया गया था[१]। इस प्रकार के कार्य-वाहक इशारों का कोई समयाचार या दस्तूरुल अमल रहता होगा जिसके अनुसार सीखे हुए परिजन काम करते थे।

कुछ समय बाद भडि अकेला ही घोड़े पर सवार, कुछ कुलपुत्रों को साथ लिये राजद्वार पर आया और वही घोड़े से उतर कर मुँह लटकाए राजमंदिर में प्रविष्ट हुआ। उसकी छाती में शत्रु के बाणो के घाव थे जिससे ज्ञात होता था कि मालवराज के साथ कसकर युद्ध

१ अतिनिः शब्दे निभृतसज्ञा-निर्दिश्यमान-सकलकर्मणि १५५।

हुआ था। उसके बाल बढे हुए थे। शरीर पर केवल मंगलवलय का आभूषण बचा था, वह भी व्यायाम न करने से पतले पड़े हुए भुजदड से खिसक कर नीचे कलाई में आ गया था और दोला वलय की तरह झूल रहा था[1]। ताम्बूल मे अरुचि हो जाने से होठ की लाली कम हो गई थी। आँसुओं की झडी ऐसे लगी थी मानों मुख पर शोकपट ढका हो[2]। (चित्र ८६) उसकी ऐसी दीन दशा थी जैसे यूथपति के मरने पर वेगदंड या तरुण हाथी की हो जाती है (२२६)।

दूर से ही ढाड मार कर वह पैरों में गिर पडा। हर्ष उसे देखकर उठे और लड-खडाते पैरों से आगे बढ उसे उठाकर गले लगाया और स्वय भी देर तक फूट-फूट कर रोते रहे। जब शोक का वेग कम हुआ, तो लौटकर पहले की तरह निज आसन पर बैठ गए। पहले भंडि का मुँह धुलवाया और फिर अपना भी धोया। कुछ देर मे भाई की मृत्यु का वृत्तान्त पूछा। भंडि ने सब हाल कह सुनाया। राजा ने पूछा 'राज्यश्री की क्या गत हुई ? भंडि ने फिर कहा—'देव, राज्यवर्धन के स्वर्ग चले जाने पर जब गुप्त नाम के व्यक्ति ने कान्य-कुब्ज (कुशस्थल) पर अधिकार कर लिया, तो राज्यश्री भी पकडी गई, पर वह किसी तरह बन्धन से छूटकर परिवार के साथ विन्ध्याचल के जगल (विन्ध्याटवी)[3] में चली गई,—यह बात मैने लोगों से सुनी। उसे ढूंढने के लिये बहुत से आदमी भेजे गए है पर अभी तक कोई लौटकर नहीं आया है।' हर्ष ने स्वाभाविक उत्तेजना के साथ कहा—'औरों के ढूँढने से क्या ? जहाँ भी वह हो मैं स्वय और सब काम छोड कर जाऊंगा। तुम सेना लेकर गौड पर चढाई करो (२२६)।' यह कह उठकर स्नान भूमि में चले गऐ। भंडि ने हर्ष के कहने से बढ़े हुए केशों का क्षौर कराया और प्रतीहार-भवन[4] में स्नान किया। हर्ष ने उसके लिये वस्त्र, पुष्प, अंगराग और अलकार भेजकर अपना प्रसाद प्रकट किया और साथ ही भोजन किया, एवं वह दिन उसके साथ ही बिताया।

दूसरे दिन भंडि ने राजा के पास आकर निवेदन किया—'श्री राज्यवर्धन के भुजबल से मालवराज की जो सेना साज-सामान (परिबर्ह) के साथ जीती गई है उसे देव देखने

१ दूरीकृतव्याम शिथिल भुजदंडदोलायमान मंगलवलयैकशेषालंकृति, २२६। पहले कहा जा चुका है कि भंडि पुखराज का जडाऊ वलय पहनता था। वलय या अनन्त नामक आभूषण अपेक्षाकृत ढीला बनाया जाता था। शूद्रक के रत्नवलय को दोलायमान (खिसक ने वाला) कहा गया है (का० ७)।

२. शोक के समय मुह पर कपड़ा डाल लेने की प्रथा थी। इस प्रकार का पट मथुरा से प्राप्त बुद्ध के निर्वाण दृश्य मे विलाप करते हुए एक राजा के मुह पर दिखाया गया है (मथुरा सग्रहालय, एच ८ मर्त्ति)।

३ प्राचीन भूगोल मे विन्ध्याटवी उस घने जगल की सज्ञा थी जो विन्ध्य पर्वत के उत्तर चम्बल और बेतवा के बीच मे पड़ता है। महाभारत वन पर्व में इसे घोर अटवी (६१। १८), दारुण अटवी (६१। १०) महारण्य (६१। २४) महाघोर वन (६१। २५) कहा गया है, जिसमे एक ऊँचा पहाड (६१। ३८) भी था। यहीं के राजा आटविक कहलाते थे और यही प्रदेश अटवीराज्य था। बाण ने भी इस विन्ध्याटवी का आगे विस्तृत वर्णन किया है। वह तब आटविक सामन्त व्याघ्रकेतु के अधिकार में थी।

४. राजद्वार के भीतर प्रतीहार-भवन की स्थिति के बारे मे पृ० १७१ पर लिखा जा चुका है।

की कृपा करें।' राजा के स्वीकार करने पर उसने यह सब सामान दिखाया, जैसे अनेक हाथी, सुनहली चौरियों से सजे घोड़े, चमचम करते आभूषण, शुद्ध मोतियों से पोहे गए तारहार[१], चामर (बालव्यजन), सुनहले डडे वाला श्वेत छत्र, वारविलासिनी स्त्रियाँ, सिहासन शयनासन आदि राज्य का सामान, पैरों मे लोहे की बेडी पड़े हुए मालवा के राजा लोग, कोष से भरे हुए कलसे जिनपर ब्यौरे की पट्टियाँ लगी थी और जिनके गले मे आभूषणों की बनी मालाएँ पड़ीं थी[२]।

लूट के सामान की इस गिनती मे कही हुई वारविलासिनी स्त्रियाँ वे होनी चाहिएँ जो राजदरबार या राजकुल मे नियुक्त रहती थी जिनका वर्णन बाण ने हर्ष के दरबार के प्रसग मे (७५) किया है। विजित मालव राजलोक के अन्तर्गत वहाँ के राजा, राजकुमार, राज-परिवार के व्यक्ति, महासामन्त, सामन्त आदि लोग समझे जाने चाहिएँ[३]। मध्यकाल की यह प्रथा जान पड़ती है कि युद्ध मे हार जाने पर ये सब लोग विजेता के सम्मुख पेश किए जाते थे और वहाँ से उनके भाग्य का निपटारा होता था।

उस सब सामान को देख कर हर्ष ने विभिन्न अधिकारी अध्यक्षों को उसे विधिपूर्वक स्वीकार करने की आज्ञा दी[४]। दूसरे दिन उसने राज्यश्री के ढूँढने के लिये प्रस्थान किया और कुछ ही पडावों के बाद विन्ध्याटवी मे पहुँच गया।

विन्ध्याटवी, जैसा ऊपर कहा गया है, बहुत बडा वन था। उसके शुरू में ही एक वन गाँव (वन ग्रामक) या जगल को साफ करके बनाई हुई बस्ती थी। बाण ने इसका विस्तृत वर्णन किया है (२२७-२३०) जो हर्षचरित का विशिष्ट स्थल माना जा सकता है। संस्कृत साहित्य मे तो यह वर्णन अपने ढग का एक ही है। 'जगली देहात की आदिम कालीन रहन-सहन का इसमे स्पष्ट चित्र है।' ऐसे स्थान के आदमियों को हम शिकार और किसानी के बीच का जीवन व्यतीत करते हुए पाते है।

इस लम्बे वर्णन की रूपरेखा इस प्रकार है। गाँव के चारों ओर वन प्रदेश फैले थे। खेत बहुत विरल थे। किसान हल-बैल के विना कुदाल से धरती गोड कर बीज

---

१. बढिया मोतियो के हार गुप्त युग में तार हार कहलाते थे। कालिदास और बाण ने उनका उल्लेख किया है। अमरकोष के अनुसार मुक्ताशुद्धौ च तारः स्यात् (३। १६६)।

२. ससख्यालेख्यपत्रान्, सालकारापीडपीडान् कोषकलशान् (२२७)।

३ अपराजितपृच्छा (१२ वी शती) से ज्ञात होता है कि महाराजाधिराज के राज्य मे ४ महामांडलिक, १२ माडलिक, १६ महासामन्त और ३२ सामन्त होते थे (अ ७८। ३२-३४)। सामन्तो से नीचे उतर कर ४६० चौरासी के चौधरी (चतुरशिक) और उसके बाद अन्य सब राजपुत्र या राजपूत कहलाते थे। मांडलिक, महासामन्त और राजपुत्र, शासन की ये इकाइयां बाण के युग से पूर्व अस्तित्व मे आ चुकी थी। विजेता राजा के देश जीत कर राजधानी मे प्रवेश के समय ये प्रतिनिधि उसके सम्मुख उपस्थित होते थे।

४ यथाधिकारमादिक्षदध्यक्षान् (२२७)। इससे ज्ञात होता है कि हर्ष के शासन प्रबन्ध में भी विभिन्न विभागाधिपति अध्यक्ष कहलाते थे। यह इस अर्थ में पुराना शब्द था जो अष्टाध्यायी और अर्थशास्त्र मे आया है।

छितरा कर कुछ बो लेते थे। जंगली जानवरों का उपद्रव होता रहता था। जगली रास्तों पर पानी की प्याउओं का अच्छा प्रबन्ध था। पास-पडोस के लोग कोयला फूकने और लकडी काटने का काम करते थे। काफी लोग छोटे-बडे जानवरों के शिकार से पेट पालते थे। पुरुष जगल में होने वाले विविध सामान के बोझ लेकर, और स्त्रियाँ जगली फल बटोर कर इधर-उधर बेच आती थीं। थोडे से स्थान में हल-बैल की खेती भी थी। वहाँ किसानी का धधा करने वाले किसान बजर धरती तोडकर उसमे खाद डाल कर खेतों को उपजाऊ बना रहे थे। गन्ने के बड़े-बड़े बाडे यहाँ की विशेषता थी। जगली बस्ती के घरो के चारों ओर काँटेदार बाडे थी। जिनके भीतर लोग रहते और अपने पशु बाँधते थे, पर फिर भी जंगली जानवरों द्वारा वारदातें होती रहती थीं। घरों के भीतर गृहस्थी चलाने के लिये बहुत तरह का जगल मे होने वाला सामान, फल फूल-लकडी आदि बटोर कर रख लिया गया था। अटवी-कुटुम्बियों के उसी गाँव में हर्ष ने भी अपना पडाव किया।

अब बाण के प्रस्तुत किये हुए चल चित्र का निकट से क्रम वार अध्ययन करना चाहिए।

१ बन बस्ती के चारो ओर के वन प्रदेश दूर से ही उसका परिचय दे रहे थे। लोग साठी चावल का भूसा जला कर धुआ करने के आदी थे। कभी-कभी ऐसा होता कि उसकी आग फैल कर जगली धान्य के खलिहान तक पहुँच जाती जिससे वे धुमैले लगते थे। कही पुराने बीहड बरगदों के चारों ओर सूखी टहनियों के अबार लगाकर गायों का बाडा बना लिया गया था। कही बघेरों ने बछडों पर वार किया था। उससे खीझकर लोगों ने बाघ को फँसाने के लिये जाल (व्याघ्रयन्त्र) लगा रक्खा था। घूम कर गश्त लगाने वाले वनपालों ने अनधिकृत लकडी काटने वाले ग्रामीण लकडहारों के कुठार जबरदस्ती छीन लिए थे[1]। एक जगह पेडों के घने झुरमुट में चामुडा देवी का मंडप बना हुआ था[2]।

२ बन ग्राम के चारों ओर घोर जगल के सिवाय और कुछ न था। इसलिए लोग कुटुम्ब का पेट पालने के लिये व्याकुल रहते थे। उसी चिन्ता मे दुर्बल किसान केवल कुदारी से गोडकर पडती धरती तोडते और खेत के टुकड़े (खडलक) निकाल लेते[3]। खुली जगह के अभाव मे खेत छोटे (अल्पावकाश) और दूर-दूर पर स्थित (विरलविरलैः) थे। खेती के लिये बैल न थे। भूमि कास से भरी हुई थी। काली मिट्टी की पटपड तह

१. कश्मीर प्रति में अयन्त्रित वनपाल पाठ है, वही ठीक है। यन्त्रित = एक स्थान में नियत, अयन्त्रित = गश्त करनेवाले। पर = गैर, जिन्हें जंगल से लकडी काटने की नियमित आज्ञा प्राप्त न थी (२२७)।

२ चामुडा विन्ध्याचल प्रदेश की सबसे बड़ी देवी थी। बाण ने कादम्बरी में उसके मदिर का विस्तृत वर्णन किया है। कालान्तर में चामुडा की पूजा उत्तरी भारत के गाँव-गाँव में फैल गई। यह शबरनिषादसंस्कृति की रक्त-बलि चाहने वाली देवी थी।

३ भज्यमान भूरि खिल-क्षेत्र-खडलकम् (२२७)। इसी वाक्य के एक अश उच्चा-भाग भाषितेन (निर्णयसागर संस्करण) का कश्मीरी पाठ 'उच्छभागभाषितेन' है। संभव है यह उञ्छ भाग भाषितेन का अपपाठ हो। तब इसका यह अर्थ होगा कि किसान जंगल में कुदाली से जो नई धरती तोड़ रहे थे उसमें राजग्राह्य भाग रूप में सब धान्य दे देने के बाद केवल उञ्छ या सिल्ला किसानों को मिलता था। 'उच्चभाग भाषितेन' पाठ ठीक माना जाय तो अर्थ ऐसा होगा–किसान जोर जोर से आवाज करते हुए धरती तोड़ रहे थे।

लोहे के तवे की तरह कड़ी थी। कुछ भी पैदा करने लिये किसानो को छाती फाड़ कर कुदाली भाँजनी पडती थी, वही उनका सहारा था। जगह-जगह पेड़ो के कटने से जो टूठ बचे थे वे फिर पत्तों का घना फुटाव लेने लगे थे। भूमि पर साँवा और छुईमुई (अलम्बुषा) का ऐसा घना जगल छाया था और तालमखाने (कोकिलाक्ष) के क्षुप पैरो को ऐसे जकड़ लेते थे कि बोई हुई क्यारियों तक पहुँचना मुश्किल था, उन्हे जोतना-बोना तो और भी कठिन था। आने जाने वाले कम थे, इसलिये पगडडियाँ भी साफ दिखाई न पड़ती थीं। खेतो के पास ऊँचे मचान बँधे हुए कह रहे थे कि वहाँ जगली जानवर लगते थे।

३ जगल और बस्ती के मार्गों पर प्याउओं का विशेष प्रबन्ध था। ये प्याऊ क्या थी पथिको के ठहरने-आराम करने के विश्राम-गृह थे। पेड़ो के झुरमुट देखकर प्याऊ के स्थान बना लिए गए थे। बटोही वहाँ आते और नए पल्लवो की टहनी तोड कर पैरों की धूल झाडकर छाया मे बैठते थे। वही पर छोटी कुइया खोदकर उसे नागफनी से घेर दिया गया था और दूर से पहचान कराने के लिये जगली साल के फूलों के गुच्छे टाग दिये गए थे। कुइया के पास ही प्याऊ की मड़ैया घने घास-फूस से छा ली गई थी। बटोहियों ने सत्तू खाकर जो शकोरे फेंक दिए थे उनपर जगल की बड़ी नीली मक्खियाँ भिनभिना रही थी। पास में ही राहगीरों ने जामुन खाकर गुठलियाँ डाल दी थी। कही कदम्बों के फूलों से लदी हुई टहनियाँ तोड़कर धूल मे फेंक दी गई थी।

इन प्रपाओं के भीतर जल का प्रबन्ध बड़े शौक से किया गया था। घडौचियों पर प्यास बुझाने के लिये छोटी लम्बोतरी मिट्टी की गगरियाँ रक्खी हुई थी। उनके ऊपर काँटे जैसी बुदकियो की सजावट बनी थी[१] (चित्र ८७)। बालू की बनी हुई कलसियों मे से पानी रिसकर गीली पेंदी से टपकता हुआ पथिकों की थकान मिटाता था[२]। सिरवाल नामक गीली घास में लपेटे हुए अलिजर या बड़े माटो का जल खूब ठंडा हो गया था[३]। जल रीता करके जल

१ यहाँ बाण ने कर्करी, कलशी, अलिजर, उदकुम्भ और घट इन पाँच मिट्टी के पात्रों का उल्लेख किया है जो एक दूसरे से भिन्न होने चाहिएँ। कर्करी को कण्टकित कहा है। अहिच्छत्रा और हस्तिनापुर की खुदाई मे मिले कुछ गुप्तकालीन पात्रों को देखने से 'कण्टकित' विशेषण की सार्थकता समझ मे आती है। उनके बाहर की ओर सारी जमीन पर कटहल के फल पर उठे काँटों जैसा अलकरण बना है जो यहाँ चित्र में दिखाया गया है। प्रभाकर वर्धन के धवलगृह मे भी मचक पर रक्खी हुई पानी से भरी बलुआ कर्करी का उल्लेख हुआ है (१५६), वही यहाँ अभिप्रेत है।

२. कलसी कर्करी से कुछ बड़ी ज्ञात होती है। इनमे पीने का पानी नहीं भरा था, बल्कि ये पौशाला में लटकाई रहती थी और उनसे रिस रिस कर टपकता हुआ पानी पथिकों के सिर आदि अगो की थकान मिटाता था।

३ अलिंजर महाकुम्भ या बडा माट था। बाण ने इसी का दूसरा नाम 'गोल' दिया है (१५६)। धवलगृह के वर्णन में गोलों को सरस शेवल में लपेटकर टांगा हुआ कहा गया है (सरसशेवल वलयित गलद्गोलयन्त्रके)। आज भी बड़े माटों को जिनमे कई घडे पानी आता है पच्छिमी बोली में गोल कहते हैं। उनके चारों ओर बालू बिछाकर गीली सिरवाल घास लपेट देते है। इन्हीं में से ठडा जल निकालकर छोटे पात्र में करके पिलाया जाता है।

कुम्भों में लाल शर्करा भरकर प्याऊ में रक्खी गई थी और (शरबत के लिये) थोडी-थोडी निकाली जा रही थी। उससे जो ठडक उत्पन्न होती थी उससे ऐसा ज्ञात होता है मानों ग्रीष्म में शिशिर ऋतु आगई हो[1]। प्याऊ में कुछ घड़े ऐसे थे जिनके मुँह गेहूँ की नालियों या तिनकों के ढक्कन (कट) से ढके थे और उनके ऊपर ग्रीष्म में जल को सुवासित करने के लिये पाटल के फूलों की कलियाँ रक्खी गई थी (घटमुखघटित कटहार-पाटलपुष्पपुटानाम्, २२८)[2]। भीतर थूनियों के सिरों पर बालसहकार के फलों की डालें झूल रही थी और हरे पत्तों पर पानी का छींटा देकर उनके झुराते हुए फलो को ताजा रक्खा जा रहा था[3]। झुंड के झुड यात्री प्याऊ में आकर विश्राम करते और पानी पी कर चले जाते थे। एक ओर अटवी की प्रवेश-प्रपाओं से आने वाली ठडक से गर्मी कुछ कम हो रही थी। दूसरी ओर कोयला फूंकने के लिये लकडी के ढेरों मे आग लगाकर अगार बनाने वाले लुहार फिर उतनी ही तपन पैदा कर रहे थे (अगारीयदारुसंग्रह दाहिभिः व्योकारैः, २२८)।

४ पडोसी प्रदेश में रहने वाले निकटवासी कुणबी लोग[4] सब ओर से जगल में काष्ठ सग्रह के लिये आ रहे थे। वे अपने घरो मे खाने का आटा-सीधा आदि सामान छिपाकर (स्थगित) रख आए थे और बुडढों को रखवाली के लिये बैठा आए थे। लकडी काटने के लिये कुल्हाडा भाँजने की जो कडी मेहनत थी उसे बरदाश्त करने के लिये अपने शरीर पर उन्होंने आवश्यक तेल आदि की मालिश कर रक्खी थी। उनके कन्धों पर भारी कुठार

१. यों भी पाटल शर्करा या लाल शक्कर जाड़े में ही बनाई और खाई जाती है। पाटल शर्करा का अर्थ कावेल ने लाल ककर किया है और लिखा है कि उन्हें घड़े के ठंडे पानी में बोर कर बाहर निकालने से हवा ठंडी की जा रही थी। यह अर्थ घटता नहीं। वस्तुत बाण ने स्वय पाटल शर्करा (लाल शक्कर) और कर्क शर्करा (सफेद शक्कर) इन दोनो शब्दों का प्रयोग किया है (१५६)। वही अर्थ यहाँ अभिप्रेत है।

२. कश्मीरी प्रतियों का पाठ और निर्णयसागरीय सस्करण का पाठ भी 'कटहार' है और वही शुद्ध है, यद्यपि कठिन पाठ है। वस्तुत बाण स्वय लिख चुके हैं कि ग्रीष्म ऋतु में टटके पाटल पुष्पों की तेज सुगन्धि से पानीय जल सुवासित किया जाता था (अभिनवपट्ट पाटलामोद सुरभिपरिमल जल जनस्य पातुमभदभिलाषो दिवस-कर संतापात् ४६)। कट का अर्थ है गेहूँ की नाली या उससे बुनी हुई चटाई या पर्दा। नाली बुनकर ढक्कन बनाने का रिवाज अभी तक है। हार का अर्थ यहाँ कठाभरण या माला न होकर, ले जाने वाला, रखने वाला (हरतीति हारः) ठीक है। पाटल पुष्प का पुट=तुरन्त की खिली कली या अभिनव पट्ट पाटल। पाटल पुष्प को सडने से बचाने के लिये जल के भीतर न डाल कर जल पर तैरते हुए तृण के ढक्कन पर रखकर जल को सुवासित करने की विधि की ओर बाण का सकेत है।

३ शीकरपुलकितपल्लवपूलीपाल्यमान-शोष्यसरसशिशुसहकारफलजूटीजटिल स्थाणूनाम् (२२८)।

४ प्रातिवेश्यविषयवासिना नैकटिक कुटुम्बिकलोकेन। कुटुम्बिक का अर्थ कुटुम्बी भी हो सकता है (२२७) पर बाण के वर्णन में यह पारिभाषिक ज्ञात होता है जिसका अर्थ कुणबी जाति था।

रक्खे थे और गले मे कलेवे की पोटली (प्रातराशपुट) बँधी लटक रही थी। चोरों के डर से बिचारों ने फटे कपड़े पहन रक्खे थे। उनके गले मे काले बेंत की तिलडी माला लपेटी हुई थी और उसी से पानी की लम्बोतरी घडियाँ, जिनके मुँह मे पत्तों की डाट लगी थी, लटकी हुई थी[१]। लकडी लादने के लिये उनके आगे-आगे बैलों की जोडी चल रही थी।

५ जगल मे तरह-तरह के शिकारी थे। खूँखार बड़े जानवरों (श्वापद) का शिकार करने वाले व्याधे वन ग्राम के बाहर वाले जगल मे विचर रहे थे। उनके हाथ मे पशुओं की नसो की डोरियाँ, जाल और फन्दे थे[२]। बन के हिस्र जानवरों (साउजों) के शिकार में ढुकने के लिये टट्टियाँ (व्यवधान) खूब मोटी लगाई गई थी। शिकारी कूटपाशों की गेंडुरी बनाकर साथ मे लिए थे[३]। दूसरी तरह के बहेलिये चिड़ियाँ फँसाने वाले शाकुनिक थे जो कधे पर वीतसक जाल या डला लटकाए थे जो उनके बालपाशिक आभूषण से उलझ-उलझ जाता था। उनके हाथों मे बाज (ग्राहक), तीतर (क्रकर) और भुजंगा (कपिंजल) आदि के पिजड़े थे। वे चिडियों की टोह मे गाँव के आस-पास ही मडरा रहे थे। उनके अलावा चिड़ीमारों के लड़के या छोटे चिरहटे (पाशिक-शिशु) बेलों पर लासा लगा कर गौरैया पकड़ने के ब्यौंत मे इधर से उधर फुदक रहे थे। चिडियों के शिकार के शौकीन नवयुवक शिकारी कुत्तों को जो बीच-बीच में झाड़ी में से उडते हुए तीतरों की फडफड़ाहट से बेचैन हो उठते थे पुचकार रहे थे।

६. गाँव के लोग वन की पैदावार के बोझ सिर पर उठाए जा रहे थे। कोई शीधु (सेहुँड) की छाल का गट्ठा लिए था। किसी के पास धाय (धातकी) के[४] ताजा लाल

---

१ 'पत्रवीटावृतमुखै पीतकुटै.' का पाठान्तर 'पत्र बीटक पिहित मुखैर्वोटकुटै.' भी है। पीतकुटै: पाठ अशुद्ध है। पीतकुटै पाठ अर्थ की दृष्टि से तो शुद्ध है, पर मूलपाठ वोटकुटै जान पड़ता है। यह कठिन पाठ था जिसे पीत कुटै. द्वारा सरल बनाया गया। बोट हिन्दी में अभी तक चालू शब्द है जिसका अर्थ लम्बोतरा कमचौडे मुँह का मिट्टी का बर्तन है। बोट कुट = लम्बोतरा कम चौड़े मुँह का घडा। इस प्रकार की बोट अजन्ता गुफा १ में चित्रित है [औधकृत अजन्ता, फलक ३९, 'बुद्ध की उपासना करती हुई स्त्रियाँ' चित्र में ऊपर दीवालगिरी में लम्बोतरा पात्र 'वोटकुट' है।] (चित्र ८८)।

२. गृहीत मृगतन्तुतंत्री-जालवलय-वागुरै। मृगततु तंत्री = पशुओ के तन्तु या स्नायुओ की बनी तन्त्री या डोरी। मिलाइए पृ० २५५ पर जीवबन्धनपाशतंत्रीतन्तव।

३ श्वापद-व्यधन-व्यवधानबहलीसमारोपित-कुटीकृतकूटपाशै, इस समास में कई पद पारिभाषिक और गूढ हैं। श्वापद = हिस्रजन्तु, व्यधन = भोकना, छेदना, अथवा शिकार। व्यवधान का अर्थ पर्दा है, यहाँ उसका ठीक अर्थ वे टट्टियाँ हैं जिन्हें शिकारी ढुकने के लिये रखते हैं। बहल का अर्थ मोटा या घना, बहलीसमारोपित मोटी या घनी लगाई हुई। तात्पर्य यह कि बडे जानवर के शिकार के लिये मोटी ढुकने की टाटी लगाई थी और जमीन में मजबूत खूटियों से गाड़ेजाने वाले जाल लगे थे। हिरन आदि के लिये मामूली जाल या रस्सियो के फन्दे थे।

४ धातकी = गेरु एरग के (धातु त्विष्) धाय के फूल जिनसे चमड़े का कस्सा बनाते हैं और ओषधि के काम लाते हैं।

फूलों की बोरियाँ थीं। कई लोग रुई, अलसी, सन के मुट्ठों का बोझ लिए थे[1]। शहद, मोम, मोरके पिच्छ, खस (लामज्जक), कत्थे की लकडी, कूठ[2] और लोध के भार सिरोंपर उठाए हुए बोझिए जा रहे थे।[3]

७. जगली फल बीनकर उन्हे बेचने की चिन्ता में जल्द-जल्दी डग रखती हुई गॅवई स्त्रियाँ (ग्रामेयिका) आस-पास के गॉवों को जा रही थी।

८ जगल के कुछ हिस्से मे झूम की खेती थी जहाँ सम्भवतः आदिम वासी हल के विना सिर्फ कुदाली से गोडते थे। लेकिन कुछ हल-बैल की खेती करने वाले किसान भी थे। उनके पास तगडे बैलो की जोटें थी। वे पुराने खाद–कूडे के ढेर उन लढिया गाडियों पर जिनके डगमग पहिए घिसटते हुए चू-चूं कर रहे थे और कूडे-धूल से लथपथ जिनके बैलवान बैलो को ललकार रहे थे, लादकर उन रुखे खेतो मे ले जाकर डाल रहे थे जिनकी उपजाऊ शक्ति कम होगई थी[4]।

९. गन्नों के खूब लहलहाते हुए चौडे विस्रास वाले पौधो से भरे हुए ईख के बाडे गाँव की हरियाली बढा रहे थे। खेतों के रखवाले जब गन्नों में छिपे हुए हिरनों को ताक कर बैलों के हाँकने का डडा उनकी ओर चलाते तो हिरन छलाग मार कर ऊँची बाँसो की बाड के उस पार निकल जाते थे। जगली भैंसो के लम्बे हड्ड खेत में बिजूके की तरह गाडे गए थे, उनसे डरे हुए खरहे गन्ने के ऊँचे अकुरों को ही कुतर डालते थे[5]।

१०. वन ग्राम के घर एक दूसरे से काफी फासले पर (अति विप्रकृष्टान्तर) थे। उनके चारों ओर मरकत के जैसे चिकने हरे रगवाली सेहुँड (स्नुहा) की बाड लगी थी। धनुष बनाने के योग्य कडे पतले बाँसों की बॅसवारी पास मे उग रही थी। करजुए के काँटेदार वृक्षों की पक्ति में रास्ता बनाकर घुसना मुश्किल था। एरड, बचा, वगक (बैंगन) तुलसी, सूरण कन्द, सोंहिजन (शिग्रु), गठिवन (ग्रन्थि पर्णी), गरबेरुआ (गवेधुक) और मरुआ धान (गर्मुत्) के गुल्म घरो के साथ लगी हुई बारियों (छोटी बगीचियों) मे भरे हुए थे[6]। ऊँची बल्लियों पर चढाई हुई लौकी की बेले फैलकर छाया दे रही थी। बेरी के गोल मडपों के नीचे खैर के खूँटे गाडकर बछडे बाँध दिए गए थे[7]। मुर्गो की

---

१ पिचव्य = रुई। अतसीगणपट्टमूलक की जगह अतसी-शणपूलक भी पाठ है।

२ कुष्ठ = कूट। एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ सुगन्धि और औषधि के काम आती है। भारतवर्ष का कूठ का व्यापार प्राचीन काल मे प्रसिद्ध था।

३ बाण ने तीन प्रकार के बोझो के लिये तीन शब्द प्रयुक्त किए है—सभार = गाड़ी का बोझा, भार = सिर का बोझा, भारक = जानवर पर लदा हुआ बोझा।

४ युक्तशूरशकुरशाक्वराणां पुराणपांसूत्किरकरीषकूटवाहिनीना धूर्गतधूलिधूसरसैरिभ सरोषस्वरसायामाणानां सक्रीडच्चटुलचक्रचीत्कारिणीनां शकटश्रेणीना सपातै संपाद्यमान-दुर्बलोर्वीविरूक्ष क्षेत्रसस्कारम् (२२९)।

५ शृंग पाठ अशुद्ध है, कश्मीरी पाठ शुंग है।

६ उरुबक = अरंड। वंगक = कोई साग (शंकर, शिवदत्तकृत शिवकोष के अनुसार बैंगन)। सुरस = तुलसी। सूरण = जिमीकंद। शिग्रु = सोहिजन (शोभाजंन)। गवेधुका = इसे गरबेरुआ या गंडहेरुआ भी कहते है, इसका चावल खाया जाता है।

७ परिमडलबदरीमडपकतल-निखात खदिर कील बद्धवत्सरूपै. (२२९)। कील = खूंटा। वत्सरूप = वच्छरूअ = बाछरू। रूप = पशु।

कुकुड़ूकूं से पहचान मिलती थी कि घर कहाँ-कहाँ बसे है। आँगन मे लगे अगस्त्य वृक्ष के नीचे चिडियो को चुग्गा खिलाने और पानी पिलाने[१] की हौदियाँ बनी हुई थी और लाल-लाल बेरों की चादर सी बिछी थी। घरों मे दीवारे बाँस के फट्टे, नरकुल और सरकडों को जोड कर बना ली गई थी[२]। कोयले के ढेरों पर बबइ (बल्बज) घास से मँडवे छाए थे जिन पर पलाश के फूल और गोरोचना की सजावट थी। उन घरों में चतुर गृहस्थिनो ने कई तरह की काम की चीजे बटोर कर रख छोडी थी, जैसे सेमल की रुई, नलशालि[३], कमल की जड (कमल ककडी, शालूक), खडशर्करा, कमल के बीज (मखाने), बॉस, तड्डुल, और तमाल के बीज। चटाइयो पर गम्भीरी[४] के ढेर (जड, पत्ती फल आदि) सूख रहे थे जो धूल पड़ने से कुछ मटमैले लग रहे थे। खिरनी (राजादन) और मैनफल (मदन फल) सुखाकर रक्खे गए थे। महुए का आसव और चुआया हुआ मद्य प्रायः हर घर मे मौजूद था। प्रत्येक घर मे कुसुम्भ, कुम्भ और गडकुसूल भी थे[५]। अटवी कुटुम्बियों के उन घरों में रवाँस (राज माष), खीरा (त्रपुष), ककडी, कोहडा और लौकियों के बीजों से बेले चल रही थी। घरों मे बनविलाव, नेवले, मालुधान और शालिजात (अज्ञातवनपशु) के बच्चे पले हुए थे। इस प्रकार के वनग्राम को देखकर हर्ष का मन प्रसन्न हुआ और उसने वही बास किया (२३०)।

---

१ पक्षिपूपिकावापिका से पहले कश्मीरी पाठ में क्षिप्र शब्द है, जिसका पाठ क्षिप्त भी हो सकता है—(कणे)।

२ वेणुपोट = बॉस के चिरे हुए फट्टे। पोट = शकल (शंकर)।

३ नल-शालि शालिभेद (शकर)। सम्भव है नलशालि का अर्थ नरसल हो जिसे नरकुल भी कहते है।

४ काश्मर्य = गम्भारी (Gmelina arborea) एक बड़ा पेड़ जिसकी जड़ औषधि या रसायन मे काम आती है। इसकी गिनती दशमूल मे की जाती है। पत्ती मूत्ररोग मे और फल ज्वरौषधि मे काम आते है।

५ कुसुम्भ को कुसुम्भ का फूल मानकर टीकाकार अर्थ स्पष्ट नही कर सके। वस्तुत यहाँ कुसुम्भ का अर्थ जल का छोटा पात्र है। दे० मानिअर विलियम्स् कृत सस्कृत कोश, कुसुम्भ = The water pot of the student and sanyasin।) कुम्भ = धान्य रखने का माट (तुलना कीजिए, कुसूल धान्य को वा स्यात् कुम्भीधान्यक एव वा, मनु) गण्ड-कुसूल, यह शब्द महत्त्व पूर्ण है। करीब दो ढाई फीट व्यास की छ इंची ऊँची मिट्टी की चकरिओ या मॉडलो को ऊपर नीचे रखकर गण्डकुसूल बनाया जाता था। अहिच्छत्रा के देहातो मे पूछने पर ज्ञात हुआ कि ये अभी तक बरते जाते है, और 'गॉड' कहलाते हैं, जैसे बगाल मे उन्हे मडल से माडल कहा जाता है। अगरेजी मे इन्हें ring-wells कहा गया है। अहिच्छत्रा, हस्तिनापुर, राजघाट आदि प्राय सभी प्राचीन स्थानो की खुदाई मे इस प्रकार के गडकुसूल पाए गए है। पकाई मिट्टी की इन चकरियो का प्रयोग धान्यकुसूल, अस्थायी जलकूप, और सडास गूथकूप' इन तीनो कामो के लिये गृहवास्त में होता था। (चित्र ८९)।

अठवाँ उच्छ्वास

वन ग्राम में रात बिताकर हर्ष ने दूसरे दिन विन्ध्याटवी मे प्रवेश किया और बहुत दिनों तक उसमे इधर से उधर घूमता रहा (आट च तस्यामितश्चेतश्च सुबहून् दिवसान्), पर राज्यश्री का कुछ समाचार न मिला। एक दिन जब वह व्याकुलता से भटक रहा था, आटविक सामन्त शरभकेतु का पुत्र व्याघ्रकेतु एक शबरयुवक को साथ लेकर हर्ष से मिलने आया। अटवी या जगल प्रदेश के जो राजा थे वे आटविक सामन्त कहलाते थे। समुद्रगुप्त ने अपने प्रयागस्तम्भ लेख में लिखा है कि उसने सकल आटविक राजाओ को अपना परिचारक बना लिया था (परिचारकीकृत सर्वाटविकराजस्य)। इसकी राजनीतिक व्याख्या यह ज्ञात होती है कि आटविक राजाओ का पद सामन्त जैसा माना गया था, और जैसे अन्य सामन्त दरबार के समय सेवाचामरग्रहण, यष्टिग्रहण आदि सेवाएँ बजाते थे, वैसे ही आटविक राजा भी उस पद पर नियुक्त होते थे। समुद्रगुप्त के लेख से यह भी विदित होता है कि अटवी राज्य और महाकान्तार ये दोनो भौगोलिक प्रदेश थे। भारतीय मानचित्र पर इनकी पहचान इस प्रकार जान पड़ती है। पश्चिम में चम्बल से लेकर सिन्ध-बेतवा-केन के मध्यवर्ती प्रदेश को शामिल करके पूरब मे शोण तक आटविक राज्यो का सिलसिला फैला था। उन्ही के भौगोलिक उत्तराधिकारी अभी कल तक बुदेलखड और बघेलखड के छोटे छोटे रजवाड़े थे। इसके दक्षिण में घने जगलों की जो चौड़ी मेखला है वही महाकान्तार का प्रदेश होना चाहिए। इसका पश्चिमी भाग दण्डकवन और पूरबी महाकान्तर कहलाता था। ये भौगोलिक नाम हर्ष के समय में भी प्रचलित थे। विन्ध्याचल के उत्तर मे आटविक राज्य था और उससे दक्षिण में दण्डकवन-महाकान्तार का विस्तार था।

शबर युवक का नाम निर्घात था। वह समस्त विन्ध्याचल के स्वामी और सब शबर-बसतियो के नेता शबर सेनापति भूकम्प का भान्जा था। विन्ध्याचल के जंगल के पत्ते-पत्ते से वह परिचित था, भूमि की तो बात ही क्या (२३२-२३३)। वह शबर-युवक चलता-फिरता काला पहाड़ (अंजनशिलाच्छेदमिव चलन्तम्) (२३२) और खराद पर उतारा हुआ लोहे का खम्भा था (यन्त्रोल्लिखितमश्मसार स्तम्भमिव, २३२)। यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है क्योकि बाण से लगभग दो ही शती पूर्व मेहरौली की लोहे की लाट बन चुकी थी। ढलाई के बाद उस तरह की लाट खराद पर चढा कर गोल और साफ की जाती होगी यही 'यन्त्रोल्लिखित' पद से सूचित होता है। निर्घात के पक्ष मे भी यन्त्रोल्लिखित विशेषण सार्थक था। उसके शरीर का मध्यभाग इस प्रकार गोल था मानो खराद पर उतारा गया हो (प्रथमयौवनोल्लिख्यमानमध्यभाग, २३२)। कालिदास ने भी चौड़ी छाती के नीचे गोल कटि प्रदेश के लिये खराद पर उल्लिखित होने की कल्पना है (रघुवश ६।३२)। यह गुप्त काल के शारीरिक सौन्दर्य का आदर्श था और शिल्पगत मूर्तियो मे चरितार्थ पाया जाता है।

बाण ने शबरयुवक का अत्यन्त सजीव चित्र खीचा है। एक समय शबर या सौर जाति विन्ध्याचल के जगलो मे खूब छाई हुई थी। यह सारा प्रदेश शबरो के अधीन था।

महाकोसल और कलिंग प्रदेश तक उनका विस्तार था। अजन्ता की पहली गुफा के द्रविड राज और नागराज दृश्य में नागराज के पीछे तलवार लिये हुए जो व्यक्ति खड़ा है वह शबर ही है। 'उसके ऊँचे माथे के चारों ओर काले केशो का घेरा-सा खिचा हुआ था। उसकी नाक चपटी और बीच मे नीची थी, ठुड्डी मोटी और छोटी थी, अधर चिपटा था, गाल की हड्डी अधिक उभरी हुई थी, और जबड़े चोड़े थे।' ये सब लक्षण अजन्ता के चित्र मे स्पष्ट दिखाए गए है (औधकृत अजन्ता, फलक ३३)। उसकी तनी भौहो के बीच मे त्रिशाख (त्रिशूल) सा बना था। यह लक्षण भी चित्र मे साक्षात् उपलब्ध है। (चित्र ६०)

उसके कान मे सुग्गे का हरा पङ्ख खोसा हुआ था। नीचे पाली मे वह कच्चे शीशे का बाला पहने था[१]। काचर काच का उल्लेख भैरवाचार्य के वर्णन मे भी पहले आ चुका है (१०३)। उसके नेत्रो मे स्वाभाविक लाली थी, बरौनियाँ कम थी, और आँखों में कुछ चिपचिपापन था। गर्दन एक ओर को कुछ झुकी (अवाग्र) थी, जैसा अजन्ता के ऊपर लिखे चित्र मे भी है, और कंधा कुछ लटका हुआ (स्कन्न) था। उसकी छाती चौडी और भुजाएँ लम्बी थी। कलाई मे सूअर के बालो में लपेटी हुई नागदमन नामक विषहर औषधि की गुच्छियाँ बँधी थीं और गोदन्ती मणि से जड़ा हुआ राँगे का कडा पडा था[२]। उसका उदर छटा हुआ, किन्तु टूंडी उभरी हुई थी[३]। उसकी चौडी कमर मे छोटी तलवार (कृपाणी) बँधी थी जिसकी मूँठ सीग की थी और मुहनाल पर पारा चढा हुआ था। वह कटारी दुमुही साँप की खाल की दो पट्टियों से बनी म्यान में रक्खी हुई थी, जिस पर चीते के चमडे के चकत्ते काट कर शोभा के लिये लगाए गए थे। म्यान के ऊपर औंधेमुँह लटकते हुए मृगचर्म की परतली ढकी थी[४]। उसकी पीठ पर धौकनी की आकृति का रीछ के चमडे का बना तरकस बँधा था, जिसके ऊपर की ओर के घने भौराले काले बाल बाघ के चितकबरे चमडे से ढके थे[५]। बाँस की तरह ठोस

१. पिनद्ध काचरमणि कर्णिकेन श्रवणेन, २३१।

२. गोदन्तमणिचित्रत्रापुषं वलयं बिभ्राणम्। छोटी जातियो में अभी तक राँगे या गिलट का जेवर पहनने का व्यापक रिवाज है। शकर ने गोदन्त का अर्थ एक तरह का साँप किया है। श्री कणे ने गोदन्ती हरताल की बनी गुरिया अर्थ किया है, जो ठीक जान पडता है।

३. तुणिडभम् (२३२)। जगली जातियो मे टूंडी बड़ा होना सुन्दरता का चिह्न माना जाता है।

४. तलवार या कटार के फल का ऊपरी भाग (मस्तक) हिन्दी मे मुँहनाल और नोक का भाग तहनाल कहलाता है। मुहनाल की तरफ मूठ जड़ी जाती है। उसीका वर्णन यहाँ किया गया है। अहीरमणीचर्मनिर्मितपट्टिकयो चित्रचित्रकत्वक्कृतारकित परिवारया सकुब्जाजिनजालकितया शृगमयमसृणमुष्टिभागभास्वरया पारदरसलेशलिप्त समस्तमस्तकया (२३२) अहीरमणी = द्विक्त्र अर्थात् दुमुही सापिन। परीवार = खड्गकोश (अमर, ३।१६९), म्यान। अब मूल मे परिवार पाठ है जो किसी समय परीवार रहा होगा अमरकोष के अनुसार म्यान के लिये परीवार शब्द गुप्तकाल मे चल चुका था। जालकित = ढकी हुई। संकुब्ज शब्द का अर्थ कोषो मे स्पष्ट नही है। मैने उसका अर्थ औंधे मुँह— गर्दन नीचे पूँछ ऊपर—इस प्रकार लटकाए हुए मृगचर्म किया है। म्यान के लिए परतलीका प्रयोग स्वाभाविक था।

५. अच्छभल्लचर्ममयेन भल्लीप्रायप्रभूतशरभृता शबलशार्दूलचर्मपटपीडितेन अलिकुल कालकम्बललोम्ना पृष्ठभागभाजा भस्त्राभरणेन (२३२)। धौंकनीनुमा तरकश के लिये दे० चित्र ६७।

और तगडी बाँह पर मोरपित्त से फूलपत्तियों का गोदना गुदा था[1]। भुजा के निर्माण में नस नाड़ियो की तारकशी ऐसी लगती थी मानों खैर की जटाऍ एक साथ बटी गई हों[2]। बॉह का ऊपरी तिहाई भाग चहे के पखों से सुशोभित था। बॉए कन्धे पर धनुष रक्खा हुआ था। उसकी निचली कोर के नुकीले भाग द्वारा कंठ छेद कर उसमें एक तीतर लटकाया हुआ था जिसकी चोच के भीतर का ऊपरी लाल तालु दिखाई पड रहा था। खरहे की एक टॉंग की लबी हड्डी (नलक) तेज बाण की धारा से घुटने के पास काटकर, दूसरी टॉग की पिडली पहलेकी नलकी में पिरो देने से जो कमान्चा बन गया था उस में अपनी बाँह का अग्र भाग डालकर उसने खरहा भुजापर टॉग लिया था। नाक से बहते हुए लाल रक्त से सना हुआ खरहे का सिर नीचे की ओर लटक रहा था और झूलते हुए शरीर के खिच जाने से सामने की ओर पेट पर के मुलायम सफेद रोओं की धारी साफ दिखाई देती थी। खरहा और तीतर उसके शिकार की बानगी की मूठ से जान पडते थे[3]। दाहिने हाथ में घोर विष से बुझी हुई नोकवाला बाण[4] था, मानो पूछ से पकडा हुआ काला नाग हो। वह शबर-युवा क्या था मानों विन्ध्य की खान से गलता हुआ लोहा निकल रहा था, मानों चलता-फिरता तमाल का वृक्ष था। वह हिरनो के लिये कालपाश, हाथियो के लिये ज्वर, सिहो के लिये धूमकेतु, भैसों के लिये महानवमी (विजयादशमी से पूर्व दुर्गानवमी) का उत्सव था। वह साक्षात् हिसा का निचोड़, पाप का फल, कलिकाल का कारण, कालरात्रि का पति जैसा लग रहा था (२३२)।

शबर युवक ने पृथिवी पर मस्तक रखकर हर्ष को प्रणाम किया एवं तीतर और खरगोश की भेंट सामने रक्खी। सम्राट् ने आदरपूर्वक पूछा—'भाई, तुम इस समस्त प्रदेश से परिचित हो और इन दिनों यहॉ घूमते रहे हो। क्या सेनापति या उसके किसी अनुचर के देखने में कोई सुन्दर स्त्री इधर आई है ?' निर्घात ने इस प्रश्न से अपने को धन्य मानते हुए प्रणामपूर्वक कहा—'देव, इस स्थल में सेनापति की जानकारी के विना हिरनियॉ भी नहीं विचरती, स्त्रियों की तो बात ही क्या ? ऐसी कोई स्त्री नही मिली। फिर भी देव की आज्ञा से इस समय सब काम छोड़ कर

---

१. प्रचुरमयूरपित्तपत्रलता चित्रितत्वचि त्वचिसारगुरुणि दोषि (२३२)।

२. 'खदिर जटा निर्माणे' पद को बाहु के विशेषण के रूप में वजन से समझने का प्रयत्न किया गया है।

३. अवाक्शिरसा शितशरकृत्तकनलकविवरप्रवेशितेतरजंघाजनितस्वस्तिकबन्धेन बन्धूक-लोहितरुधिरराजिरंजितघ्राणवर्त्मना वपुर्विततिव्यक्तविभाव्यमानकोमलक्रोडरोमशुक्लिम्ना शशेन शिताटनी शिखाग्रग्रथितग्रीवेण चापावृत्तचचूत्तानताम्रतालुना तित्तिरिणा वर्णकमुष्टिमिव मृगयाया दर्शयन्तम्, २३२। वर्णक मुष्टि का अर्थ कावेल और कणे ने रगो या उबटन की मुट्ठी किया है। वस्तुत इस प्रसग मे वर्णक का अर्थ नमूना या बानगी है और वर्णकमुष्टि का अर्थ बानगी की मूठ है। किसी बड़े ढेर में से जैसे बानगी की मुट्ठी भरी जाती है, वैसे ही खरहे तीतर उसके भारी आखेट की बानगी थे। 'शितशरकृत्तकनलक, विवरप्रवेशितेतरजघाजनितस्वस्तिकबन्धेन पद मे नलक और जंघा पद सार्थक है। घुटने से ऊपर की हड्डी का भाग नलक और नीचे का जघा कहा गया है। एक पैर की पिंडली दूसरे की पोली नलकी में फँसाकर खरहा स्वस्तिक आसन की मुद्रा मे आगया था जिससे उसे बांह पर टांगलेने में आसानी हो गई थी।

४ विवर्ण की जगह कश्मोरी प्रतियो में विकर्ण पाठ है जिसका अर्थ है बाण यही समीचीन पाठ था।

ढूँढने का प्रयत्न किया जा रहा है। यहाँ से एक कोस पर[1] पहाड़ की जड़ में वृक्षों के घने झुरमुट में भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाला (पिण्डपाती) दिवाकरमित्र नामक पाराशरी भिक्षु अनेक शिष्यों के साथ रहता है शायद है उसे खबर लगी हो।'

यहाँ बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र को पाराशरी कहा गया है, यह महत्त्वपूर्ण है। पाराशरी भिक्षुओं का सबसे पहला उल्लेख पाणिनि में (४।३।११०) है। वहाँ कहा है कि जो पाराशर्य (प्राराशर के पुत्र) के कहे हुए भिक्षुसूत्रों का अध्ययन करते थे वे पाराशरी भिक्षु कहलाते थे। विद्वान् लोग भिक्षु सूत्रों से पाराशर्य व्यास के वेदान्त सूत्र प्राय समझते रहे हैं। वेदान्त सूत्रों का अध्ययन करने वाले भिक्षु पाराशरी होने चाहिएँ। किन्तु यहाँ बाण के समय में तो स्पष्ट ही बौद्धमतानुयायी दिवाकरमित्र को पाराशरी कहा गया है। पूर्व में यह भी आ चुका है कि पाराशरी लोग कमंडलु के जल से हाथ पैर धोकर चैत्यवंदन करते थे (८०)। बाण ने तो यहाँ तक कहा है कि ब्राह्मण से प्रेम करने वाला पाराशरी संसार में दुर्लभ है[2]।

बाण के समय में पाराशरी भिक्षुओं का ब्राह्मणों से बड़ा विरोध था। ये पाराशरी कौन थे, किस मत या दर्शन के अनुयायी थे, और क्यों ब्राह्मणों से इनका वैर था, यह एक गुत्थी है जिस पर प्रकाश पड़ना आवश्यक है। अभी तक इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर हमारे सामने नहीं है। सम्भव है शङ्कराचार्य से पूर्व की शताब्दियों में वेदान्त सूत्र या भिक्षु सूत्रों के अध्ययन करनेवाले वेदान्ती और बौद्धों के शून्य अथवा माध्यमिक दर्शन के अनुयायी लोगों में बहुत कुछ तादात्म्य और दृष्टिकोण का सादृश्य रहा हो। अन्तिम तत्त्व के विषय में भी दोनों का एकमत होना सम्भव है। कम से कम शंकराचार्य के पूर्ववर्ती और उनके दादागुरु श्री गौडपादाचार्य की स्थिति बहुत कुछ इसी प्रकार की थी जिन्होंने बौद्ध दर्शन के तत्वों का जैसा प्रतिपादन वेदांत में किया है। वे खुले शब्दों में 'द्विपदा वर' और 'संबुद्ध भगवान् बुद्ध' के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हैं[3]। गौडपाद का दर्शन नागार्जुन के शून्यवाद के बहुत नजदीक है। गौडपाद और बौद्ध दार्शनिकों के बीच में पूरा तादात्म्य ज्ञात होता है। यह स्थिति सातवीं शती में थी जब बाण हुए। सम्भवत बाह्य आचार-विचार में बौद्ध भिक्षु और पाराशरी भिक्षु एक-सा व्यवहार करते हों। इसी से बाण ने पाराशरी भिक्षुओं को भी बौद्धों की भाँति चैत्य पूजा करते हुए लिखा है। बाण के युग में वेदान्त दर्शन के माननेवालों का पृथक् अस्तित्व इसी नाम से न था, किन्तु गौड़पाद की तरह वे लोग उपनिषदों का आश्रय लेकर चले थे। दिवाकर मित्र के आश्रम में बाण ने जहाँ सब दार्शनिकों का परिगणन किया है वहा कापिल (सांख्य) काणाद (वैशेषिक), ऐश्वरकारणिक (नैयायिक), साप्ततान्तव (मीमांसक) इन चार आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त औपनिषद अर्थात् उपनिषदों के अनुयायी दार्शनिकों का भी उल्लेख किया है।

---

१. अर्धगव्यूतिमात्रे (२३३)। गव्यूति = २ कोस (क्रोश युग, या २००० धनु। १ कोस = १००० धनु। १ धनु = ४ हाथ या २ गज या ६ फुट। अतएव १ कोस या अर्ध गव्यूति = ६०० फुट या २०० गज। दूरी की लम्बाई का यह मान मनु का चलाया हुआ मान कहलाता था प्रजापति का कोस इससे कुछ बड़ा २५०० गज का था जो खेतों की नाप के काम में आता था। (शुक्रनीति)।

२ पाराशरी ब्राह्मणप्रिय जगति दुर्लभ. (१८१)।

३ राहुल सांकृत्यायन, दर्शन दिग्दर्शन, पृष्ठ ८०८, श्री पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ४१२—१४।

अवश्य ही इसका संकेत उनकी ओर होना चाहिए जो गौड़पाद की भाति उपनिषद् और बादरायण की परम्परा के अनुयायी थे। हर्षचरित के टीकाकार शंकर ने औपनिषद पद का अर्थ वेदान्तवादी किया है। गौड़पाद से ही मायावाद का आरम्भ माना जाता है। उनकी दृष्टि मे माया कल्पित यह जगत् स्वप्न है तथा गन्धर्व नगर की तरह असत्य है। गौड़पद के इस दृष्टिकोण को ब्राह्मण धर्म के मुख्य अनुयायी पाचरात्र और भागवत उस समय कदापि स्वीकार नही कर सकते थे। उनका दृष्टिकोण भक्ति प्रधान था जिसमे वासुदेव या विष्णु की भक्ति ही जीवन की प्रेरणा का मूल स्रोत थी। यद्यपि इस युग के धार्मिक मतवाद और उनके सबधो की पूरी जानकारी हमारे पास नही है और ज्ञात होता कि पारस्परिक प्रतिक्रियाओं को जानने की बहुत-सी कड़ियाँ अब लुप्त हो चुकी हैं, फिर भी कुछ ऐसी ही परिस्थिति में पाराशरी या वेदान्तवादी ब्राह्मण धर्म के बाह्य विश्वासों का विरोध करते रहे होंगे।

दिवाकरमित्र मैत्रायणी शाखा का ब्राह्मण कहा गया है जिसने युवावस्था मे ही चित्त-वृत्तियों की एकाग्रता प्राप्त कर लेने से प्रव्रज्या ग्रहण करके बौद्ध भिक्षुओं के गेरुए वस्त्र धारण कर लिए थे। दिवाकर मित्र स्वर्गीय ग्रहवर्मा का बालपन का मित्र था और कई बार हर्ष उसकी प्रशसा सुनकर उससे भेंट करने की बात मन में ला चुका था। अब अचानक इसका प्रसग आया जान कर वह प्रसन्न हुआ और निर्घात से दिवाकरमित्र के आश्रम का मार्ग दिखाने की आज्ञा दी।

विन्ध्याटवी के प्रसंग को आगे बढाते हुए बाण ने जगलो में होने वाले वृक्षों का वर्णन किया है। इस समय तक हर्ष घने जगल के भीतर आ गए थे। इस वर्णन में निम्नलिखित वृक्षो का उल्लेख है—कर्णिकार, चम्पक, नमेरु, सल्लकी (नलद), नारिकेल, नागकेसर (हरिकेसर), सरल, कुरबक, रक्ताशोक, बकुल, केसर, तिलक, हीग, सुपारी, प्रियगु, मुचुकुन्द, तमाल, देवदारु, नागवल्ली (ताबूली), जामुन, जम्भीरी नींबू (जंबीर), धूलिकदम्ब[1] (गरमी में फूलने वाला विशेष प्रकार का कदम्ब), कुटज, पीलु, शरीफा (सदाफल), कट्फल (कटहल), शेफालिका, लवलीलता, लकुच (बड्हर), जायफल (जातिफल)।

इसी प्रसंग मे कुछ पक्षियों और पशुओ का भी उल्लेख है। जैसे, 'कुछ ही दिनों की ब्याई हुई वनकुक्कुटी कुटज के कोटर में बैठी थी। गौरैय्या चुडकलो को उडना सिखाते समय चूं-चूं करके शोर मचा रही थी। चकोर अपनी सहचरी को चोच से चुग्गा दे रहा था। भुरुण्ड पक्षी पक्के पीलुओं के फल निश्शक खा रहे थे। तोतों के बच्चे शरीफे और कटहल के कच्चे फलो को निठुरता से कुतर कर गिरा रहे थे। चट्टानो पर खरगोश के बच्चे सुख से सोए हुए थे। छिपकली के छोटे बच्चे शेफालिका की जडों के सूराखो में घुस रहे थे। रंकु नामक मृग निडर घूम रहे थे। नेवले आपस मे धमाचौकड़ी मचा रहे थे। कोयल नई फूटी हुई कलियो का आहार कर रही थी। चमूरु हिरनों के झुण्ड आम की झुरमुट मे बैठे हुए जुगाली कर रहे थे। नीलाण्डज मृग सुख से बैठे थे। दूध पीते हुए नीलगाय के बच्चो को पास में बैठे भेड़िये कुछ कहे विना देख र थे। कही गिरिनिर्झरों के पास खड़े हाथियों के झुण्ड ऊघ रहे थे। कही रुरु हिरन किन्नारयों के संगीत का आनन्द ले रहे थे, तेंदुए उन्हें देखकर प्रसन्न हो रहे थे। हरी हल्दी की जड खोदते हुए सूअरिआ के बच्चों की थूथडिया रंग गई

---

१. वनग्राम के वर्णन मे धूलिकदम्ब के गुच्छो का उल्लेख आ चुका है (२२८)।

थी। झाऊ चूहे गुंजा वृक्षों के कुंजों में गूंज रहे थे। जायफल के नीचे शालिजातक नामक पशु सोए थे। लाल ततैयो के डक मारने से कुपित हुए बदरों ने उनके छत्तो को नोच डाला था। लगूर बडहल के फल खाने के लिए लवली लताओं के इस पार से उस पार कूद रहे थे।' (२३४-२३५)।

इस प्रकार बाण का यह वर्णन कुछ तो उसके स्वयं गहरे निरीक्षण का परिणाम है और कुछ साचे में ढले हुए वन वर्णनो की शैली पर है।

दिवाकरमित्र के आश्रम मे कमंडलु, भिक्षापात्र और चीवर वस्त्रों के अतिरिक्त बाण ने उन पकाई हुई मिट्टी की लाल मुहरो (पाटल मुद्रा) का भी उल्लेख किया है जिन पर चैत्य या स्तूप की आकृतियाँ बनी होती थीं। इस प्रकार की मोहरों का यह उल्लेख स्वागत के योग्य है। प्राचीन बौद्ध स्थानों की खुदाई में इस प्रकार की चैत्याकित मिट्टी की मोहरें भारी संख्या में पाई गई है। उन पर बीच में एक या अधिक स्तूप बने रहते है और प्राय बौद्धों का 'येधर्मा हेतुप्रभवा' मन्त्र एक बार या अनेक बार लिखा रहता है[1]। दर्शनार्थी लोग इस प्रकार की मोहरें अपने साथ लाते और पूजा में चढा देते थे। जैसा बाण ने लिखा है वे एक किनारे पर ढेर कर दी जाती थी (निकट कुटीकृत पाटलमुद्रा चैत्यक मूर्तयः, २३५)। (चित्र ६१)।

आश्रम निकट आया जानकर हर्ष घोडे से उतर पडा और पहाड़ी नदी के जल में हाथ मुँह धोकर अश्वसेना को वही छोड माधवगुप्त के कंधे पर हाथ रख कर पैदल ही चला। वहाँ उसने वृक्षों के बीच में दिवाकरमित्र को देखा और दूर से ही उसे आदरपूर्वक प्रणाम किया। बाण ने दिवाकरमित्र और उसके आश्रम के वर्णन में अपने समकालीन बौद्ध धर्म सम्बन्धी अनेक अभिप्रायों और संस्थाओं का उल्लेख किया है। इन्हें हम चार भागों में बाँट सकते है, १ भिक्षु २ तत्त्व चिन्तन की विधियाँ ३ बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार और ४ दिवाकर मित्र के रूप में उस युग के एक बडे महन्त का वर्णन। सबसे पहले उन अनेक दार्शनिको, सम्प्रदायों और भिक्षुओं के नाम है जो उस समय के धार्मिक आन्दोलन में प्रमुख भाग ले रहे थे। यह कल्पना की गई है कि वे सब उस आश्रम मे एकत्र होकर तत्त्वचिंतन में भाग ले रहे थे। इन सम्प्रदायों के नाम इस प्रकार है।

१. आर्हत। २ मस्करी। ३. श्वेतपट (सेवड़ा, श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय)। ४. पाडुरि भिक्षु (आजीवक जो इस युग मे पाडरि भिक्षु कहलाते थे)। ५ भागवत। ६ वर्णी (नैष्ठिक ब्रह्मचारी साधु)। ७. केशलुंचन (केशों का लोच करने वाले जैन साधु)। ८. कापिल (कपिल मतानुयायी साख्य)। ९ जैन (बुद्ध मतानुयायी शाक्य भिक्षु। १० लोकायतिक (चार्वाक)। ११ कणाद (वैशेषिक)। १२ औपनिषद (उपनिषद् या वेदान्त दर्शन के ब्रह्मवादी दार्शनिक)। १३ ऐश्वर कारणिक (नैयायिक, प्राचीन पाली साहित्य मे भी 'इस्सर कारणिक' नाम आया है)। १४ कारन्धमी (धातुवादी या रसायम बनानेवाले)। १५ धर्मशास्त्री (मन्वादि स्मृतियों के अनुयायी)। १६. पौराणिक। १७ साप्ततन्तव (सप्ततन्तु अर्थात् यज्ञवादी मीमासक)। १८. शाब्द (व्याकरण दर्शन वा शब्द ब्रह्म के अनुयायी, जिनके विचारों का परिपाक भर्तृहरि के वाक्यपदीय में मिलता है)। १९. पाचरात्रिक (पंचरात्र संज्ञक प्राचीन वैष्णव मत के अनुयायी)। इनके अतिरिक्त और भी (अन्यैश्च) मत मतान्तरों को माननेवाले वहाँ एकत्र थे।

---

१. ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुस्तेषां तथागतो ह्यवदत् एवंवादी महाश्रमणः।

इस सूची में बाण ने अपने समय के दार्शनिक जगत् की बानगी दी है। भारत के धार्मिक इतिहास के लिये इसका महत्त्व है। सातवीं शती के अनन्तर भी धार्मिक क्षेत्र मे कितने ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते गये और शैव, कापालिक और कालामुख आदि विशेष सम्प्रदायों के नाम इसके साथ क्रमश: जुड़ते गए जिनका चित्र यशस्तिलक चम्पू मे ऐसे ही प्रसग में खीचा गया है। (श्री कृष्णकान्त हंदीकी कृत यशस्तिलक, पृ० ३४६-६०)।

इस सूची मे कई बातें ध्यान देने योग्य है। बौद्धों के लिये उस समय अधिकतर जैन शब्द चलता था। बाण ने स्वयं शाक्य मुनि शासन मे निरत बौद्ध साधुओं के समूह के लिये जैनी सज्जनता (२२४) पद का प्रयोग किया है। बुद्ध के लिये उस समय 'जिननाथ' विशेषण प्राय प्रयुक्त होता था। बौद्ध धर्म के लुप्त हो जाने के बाद से जैन पद केवल जैनों के लिये प्रयुक्त होने लगा। इस सूची मे शैव और पाशुपत मतों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है जिनका उस समय बडा प्राबल्य था। वस्तुत मस्करी भिक्षु ही उस समय के पाशुपत थे। पाशुपत भैरवाचार्य और उनके शिष्य को बाण ने मस्करी कहा है (१०२)। भागवतों के दो भेद भागवत और पाञ्चरात्रिक नामों से अलग-अलग कहे गए है। कुषाण और गुप्त युग में भागवत धर्म का कई रूपों में विकास हुआ। वैखानस मतानुयायी लोग विष्णु और उनके चार सहयोगी—अच्युत, सत्य, पुरुष और अनिरुद्ध—की उपासना करते थे। सात्वत लोग विष्णु की नारायण के रूप में उपासना करते थे। नृसिंह और वराह के रूप में महाविष्णु की मूर्ति की कल्पना उनकी विशेषता थी। नृसिंह-वराह और विष्णु की कितनी ही गुप्तकालीन मूर्तियाँ मथुरा कला में मिली हैं, वे सात्वतों के सिद्धान्त से अनुप्राणित जान पड़ती है। इन दोनों से प्राचीन मूलपंचरात्र सिद्धान्त था, उस आगम के अनुयायी पाचरात्र या पाचरात्रिक कहलाते थे। ये वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के रूप में चतुर्व्यूह को मानते थे। इनमें भी जो केवल वासुदेव की आराधना करते थे वे एकान्तिन् कहलाते थे। नारद पंचरात्र के अनुसार एकान्तियों के दो भेद थे—शुद्ध जो केवल वासुदेव को ही ईश्वर मानकर उनकी पूजा करते थे (वासुदेवैकयाजिन्), और दूसरे मिश्र जो विष्णु के अतिरिक्त और भी विष्णुरूप धारी देवताओ (जैसे शिव, इन्द्र, ब्रह्मा, पार्वती, सरस्वती ब्रह्माणी, इन्द्राणी आदि)[1] को मानते थे। शनै शनै कई सम्प्रदाय एक में मिलते गए। बाण के समय मे पाचरात्रिक और भागवत ये दो मोटे भेद रह गए थे। आगे चलकर वे सब केवल भागवत इसी एक नाम से पुकारे जाने लगे और उनके पारस्परिक सूक्ष्म भेद भी लुप्त हो गए। किन्तु वैखानस सात्वत और पाचरात्र संहिताओं और आगमों के कई सौ ग्रन्थों का विशाल साहित्य आज तक सुरक्षित रह गया है[2]। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका अध्ययन कुषाण और गुप्तयुग के धार्मिक इतिहास पर नया प्रकाश डाल सकता है।

जैन साधुओं मे आर्हत, श्वेतपट, और केशलुंचन ये तीन नाम आए है। किन्तु अब दिगम्बर और श्वेताम्बर के मोटे भेदों को छोडकर अवान्तर सम्प्रदायों के आपसी भेदों का कुछ पता नही।

---

१ श्रूयते यत्र यष्टव्या यादृशी या हि देवता।
तादृशी सा भवेत्तत्र यजंत्येकातिनो हरिम् ॥

२. देखिए श्राडर कृत, अहिर्बुध्न्यसहिता और पंचरात्र की भूमिका (अंग्रेजी), पृ० ६-११ जहाँ २१५ संहिताओं के नाम है।

साख्य वैशेषिक नैयायिक और वेदान्त ये चारों प्रकार के दार्शनिक भी अखाड़े में उतर कर पुरुष और प्रकृति की नित्यता और अनित्यता के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के पैंतरों का आश्रय ले रहे थे और नई नई युक्तियों का आविर्भाव कर रहे थे जो कि विक्रमीय प्रथम सहस्राब्दी के दार्शनिक इतिहास का अत्यन्त रोचक विषय है। मीमासक और वैयाकरण भी कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ-साथ चलने का प्रयत्न कर रहे थे। कुमारिल और भर्तृहरि का तत्त्वचिन्तन इसका प्रमाण है। कारन्धमी या धातुवादी लोग नागार्जुन को अपना गुरु मान कर औषधियों से होनेवाली अनेक प्रकार की सिद्धियो और चमत्कारों के विश्वास को दर्शन का रूप दे रहे थे। पीछे यही मत रसेन्द्र दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिनका यह विश्वास था कि पारे के उचित प्रयोग से शरीर को अमर बनाया जा सकता है।

इन दर्शनकारो की बौद्ध दर्शन के साथ तो स्पर्धा थी ही, आपस में भी उनकी नोक-झोंक कुछ कम न थी। दर्शन के क्षेत्र में नए-नए दृष्टिकोणों का प्रादुर्भाव होता रहता था और उनके साथ मेल बैठाने के लिये हरएक को अपना घर संभालना पड़ता था। पुरानो युक्तियो पर नई धार रक्खी जाती और दूसरे के मत की काट करने के लिये नए पैंतरे से उन्हे परखा जाता।

बाण ने दार्शनिकचिन्तन के इन विविध प्रकारो का उल्लेख किया है जो उनके किए हुए आश्रम वर्णन का दूसरा भाग है। बाण के समकालीन नालंदा आदि विद्याकेन्द्रो मे एवं काशी अवन्ती मथुरा तक्षशिला आदि महानगरो मे जहाँ अनेक प्रसिद्ध विद्वान् उस युग में विद्याभ्यास करते थे गुरुकुलों में तत्वचिन्तन और विद्याभ्यास की जो प्रणाली थी उस पर इससे कुछ प्रकाश पड़ता है। कुछ गुरु या आचार्य थे जो शास्त्रो की व्याख्या करते थे (व्याचक्षाणै)। जो शिष्यभाव से इन आश्रमो में प्रविष्ट होते थे वे आचार्यों के चरणो मे बैठकर (शिष्यता प्रतिपन्नै) सबसे पहले शास्त्रो के मूल ग्रन्थो का अध्ययन करते थे (अभ्यस्यद्भि)। मूल-ग्रन्थो में कोई ग्रन्थि न रहने पाए, यह विद्याभ्यास की पहली सीढी समझी जाती थी। प्राचीन भारतीय शिक्षाक्रम में अभी तक इस रीति से आचार्य कृत व्याख्या द्वारा विद्यार्थी ग्रन्थाभ्यास के मार्ग में आगे बढते है। मूलग्रन्थ को इस प्रकार पढ लेने पर उसके सिद्धातों का विशेष श्रवण आवश्यक था (स्वान्स्वान्सिद्धान्तान् शृण्वद्भि) जिससे वह शास्त्र मँजता था। इसके आगे विद्वान परस्पर शंका समाधान करते थे। अपने शास्त्र के विषय मे जो शंकाएं की जाती उनका समाधान सोचा जाता था (अभियुक्तै श्चिन्तयद्भि)। फिर स्वयं भी दूसरों के सिद्धान्तो के संबंध में आक्षेप करते थे (प्रत्युच्चरद्भि)। किन्तु शास्त्र-चिन्तन के लिये दूसरों से उठाई जाने वाली शकाओं की प्रतीक्षा काफी न थी, स्वय भी अपने सिद्धातो के बारे मे सन्देह बुद्धि से विचार करना एव शकाओ की उद्भावना करना (संशयानै) और फिर उनका समाधान ढूँढ कर सत्य का निश्चय करना (निश्चिन्वद्भि) आवश्यक था। इस प्रकार दूसरों के द्वारा उठाई हुई शकाओं और स्वय किए हुए संदेहों का निराकरण करके शास्त्र-चिन्तन मे एक नवीन तेज उत्पन्न होता था और एक विशेष प्रकार की व्युत्पन्न बुद्धि का उदय होता था। उस स्थिति मे पहुँच कर ही प्रत्येक विद्वान् अपने दर्शन के क्षेत्र में सचमुच व्युत्पन्न बनता था (व्युत्पादयद्भि)। व्युत्पादन को हम शास्त्रो या सिद्धान्तो का तुलनात्मक अध्ययन कह सकते हैं जिसमे किसी एक सिद्धान्त को केन्द्र मे रखकर अन्य के साथ

उसकी तुलना करते हुए उसकी सत्यता तक पहुँचा जाता है। जबतक किसी सिद्धान्त को व्युत्पादन के द्वारा स्पष्ट नहीं किया जाय तबतक उस विषय पर शास्त्रार्थ नहीं किया जा सकता। व्युत्पादन के बाद की और उससे भी महत्त्व की सीढ़ी शास्त्रार्थ की थी (विवदमानै)। शास्त्रार्थ के द्वारा एक व्यक्ति अन्य समस्त सिद्धान्तों को सत्यासत्य का निर्णय के लिये चुनौती देता है। शास्त्रार्थ पाण्डित्य के लिये सबसे ऊँची और कठिन स्थिति है और प्राचीन काल में इस पद्धति का बड़ा मान था। राजा के लिये युद्ध का जो महत्त्व था वही विद्वान् के लिये शास्त्रार्थ का था। विद्या के समुत्कर्ष के लिये उपयोग मे आनेवाले विविध उपायों की यह झाँकी अत्यन्त रोचक है। इसकी सहायता से हम कल्पना कर सकते है कि किस प्रकार प्राचीन गुरु-कुलों में, विशेषत गुप्तकाल और उसके बाद के विद्याकेन्द्रों या दार्शनिक क्षेत्र में, ऐसी विलक्षण और प्रखर बुद्धि का विकास किया जा सका। असग, वसुबन्धु, धर्मकीर्त्ति, दिङ्नाग, कुमारिल, शंकर, मण्डन मिश्र आदि दिग्गज विद्वान् इस प्रकार के गम्भीर शास्त्र-परिमार्जन के फल-स्वरूप ही लोक मे प्रकाशित हुए।

दिवाकर मित्र का आश्रम उस समय की एक आदर्श बौद्ध-विद्या-संस्था का स्वरूप सामने रखता है। यही बाण के वर्णन की तीसरी कड़ी है। वहाँ अतिविनीत शिष्य चैत्य-वन्दन कर्म मे तत्पर रहते थे (चैत्यकर्म कुर्वाण)। वे बुद्ध, धर्म, संघ—इन तीन रत्नों की शरण में जाते थे (त्रिसरणपरै)[1]। परम उपासक एव शाक्य-शासन में कुशल विद्वान्, वसुबन्धु-कृत अभिधर्मकोश[2] का उपदेश देते थे। बौद्ध भिक्षुओं के लिये जिन दश शीलों का उपदेश किया गया था उनकी धर्मदेशना या शिक्षा वहाँ हो रही थी। बोधिसत्व की जातक-कहानियाँ बराबर सुनाई जा रही थी और लोग उनसे आलोक ग्रहण कर रहे थे। आर्य शूर-कृत जातकमाला और दिव्यावदान आदि ग्रन्थों में कहे हुए अनेक अवदान या कहानियों का नए ढंग से कहना और सुनाना गुप्तकालीन बौद्ध-धर्म और साहित्य की विशेषता थी। सौगत भगवान् बुद्ध के शील का पालन करने से आश्रम-वासियों का अपना स्वभाव शान्त और निर्मल बन गया था।

इससे आगे वर्णन के चौथे भाग में स्वयं दिवाकर मित्र के व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है जो उस युग के अतिविशिष्ट विद्वान् और पहुँचे हुए बोधिसत्त्वगुणो से युक्त भिक्षु का परिचय देता है। दिवाकर मित्र के आसन के दोनों ओर दो सिंह शावक बैठे थे जिससे ऐसा भान होता था कि स्वयं मुनि परमेश्वर भगवान् बुद्ध सचमुच के सिहासन पर विराजमान हों। बाएँ हाथ से वह एक कबूतर के बच्चे को नीवार खिला रहा था। यहाँ एक पुरानी जातक-कहानी की ओर सकेत है जिसके अनुसार किसी पूर्व जन्म में भगवन् बुद्ध एक पारावत के रूप में पर्वत-गुफा में रहते थे। वहाँ एक शील-सम्पन्न तापस ने आश्रम बनाया जिसके हाथ

---

१. यद्यपि संस्कृत शब्द त्रिशरण होना चाहिये; किन्तु बाण ने लोक में प्रचलित त्रिसरण पद का ही प्रयोग किया है। सरण मूल पाली का शब्द था। यद्यपि बाण के समय में बौद्ध-साहित्य की भाषा सस्कृत थी, किन्तु—बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, सङ्घं सरणं गच्छामि, इन मन्त्रो का मूल पाली रूप ही चालू था।

२. बाण ने कोश-सज्ञक प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ का हर्षचरित में तीन बार उल्लेख किया है (९१, १८३, २३७)। वसुबन्धु-कृत अभिधर्मकोश पर आश्रित दिङ्नाग-कृत मुष्टिप्रकरण का उल्लेख ऊपर हो चुका है।

से वे विस्रब्धभाव से चुग्गा खाते थे। कुछ दिन बाद वृद्ध तापस के चले जाने पर एक दूसरा कपटी साधु वहाँ आया और उसी भाँति चिड़ियों को चुग्गा खिलाने लगा, किन्तु कुछ दिन बाद उसके मन में पारावत-मास खाने की इच्छा हुई। तब उसका भीतरी कपट पहचानकर पक्षी उसके पास न आए (रोमक जातक, जातक भाग २, सं० २७७)[१]। दिवाकर मित्र स्वय अपने हाथ से साँवा चावल के कण बखेरकर चटनाल जिमा रहा था[२]। वह लाल चीवर पहने हुए था। बाण ने चीवर वस्त्र के लिये म्रदीयस् (मुलायम) कहा है। इससे यह संकेत मिलता है कि सम्भवत गुप्तकाल मे भिक्षु लोग रेशमी वस्त्र का बना हुआ चीवर पहनने लगे थे। उसका विद्याशरीर सब शास्त्रो के अक्षररूपी परमाणुओं से बना हुआ जान पड़ता था। परम सौगत होते हुए भी वह अवलोकितेश्वर था[३]। स्वय बुद्ध से भी वह आदर पाने योग्य था और स्वय धर्म से भी वह पूजा के योग्य था। यम, नियम, तप, शौच, कुशल, विश्वास, सद्वृत्तता, सर्वज्ञता, दाक्षिण्य, परानुकम्पा, परमनिर्वृति—इनका वह मूर्तिमान् रूप था। ये सब वे गुण है जिनका सम्बन्ध बुद्ध और बोधसत्त्वो के वर्णनो में प्राय मिलता है और जो उस समय चरित्र संबंधी आदर्श गुणो की कल्पना के अङ्ग थे।

दिवाकर मित्र ने हर्ष को देखकर प्रसन्न मन और उचित आव-भगत से उसका स्वागत किया। यहाँ बाण ने दिवाकर मित्र के बाएँ कंधे से लटकते हुए चीवर वस्त्र का उल्लेख किया है[४]। वस्तुत गुप्तकाल की अधिकाश बुद्ध मूर्तियाँ उभयासिक चीवरवाली है अर्थात् उनके दोनों कधे चीवर या ऊपरी संघाटी से ढके दिखाए जाते है। बाएँ कधे पर चीवर की प्रथा कुषाणकालीन मथुरा की बुद्ध-मूर्तियो मे बहुत करके मिलती है। गन्धार-कला के प्रभाव से मथुरा में भी उभयासिक चीवर की प्रथा चल पड़ी थी। गुप्तकाल की अधिकाश मूर्तियाँ उभयासिक चीवर की है, पर कुछ मूर्तियो में वही पुरानी प्रथा चालू रही[५]। जो बात मूर्तियों में मिलती है वही बात भिक्षुओं के वास्तविक जीवन मे भी थी अर्थात् कुछ भिक्षु अपनी सघाटी दोनों कधो पर और कुछ केवल बाएँ कधे पर डालते थे। दिवाकर मित्र का पहनावा पिछले ढग का था। भिन्न-भिन्न प्रकार से सघाटी पहनने का सम्बन्ध सम्प्रदाय-भेद के साथ जुड़ गया था—ऐसा चीनी यात्री इत्सिंग ने लिखा है। ऐसा ज्ञात होता है कि थेरवाद या प्राचीन परम्परा के अनुयायी जो बौद्ध-सम्प्रदाय थे उन्होने वामासिक चीवर पहनने की प्रथा जारी रक्खी।

---

१. मथुरा-कला में इस जातक का चित्रण हुआ है, मथुरा-म्यूजियम हैंडबुक, चित्र ६, मूर्ति आई० ४, पृ० १७।

२. इतस्ततः पिपीलकश्रेणीनां श्यामाकतडुलकणान्स्वयमेव किरन्तम् (२३७)। चटनाल जिमाना = चीटियो को आटा, चावल, बूरा आदि खिलाना।

३. अवलोकितेश्वर एक प्रसिद्ध बोधिसत्त्व का नाम है, किन्तु यहाँ दूसरी ध्वनि यह है कि वह बौद्ध होते हुए भी ईश्वर या शिव का दर्शन करनेवाला था (अवलोकित ईश्वर. येन)।

४ विलोल विलम्बमान वामांसाच्चीवरपटान्तम् (२३८)।

५. देखिए कुमार स्वामी, भारतीय कला का इतिहास, चित्र-संख्या १५८, १६०, १६१ में उभयांसिक चीवरवाली बुद्ध-मूर्तियाँ है। चित्र-सख्या १५९ और १६३ में वामांसिक चीवर है।

आवश्यक उपचार के अनन्तर भदन्त दिवाकर मित्र ने हर्ष से विन्ध्याटवी में आने का कारण पूछा। हर्ष ने आदर के साथ कहा –'मेरे इस महावन मे भ्रमण करने का कारण मतिमान् सुनें। परिवार के सब इष्ट व्यक्तियों के नष्ट हो जाने के बाद मेरे जीवन का एकमात्र सहारा मेरी छोटी बहन बची थी। वह भी अपने पति का वियोग हो जाने के बाद शत्रु के भय से किसी प्रकार इस विन्ध्यवन में आ गई जहाँ अनेक शबर रहते हैं। मै रात-दिन उसे ढूँढ रहा हूँ, पर अभी तक कोई पता नही मिला। यदि किसी वनचर से आपको कोई समाचार मिला हो तो कृपया बतावें।' सुनकर दु खीभाव से भदन्त ने कहा––'अभी तक ऐसा कोई वृत्तान्त मुझे नही मिला।'

इसी समय एक अन्य भिक्षु ने रोते हुए सूचना दी––'भगवन् भदन्त, अत्यन्त दु ख का विषय है। कोई एक अत्यन्त सु दरी बाल अवस्था की स्त्री विपत्ति में पड़ी हुई शोक के आवेश से अग्नि मे जलने के लिये तैयार है। कृपया चलकर उसे समझाएँ।'

सुनते ही हर्ष को अपनी बहन की ही शका हुई और उसने गद्गद कठ से पूछा—'हे पाराशारिन्, कितनी दूर पर वह स्त्री है और क्या वह इतनी देर तक जीवित रहेगी? क्या तुमने यह पूछा कि वह कौन है, कहाँ की है और क्यों वन मे आई है तथा क्यों अग्नि में जलना चाहती है?' भिक्षु ने कहा––'महाभाग, आज प्रात भगवान् की वंदना करने के बाद इसी नदी-तट से घूमता हुआ मै बहुत दूर निकल गया था। एक जगह पेड़ों के घने झुरमुट में मैंने बहुत-सी स्त्रियों के रोने का शब्द सुना जैसा अनेक वीणाओं को कोई जोर से झनझना रहा हो[1]। उस प्रदेश मे जाकर क्या देखता हूँ कि अनेक स्त्रियों से घिरी हुई[2] एक स्त्री दु ख में पड़ी हुई अत्यन्त करुणा से विलाप कर रही है। मुझे पास में देखकर उसने प्रणाम किया और उनमे से एक ने अत्यन्त दीन वाणी से कहा—"भगवन्, प्रव्रज्या प्राय सब सत्त्वो पर अनुकम्पा करनेवाली होती है। सौगत लोग शरण मे आए हुओं का दु:ख दूर करने की दीक्षा लिए रहते है। भगवान् शाक्यमुनि का शासन करुणा का स्थान है। बौद्ध साधु सब का उपकार करते है। प्राणो की रक्षा से बढकर और पुण्य नहीं सुना जाता। यह हमारी स्वामिनी पिता के मरण, स्वामी के नाश, भाई के प्रवास और अन्य सब बन्धुओ के बिछुड जाने से अनाथ हुई नीच शत्रु द्वारा किए गए पराभव के कारण आप्राप्त दारुण दुखों को न सह सकती हुई अग्नि में प्रवेश कर रही है। कृपया बचाइए और इसे समझाइए।"

१ सार्यमाणानां अतितारतानवर्तिनीना वीणातन्त्रीणामिव झाकारम् (२४१)।

२ यहाँ बाण ने वनव्यसनग्रसित स्त्रीवृन्द का वर्णन करते हुए कुछ पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग किया है, जैसे कोई स्त्री चीनांशुक के पल्ले का छीका बनाकर उसमें नारियल की कटोरी से युक्त कलशी मे रसाल का तेल लटकाए हुए थी। इस प्रकरण मे दूसरा महत्त्वपूर्ण उल्लेख मुक्तांशुक का है (मुक्तमुक्ताशुकरक्तकुसुमकनकपत्राभरणाम्, २४२)। शकर ने मुक्ताशुक को मालवदेश का बना हुआ उत्तरीय कहा है। ज्ञात होता है कि यह असली मोतियो को पोहकर बना हुआ वास्तविक उत्तरीय था जो राजघरानो में व्यवहार में आता था। बाण की समकालीन कला अथवा गुप्तयुग की मूतियो मे मुक्ताशुक का उदाहरण अभी मेरे देखने मे नही आया किन्तु बतनमारा से प्राप्त एक यक्षिणी स्त्री इस प्रकार के मुक्ताशुक की पटली पहने हुए है (देखिए, कुमारस्वामी कृत-भारतीय कला का इतिहास, चित्र ३७, बरुआ, भरहुत, चित्र ७२)।

यह सुनकर मैने दु खी हो कर धीरे से कहा--'आर्ये, जो तुम कहती हो सो ठीक है, किन्तु मेरे समझाने से इसका दु ख कम न होगा। यदि मुहूर्त भर भी तुम इसे रोक सको तो दूसरे भगवान् बुद्ध के समान मेरे गुरु इस समाचार को सुनते ही यहाँ आकर अनेक आगमों से गौरवशालिनी अपनी वाणी से[1] इसे प्रबोधित करेंगे।' यह सुनकर उसने कहा--'आर्य, शीघ्रता करें।' और यह कहकर फिर मेरे चरणों मे गिर गई। सो, यह समाचार लेकर मै आपके पास आया हूँ (२४५)।

राजा ने भिक्षु की बात सुनते ही राज्यश्री का नाम न कहे जाने पर भी तुरन्त समझ लिया कि वही इस विपन्नावस्था में है और श्रमणाचार्य दिवाकर मित्र से कान मे कहा—'आर्य' अवश्य वह मुझ मन्दभाग्य की बहिन ही है जो दुर्भाग्य से इस दुरवस्था को प्राप्त हुई।' और उस दूसरे भिक्षु से कहा—'आर्य, उठो और बताओ वह कहाँ है, जिससे तुरत जाकर उसे जीवित ही बचाया जा सके।'

यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ। तब सब शिष्यवर्ग को लेकर दिवाकरमित्र और सब सामन्तों के साथ पीछे चलते हुए हर्ष उस शाक्य भिक्षु के दिखाए हुए मार्ग के अनुसार पैदल ही उस स्थान के लिये चले। दूर से ही उन्होंने अनेक स्त्रियों को विलाप करते हुए सुना—'पुष्पभूत-वश की लक्ष्मी कहाँ चली गई? हे मुखरवश के वृद्ध, अपनी इस विधवा वधू को क्यों नहीं समझाते? भगवान् सुगत, तुम भी क्या इस दु खिनी के लिये सो गए? पुष्पभूति के भवन मे रहनेवाले हे राजधर्म, तुम क्यों उदासीन हो गए? हे विपत्ति के सगे विन्ध्याचल, क्या तुम्हारे प्रति यह अजलि व्यर्थ जायगी? माता महाटवी, आपद्ग्रस्त इसका विलाप क्यो नही सुनती? हा देवी यशोवती, आज लुटेरे दैव ने तुम्हे लूट लिया! देव प्रतापशील, पुत्री आग मे जल रही है और तुम नहीं आते! क्या अपत्य-प्रेम जाता रहा? महाराज राज्यवर्धन, क्यों नही दौड़कर आते? क्या बहिन का प्रेम कुछ कम हो गया है? हे वायु, मै तेरी दासी हूँ, जल्दी जाकर दु ख का यह संवाद हर्ष से कह दे।' इत्यादि अनेक भाँति से बाण ने स्त्रियों के विलाप का वर्णन किया है। यह सब सुनकर हर्ष तुरन्त वहाँ दौड़ा गया और अग्नि-प्रवेश के लिये तैयार राज्यश्री को उसने देखा और उसके ललाट पर हाथ रखकर मूर्च्छित होती हुई उसको सहारा दिया। इस अवस्था मे सहसा भाई को पाकर गले लगकर रोते हुए राज्यश्री ने 'हा पिता! हा माता!' कहकर बहुत विलाप किया। हर्ष भी देर तक मुक्त कठ से रोते रहे और कहा—'बहिन, अब धीरज धरो, अपने को सँभालो।' आचार्य ने भी कहा-'हे कल्याणिनी, बड़े भाई की बात मानो। शोक का आवेग कुछ कम होने पर हर्ष उसे अग्नि के पास से दूर हटाकर निकटवर्ती वृक्ष के नीचे ले गए। वहाँ पहले बहिन का मुख धोया और फिर अपना, और फिर मन्द स्वर मे कहा—'वत्से, भदन्त को प्रणाम करो। ये तुम्हारे पति के दूसरे हृदय और हमारे गुरु है।'

---

१ दु खान्धकारपटलभिदुरै सौगतै. सुभाषितै स्वकैरपदर्शितनिदर्शनै नानागमगुरुभि गिरा कौशलै कुशलशीलामेना प्रबोधपदवीमारोपिष्यति, २४५। बाण के ये शब्द उनके समकालीन बौद्ध सस्कृत-साहित्य पर घटित होते हैं जिनकी सबसे बड़ी विशेषता दर्शितनिदर्शन अर्थात् दृष्टान्तो के द्वारा धर्म और नीति की व्याख्या करने की शैली थी।

पति का नाम आते ही उसके नेत्रों में जल भर आया। जब उसने प्रणाम किया तो दिवाकर मित्र के नेत्र भी गीले हो गए और वे मुँह फेरकर दीर्घ श्वास छोडने लगे। फिर क्षण भर ठहरकर बोले--'अब अधिक रोने से क्या! अब सबको आवश्यक स्नान करके पुन आश्रम को चलना चाहिए।' यह सुनकर हर्ष ने बहिन के साथ उस पहाडी नदी मे स्नान किया और आश्रम मे लौटकर ग्रहवर्मा को पिंड देने के बाद बहिन को पहले भोजन कराया और पीछे स्वयं भी कुछ खाया। भोजन करके उसने सब हाल विस्तार से सुना--किस प्रकार राज्यश्री बन्धन में डाली गई, किस प्रकार कान्यकुब्ज में गौड राजा के द्वारा उपद्रव कराया गया, किस प्रकार गुप्त नाम के एक कुलपुत्र ने कारागार से (गुप्ति) उसे निकाला, किस प्रकार बाहर आने पर उसने राज्यवर्धन का मरण-वृत्तान्त सुना, और किस प्रकार भोजन का परित्याग कर देने से दुर्बल होकर वह विन्ध्याटवी में घूमती रही, और फिर किस प्रकार अग्नि में जलने की तैय्यारी की (२५०)।

इसी अवस्था मे हर्ष जब अपनी बहिन के साथ एकान्त मे बैठे थे, आचार्य दिवाकर मित्र वहाँ आए और कुछ काल रुककर कहने लगे--'श्रीमान्, सुनिए, मुझे कुछ कहना है। यह जो आकाश मे तारापति चन्द्रमा है उसने यौवन के उन्माद में बृहस्पति की स्त्री तारा का अपहरण किया था और स्वर्ग से भागकर उसके साथ इधर-उधर घूमता रहा। फिर देवताओं के समझाने-बुझाने से उसे बृहस्पति को वापिस कर दिया, किन्तु उसके विरह की ज्वाला उसके हृदय में सुलगती ही रही। एक बार उदयाचल से उठते हुए इसने समुद्र के विमल जल में पडी हुई अपनी परछाईं देखी और कामभाव से तारा के मुख का स्मरण करके विलाप करने लगा। समुद्र में जो इसके आँसू गिरे उन्हे सीपियों पी गईं और उनके भीतर सुन्दर मोती बन गए। उन मोतियों को पाताल मे वासुकि नाग ने किसी तरह प्राप्त किया और उसने उन मुक्ताफलों को गूँथकर इकलडी माला (एकावली) बनाई जिसका नाम मंदाकिनी रक्खा। सब औषधियो के अधिपति सोम के प्रभाव से वह अत्यन्त विषघ्नी है और हिमरूपी अमृत से उत्पन्न होने के कारण सन्तापहारिणी है। इसलिए विष-ज्वालओं को शात रखने के लिये वासुकि सदा उसे पहने रहता था। कुछ समय बाद ऐसा हुआ कि नागलोग भिक्षु नागार्जुन को पाताल में ले गए और वहाँ नागार्जुन ने वासुकि से उस माला को माँगकर प्राप्त कर लिया। रसातल से बाहर आकर नागार्जुन ने मन्दाकिनी नामक वह एकावली माला अपने मित्र त्रिसमुद्राधिपति सातवाहन नाम के राजा को प्रदान की और वही माला शिष्य-परम्परा द्वारा हमारे हाथ में आई। यद्यपि आपको किसी वस्तु का देना एक अपमान है, तथापि औषधि समझकर विष से अपने शरीर की रक्षा करने के लिये आप कृपया इसे स्वीकार करें।' यह कहकर पास में बैठे हुए शिष्य के चीवर वस्त्र मे से ले कर वह मन्दाकिनी राजा को दी (२५१)।

बाण का यह वर्णन तत्कालीन किंवदंतियों के मिश्रण से बना है। भिक्षु नागार्जुन अनेक आश्चर्य और चमत्कारों के विधाता समझे जाते थे। उनके सम्बन्ध मे इस प्रकार की कहानी बाण के समय में लोक-प्रचलित थी। नागार्जुन और सातवाहन नरेश का मैत्री-सम्बन्ध सम्भवत ऐतिहासिक तथ्य था। कहा जाता है कि नागार्जुन ने अपने मित्र सातवाहन राजा को बौद्धधर्म के सार का उपदेश करते हुए एक लंबा पत्र लिखा था। सुहृल्लेख

नामक उस पत्र का अनुवाद तिब्बती भाषा मे अभी तक सुरक्षित है [१]। गुप्तकाल में मोतियों की इकहरी एकावली माला सब आभूषणों से अत्यधिक प्रिय थी। कालिदास ने कितनी ही बार उसका उल्लेख किया है [२]। हर्षचरित और कादम्बरी में भी एकावली का वर्णन प्राय आता है। गुप्तकालीन शिल्प की मूर्तियो और चित्रो में इन्द्रनील की मध्यगुरिया-सहित मोतियो की एकावली बराबर पाई जाती है। (चित्र ६२) एकावली के सम्बन्ध में उस युग में इस प्रकार की भावना का होना कि वह एक विशिष्ट मंगलिक आभूषण था, सहज समझा जा सकता है। विशेष आभूषणों के सम्बन्ध मे जौहरियों और रनिवासों में उनके चमत्कार की कहानियाँ बन जाती थीं। महा उम्मग जातक मे इन्द्र के द्वारा कुश राजा को मंगल मणि-रत्न देने का उल्लेख है। कालिदास ने इन्हें जैत्राभरण कहा है (रघु० १६।८३)।

वह एकावली घने मोतियों को गूँथकर बनाई गई थी (घनमुक्ता)। उसे देखकर आँखे चौंधियाँ जाती थी। हर्ष ने जैसे ही उसे देखा, उसके नेत्र बंद होने और खुलने लगे। उसके बीच में एक पदक या मध्यमणि लगी हुई थी (प्रकटपदकचिह्ना)। उसके मातियों की तरल किरणे स्फुरित हो रही थी। वह कपूर की भाँति शुक्ल थी। भुवनलक्ष्मी की स्वयंम्बर-माला थी, या मन्त्र, कोश और साधन में प्रवृत्त राजधर्म की अक्षमाला थी। वह कुबेर के कोश की सख्या बतानेवाली मानों लेख्य पट्टिका थी जो मुद्रा और अलकारों से सुशोभित थी [३]। दिवाकर मित्र ने उसे लेकर हर्ष के गले में बाँध दिया। सम्राट् ने भी प्रेम प्रदर्शन करते हुए कहा--आर्य, ऐसे रत्न प्राय मनुष्यों को नही मिलते। यह तो आर्य की तप-सिद्धि या देवता का प्रसाद है। मै तो अब आर्य के वशीभूत हूँ। स्वीकार करने या प्रत्याख्यान करने का मुझे अब अधिकार कहाँ? जीवन-पर्यन्त यह शरीर आर्य के अर्पित है। यथेष्ट आज्ञा करें।'

कुछ समय बीतने पर जब राज्यश्री आश्वस्त हुई तो उसने अपनी ताम्बूलवाहिनी पत्रलता को बुलाकर धीरे से कान में कुछ कहा। पत्रलता ने विनयपूर्वक हर्ष से विनती की—'देव, देवी विनती करती है कि उन्हे काषाय वस्त्र धारण करने की अनुज्ञा मिले'। हर्ष यह सुनकर चुप रहे, किन्तु दिवाकर मित्र ने धीरे स्वर में कहा—'आयुष्मती, शोक पिशाच का ही दूसरा नाम है, यह कभी न बुझनेवाली अग्नि है, प्राणो का वियोग न करनेवाला यमराज है, कभी न समाप्त होनेवाला राजयक्ष्मा है। यह ऐसी नीद है जिससे कोई जागता

१ वेंजल (Wenzel) कृत सुहल्लेख का अंग्रेजी अनुवाद, पालीटैक्स्ट सोसाइटी जरनल, १८८६, पृ० १ आदि। सातवाहन राजा की पहिचान के लिये देखिए, सतीशचन्द्र विद्या-भूषण का लेख, पूना ओरिएण्टल कान्फ्रेंस, १९१९, पृ० १२५। और भी, विंटरनिज, भारतीय साहित्य, भाग २, पृ० ३४७।

२ रघुवंश १६।६९,
प्रागेव मुक्ता नयनाभिराम प्राप्येन्द्रनील किमुतोन्मयूखम्।
मेघदूत १।४६, एकं मुक्तागुणमिव भुव. स्थूलमध्येन्द्रनीलम्।

३. समुद्रालकारभूता सख्यालेख्यापट्टिकामिव कुबेरकोशस्य (२५२)। मालवराज के कोश का वर्णन करते हुए कहा जा चुका है कि कोश के कलशो के साथ संख्यासूचक लेख्यपत्र बँधे रहते थे (२२७) और उनके चारो ओर आभूषणों से बनी हुई माला पहनाई जाती थी।

नहीं। यह हृदय का नासूर (महाव्रण) है जो सदा बहता रहता है। बहुत-से शास्त्र तथा काव्य-कथाओं को जाननेवाले विद्वानों के हृदय भी शोक को नही सह सकते, अबलाओं के दुर्बल हृदय की तो बात ही क्या? अतएव हे सत्यव्रते, कहो अब क्या किया जाय, किसे उपालभ दें, किसके आगे रोवें और किससे हृदय का दु ख कहे? सब-कुछ आँख मूँद कर सहना चाहिए। हे पुण्यवती, पूर्वजन्म की इन स्थितियो को कौन मेट सकता है? सभी मनुष्यो के लिये रात-दिन, जन्म-जरा-मृत्युरूपी रहट की घडियों की लबी माल घूम रही है।[१] पंचमहाभूतों के द्वारा जितने मानस व्यवहार हो रहे है वे सब यमराज के विषम अनुशासन से नियन्त्रित होकर विलय को प्राप्त हो जाते है[२]। घर-घर में आयु को नापने की घड़ियाँ लगी हुई हैं जो एक-एक क्षण का हिसाब रखती है[३]। चारो ओर कालपुरुष हाथों मे कालपाश लिये घूम रहे है। रात-दिन यम का नगाडा बज रहा है। हर घर मे यमराज के भयकर दूत यम-घंटा बजाकर सब जीवो के सहरण के लिये घोर घोषणा कर रहे है। हर दिशा में परलोक के यात्रियों की पगडडियाँ बनी हुई है जिनपर विधवाओं के बिखरे केशों से शबलित सहस्त्रों अथियाँ जा रही हैं। कालरात्रि की चिता के कोयलों के समान काल-जिह्वा प्राणियों के जीवन को चाट रही है जैसे गाय बच्चे को। सब प्राणियों को चट्ट करनेवाली मृत्यु की भूख कभी नहीं बुझती। अनित्यतारूपी नदी तेजी से बह रही है। पंचमहाभूतों की गोष्ठियाँ क्षण भर ही रहती है। साधु जैसे दिन मे कमडलु रखने के लिये लकडियों को जोड़कर पिंजरा बनाते है और रात को उसे खोल डालते है वैसा ही यह शरीर का यन्त्र है[४]। जीव को बंधन में बाँधनेवाले पाश की डोरी के तन्तु एक दिन अवश्य टूटते है। सारा नश्वर संसार परतन्त्र है। हे मेधाविनी, ऐसा जानकर अपने सुकुमार

१ ससरन्त्यो नक्त दिवं द्राघीयस्यो जन्मजरामरणघटनघटीयन्त्रराजिरज्जव पञ्जनानाम्, (२५४)। आजकल रहट की घडियाँ और माल दोनो लोहे की बनने लगी हैं, किन्तु कुछ ही समय पूव घडियाँ मिट्टी की और माल मूँज की रस्सियो से बनती थी। बाण ने भी रस्सी की माल का ही उल्लेख किया है। पजाब में अभी तक मिट्टी की घड़ियाँ (टिंड) रस्सी की माल से बाँधी जाती है।

२ पञ्चमहाभूतपञ्चकुलाधिष्ठितान्त.करणव्यवहारदर्शननिपुण', सर्वकंषा विषमा धर्मराजस्थितय. (२५४)। यहाँ श्लेष से पञ्चकुल नामक संस्था के न्यायाधिकरण और राज्य के साथ उसके सम्बन्ध का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। प्रत्येक गाँव मे पञ्चकुल-सञ्ज्ञक पाँच अधिकारी गाँव के करण या कार्यालय के व्यवहार (न्याय और राजकाज) चलाते थे। ये पञ्चकुल सब प्रकार राजकुल की आज्ञाओ के अधीन थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय के साँची-लेख में उल्लिखित पञ्चमण्डली पचकुल का ही रूप था।

३ निलये-निलये कालनालिका', २५४। कालनालिका से तात्पर्य समय नापने की पानी या बालू की घड़ी था। श्लेष से इसका दूसरा अर्थ मृत्यु द्वारा स्थापित घडी जो छीजती हुई आयु का हिसाब लगा रही है। नालिका और नाडिका पर्यायवाची हैं। एक नाडिका = १ घड़ी (=२४ मिनट), २ नाडिका = १ मुहूर्त।

४, रात्रिषु भगुराणि पात्रयन्त्रपजरदारूणि देहिनाम् (२५५)। पात्र रखने के यन्त्र-पजर का उल्लेख भैरवाचार्य के शिष्य के वर्णन में पहले हो चुका है (दारवफलकत्रयत्रिकोण त्रियष्टिमिविष्टकमडंलुना, १०१)। कुछ प्रतियों में पात्रयन्त्रपजर के स्थान पर गात्रयन्त्रपंजर भी पाठ है।

मन में अन्धकार को न फैलने दो। विवेक (प्रतिसख्यान) का एक क्षण भी धृति के लिये बड़ा सहारा होता है। अब यह पितृतुल्य तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता ही तुम्हारा गुरु है। जो यह आदेश दे वही तुम्हारा कर्त्तव्य है।' यह कहकर वह चुप हो गया।

उसके मौन होने पर हर्ष ने कहा—'आर्य के सिवा और कौन इस प्रकार के वचन कहेगा? आर्य विषम विपत्ति में सहारा देनेवाले स्तम्भ है। स्नेह से आर्द्र धर्म के दीपक है। आप समुद्र की तरह अभ्यर्थना की मर्यादा रखते हैं। अतएव सेवा में एक याच्ञा करता हूँ। काम हरज करके भी अपनी इस दुखिया छोटी बहन का लालन करना मेरा कर्तव्य है। किन्तु भाई के वध का बदला लेने के लिये शत्रुकुल के नाश की प्रतिज्ञा मै सब लोगों के समक्ष कर चुका हूँ [1]। कुछ समय तक आर्य मेरे इस काम मे सहायक हों। मै आपका अतिथि हूँ। कृपया मुझे अपने शरीर का दान दें। आज से लेकर जबतक मै अपनी प्रतिज्ञा के बोझ को हल्का बनाऊँ और दुखी प्रजाओं को ढाढस दूँ, तबतक मै चाहता हूँ कि आप मेरे साथ ही रहनेवाली मेरी इस बहिन को धार्मिक कथाओं से, रजोगुण-रहित विवेक उत्पन्न करनेवाले उपदेशों से, शील और शम देनेवाली शिक्षाओं (देशनाभि [2]) से, एव क्लेशो को मिटानेवाले भगवान् तथागत के सिद्धान्तों से समझाते रहे। अपने उस कार्य से निवृत्त होने पर मै और यह एक साथ काषाय ग्रहण करेंगे। बड़े लोग याचकों को क्या नहीं दे डालते? कहते है, दधीचि ने इन्द्र को अपनी हड्डियाँ दे डाली थीं। क्या मुनिनाथ बुद्ध ने शरीर की कुछ भी परवाह न करके अनुकम्पावश अपने-आपको कितनी बार हिंस्र पशुओ के लिये नही दे डाला?।' यह कहकर सम्राट् चुप हो गए।

उत्तर में भदन्त ने फिर कहा—'भाग्यशाली को दो बार बात कहने की आवश्यकता नहीं। मै पहले ही अपने मन में अपने इस शरीर को आपके गुणो के समर्पित कर चुका हूँ। छोटे या बड़े जिस काम मे मेरा उपयोग हो सके, आपके अधीन है।'

इस प्रकार दिवाकर मित्र से अभिनन्दित होकर हर्ष उस रात को वहाँ रहे। अगले दिन वस्त्र, अलंकार आदि देकर निर्घात को बिदा किया। तब आचार्य और राज्यश्री को साथ लेकर कुछ पड़ाव करते हुए गगा के किनारे अपने कटक में फिर लौट आए (२५७)।

इस प्रकार हर्षचरित की यह कहानी समाप्त हुई। इसके बाद बाण ने मानो अपने ग्रन्थ की पूर्णाहुति डालते हुए बड़े घोररूप में सूर्यास्त का वर्णन किया है। इस वर्णन में आगे आनेवाले भीषण युद्धो की परछाई साकार हो उठी है।

---

१ अस्माभिश्च भ्रातृवधापकारिरिपुकुलप्रलयकरणोद्यतस्य बाहोर्विधेयैर्भूत्वा सकललोक प्रत्यक्ष प्रतिज्ञा कृता (२५६)।

२ पहले दिवाकार मित्र के आश्रम के वर्णन मे भी समुपदेश, धर्मदेशना और बोधिसत्त्व जातक—इन तीन उपायों से धर्म के प्रचार का उल्लेख किया गया है। यहाँ भी उन्ही की ओर स्पष्ट सकेत है। अभिधर्म आदिक सिद्धान्त-ग्रन्थों का प्रवचन उपदेश कहलाता था। पचशील या दशशील की शिक्षा धर्मदेशना थी। बोधिसत्त्वों की जातक-कथाओ या अवदानो को सुनाकर कहानियों (निदर्शनों) की रोचक पद्धति से बौद्धधम का उपदेश देने का तीसरा ढंग था।

सूर्य ने गगनतल में अपनी यात्रा पूरी करते हुए नए रुधिर के समान अपनी लाल-लाल किरणों के जाल को पुन अपने शरीर में सिकोड लिया, जैसे कुपित याज्ञवल्क्य के मुख से वान्त यजुष मन्त्रों को शाकल्य ने पुन पान कर लिया था। क्रम से सूर्य की लाली मास की लाली के समान और बढी और वह ऐसा जान पडने लगा मानो अश्वत्थामा के मस्तक से भीमसेन के द्वारा निकाली गई रक्तरंजित मणि हो। अथवा वह ब्रह्मा के मस्तकरूपी उस खप्पर की भाँति लग रहा था जिसे शिव ने काटकर बहती हुई शिराओं के रक्त से भर दिया था [1]। अथवा वह पितृवध से कुपित परशुराम द्वारा निर्मित रुधिर का ह्रद था जो महस्रार्जुन के कन्धों को चीरनेवाले कुठार की धार से काटे हुए क्षत्रियों के रुधिर से भरा गया था। अथवा सूर्य का वह गोला गरुड के नखों से क्षत-विक्षत विभावसु कछुए के आकाश में लुढकते हुए लोथडे की तरह दिखाई पड रहा था [2]। अथवा गर्भ की नियत अवधि के बीतने से दु खी विनता के द्वारा आकाश मे टुकडे करके फेंके हुए उस अंडे की तरह लग रहा था जिसके भीतर गर्भ की दशा मे अरुण का अपूर्ण मासपिंड हो। अथवा वह बृहस्पति के उस कटाह की तरह था जिसमे असुरों के नाश के लिये अभिचार कर्म करते हुए वे शोणित के क्वाथ मे चरु पका रहे थे। अथवा लाल सूर्य की वह झाँकी महाभैरव के उस मुखमडल की तरह थी जो तुरन्त मारे हुए गजासुर के टपकते हुए लोहू से भीषण दीखता है [3]। दिन के अन्त मे सन्ध्या उस मेघ के साथ मिलकर जो समुद्र मे पडती हुई परछाईं से लाल हो रहा हो, उस बेताल के साथ चिमटी जान पडती थी जिसने अभी कच्चा मास खाया हो। समुद्र भी सन्ध्या की उस लाली से उसी प्रकार लाल हो उठा जैसे विष्णु की छाती से दले हुए मधु-कैटभ के रुधिर से पहले कभी हो गया था।

सन्ध्या का विकराल समय ज्यो ही समाप्त हुआ त्यों ही रजनी हर्ष के लिये चन्द्रमा का उपहार लेकर आई, मानो अपने कुल की कीर्त्ति ही साक्षात् उसके लिये संगमरमर का मधुपात्र यश पान के लिये लाई हो[4], अथवा स्वय राजलक्ष्मी सतयुग की स्थापना के लिये उद्यत उसके लिये चाँदी की गोल शासन-मुद्रा लाई हो [5]। अथवा उसके भाग्योदय की अधिष्ठात्री देवी

१ कथा है कि शिव ने ब्रह्मा के पाँचवें मस्तक को काटकर उसका कपाल बनाया और उसे हाथ में लेकर भयकर भिक्षाटन-मुद्रा मे घूमते रहे। शिव की इस प्रकार की भीषण भिक्षाटन-मूर्ति लगभग बाण के युग मे बने हुए अहिच्छत्रा के तीन मेधियोवाले शिव-मन्दिर मे लगी मिली है। (दे० अहिच्छत्रा के खिलौनों पर मेरा लेख, चित्र ३०१, पृ १६९)।

२. गरुड और विभम्वसु कछुए की कथा, महाभारत, आदिपर्व, २९ अध्याय में दी हुई है।

३ इस प्रकार के महाभैरव की एक मिट्टी की बडी मूर्ति अहिच्छत्रा के ऊपर कहे शिव-मन्दिर से प्राप्त हुई है (देखिये वही लेख, चित्र स० ३०० पृ० १६८)।

४ मुक्ताशैलशिलाचषक, २५८। मुक्ताशैलशिला का अर्थ सगमरमर ही ज्ञात होता है।

५ राजतशासनमुद्रानिवेश इव राज्यश्रिया (२५८)। सोनपत से मिली हुई हर्ष की ताँबे की बनी हुई गोल मुद्रा का उल्लेख ऊपर हो चुका है, किन्तु बाण को यह भलीभाँति ज्ञात था कि ऐसी महा मुद्राएँ चाँदी की ही बनती थी। कुमारगुप्त की इसी प्रकार की एक चाँदी की मुद्रा भीतरी गाँव (जिला गाजीपुर) से प्राप्त हो चुकी है जो इस समय लखनऊ के सग्रहालय में सुरक्षित है। शकर ने चाँदी की इस प्रकार की शासन-मुद्रा को राज्याधिकार महामुद्रा कहा ह। राजसिंहासन पर बैठते समय राजा को इस प्रकार की चाँदी की अधिकार-महामुद्रा प्रदान की जाती थी। भीतर की मुद्रा से ज्ञात होता है कि इस प्रकार की मुद्राओ के लेख में केवल सम्राट की वशावली का ही पूर्ण परिचय रहता था।

ने सब द्वीपों की दिग्विजय के लिये कूच करते हुए उसकी सेवा मे श्वेतद्वीप[1] का प्रतिनिधि दूत भेजा हो। इस प्रकार उस रात्रि मे वह शुभ्र चन्द्रोदय प्रतीत हुआ।

हर्षचरित की सांस्कृतिक व्याख्या समाप्त

१ श्वेतद्वीप का उल्लेख पहले हो चुका है (५९, २१६)।

परिशिष्ट १

स्कन्धावार, राजकुल, धवलगृह

हर्षचरित और कादम्बरी मे बाण ने वर्णन का जो पूर्वापर क्रम दिया है उसका स्पष्ट चित्र समझने के लिये प्राचीन भारतीय राजमहल या प्रासाद की रचना और उसके विविध भागों का विवरण एवं तत्सम्बधी पारिभाषिक शब्दावली का परिचय आवश्यक है। सबसे बडी इकाई स्कन्धावार होती थी। उसके भीतर राजकुल और राजकुल के भीतर धवलगृह था। स्कन्धावार पूरी छावनी की सज्ञा थी जिसमें हाथी, घोड़े, सेना, सामन्त रजवाड़ों का पडाव भी रहता था। राजकुल स्कन्धावार के अतर्गत राजमहल था। यह बहुत विशाल होता था जिसके भीतर कई आँगन और चौक होते थे। राजप्रासाद के भीतर राजा और रानियों का जो निजी निवासस्थान था उसकी सज्ञा धवलगृह थी। बाण के वर्णनों को पूर्वापर साहित्य की सहायता से स्पष्ट करने का प्रयत्न यहाँ किया जाता है।

स्कन्धावार—हर्षचरित के दूसरे उच्छ्वास (५८-६०) और पाँचवे उच्छ्वास (१५२-१५६) में स्कन्धावार, राजद्वार और धवलगृह का वर्णन किया गया है। अजिरवती (राप्ती) नदी के किनारे मणितारा गाँव के पास स्कन्धावार मे बाण ने हर्ष से पहली भेंट की। स्कन्धावार का सन्निवेश लम्बी-चौडी जगह घेरता था। पूरी छावनी का पडाव उससे सूचित होता था। सन्निवेश की दृष्टि से स्कन्धावार के दो भाग थे। एक तो बाहरी सन्निवेश और दूसरा राजकुल। बाह्य सन्निवेश में सबसे पहले एक ओर गजशाला (हाथीखाना) और दूसरी ओर मन्दुरा अर्थात् घोड़े और ऊँटों के लिये स्थान होता था। इसके बाद बाहर के लम्बे चौड़े मैदान में राजकाज से राजधानी मे आनेवाले राजाओं और विशिष्ट व्यक्तियों के शिबिर लगे थे। इस प्रकार राजकुल के सामने एक पूरा शहर ही छावनी के रूप मे बस गया था। इसीमें बाजार और हाट भी था। पाँचवे उच्छ्वास में लिखा है कि जब प्रभाकरवर्द्धन की बीमारी का हाल सुनकर हर्ष स्कन्धावार मे लौटा तो वह सबसे पहले बाजार मे से गुजरा। (स्कन्धावार समाससाद। प्रविशन्नेव च विपणि वर्त्मनि यमपट्टिक ददर्श, १५३)। विपणिवर्त्म या बाजार की मुख्य सड़क स्कन्धावार का ही अंग मानी जाती थी। दिल्ली के लाल किले के सामने का जो लम्बा चौडा मैदान है वह उर्दू बाजार अर्थात् छावनी का बाजार कहलाता था। यह विपणिवर्त्म का ही मध्यकालीन रूप था। इसी चौड़े मैदान मे सम्राट् से मिलने के लिये आनेवाले राव रजवाडों के तम्बू लगते थे। हर्ष के स्कन्धावार मे जैसा कि पृष्ठ ३७-३८ पर स्पष्ट किया गया है, दस प्रकार के शिबिर या पड़ाव पड़े हुए थे। उनमे अनेक देशों के राजा, युद्ध मे परास्त हुए शत्रु, महासामन्त, देशान्तरों के दूतमंडल, समुद्र-पार के देशों के निवासी जिन्हें म्लेच्छ जाति का कहा गया है और जिनमें सभवतः शक, यवन, हूण, पारसीक जातियों के लोग थे, जनता के विशिष्ट व्यक्ति, और सम्राट् से मिलनेवाले धार्मिक आचार्य एव साधु-संन्यासियों के अलग-अलग शिबिर थे। राजकुल के

बाहर और भी बहुत-सा खुला मैदान होता था जिसे अजिर कहा गया है (दे० स्कन्धावार का चित्र, फलक २५)।

राजकुल—स्कधावार के भीतर लगभग अन्त में सर्वोत्तम सुरक्षित स्थान मे राजकुल का निर्माण किया जाता था। राजकुल को राजभवन भी कहा गया है। उसकी ड्योढी राजद्वार कहलाती थी। स्कन्धवार में आने-जाने पर कोई रोक-टोक न थी, किन्तु राजकुल मे प्रविष्ट होने पर रोकथाम थी। राजद्वार की ड्योढी पर बाह्य प्रतीहारों का पहरा लगता था। राजद्वार के भीतर रास्ते के दोनों ओर के कमरे द्वारप्रकोष्ठ या अलिन्द कहलाते थे। राज्यश्री के विवाह के समय सुनार लोग अलिन्द मे बैठकर सोना घड रहे थे (१४२)। अलिन्द शब्द की व्युत्पत्ति (अलिं ददाति) से सूचित होता है कि राजकुल मे प्रविष्ट होनेवालों का यहाँ पर कुछ जलपान आदि से स्वागत-सत्कार किया जाता था। अलि [1] का अर्थ छोटा कुल्हड है। अलिन्द को ही बहिर्द्वार प्रकोष्ठ कहा गया है। अलिन्द गुप्तकाल की भाषा का या उससे थोड़ा पहले का शब्द था। उससे पूर्व समय में द्वार के इस हिस्से को प्रघण या प्रघाण [2] कहा जाता था (दे० राजकुल का चित्र, फलक २६)।

राजकुल के भीतर कई चौक होते थे जिन्हे कक्ष्या कहा गया है। राजमहलों के वर्णन में अंग्रेजी शब्द कोर्ट का पर्याय ही भारतीय महलों मे कक्ष्या था। हर्ष के राजकुल में तीन कक्ष्याएँ थीं। कादम्बरी मे तारापीड के राजमहल मे चन्द्रापीड सात कक्ष्याएँ पार करके अपने पिता तारापीड के पास पहुँचा था। रामायण मे दशरथ के राजमहल मे पाँच कक्ष्याएँ थीं, किन्तु युवराज राम के कुमारभवन मे तीन कक्ष्याएँ थी (अयोध्याकाड, ५-५)। हर्ष के राजकुल की पहली कक्ष्या या पहले चौक मे अलिन्द-युक्त राजद्वार के बाईं ओर सम्राट् के राजकुंजर (१७२) या खासा हाथी (देवस्य औपवाह्य., ६४) के लिये लम्बा-चौडा इभधिष्ण्यागार या हाथीखाना था। इसी में राजा के निजी हाथी दर्पशात के लिये बडा अवस्थानमण्डप बना हुआ था (तस्यावस्थानमण्डपोऽयं महान् ६४)। इसके ठीक दाहिनी ओर सम्राट् के खासा घोडों (राजवाजि, १७२) के लिये जिन्हे भूपालवल्लभतुरग कहा जाता था, मन्दुरा या घुडसाल थी। कालान्तर मे राजा के निजी प्रिय घोडों को केवल 'वल्लभ' भी कहा जाने लगा। इसमे महत्त्व की बात यह है कि हाथी और घोडों के लिये बाहरी स्कन्धावार में जो प्रबन्ध था वह सेना के साधारण हाथियों के लिये था, किन्तु राजा के निजी उपयोग में आनेवाले अत्यन्त मूल्यवान् और सम्मनित हाथी-घोड़े राजकुल के भीतर

---

१ इस अर्थ में यह शब्द हिन्दी की पछाही बोली में अभी तक प्रयुक्त होता है। संस्कृत के अलिजर शब्द भी में वह बच गया है। अलि जरयति=अलिजर.=महाकुभ (अमरकोष, २।९।३१), बहुत बड़ा घडा, जिस प्रकार के नालन्दा, काशीपुर (जि० नैनीताल) आदि स्थानो की खुदाई में मिले है। इन्हे अलिजर कहने का कारण यह था कि जिस समय कुम्हार अलिजर बनाता था, उसकी सारी मिट्टी इसी मे लग जाती थी और छोटे कुल्हड़ या अलियो का बनना साथ-साथ न होता था।

२ पाणिनीय अष्टाध्यायी मे सूत्र है 'अगारैकदेशे प्रघण प्रघाणश्च' (३।३।७९)। काशिका—'द्वारप्रकोष्ठ. बाह्यः उच्यते।' बाण ने भी अलिन्द के लिये प्रघण शब्द का प्रयोग किया है (१५४)। शकर के अनुसार प्रघण=बहिर्द्वारैकदेश।

पहली कक्ष्या में रखे जाते थे। इन्हीं पर चढ़े हुए सम्राट् राजकुल की पहली कक्ष्या के भीतर प्रवेश करते थे।

राजकुल की दूसरी कक्ष्या में बीचोंबीच महा-आस्थानमडप (१७२) था जिसे बाह्य-आस्थानमंडप भी कहा गया है। इसी को केवल आस्थान (१८६,१६०), राजसभा या केवल सभा (१६४, २०१) भी कहा जाता था। इसे ही मुगल-महलों में दर्बार आम कहा गया है। इसके सामने अजिर या खुला आँगन रहता था। इस आँगन तक सम्राट् हर्ष घोड़े या हाथी पर चढकर आते थे। आस्थानमडप के अन्दर प्रवेश करने के लिये उन्हें सीढ़ियों के पास सवारी छोड देनी पडती थी। अजिर से कुछ सीढियाँ चढकर आस्थानमडप मे पहुँचा जाता था। अपनी सेना का प्रदर्शन देखने के उपरात हर्ष राजद्वार के भीतर तक हथिनी पर चढे हुए ही प्रविष्ट हुए, पर सीढियों के पास पहुँचकर उतर गए और बाह्य-आस्थानमडप में रखे हुए आसन पर जाकर बैठे (इत्येवमाससाद आवास, मन्दिरद्वारि च विसर्जितराजलोक', प्रविश्यच अवततार, बाह्यास्थानमडपस्थापितम् आसनम् आचक्राम, २१४)। चन्द्रापीड की दिग्विजय का निश्चय भी आस्थानमडप में ही किया गया था (का० ११२)। कादम्बरी में इसे सभामडप भी कहा है (का० १११)। दिल्ली के किले में दर्बार आम के सामने जो खुला हुआ भाग है वही प्राचीन शब्दों मे अजिर है। प्रभाकरवर्द्धन के निकटवर्ती एवं प्रिय राजा सम्राट् की बीमारी के समय अजिर मे एकत्र हुए दुःख मना रहे थे (१५४)। सम्राट् सार्वजनिक रीति से जो दर्बार करते, दर्शन देते, मंत्रणा करते या मिलते-जुलते, वह सब इसी बाह्य-आस्थानमडप में होता था।[१] राज्यवर्द्धन की मृत्यु के बाद हर्ष ने बाहरी आस्थानमडप मे सेनापति सिहनाद और गजाधिपति स्कन्दगुप्त से परामर्श किया। उस समय वहाँ अनेक राजा भी उपस्थित थे। सैनिक प्रयाण का निश्चय करने पर जब हर्ष अपने महासधिविग्रहाधिकृत अवन्ति को समस्त पृथिवी की विजययात्रा की घोषणा लिखा चुके, तो 'आस्थान' से उठकर राजाओं को बिदा करके स्नान करने की इच्छा से 'सभा' छोडकर चले गए (इतिकृतनिश्चयश्च मुक्तास्थानो विसर्जितराजलोकः स्नानारम्भाकाङ्क्षी सभामत्याक्षीत्, १६४)।

राजकुल में आस्थानमडप दो थे। एक बाहरी या बाह्य-आस्थानमण्डप या दर्बार आम जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। यह राजकुल की द्वितीय कक्ष्या मे था। दूसरा राजकुल के भीतर धवलगृह के पास या उसी के भीतर होता था जिसे भुक्तास्थानमडप (दर्बार खास) कहते थे। हर्षचरित और कादम्बरी दोनों मे इनका भेद अत्यन्त स्पष्ट है। यहाँ सम्राट् भोजन के उपरान्त अपने अन्तरग मित्रों और परिवार के साथ बैठते थे, इसलिये इसकी सज्ञा भुक्तास्थानमडप हो गई थी। भुक्तास्थानमंडप को ही प्रदोषास्थान भी कहा गया है। दिग्विजय का निश्चय करने के दिन हर्ष प्रदोषास्थान मे देर तक न बैठकर जल्दी शयनगृह मे चले गए (प्रदोषास्थाने नातिचिर तस्थौ, १६५)। इसके सामने भी एक अजिर या आँगन होता था जिसमे बैठने-उठने के लिये मडप बना रहता था। प्रथम दर्शन के समय बाण तीन कक्ष्याओं को पार करके चौथी कक्ष्या में बने हुए भुक्तास्थानमण्डप के सामने अजिर में बैठे हुए सम्राट् हर्ष से मिले थे (दौवारिकेण उपदिश्यमानवर्त्मा समतिक्रम्य

१ पृथ्वीचन्द्रचरित (१४२१) मे दीवान आम को तत्कालीन भाषा में सर्वोसर (=सं० सर्वापसर, जहाँ सब पहुँच सके) कहा गया है।

त्रीणि कक्ष्यान्तराणि चतुर्थे भुक्तास्थानमण्डपस्य पुरस्तादजिरे स्थित, ६६)। कादम्बरी मे चाण्डालकन्या बाह्यास्थानमण्डप मे बैठे हुए राजा शूद्रक के दर्बार में तोते को लेकर उपस्थित हुई। वहाँ का वर्णन दर्बार आम का वर्णन है। वैशम्पायन शुक को स्वीकार करने के बाद राजा शूद्रक सभा से उठकर महल के भीतरी भाग में चले गए (विसर्जितराजलोक· क्षितिपति आस्थानमण्डपादुत्तस्थौ, का०, १३)। स्नान-भोजन के अनन्तर शूद्रक अपने अमात्य, मित्र और उस समय मिलने के योग्य राजाओ के साथ भुक्तास्थानमण्डप में वैशम्पायन से उसकी कथा सुनते है।

राजकुल की दूसरी कक्ष्या तक का भाग बाह्य कहलाता था। यहाँ तक आने-जाने-वाले नौकर-चाकर बाह्य प्रतीहार कहलाते थे। इससे आगे के राजप्रासाद के अभ्यन्तर भाग मे आने-जानेवाले प्रतीहार अन्तर-प्रतीहार (६०) या अभ्यन्तर-परिजन कहलाते थे।

राजकुल की तीसरी कक्ष्या मे बाण ने धवलगृह का विस्तृत वर्णन किया है। धवलगृह के चारों ओर कुछ अन्य आवश्यक विभाग रहते थे। बाण के अनुसार इनके नाम इस प्रकार है।

गृहोद्यान—इसमे अनेक प्रकार के पुष्प, वृक्ष (भवनपादप, १६२) और लतामण्डप आदि थे। इसीसे सम्बन्धित कमलवन, क्रीडापर्वत जिसे कादम्बरी मे दारुपर्वतक कहा है, लतागृह इत्यादि होते थे।

गृहदीर्घिका—गृहोद्यान और धवलगृह के अन्य भागो मे पानी की एक नहर बहती थी। लम्बी होने के कारण इसका नाम दीर्घिका पडा। दीर्घिका के बीच-बीच मे गन्धोदक से पूर्ण क्रीड़ावापियाँ बनाकर कमल हस आदि के विहारस्थल बनाये जाते थे। गृहदीर्घिका का वर्णन न केवल भारतवर्ष मे हर्ष के महल में मिलता है, बल्कि छठी-सातवी शती के राजप्रासादों की वास्तुकला की यह ऐसी विशेषता थी जो अन्यत्र भी पाई जाती है। ईरान मे खुसरू परवेज के महल मे भी इस प्रकार की नहर थी। कोहे बिहिस्तून से कसरे शीरी नामक नहर लाकर उसमे पानी के लिये मिलाई गई थी।[1]

व्यायामभूमि—शूद्रक के वर्णन मे लिखा है कि वे आस्थानमण्डप से उठकर स्नान से पूर्व व्यायामभूमि मे गए। यह भी प्राचीन प्रथा थी। इसका उल्लेख राजा की दिनचर्या

---

१ इस सूचना के लिये मै श्री मोलवी मोहम्मद अशरफ सुपरिटेंडेट, पुरातत्त्व-विभाग, नई दिल्ली, का अनुगृहीत हूँ। इसे नहरे बिहिश्त कहते थे। हारू रशीद के महल मे भी इस प्रकार की नहर का उल्लेख आता है। देहली के लाल किले के मुगल-महलो की नहर बिहिश्त प्रसिद्ध है। वस्तुत प्राचीन राजकुलो के गृहवास्तु की यह विशेषता मध्यकाल मे भी जारी रही। विद्यापति ने कीर्तिलता ग्रथ मे प्रासाद का वर्णन करते हुए क्रीड़ाशैल, धारागृह, प्रमदवन, पुष्पवाटिका के अभिप्रायो के साथ साथ 'कृत्रिम नदी' का उल्लेख किया है। वह भवनदीर्घिका का ही दूसरा रूप है। मुगल कालीन महलो की नहर बिहिश्त से दो सौ वर्ष पहले विद्यापति ने कृत्रिम नदी का उल्लेख किया था। वस्तुत भारत वर्ष मे और बाहर के देशो में भी राजप्रासाद के वास्तु की यह विशेषता थी। ट्यूडर राजा हेनरी अष्टम के हेम्पटन कोर्ट राजप्रासाद मे इसे Long Water (लौग वाटर) कहा गया है, वह दीघिका के अति निकट है।

के अन्तर्गत अर्थशास्त्र में भी आया है। अष्टाध्यायी से ज्ञात होता है कि राजा को कुश्ती लडानेवाले ज्येष्ठ मल्ल 'राजयुध्वा' कहलाते थे (३ । २ । ९५)।

स्नानगृह या धारागृह—इसमे स्नान करने के लिये यन्त्रधारा (फव्वारा) और स्नान-द्रोणी रहती थी। इसे ही क्षेमेन्द्र ने लोकप्रकाश में निमज्जनमण्डप और पृथ्वीचन्द्रचरित (चौदहवीं शती) मे माजणहरॉ (मज्जनगृह) कहा है।

देवगृह,—महल के भीतर सम्राट् और राजपरिवार के निजी पूजन-दर्शन के लिए मन्दिर मे कुलदेवता की मूर्ति स्थापित की जाती थी। लोकप्रकाश मे इसे ही देवार्चनमण्डप कहा गया है।

तोयकर्मान्त—जल का स्थान।

महानस—रसोई का स्थान।

आहारमण्डप—भोजन करने का स्थान।

इनके अतिरिक्त कादम्बरी में सगीत भवन (का० ९१), आयुधशाला (का० ८७), बाणयोग्यावास (का० ९०, बाण चलाने का स्थान) और अधिकरणमण्डप (का० ८८, कचहरी या दफ्तर) का राजकुल के अन्तर्गत उल्लेख आया है। हेमचन्द्र ने कुमारपाल-चरित में (बारहवी शती) राजमहल में श्रमगृह का उल्लेख किया है जहाँ राजा मल्लविद्या और धनुरभ्यास करता था। यह कादम्बरी मे वर्णित व्यायामभूमि और बाणयोग्यावास का ही रूप है।

इन फुटकर भवनों के अतिरिक्त राजकुल का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग धवलगृह था जिसे शुद्धान्त भी कहते थे।

धवलगृह—धवलगृह (हिन्दी धौराहर या धरहरा) जिस ड्योढी से आरम्भ होता था उसका नाम बाण ने गृहावग्रहणी अर्थात् (धवल) गृह मे रोक-थाम की जगह कहा है। इस नाम का कारण यह था कि यहाँ से प्रतीहारों का पहरा, रोकटोक और प्रबन्ध की अत्यधिक कडाई आरम्भ होती थी। यहाँ पर नियुक्त प्रतीहार अधिक अनुभवी और विश्वासपात्र होते थे। रामायण मे इसे प्रविविक्त कक्ष्या (अयोध्याकाड, १६ । ४७) कहा गया है जहाँ राम और सीता युवराज-अवस्था मे रहते थे और जहाँ केवल विशेष रूप से अनुज्ञात व्यक्ति ही प्रवेश पाते थे। इस भाग मे नियुक्त प्रतीहारी को रामायण में वृद्ध वेत्रपाणि स्त्र्यध्यक्ष कहा गया है। बाण से भी इसका समर्थन होता है।

धवलगृह दो या उससे अधिक तल का होता था। सम्राट् और अन्तःपुर की रानियाँ ऊपर के तल मे निवास करती थी। धवलगृह के द्वार मे प्रवेश करते ही ऊपर जाने के लिये दोनों ओर सोपानमार्ग होता था। बाण ने लिखा है कि प्रभाकरवर्द्धन अपनी रुग्णावस्था में धवलगृह के ऊपरी भाग मे थे। सीढियो पर आने-जाने से जो खटखट होती थी उससे प्रतीहार अत्यन्त कुपित होते थे, क्योंकि उस समय बिल्कुल अतिनिश्शब्दता रखने का आदेश था। हर्ष कई बार पिता से ऊपर ही जाकर मिले (क्षणमात्रञ्च स्थित्वा पित्रा पुन राहारार्थ आदिश्यमान. धवलगृहादवततार, १५९)। धवलगृह के भीतर बीच मे आँगन होता था और उसके चारो ओर शालाएँ या कमरे बने होते थे, इसीलिए उसे चतुश्शाल

कहा जाता था।[1] चतुश्शाल का ही पर्याय गुप्तकाल की भाषा मे संजवन[2] था। प्रभाकरवर्द्धन के धवलगृह का वर्णन करते हुए बाण ने सजवन शब्द का प्रयोग किया है (१३५)। प्रभाकरवर्द्धन तो ऊपर थे, किन्तु उनके उद्विग्न नौकर चाकर नीचे सजवन या चतुश्शाल मे इकट्ठे होकर शोक कर रहे थे। ज्ञात होता है कि चतुश्शाल मे बने हुए कमरे वस्त्रागार, कोष्ठागार, ग्रंथागार आदि के लिये एव अतिथियो के ठहराने के काम मे आते थे।

धवलगृह के आँगन मे चतुश्शाल के कमरो के सामने आने-जाने के लिये एक खुला मार्ग रहता था और बीच मे खम्भो पर लम्बे दालान बने रहते थे जिन्हें बाण ने सुवीथी कहा है। पथ और सुवीथियो के बीच में तिहरी कनात तनी होती थी (त्रिगुणतिरस्करिणीतिरोहितसुवीथीपथे, १५५)। प्राय सुवीथी में जाने के लिये पक्षद्वार होते थे। सुवीथी, उनमें बैठे हुए राजा-रानियो के पारिवारिक दृश्य, पक्षद्वार और तिरस्कारिणी—इन सबका चित्रण अजन्ता के कई भित्तिचित्रों मे आता है जिनसे धवलगृह की इस रचना को समझने में सहायता मिलती है (राजासाहब औंध कृत अजन्ता, फलक ६७, ७७)। सुवीथियो के मध्य की भूमि खुली होती थी और उसमें बैठने-उठने के लिये एक चबूतरा बना होता था जिसे चतुश्शाल-वितर्दिका कहा गया है (१७८)। (दे० धवलगृह का चित्र, फलक २७)

धवलगृह का ऊपरी तल—धवलगृह के ऊपरी तल मे सामने की ओर बीच मे प्रग्रीवक, एक ओर सौध और दूसरी ओर वासभवन या वासगृह होता था। वासगृह का ही एक भाग शयनगृह था। वासभवन मे भित्तिचित्र बनाए जाते थे (१२७)। इसीसे यह स्थान चित्रशालिका भी कहलाता था। उसीसे निकला हुआ चित्तरसारी रूप भाषा में चलता है। रानी यशोवती वासभवन मे सोती थी। हर्ष का शयनगृह भी यही था। सौध केवल रानियों के ही उठने-बैठने का स्थान था। उसकी खुली छत पर यशोवती स्तनमण्डल पर से अंशुक छोड़कर चाँदनी मे बैठती थी (१२७)। बीच के कमरे की संज्ञा प्रग्रीवक इसलिये थी कि वह धवलगृह के ग्रीवास्थान पर बना होता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे कुमारीशाला मे बने हुए प्रग्रीव कमरे का उल्लेख है (अर्थशास्त्र, २। ३१)। प्रभाकरवर्द्धन की बीमारी मे आई हुई सगे-सम्बन्धियों की स्त्रियाँ ऊपर प्रग्रीवक के कमरे मे ही बैठी थी जिसमे चारो ओर से परदा या ओट थी (बान्धवागनावर्गगृहीतप्रच्छन्नप्रग्रीवके, १५५)।

जैसे सामने की ओर प्रग्रीवक या मुखशाला थी उसी प्रकार ऊपरी तल के पीछे के भाग में चन्द्रशालिका होती थी। इसमें केवल छत और खम्भे होते थे और राजा-रानी वहाँ बैठकर चाँदनी का सुख लेते थे। यशोवती गर्भावस्था में चन्द्रशालिका मे बैठकर उसके खम्भों पर बनी शालभजिकाओ (खम्भों पर उत्कीर्ण स्त्रीमूर्तियों) को देखती थी।

चन्द्रशालिका और प्रग्रीवक को मिलानेवाले दाहिने और बाएँ लम्बे दालान प्रासादकुक्षि कहे गए है जिनमे वातायन बने होते थे। उनमें राजा चुने हुए आप्त सुहृदों के साथ अंतःपुर के सगीत और नृत्य आदि उत्सवों का आनन्द लेते थे (का० ५८)। (फलक २८)

---

१ चतुश्शाल का अपभ्रंश रूप चौसल्ला अभी तक हिन्दी में प्रयुक्त होता है। काशी में पुराने घरों के भीतरी आँगन को चौसल्ला चौक कहा जाता है।

२ सजवन्ति अत्र इति संजवन (गत्यर्थक जु धातु) अथात् जहाँ तक बाहरी व्यक्ति जा सकते थे। इसके आगे भीतर जहाँ सम्राट् और अत.पुर की रानियाँ रहती थी, जाने का एकदम कड़ा निषेध था।

बाण के वर्णन की साहित्यिक तुलना

बाण ने राजप्रासाद का जो वर्णन किया है उसकी कई विशेषताओं पर उसके पूर्व-कालीन और परवर्ती साहित्य मे आए हुए उल्लेखो से उनके समझने मे सहायता मिलती है।

रामायण मे दशरथ के राजकुल और राम के भवन का वर्णन है। दशरथ का राजकुल पाँच कक्ष्याओंवाला था। इनमे से तीन कक्ष्याओ के भीतर तक राम रथ पर चढकर चले गए, फिर दो कक्ष्याओ मे पैदल गए (अयोध्या १७।२०)। दशरथ भी प्रभाकर-वर्द्धन की तरह प्रासाद के ऊपरी तल्ले मे ही रहते थे। जब राम दशरथ से मिलने गए तो प्रासाद के ऊपरी भाग मे चढे (प्रासादमारुरोह, ३।३१-३२)। इसी प्रकार वसिष्ठ भी प्रासाद पर अधिरोहण करके ही राजा दशरथ से मिले थे (प्रासादमधिरुह्य, अयोध्या० ५।२२)।

राम युवराज थे। उनका भवन दशरथ के राज-भवन से अलग था, पर उसका सन्निवेश भी बहुत-कुछ राजभवन के ढग पर ही था (राजभवनप्रख्यात् तस्माद्रामनिवेशनात्, अयोध्या ५।१५)। उसमे तीन कक्ष्याएँ थीं। रामचन्द्र के भवन मे वसिष्ठ का रथ तीसरी कक्ष्या के भीतर तक चला गया था[1]। धृतराष्ट्र के राजवेश्म मे तीनकक्ष्या के भीतर सभा थी (उद्योग० ८७।१२)। दुर्योधन के युवराज भवन मे भी तीन कक्ष्याए थीं (उ० ८६।१२)।

इस सम्बन्ध मे बाण की साक्षी महत्त्वपूर्ण है। कादम्बरी मे राजकुमार चन्द्रापीड जब विद्याध्ययन से वापिस लौटे तो उनके लिये अलग भवन दिया गया जिसका नाम कुमार-भवन था। इसी प्रकार कौमार अवस्था मे कादम्बरी के लिये भी कुमारी-अन्त पुर नामक भवन अलग ही बना था। चन्द्रापीड के भवन में दो भाग मुख्य थे—एक श्रीमण्डप और दूसरा शयनीय गृह। श्रीमण्डप बाहर का भाग और शयनीय गृह भीतर का था (का० ९६)। कादम्बरी के कुमारी-अन्त.पुर मे भी श्रीमण्डप था[2]।

हैम्पटन कोर्ट नामक ट्यूडर-कालीन महल मे भी प्रिंस आफ वेल्स (युवराज) के लिये पृथक् भवन की कल्पना थी, जो राजकुल के एक भाग में मिलती है। इसमे तीन हिस्से थे—प्रेजेंस चैम्बर, ड्राइंग रूम, बैड रूम।

इनमे प्रेजेंस चैम्बर भारतीय श्रीमण्डप के समतुल्य है। वह लोगो से मिलने-जुलने का कमरा था। उसी मे रक्खे हुए शयन पर चन्द्रापीड के बैठने का उल्लेख है। (श्रीमडपावस्थितशयने मुहूर्तमुपविश्य, का० ९६)। बैड रूम और शयनीय गृह का साम्य स्पष्ट ही है। राम के महल की तीन कक्ष्याओं मे भी प्रथम कक्ष्या मे सबसे आगे द्वारस्थान (द्वारपद, अयो० १५।४५) और तब राज वल्लभ अश्व-गज आदि के लिये स्थान थे। तीसरी कक्ष्या राम-सीता का निजी वास-गृह था, जिसे प्रविविक्त कक्ष्या (अयो० १६।४७) कहा गया है। यहाँ बुड्ढे स्त्र्यध्यक्ष नामक प्रतीहार हाथ मे वेत्र-दण्ड लिए हुए तैनात थे और अनुरक्त युवक शस्त्र लिए हुए उसके रक्षक नियुक्त थे (अयो० १६।१)। राम के और युवराज हर्ष के भवनों मे साम्य पाया जाता है। युवराज हर्ष का कुमारभवन रामभवन की

१ स रामभवनं प्राप्य पाण्डुराभ्रघनप्रभम्।
तिस्र कक्ष्याः रथेनव विवेश मुनिसत्तम.॥
(अयोध्या, ५।५)

२. श्रीमण्डपमध्योत्कीर्ण अधोमुखविद्याधरलोक, का० १८६)

तरह सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन के प्रासाद से अलग था। हर्ष जब शिकार से लौटा तो पहले एकदम स्कन्धावार में होता हुआ राजद्वार के पास आया जहाँ द्वारपालों ने उसे प्रणाम किया, और तब राजकुल में प्रविष्ट होकर तीसरी कक्ष्या के भीतर धवलगृह के ऊपरी तल्ले में पिता प्रभाकरवर्द्धन से मिला, फिर धवलगृह से नीचे उतरकर राजपुरुष के साथ अपने भवन (स्वधाम) में गया। सन्ध्या के समय वह फिर पिता के भवन में ऊपर गया (क्षपामुखे क्षितिपालसमीपमेव पुनरारुरोह, १६०)। प्रातःकाल होने पर धवलगृह से नीचे उतरा और राजद्वार पर खड़े हुए अश्वपाल के घोडा हाजिर करने पर भी पैदल ही अपने मन्दिर को वापिस लौटा (उषसि चावतीर्य चरणाभ्यामेव आजगाम स्वमन्दिरम्, १६०)। इससे सूचित होता है कि युवराज हर्ष का अपना भवन राजद्वार से बाहर था।

रामायण मे रावण के राजभवन का भी विस्तृत वर्णन है (सुन्दरकाड, अ० ६-७)। उस समस्त राजकुल को 'आलय' कहा गया है। उस आलय के मध्यभाग में रावण का भवन था और उसमे कई प्रासाद थे। इन तीनों शब्दो की तुलना हम बाण के राजकुल, धवलगृह और वासगृह से कर सकते है जो क्रमशः एक के भीतर एक थे। रावण की निजी महाशाला भी सोपान से युक्त थी। रावण के महानिवेशन या राजकुल में लतागृह, चित्रशालागृह, क्रीडागृह, दारुपर्वतक, कामगृह, दिवागृह (सुन्दर० ६।३६-३७), आयुधचापशाला, चन्द्रशाला (सुन्दर० ७।२) निशागृह (सुन्दर० १२।१), आपानशाला, पुष्पगृह, आदि थे। इनमें से कई विशेषताएँ ऐसी है जो बाण के समकालीन राजभवनों मे भी मिलती है। चन्द्रशाला परिचित शब्द है। रामायण का चित्रशालागृह हर्षचरित के वासभवन का शयनगृह होना चाहिए जहाँ भित्तिचित्र बने थे और इस कारण जिसका यथार्थ नाम चित्रशालिका भी था।

प्रथम शती ई० के महाकवि अश्वघोष ने सौन्दरनद मे नद के वेश्म या गृह का वर्णन करते हुए उसे 'विमान' कहा है और लिखा है कि उसकी रचना देवविमान के तुल्य थी। नन्द के घर में भी लबी चौडी कक्ष्याएँ थी। जब बुद्ध नन्द के द्वार पर भिक्षा लेने के लिये आए तो वह अपनी पत्नी सुन्दरी के साथ कोठे पर बैठा था। सुनते ही वह वहाँ से उतरा और शीघ्रता से घर की विशाल कक्ष्याओं को पार करता हुआ बढा। पर उनकी विशालता के कारण विलम्ब होने से उसे अपने विशाल कक्ष्याओंवाले घर पर क्रोध आया [१]। अश्वघोष ने यह भी संकेत दिया है कि महल के हर्म्यपृष्ठ या ऊपरी तल्ले मे गवाक्ष होते थे [२] (४।२८)। बाण ने भी कादम्बरी में लिखा है कि धवलगृह के ऊपरी तल्ले की प्रासादकुक्षियो मे वातायन बने रहते थे जो किवाड खोलने पर प्रकट दिखाई पड़ते थे (विघट्टितकपाटप्रकटवातायनेषु महाप्रासादकुक्षिषु, का० ५८)।

हुए (सिक्त), और पोली पिचकारियों से फुफकार कर साफ किए गए (सुषिरफूत्कृत) थे। उन घरों के वर्णन-प्रसग मे वप्र (चारदीवारी), नेमि (नींव), साल (प्राकार), हर्म्य (ऊपरी तल के कमरे), शिखर, कपोतपाली (गवाक्षपजर के सामने की गोल मुडेर के आगे बने छोटे केवाल संज्ञक कगूरे), सिहकर्ण (गवाक्षपजर के दाएँ-बाएँ उठे हुए कोने), गोपानसी (गवाक्षपंजर के ऊपर नाक की तरह निकला भाग), वलभी (गोल मुडेर), अट्टालक, अवलोकन (देखने के लिये बाहर की ओर निकली हुई खिड़कियाँ), प्रतोली (नगर के प्राकार में बने हुए फाटक जिन्हें पोल या पौरि भी कहते हैं), विटंक, प्रासाद, आदि शब्दों का उल्लेख है। बाण ने स्थाण्वीश्वर नगर के वर्णन मे प्रासाद, प्रतोली, प्राकार और शिखरों का उल्लेख किया है (१४२)। प्रभाकरवर्द्धन के धवलगृह की भाँति पादताडितक में भी वितर्दि (आँगन में बनी वेदिका या चबूतरा), संजवन (चतुश्शाल) और वीथी (धवलगृह के भीतरी आँगन में पटावदार बरामदे) का वर्णन है।

मृच्छकटिक मे वसन्तसेना के अतिविशाल और भव्य गृह के आठ प्रकोष्ठों का वर्णन है। यहाँ प्रकोष्ठ का वही अर्थ है जो बाण में कक्ष्या का है।

भारतीय स्थापत्य और प्रासाद निर्माण की परम्पराएँ छोटे-मोटे भेदों के साथ मध्यकाल मे भी जारी रहीं। हेमचन्द्र के द्व्याश्रय काव्य (१२ वीं शती), विद्यापति की कीर्तिलता (लगभग १४०० ई०), पृथ्वीचन्द्र-चरित्र (१४२१ ई०) और मुगलकालीन महलों मे भी हम हर्षकालीन गृह-वास्तु की विशेषताओं की परम्परा से पाते हैं। कुमारपालचरित मे आस्थानमण्डप को सभा (६ । ३६) और मण्डपिका (६ । २२-२६) कहा है। धवलगृह के साथ सटे हुए गृहोद्यान का भी उल्लेख है (२ । ६१), जैसा राजकुल के चित्र में दिखाया गया है। गृहोद्यान बाह्यास्थानमण्डप से अन्दर की ओर विशाल भूभाग में बनाया जाता था। हेमचन्द्र ने राजमहल के उद्यान का विस्तृत रूप खड़ा किया है (द्व्याश्रयकाव्य, ३।१ से ५।८७ तक)। राजभवन के उद्यान मे कितने प्रकार के पुष्प, वृक्ष, लतागृह, मण्डप आदि होते थे इनकी विस्तृत सूची वहाँ दी है। बाण के उद्यान-सम्बन्धी सब वर्णनो का सग्रह किया जाय तो दोनों मे अनेक समानताएँ मिलेंगी। जातिगुच्छ, भवन कीदाड़िमलता, अन्त पुर का बाल बकुल, भवनद्वार पर लगा हुआ बाल सहकार—ये भवन-पादप रानी यशोवती को स्वजन की भाँति प्रिय थे (१६४-६५)।

कीर्तिलता में प्रासाद वर्णन के कई अभिप्राय प्राचीन हिन्दू परम्परा के हैं, जैसे काचनकलश, प्रमदवन, पुष्पवाटिका, कृत्रिमनदी (=भवनदीर्घिका),क्रीडा शैल (=क्रीडापर्वत), धारागृह, यन्त्रव्यजन, शृंगारसंकेत (=कामगृह, सुन्दरकाण्ड, ६ । ३७), माधवीमण्डप, खट्वाहिडोल, कुसुमशय्या, चतुसम पल्वल, चित्रशाली (चित्रभित्तियों से युक्त शयनगृह या चित्रशालिका)। इसी के साथ मुसलमानी वास्तु के कई नए शब्द भी उस समय चल गए थे जिनका विद्यापति ने उल्लेख कर दिया है , जैसे, खास दरबार (=भुक्तास्थानमण्डप), दरसदर (=राजद्वार), निमाजगह (=देवगृह), ख्वारगह ? (=आहार-मण्डप), खोरमगह जो सुख-मन्दिर का पर्याय है। आमेर के महलों मे वह स्थान सुख-मन्दिर कहलाता है जहाँ पानी की नहर निकलकर भीतरी बाग को सीचती है। यह प्राचीनकाल की भवन

दीर्घिका और दिल्ली के मुगलकालीन महल के रगमहल का स्मरण दिलाती है जिसमे नहर-बिहिश्त बहती हुई गई है।

१५ वी शती के पृथ्वीचंद्रचरित (१४२१ ई०) मे महल और उससे सम्बन्धित कितने ही अगों का वर्णन किया गया है-'धवलगृह स्वर्ग-विमान-समान, अनेक गवाक्ष, वेदिका, चउकी, चित्रसाली, जाली, त्रिकलसाँ, तोरण-धवलगृह, भूमिगृह, भाण्डागार, कोष्ठागार, सत्रागार, गढ, मढ, मन्दिर, पडवाँ, पटसाल, अवहटाँ, कडहटाँ, दण्डकलस, आमलसार, आँचली, बन्दरवाल, पचवर्ण पताका, दीपई। सर्वोसर, मत्रोसर, माजणहराँ (मज्जनगृह), सप्तद्वारान्तर (सात कक्ष्या या चौक), प्रतोली (पौर), रायगण (राजाङ्गण), घोडाहडि (=घोडे का बाजार या नक्खास), अषाडउ, गुणणी, रगमडप, सभामण्डप, समूहि करी, मनोहर एवविध आवास (पृथ्वीचद्रचरित, पृ० १३१-३२)। इस सूची मे कई शब्दो मे बाणकालीन परम्परा अक्षुण्ण दिखाई पडती है। गवाक्ष, वेदिका, चित्रसाली, तोरण, धवलगृह, सभामण्डप, प्रतोली—ये शब्द प्राचीन है। साथ ही मजनगृह (स्नानगृह), सर्वोसर (=सर्वापसर, दीवाने आम), मत्रोसर (=मन्त्रापसर, मन्त्रणागृह, दीवानखास) और रायगण (राजागण, अजिर) आदि शब्द नए है, किन्तु उनके अर्थ प्राचीन है जो बाण के समय मे अस्तित्व मे आ चुके थे।

बाण के स्कन्धावार और राजकुल के वर्णन को समझने के लिये मध्यकालीन हिन्दू और मुसलमानी राजाओं के बचे हुए राजप्रासादों और महलों को आँख के सामने रखना आवश्यक है। राजकुल की आवश्यकताएँ बहुत अशों मे समान होती है जिसके कारण भिन्नजातीय राजप्रासादों के विविध अगों मे समानता का होना स्वाभाविक है।

दिल्ली के लाल किले मे बने हुए अकबर और शाहजहाँ-कालीन महलों पर यदि ध्यान दिया जाय तो बाण के महलों से कई बातों मे उनकी समानता स्पष्ट है। इसका कारण यही हो सकता है कि मुगल-सम्राटो ने अपने महलों की निर्माण कला मे कई बाते बाहर से लाकर जोडी, पर कितनी ही विशेषताएँ पुराने राजमहलों की भी अपनाईं। उदाहरण के लिये निम्न बातों मे समता पाई जाती है—

बाण के महल (७ वीं शती)	दिल्ली के लाल किले का मुगल-कालीन महल।	लडन मे हैम्पटन कोर्ट महल (१६-१७ वीं शती)।
१ राजकुल के सामने स्कन्धावार का बडा सन्निवेश और विपणि-मार्ग।	लाल किले के सामने फैला हुआ बडा मैदान जिसकी संज्ञा उर्दू बाजार थी[१]।	
२ परिखा और प्राकार।	खाई और किले की चारदीवारी।	Moat and Bridge

१ उर्दू तुर्की भाषा का शब्द है जिसका अर्थ सेना था। बाद मे सैनिक-पड़ाव (फौजी छावनी) को भी उर्दू कहने लगे। हिन्दी का वर्दी शब्द और अंग्रेजी का होर्ड (Horde) शब्द उर्दू से ही निकले हैं।

३ राजद्वार।	किले का सदर दरवाजा जहाँ से पहरा शुरू होता है (तुलना० कीर्तिलता मे दरसदर)।	The Gieat Gate House
४ अलिंद या बाह्यद्वार प्रकोष्ठ।	सदर दरवाजे के भीतर चलकर दोनों ओर बनी कोठरियाँ या कमरों की पंक्तियाँ जहाँ इस समय दुकानें कर दी गई है।	Bairacks and Porter's Lodge in the Entiance
५ प्रथम कक्ष्या—राजकुंजर का अवस्थानमण्डप और राजवाजियों की मन्दुरा।	खुला हुआ मैदान।	Base Court
६ बाह्यास्थानमडप और उसके सामने अजिर।	दीवाने आम और उसके सामने खुला आँगन।	Gieat Hall aud Great Hall Court
७ अजिर से आस्थानमडप मे चढने के सोपान (हर्ष० १५५, प्रासाद-सोपान, का० ८६)।	दीवाने आम के सामने की सीढियाँ।	Grand Stair-case [King's Stair-case]
८ आस्थानमंडप में रक्खा हुआ राजा का आसन।	दीवाने आम में बादशाह के बैठने का विशेष स्थान।	Clock Couit
९ अभ्यन्तरकक्ष्या।		
१० धवलगृह।	भीतरी महल।	Principal Floor
११ गृहोद्यान, क्रीड़ावापी, कमलवन	नजर बाग और उसमें बना हुआ तालाब (तुलना० कीर्तिलता का चतुस्सम पल्वल और उसमें रक्खी हुई चन्द्रकातशिला)।	Privy Garden Pond Garden [Vinery, Orangery etc.]
१२ गृहदीर्घिका।	नहरे-बहिश्त।	Long Canal, "Long Water"
१३ स्नानगृह, यन्त्रधारा, स्नानद्रोणी, महानस, आहारमंडप।	हम्माम, हौज और फव्वारे।	Bathing Closet, King's Kitchen, Banqueting Hall, Private Dining Room.
१४ देवगृह।	मस्जिद या नमाजगाह। (मोती मस्जिद)।	Royal Chapel

१५ चतुःशाल।		Cellars on the Ground Floor
१६ वीथियाँ।	खुर्रमगाह रग-महल, (कीतिलता का खुर्रमगाह और आमेर के महलों का सुखमंदिर)।	Galleries
१७ भुक्तास्थानमंडप।	दरबार खास।	Audience Chamber
१८ प्रग्रीवक, गवाक्ष वातायनो से युक्त मुखशाला। [पादताडितक का 'अवलोकन']।	मुसम्मम बुर्ज (आमेर के महलों का सुहाग-मन्दिर जहाँ रानियाँ झरोखेदार जालियों मे बैठकर बाहर के दृश्य देखती थीं।	Queen's Gallery, Great Watching Chamber
१६ दर्पण-भवन या आदर्श भवन।	शीशमहल (धनपाल कृत तिलक-मजरी ११वी शती में भी आदर्श भवन का उल्लेख है।)	
२० शयनगृह, वासगृह (चित्र-शालिका)—सौध, हाथीदाँत और मुक्ताशैल (श्वेत पाषाण) के स्तम्भो से बना हुआ निवास-प्रासाद, (६८), हाथी दाँत के तोरण से युक्त, हीरों का कमरा (सदन्त-तोरण वज्रमन्दिर, ६८)।	बादशाह और बेगमों के निजी कमरे। ख्वाबगाह जहाँ छत्र और दीवारों पर चित्र बने है।	King's Drawing Room Quneen's Drwing Room King's Bed Room Queen's Bed Room
२१ सगीतगृह।		
२२ चन्द्रशाला।		
२३ प्रासाद कुक्षिया।		Presence Chambers
२४ प्रतीहारगृह।	ख्वाजासरा का महल।	Lord Chamberlains Court, where he and his officials had their lodgings

इस सूची से स्पष्ट है कि भारतीय राज-प्रासादों की जिस रचना का उल्लेख बाण में है उसकी धारा बाण से पूर्वकालीन साहित्य मे और बाण के उत्तरवर्ती साहित्य मे भी थी। वस्तुत सातवी शती के भारतीय राजमहलों में अनेक परम्पराएँ—न केवल वास्तु और स्थापत्य-सम्बन्धी, बल्कि जीवनोपयोगी नौकर-चाकर, रागरग-सम्बन्धी भी—अपने से पूर्वकाल से ली गई। उसी प्रकार उनका यह ठाटबाट बाद के युगों तक जारी रहा। यही स्वाभाविक ऐतिहासिक क्रम है। बाण के इन धुंधले चित्रों मे अभी और रग भरना होगा। उत्तरवर्ती गुर्जर—प्रतीहार, पाल, परमार, चालुक्य, यादव, काकति, गंग, विजयनगरवशी राजाओ के काल मे बने राजप्रासादो के अध्ययन, और मुस्लिम काल के साहित्य और वास्तु के अध्ययन के फलस्वरूप पर्याप्त सामग्री प्राप्त होने की आशा है, जिसकी सहायता से भारतीय राजप्रासादो की रूपरेखा और विकास अधिक सुस्पष्ट और निश्चित हो सकेगा।

लण्डन मे जो हैम्पटन कोर्ट नामक राजभवन है उसे कार्डिनल वूल्से ने १५१४ ई० में बनवाकर १५२६ ई० मे सम्राट् हेनरी अष्टम को दे दिया था और उसने उसे १५४० ई० मे पूरा किया। उसपर सोलहवी शती के आरम्भ की अग्रेजी वास्तु की छाप थी। डेढ सौ वर्ष पीछे १६८० मे विलियम तृतीय और साम्राज्ञी ऐन (Anne) के समय में उसका पुन सस्कार हुआ। १७ वी शती मे ही दिल्ली के लाल किले मे बने हुए शाहजहाँ-कालीन राजप्रासाद, पुराने भवनों के स्थान मे या उनका सस्कार करके निर्मित हुए। उनमें और हैम्पटन कोर्ट-नामक राजमहल के विविध भागों में कितनी ही बातें सादृश्य की मिलती हैं। निश्चय ही बाणकालीन राजप्रासाद और विलायती राजप्रासाद मे कुछ भी ऐतिहासिक सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता, फिर भी दोनों के सन्निवेश मे जो समानताएँ हैं उनका कारण यही हो सकता है कि राजमहलों के निर्माण की कला जिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विकसित हुई वे बहुत-कुछ सार्वदेशिक थी। नई दिल्ली के राष्ट्रपति-भवन का भी तुलनात्मक सन्निवेश इस प्रकार है—स्कन्धावार का बाहिरी भाग (Central Vista), अधिकरण-मडप (Secretariat), राजद्वार (Main Gate), बाह्यकक्ष्या (Fore-Court), प्रासाद-सोपान (Grand Stair-case), बाह्यास्थानमडप (Darbar Hall), प्रतीहारभवन (Military Secretary's Wing), भुक्तास्थानमडप (Audience Room), आहारमडप (Banqueting Room), अन्त पुर सगीत के लिये प्रासाद-कुक्षियाँ (Ball Room), गृहोद्यान (Mughal Gardens), कमलवन (Flowers), क्रीडावापी (Pond), दीर्घिका (Fountain & Long Canal)।

परिशिष्ट २

सामन्त

सामन्त मध्यकालीन भारतीय राजनीति-परिभाषा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द है। कालिदास में यह शब्द आया हो तो मुझे विदित नहीं। किन्तु बाण के हर्षचरित मे सामन्त-सस्था का अत्यन्त विकसित रूप मिलता है। अवश्य ही कई सौ वर्ष पूर्व से ही सामन्त-प्रथा अस्तित्व मे आ चुकी होगी। याज्ञवल्क्यस्मृति २-१५२ मे सामन्तों की सहायता से सीमा-सम्बन्धी विवाद के निपटाने का उल्लेख है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में सामन्त शब्द पड़ोसी राज्य के राजा के लिये है। उसका वह विशिष्ट अभिप्राय और महत्त्व नही है जो बाणकालीन साहित्य मे पाया जाता है। बाद मे मध्यकाल का साहित्य तो सामन्त-प्रथा के वर्णन से भरा हुआ है। मध्यकालीन राज्य व्यवस्था को सामन्तशाही पर आश्रित कहा जा सकता है। हो सकता है, कुषाण-काल मे शक-कुषाण राजाओं की शासन प्रणाली के समय इस प्रथा का पूर्वरूप आया हो। शक-सम्राट् के साथ ६६ शाहि या सहायक राजाओं के आने का उल्लेख जैन साहित्य में पाया जाता है। शक शासन में सम्राट् विदेशी होने के कारण प्रजाओं तक साक्षात् रूप मे सपर्क न रख सकते होंगे। उन्होने मध्यस्थ अधिकारियों की कल्पना की जिन्हें छोटे मोटे रजवाडों के समस्त अधिकार सौंपकर शाहानुशाहि या महाराजाधिराज या बड़े सम्राट् शासन का प्रबन्ध चलाते थे। शक-कुषाणों के बाद गुप्त शासन में स्वदेशी राज्य या स्वराज्य स्थापित हुआ, किन्तु शासन के अनेक प्रबन्ध पूर्वकाल के भी अपना लिए गए या पूर्ववत् चालू रहे। गुप्तों ने वेष-भूषा और सैनिक सगठन को बहुत-कुछ शक-पद्धति पर ही चालू रक्खा। अस्तु, यह सम्भव है कि सामन्त-प्रथा उनके समय मे अपने पूर्वरूप मे स्थापित हुई और पीछे खूब विकसित हो गई।

बाण ने सामन्त-प्रथा का विस्तृत वर्णन किया है। उनके पूर्वज भत्सु या भर्वु के चरणकमलों मे समस्त सामन्त अपने किरीट झुकाते थे। युद्ध और शान्ति के समय राजाओं के जीवन में सामन्त बराबर भाग लेते है। वे उनके सुख-दुःख के साथी हैं। बाण ने कई प्रकार के सामन्तों का उल्लेख किया है, जैसे सामन्त, महासामन्त, आप्तसामन्त, प्रधान-सामन्त, शत्रुमहासामन्त, प्रतिसामन्त।

हूणों के साथ युद्ध-यात्रा पर जाते हुए राज्यवर्द्धन के साथ चुने हुए अनुरक्त महासामन्त भेजे जाते है। सम्राट् पुष्पभूति ने महासामन्तो को अपना करद बनाया था (करदीकृत-महासामन्त, पृ० १००, हर्षचरित, निर्णयसागर-सस्करण)। सामन्तों की शासित भूमि मे सम्राट् स्वय ग्राह्य भाग नही वसूल करते थे, बल्कि सामन्तों से ही प्रतिवर्ष कर उगाह लेते थे। इससे सम्राट् और सामन्त दोनों को ही सुविधा रहती थी। प्रभाकरवर्द्धन की बीमारी के समय उनके राजप्रासाद में एकत्र हुए आप्त सामन्त अत्यन्त सताप का अनुभव करते है (सतप्तासामन्त-पृ० १५५)। प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के अनन्तर जब राज्यवर्द्धन ने वल्कल धारण कर लेने का विचार प्रकट किया तो सामन्त लोग निःश्वास छोडने लगे (निःश्वसत्सु सामन्तेषु,

पृ० १८२)। सामन्तों का सम्राट् के साथ यह भी समझौता था कि वे समय समय पर दरबार मे और राज-भवन में उपस्थित होकर अपनी सेवाएँ अर्पित करें। अनेक संभ्रान्त सामन्तों की स्त्रियाँ रानी यशोवती के महादेवी-पट्टाभिषेक के समय सुवर्ण-घटों से उनका अभिषेक कराकर अपनी सेवा अर्पित करती है (सेवासम्भ्रान्तानन्तसामन्तसीमन्तिनी-समावर्जित-जाम्बूनदघटाभिषेक, पृ० १६७)। सामन्तों मे कुछ प्रमुख और उत्तमस्थानीय होते थे। उनकी पदवी प्रधान सामन्त थी। वे सम्राट् के अत्यन्त विश्वासपात्र होते थे। बाण ने लिखा है कि सम्राट् उनकी बात न टालते थे (अनतिक्रमणवचनैः प्रधानसामन्तैः विज्ञाप्यमानः, पृ० १७८)। ग्रहवर्मा की मृत्यु से क्षुब्ध राज्यवर्द्धन प्रधान सामन्त के कहने से ही अन्न-जल ग्रहण करता है।

देश विजय के लिये जब सम्राट् हर्ष प्रस्थान करते हैं तभी प्रतिसामन्तों को बुरे बुरे शकुन सताने लगते हैं। युद्ध में निर्जित शत्रु-महासामन्त सम्राट् हर्ष की छावनी में आकर पड़े हुए थे जब बाण पहली बार उससे भेंट करने के लिये मणितारा गाँव के पास की छावनी मे मिला था (पृ० ६०)। वहाँ उनके ऊपर जो बीतती थी उसका भी बाण ने चित्र खीचा है। उससे ज्ञात होता है कि युद्ध मे जिस तरह का व्यवहार जो शत्रु-महासामन्त सम्राट् के साथ करता था उसे उसी के अनुरूप कडाई भुगतनी पडती थी। युद्ध में प्राणभिक्षा मिल जाने पर और अपना राज्य गॅवा देने पर जो अपमान का व्यवहार सेवा करने के रूप मे भुगतना पडता था वह भी सम्राट् की अनुकम्पा ही थी। अन्यथा विजेता को अधिकार था कि निर्जित शत्रु के राज्य, सम्पत्ति, प्र,ण और स्वजनों का स्वेच्छा से उपभोग करे। बाण ने लिखा है कि कुछ शत्रु-महासामन्त दरबार मे उपस्थित होकर सेवा-चामर अर्पित करते थे। कुछ लोग कंठ में कृपाण बाँधकर प्राणभिक्षा प्राप्त करने की सूचना देते थे। कुछ अपना सर्वस्व अपहरण हो जाने के बाद भाग्य के अन्तिम निर्णय तक दाढ़ी बढाकर छावनी मे हाजिरी देते थे और प्रणामाञ्जलि अर्पित करने के लिये उत्सुक रहते थे। बाण ने लिखा है कि उनके लिये यह सम्मान ही था। सम्राट् के प्रासाद के अभ्यन्तर से जो अन्तरप्रतीहार बाहर आते थे उनसे शत्रु-सामन्त बडी उत्सुकता से पूछते रहते थे—'भाई, क्या भोजन के अनन्तर सम्राट् सजाए हुए भुक्तास्थानमडप मे दर्शन प्रदान करेंगे (अर्थात् क्या आज दरबारे खास में भीतर की मुलाकातें होगी)? अथवा क्या वे बाह्य-आस्थानमंडप (दरबारे आम) मे आवेंगे?' इस प्रकार शत्रु-महासामन्त दर्शन की आशा लगाए दरबार में पड़े रहते थे (भुजनिर्जितैः शत्रुमहासामन्तै समन्तादासेव्यमानम्, पृ० ६०)। बाण ने एक स्थान पर लिखा है कि निर्जित सामन्तों को अपने बाल शिशुओं या नाबालिग कुमारों को विजेता सम्राट् को सौप देना पडता था (प्रत्यग्रनिर्जितस्यास्तमुपगतवतो वसन्तसामन्तस्य बालापत्येषु, पृ० ४५)। ज्ञात होता है कि जो राजा युद्ध मे मारे जाते थे उनके कुमारों को विजेता सम्राट् अपने सरक्षण में ले लेते थे और उन्हें राजप्रासाद में ही रखकर शिक्षित और विनीत करते थे। कालान्तर मे जब वे वयस्क हो जाते थे तो उन्हें उनके पिता का राज्य वापिस मिल जाता था। समुद्रगुप्त ने अपनी प्रयाग-प्रशस्ति में कई प्रकार की राजव्यवहार की नीतियों का परिगणन करते हुए इन चार बातों का भी उल्लेख किया है—

२ आज्ञाकरण

३ प्रणामाकामन

४ भ्रष्टराज्योत्सन्नराजवशप्रतिष्ठापन

बाण के ऊपर लिखे वर्णनों में भी चारो नीतियाँ आ जाती है। आमने-सामने खुले युद्ध में हारकर अनन्यशरण बने हुए शत्रु-महासामन्तों के साथ ऊपर के व्यवहार उस काल की अन्तरराष्ट्रीय युद्धनीति के अनुसार सर्वमान्य थे। ऐसे महासामन्त विजेता के सामने अपना शेखर और मौलि उतारकर प्रणाम करते थे। मौलि केशों के ऊपर का गोल सुवर्णपट्ट और शेखर उसके ऊपर लगा हुआ शिखण्ड ज्ञात होता है।

जैसा ऊपर कहा गया है सामन्त-प्रथा बाण के काल (७ वीं शती का पूर्वार्ध) से पहले ही खूब विकसित हो चुकी थी। उसका सम्पूर्ण ब्यौरेवार इतिहास अभी नही लिखा गया। पश्चिमी भारत से मिले हुए सम्राट् विष्णुषेण के ५६२ ई० के लेख मे स्थानीय देशाचार (दस्तूरुल अमल) का ब्यौरेवार सग्रह दिया गया है। उसमें लिखा है कि जायदाद और जमीन के मामलों (स्थावर व्यवहार) का अन्तिम निपटारा सामन्तो के अधिकार से बाहर था। यदि वे उसका फैसला करदे तो उन्हें १०८ चाँदी के रुपये (अष्टोत्तररूपकशत) जुर्माना देना पडता था। उसी लेख में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह लिखी है कि जब राज्य का कोई अमात्य, दूत या सामन्त गाँव में जाता था तो गाँववालों के लिये यह आवश्यक न था कि उनके लिये पलग-डेरा या भोजन-पानी का प्रबन्ध करें —

सामन्तामात्यदूतानामन्येषा चाभ्युपगमे शयनासनसिद्धान्न न दापयेत्।

सामन्त की परिभाषा

शुक्रनीति गुप्त-शासन का मानों कौटिलीय अर्थशास्त्र है। उसमें गुप्त-शासन-प्रबन्ध और सचिवालय का हूबहू वर्णन पाया जाता है। उसकी सस्थाएँ उसी युग के लिये सत्यात्मक उतरती है। शुक्रनीति में एक महत्त्वपूर्ण सूचना यह पाई जाती है कि उस समय गाँव-गाँव में खेतों की नापजोख कर जमीन का बदोबस्त किया गया था। एक सहस्र सीर भूमि पर एक सहस्र कार्षापण लगान, राजग्राह्य कर जिसे भाग कहते थे, नियत किया गया था। इसी निर्धारित 'भाग' के राजत कार्षापणों की सख्या के अनुसार गाँव, परगने देश, आदि की प्रसिद्धि हो जाती थी। जैसे—यदि कहा जाय शाकम्भर सपादलक्ष, तो इसका अर्थ यह हुआ कि शाकम्भर प्रदेशका भूमिकर कुल सवा लाख चाँदी के कार्षापण था। गुप्त काल में सारे देश में इस प्रकार का एक भूमि-प्रबन्ध हुआ था और जो भाग उस समय नियत कर दिया गया था उसीको कालान्तर में मध्यकाल तक जनता मानती रही। यह अतिरोचक विषय है जिसमे अभी अधिक अनुसधान की आवश्यकता है। शिलालेखों में जो देशवाची नामों के आगे भारी-भारी सख्याएँ मिलती हैं वे इसी प्रकार की हैं। अपराजित-पृच्छा (पृ० ८८) में उनकी एक अच्छी सूची मिलती है। शुक्रनीति के अनुसार जिसकी वार्षिक आय (भूमि से) एक लाख चाँदी के कार्षापण होती थी वह सामन्त कहलाता था—

---

१. १५ वी (बम्बई) ओरियंटल कान्फ्रेन्स का वार्षिक विवरण, पृ० २७३, श्री दिनेशचन्द्र सरकार का लेख, एपिग्राफी ऐंड लैक्सीग्राफी इन इंडिया। सिद्धान्न से ही हिन्दी का 'सीधा' शब्द बना है।

लक्षकर्षमितो भागो राजतो यस्य जायते।
वत्सरे-वत्सरे नित्य प्रजानां त्वविपीडनै.॥ १ । १८२
सामन्त स नृपः प्रोक्त यावल्लक्षत्रयावधि।
तदूर्ध्वं दशलक्षान्तो नृपो माडलिकः स्मृतः॥ १ । १८३
तदूर्ध्व तु भवेद्राजा यावद्विंशतिलक्षकः।
पञ्चाशल्लक्षपर्यन्तो महाराज प्रकीर्तित.॥ १ । १८४
ततस्तु कोटिपर्यन्त स्वराट् सम्राट् तत. परम्।
दशकोटिमितो यावद् विराट् तु तदनन्तरम्॥ १ । १८५
पञ्चाशत्कोटिपर्यन्त सार्वभौमस्ततः परम्।
सप्तद्वीपा च पृथिवी यस्य वश्या भवेत्सदा॥ १ । १८६

इसकी तालिका इस प्रकार हुई—

सामन्त की वार्षिक भूमिकर से आय	१ लाख —३ लाख चाँदी के कार्षापण।	
माडलिक	४ लाख —१० लाख	,,
राजा	११ लाख—२० लाख	,,
महाराज	२१ लाख—५० लाख	,,
स्वराट्	५१ लाख—१ करोड	,,
सम्राट्	२ करोड—१० करोड	,,
विराट्	११ करोड— करोड	,,
सार्वभौम	इससे ऊपर की आय-सप्तद्वीपा पृथिवी का स्वामी	

सामन्त आदि की यह परिभाषा एकदम ठोस जीवन की सचाई से ली गई है। इसके द्वारा शासन और राज्यों के अधिपति राजा-महाराजाओं का तारतम्य तुरन्त समझ में आ जाता है। मानसार ग्रन्थ में तो सामन्त से लेकर चक्रवर्ती और अधिराज तक के पदों को प्रकट करने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के मौलि और मुकुटों का विवरण दिया है। इन्ही की सहायता से दरबार आदि के समय प्रतिहारी लोग इनकी पहिचान करके उन्हें यथोचित आसन और सम्मान प्रदान करते थे [मानसार ४९।१२-२६]। गुप्तकाल के बाद मुद्राओ की दर सस्ती हो गई। अतएव मध्यकाल में हम पाते है कि सामन्तों की आय घट गई थी। अपराजित पृच्छा ग्रन्थ के अनुसार लघुसामन्त की आय ५ सहस्र, सामन्त की १० सहस्र, महासामन्त या सामन्तमुख्य की २० सहस्र होनी चाहिए (अपराजितपृच्छा, पृ० २०३, ८२। ५-१०)। सूत्रधार मंडन-कृत राजवल्लभ-मडन (५।१-७, पृ० ७२) से भी इसका समर्थन होता है। अपराजितपृच्छा में यह भी लिखा है कि महाराजाधिराज परमेश्वर उपाधिधारी सम्राट् के दरबार (सभामडप) मे ४ मडलेश, १२ माडलिक, १६ महासामन्त, ३२ सामन्त, १६० लघु सामन्त और ४०० चतुराशिक (या चौरासी) उपाधिधारी होने चाहिएँ (७८।३२-३४, पृ०१९६।) शुक्रनीति (१।१८९) के अनुसार महाराज रुष्ट होकर सामन्तों की पदवी छीन-कर उन्हें पदभ्रष्ट या हीनसामन्त कर देते थे, किन्तु उनकी भृति या आय उन्हें मिलती रहती थी। उनका दरबार आदि बद कर दिया जाता था और जनता पर जो उनका शासन था वह भी छीन लिया जाता था।

सहायक ग्रन्थों और लेखों की सूची

(१) हर्षचरित के संस्करण

१ श्री जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण (१८७६ ई०), तीसरा संस्करण (१६१८) चलतू संस्करण है जिसमें मनमाने पाठ दिए गए हैं।

२ जम्मू सस्करण, महाराज रणबीर सिंह बहादुर के संरक्षण में प्रकाशित, सवत् १६३६ (= १८७६ ई०)। कश्मीरी प्रतियों के आधार पर। पाठ अपेक्षाकृत शुद्ध।

३ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर संस्करण, कलकत्ता (१८८३)।

४. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, का प्रथम सस्करण (१८६२) जिसे श्री काशीनाथ पाण्डुरंग परब और श्री धोंधो परशुराम वाझे ने सपादित किया। यही सस्करण सबसे अधिक सुलभ है। इसी के पाँचवें संस्करण (१६२५) के पृष्ठाक यहाँ दिए गए हैं। मूल संस्करण को श्री वासुदेवलक्ष्मण शास्त्री पणशीकर ने संशोधित किया है।

५. श्री कैलासचन्द्र दत्त शास्त्री, कलकत्ता, द्वारा सपादित सस्करण।

६. श्री ए० ए० फ्यूहरर द्वारा संपादित संस्करण (श्रीहर्षचरितमहाकाव्यम्), बम्बई (१६०६)। यह प्राचीन कश्मीरी और देवनागरी प्रतियों के आधार पर सपरिश्रम तैयार किया हुआ सस्करण है। पाठ और अर्थों को ठीक करने मे इससे मुझे सबसे अधिक सहायता मिली। इसकी त्रुटि यही है कि बाण की परिभाषाओं का ज्ञान न होने के कारण बहुत अच्छे पाठ मूल की जगह टिप्पणी में रख दिए गए है।

७ श्री पी० वी० काणे द्वारा संपादित संस्करण, बम्बई (१६१८, प्रथम संस्करण)। इसमें मूल हर्षचरित सम्पूर्ण है किन्तु 'सकेत' टीका नही छापी गई। इस सस्करण की विशेषता उसके ४८५ पृष्ठो के नोट्स है जिनमे हर्षचरित के प्राय प्रत्येक कठिन पद और समास पर अत्यन्त परिश्रम के साथ विचार किया गया है। बाण की पारिभाषिक शब्दावली और सास्कृतिक सामग्री के स्पष्टीकरण की दृष्टि से इस उत्तम संस्करण की वही सीमा है जो १६१८ मे बाण के अध्ययन की थी। फ्यूहरर के सस्करण के पाठान्तरो का उपयोग भी इसमे कम ही हो सका है।

८ बाणकृत हर्षचरित, उच्छ्वास ४-८, श्री एस० डी० गजेन्द्रगड़कर-विरचित बालबोधिनी नामक संस्कृत टीका-सहित। इसी के साथ श्री ए० बी० गजेन्द्रगड़कर-कृत भूमिका, टिप्पणी और अनुक्रमणी भी है [Introduction, (critical and explanatory) and Appendices by A B Gajendragadkar], पूना १६१६।

इनमें से सख्या २, ४, ६, ७, ही मुझे उपलब्ध हो सके।

९ श्री ० बी० कॉवेल और एफ० डब्लू टामस-कृत हर्षचरित का अंग्रेजी अनुवाद, लंडन, १८६७ (अत्यन्त उत्कृष्ट और सरस)।

१० श्री सूर्यनारायण चौधरी (संस्कृत-भवन, पूर्णिया)-कृत हर्षचरित का हिन्दी अनुवाद, पूर्वार्ध उच्छ्वास १-४ (मार्च १९५०), उत्तरार्ध उच्छ्वास ५-८ (जून १९४८)।

(२) लेख-सूची

१ श्री यू० के० घोषाल, हिस्टारिकल पोर्ट्रेट्स इन बाणस् हर्षचरित (हर्षचरित में ऐतिहासिक व्यक्तियों के रेखाचित्र), विमलाचरण लाहा वाल्यूम, भाग १, पृ० ३६२-३६७।

२ श्री डबल्यू कार्टेलिअरी, सुबन्धु ऐंड बाण, विअना ओरियंटल जर्नल, भाग १, पृ० ११५-१३२। [लेखक का अभिमत है कि बाण ने सुबन्ध-कृत वासवदत्ता का आदर्श सामने रखकर कादम्बरी की रचना की।]

३. श्री शिवप्रसाद भट्टाचार्य, सुबन्धु ऐंड बाण, हू इज अर्लिअर ? (सुबन्धु और बाण में पहला कौन) ? इंडिअन हिस्टारिकल क्वार्टरली, १९२६, पृ० ६९९।

४. श्री वि० वि० मिराशी, दी ओरिजिनल नेम आफ दी गाथासप्तशती रेफर्ड टू बाइ बाण एज कोष (गाथासप्तशती का असली नाम बाण ने कोष दिया है), नागपुर ओरियंटल कान्फ्रेन्स (१९४६), पृ० ३७०-३७४।

५ श्री सिल्वाँ लेवी, आलेग्जाँद्र ए आलेग्जाँद्री दाँ ले दोक्युमाँजोंदियाँ, मेमोरिअल सिलवाँ लेवी, पृ० ४१४। [लेखक ने दिखाया है कि बाण का 'अलसश्वंडकोश' (पृ० १६५) सिकन्दर और स्त्रीराज्य की पुरानी कहानी पर आश्रित था।]

६ श्री प्रबोधचन्द्र बागची, एलेक्जेंडर ऐंड एलेक्जेंड्रिया इन इंडिअन लिटरेचर, (भारतीय साहित्य में अलेग्जेंडर और अलेग्जेंडिया), इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग १२ (१९३६), पृ० १२१-१२३। संख्या ५ के फ्रेंच लेख का अंग्रेजी अनुवाद।

७ श्री देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर, नोट्स ऑन ऐंशेंट हिस्ट्री ऑफ इंडिआ (प्रद्योत और उसके भाई कुमारसेन की पहचान, एवं शिशुनाग के पुत्र काकवर्ण की पहचान), इंडिअन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग १, पृ० १३-१९। और भी देखिए, श्री सीतानाथ प्रधान का लेख, सर आशुतोष मुकर्जी सिल्वर जुबली वाल्यूम, ओरियंटेलिआ, भाग ३, पृ० ४२५-४२७।

८ श्री परशुराम के० गोडे, तंगण हॉर्सेज इन हर्षचरित (हर्षचरित में तंगण देश के घोड़े), इंडिअन हिस्ट्री काग्रेस, अन्नमलै, की प्रोसीडिंग्ज, पृ० ६६।

९ श्री आर० एन० सालातोरे, दिवाकरमित्र, हिज डेट ऐंड मानेस्ट्री (दिवाकरमित्र, उसका काल और आश्रम), इंडिअन हिस्ट्री काग्रेस अन्नमलै, की प्रोसीडिंग्ज, पृ० ६०।

१० श्री परमेश्वरप्रसाद शर्मा, महाकवि बाण के वंशज तथा वासस्थान, माधुरी, संवत १९८७ (पूर्ण संख्या ६६), पृ० ७२२-७२७।

११. श्री शिवाधार सिंह, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-पत्रिका, सवत् २००६, भाग ३६, तीन लेख—

(अ) बाणभट्ट का उद्भवकाल तथा उनके परवर्ती लेखक,
माघ-चैत्र, सख्या ४-६, पृ० २२६-२३८

(आ) ,, वैशाख आषाढ, सख्या ७ ६, पृ० ३७०-३८८

(इ) बाण और मयूर श्रावण-आश्विन, सख्या १०-१२, पृ० ४८८-४६७

१२ श्री जयकिशोरनारायण सिंह, महाकवि बाण तथा पार्वतीपरिणय, माधुरी, सवत् १६८८ (पूर्ण सख्या १११), पृ० २८६-२६४।

१३ श्री सी० शिवराम मूर्ति, पेंटिंग ऐंड अलाइड आर्ट्स् ऐज रिवील्ड इन बाणस् वर्क्स्, जर्नल ऑफ ओरियटल रिसर्च (मद्रास) (बाण के ग्रन्थों में चित्र और संबधित कलाएँ), भाग ६, पृ० ३६५ एव भाग ७, पृ० ५६ ।

१४ श्री ननिगोपाल बनर्जी, श्रीहर्ष, दी किंग-पोएट (सम्राट् हर्ष कविरूप में), इंडिअन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग १२ (१६३६), पृ० ५०४-५१०, ७०१-७१३ ।

१५. श्री एस० एन० झारखडी, दी कारोनेशन ऑफ हर्ष (हर्ष का राज्याभिषेक), इडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग १२ (१६३६), पृ० १४२-१४४ ।

१६ श्री कार्टेलियरी, डास महाभारत बेइ सुबन्धु उंड बाण (सुबन्धु और बाण में महाभारत), विअना ओरियंटल जर्नल, भाग १३, पृ० ७२ ।

१७ क्लोज लैक्सिकल एफीनिटी बिटवीन हर्षचरित ऐंड राज-तरगिणी (हर्षचरित और राज-तरंगिणी में शब्दों की समानता), विअना ओरियंटल जर्नल, भाग १२, पृ० ३३ , जर्नल ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, १८६६, पृ० ४८५ ।

१८ श्री मानकोस्की, कादम्बरी ऐंड बृहत्कथा, विअना ओरियंटल जर्नल, भाग १३ ।

१६. श्री डी० सी० गागुली, शशाक, इडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग १२ (१६३६), पृ० ४५६-४६८ ।

२०. अन्य कवियों द्वारा बाण की सराहना, संस्कृत-साहित्य-परिषत कलकत्ता, की पत्रिका, भाग १३, पृ० ३८ 'तथा श्री पिटर्सन द्वारा सम्पादित कादम्बरी की भूमिका (पृ० ४६) मे भी इसपर विस्तृत विचार है।

अभी हाल मे अपने मित्र श्री डा० राघवन्, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, मदरास विश्वविद्यालय, से पता चला कि कृष्णसूरि के पुत्र और नारायण के शिष्य, रगनाथ नामक विद्वान् ने हर्षचरित पर 'मर्मावबोधिनी' नामक टीका लिखी थी। उसकी एक सम्पूर्ण प्रति गवर्मेंट ओरियटल मैन्यस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मदरास मे (सं० आर० २७०३) और दूसरी खडित प्रति अदयार लाइब्रेरी मे (स० ८ । १ । १६, सूचीपत्र भाग ५, पृ० ७७०) है। इस टीका के सम्बन्ध में पूछताछ कर रहा हूँ। अभी जानकारी नही मिली।

शुद्धिपत्र

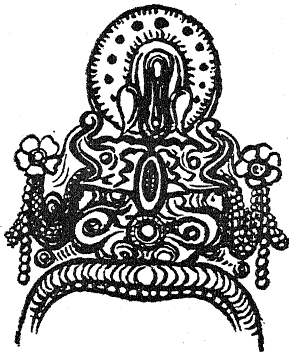
१ पांडरिभिक्षु (२३६)। पाडरिभिक्षुओं की पहचान मैंने जैन साधुओं से की थी। वह भ्रान्त है। उनकी ठीक पहचान आजीवक सम्प्रदाय के साधुओं से होनी चाहिए। इसके लिये मै श्री भोगीलालजी साडेसरा कृत पचतत्र के गुजराती अनुवाद (पृ० २३४,५१०) का ऋणी हूँ। निशीथसूत्र की चूर्णि मे गोसाल के शिष्य आजीवकों को पाण्डुरिभिक्षु कहा है (आजीवगा गोसालसिस्सा पडरभिक्खुआ वि भणति, निशीथचूर्णि ग्रन्थ ४, पृ० ८६५)। पचतत्र मे श्वेत-भिक्षु का उल्लेख आता है 'श्वेतभिक्षुमपश्चिनाम, काकोलूकीय श्लोक ७६)। वह भी पाडरि भिक्षु ही है। हरिभद्रसूरिकृत समराइच्चकहा मे भी पाण्डरिभिक्षुओ का उल्लेख है।

२ ध्रुवागीति (२०)। अपने सगीतशास्त्र के अज्ञान के कारण ध्रुवा का अर्थ मैने ध्रुपद किया था जो भ्रान्त है। अपने मित्र श्री डा० राघवन् से ज्ञात हुआ कि ध्रुवा, जैसा शकर ने लिखा है, एक विशिष्ट प्रकार की गीति थी। ध्रुवा गीति के पॉच भेद थे— प्रावेशिकी (रंग प्रवेशके समय की), नैष्क्रमिकी (रग से निष्क्रमण के समय की), और तीन आक्षेपकी, आन्तरा, प्रासादिकी, जो अभिनेता के रंग पर अभिनय के बीच मे गाई जाती थीं। ये गीतिया अभिनय के प्रस्तुत विषय में कुछ नवीन भाव उत्पन्न करती एव दर्शकों को सकेत से विषय प्रसंग, स्थान, और सम्बन्धित पात्र का परिचय देती थीं, क्योंकि भरत के रगमच पर स्थान-काल सूचक यवनिका आदि का अभाव था। जैसे, सूर्योदय सम्बन्धी गीति से प्रातःकाल का सकेत एव नायक के भावी अभ्युदय की सूचना दी जाती थी। ध्रुवा-गीतियों की दूसरी विशेषता यह थी कि वे वर्ण्यवस्तु को प्रतीक या अन्योक्ति द्वारा कहती थीं, जैसे नायक के आगमन की सूचना किसी हाथी के वन-प्रवेश के वर्णन द्वारा दी जाती है। ध्रुवा गीतिया प्राय प्राकृत भाषा मे होती थीं जिससे ज्ञात होता है कि वे लोक गीतों से ली गई। सस्कृत की ध्रुवाए बहुत बाद मे लिखी गईं। ध्रुवागीति का गान प्रायः वृन्दसंगीत (आर्केस्ट्रा) के साथ होता था। (दे० श्री राघवन् एन आउटलाइन लिट्रेरी हिस्ट्री ऑफ इडिअन म्यूजिक, जर्नल ऑफ मद्रास म्यूजिक एकेडमी, भाग २३ (१९५२), पृ० ६७)।

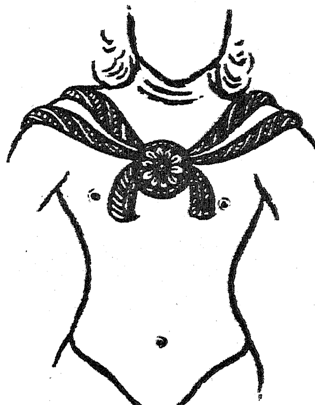
३ किन्नरराज द्रुम (२१३)। बाण ने लिखा है कि कौरवेश्वर ने द्रुम को जीत लिया था और द्रुम ने उसे कर दिया। शकर ने कौरवेश्वर का अर्थ दुर्योधन किया है। ज्ञात होता हैकि कौरवेश्वर पद अर्जुन का वाची है, क्योंकि सभापर्व २५।१ के अनुसार अर्जुन ने किंपुरुष देश मे किन्नरराज द्रुम के पुत्र का राज्य जीत लिया था (दिशकिंपुरुषवास द्रुमपुत्रेण रक्षितम्)। दिव्यावदान (पृ० ४३५ आदि) सुधनकुमारावदान नामक कहानी मे हस्तिनापुर में का राजकुमार सुधन किन्नरराज द्रुम की पुत्री मनोहरा से प्रेम करके उससे विवाह कर लेता है। किसी समय यह कहानी दूर तक प्रसिद्ध थी। मध्य एशिया मे खोतन से सुधन अवदान की कहानी के पत्रे मिले है (दे० बेली, ईरानो इडिका, भाग ४ स्कूल ऑफ ओरियटल स्टैडीज की पत्रिका, भाग १३ (१९५१), पृ० ६२१, श्री मोती चद्र, सुधन अवदान का नेपाली चित्रपट, बम्बई संग्रहालय की पत्रिका, भाग १ (१९५२), पृ० ८।



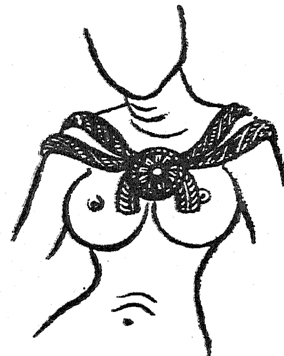
१



२



३



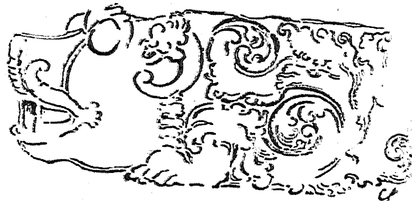
अ ३



४

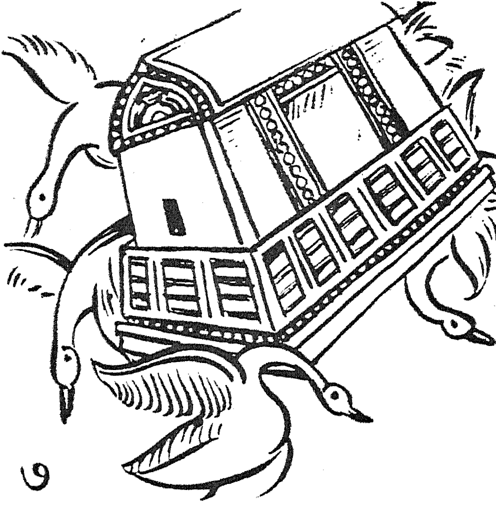


५

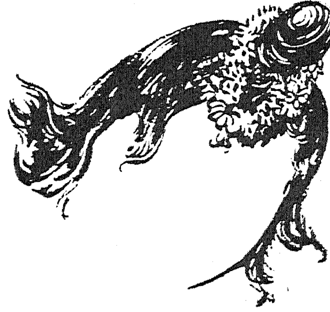


६

१ इन्द्रादि देवों साथ कमलासन ब्रह्मा । २ पत्रभंगमकरिका । ३ उत्तरीय की गात्रिका ग्रन्थि ।
४ कुंडलित स्कंधावलम्बी योगपट्ट । ५ पुंडरीक मुकुल सदृश कमंडलु । ६ मकरमुख महाप्रणाल ।



७



८



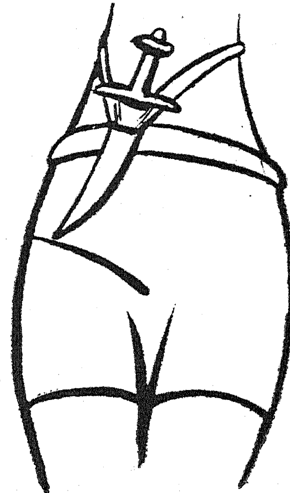
९



१०

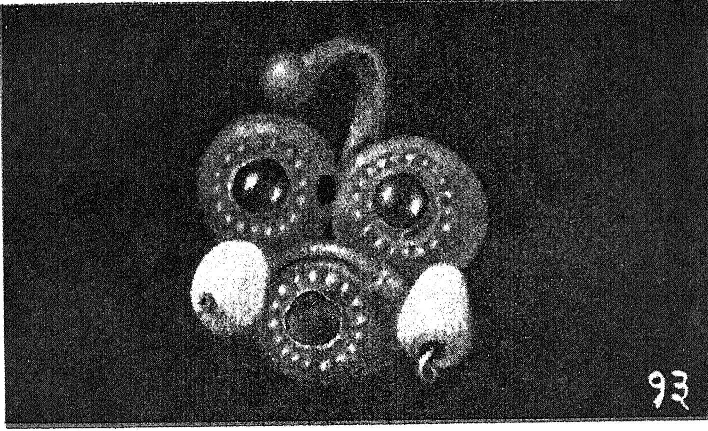


११

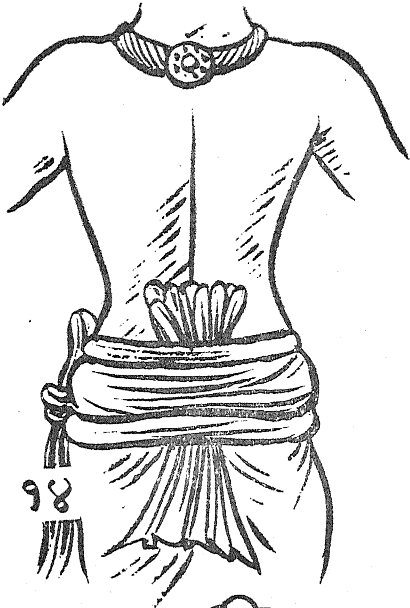


१२

७ हंसवाही देवविमान। ८ मौलिमालती माला। ९ अंशुक की उष्णीषपट्टिका। १० पंचमुखी शिवलिंग। ११ ललाट पर केशों का जूड़ा। १२ असिधेनु सहित पदाति।



१३ दो मोतियों के बीच में पन्ने सहित त्रिकंटक नामक कान का गहना।





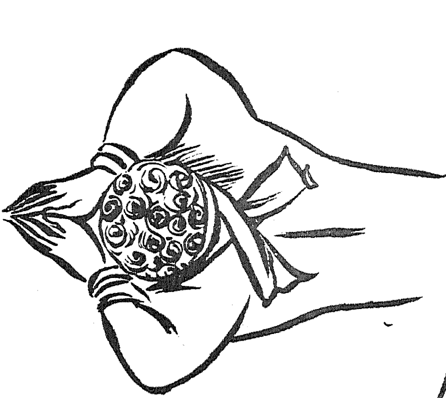




१४ कच्छ से बाहर निकला हुआ पल्ला। १५ उरोवक्षारोपित चरण युगल। १६ सीमन्त में चड़ुला मणि। १८ पेटी से कसा हुआ ऊँचा चंडातक।



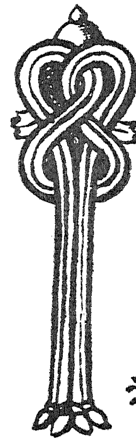
१७



१८



२०



अ २०

२१

१७ हल्लीसक नृत्य, स्त्रीमंडल के मध्य में युवक। १८ पीठ पर फहराता हुआ सिर का चीरा। २० वागुरा (कमन्द)। २० (अ) पाश। २१ हर्ष का विभ्रमयुक्त हस्ताक्षर।



२२



२३



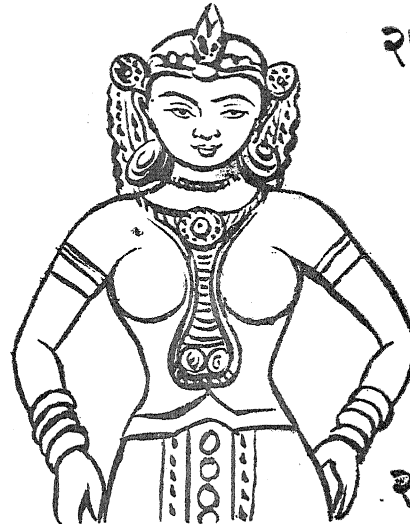
२४



२५



२६



२७

२२ अश्वग्रीवा गंडक। २३ शेषहार। २४ विष्णु के बालभुज। २५ सिर पर मुंडमालिका। २६ हर्ष के मुकुट में तीन आभूषण—मालती पुष्प मुंडमाला, पद्मराग चूडामणि और मुक्ताफल का शिखंडाभरण। २७ चोली पहने स्त्री।


यष्टि दीप
२८
गुल्फ तक चढ़े
हुए नूपुर
३१


लटकता हुआ
अधर
२९

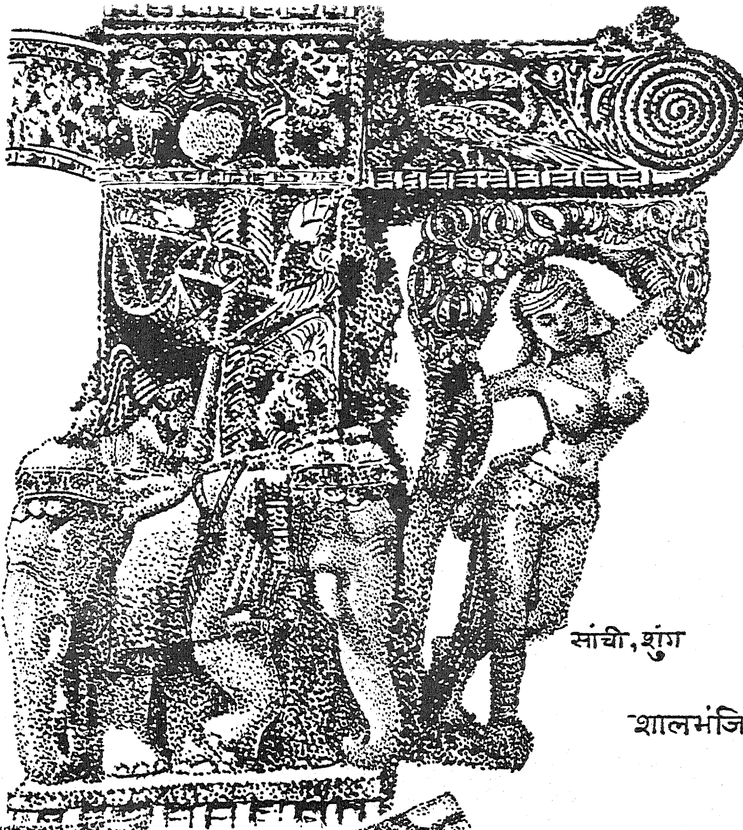

तरंगित
उत्तरीय
३२


मोरनी
राजछत्र
३४


३५

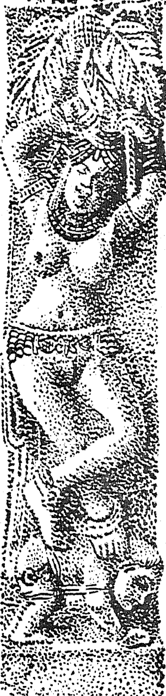


 भैरवाचार्य का शिष्य



सांची, शुंग

शालभंजिका



मथुरा, कुषाण



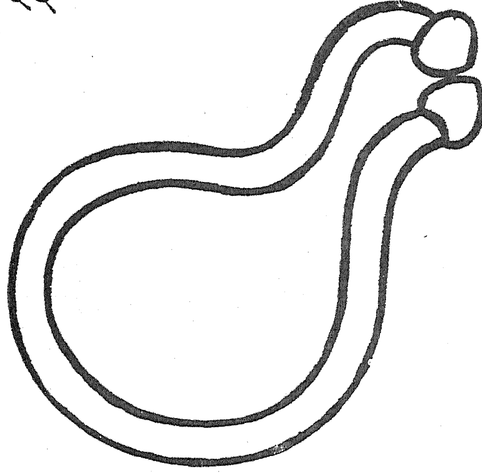
मथुरा, शुंग



गुप्त कालीन
स्तम्भ शालभंजिका
भूमरा











३६ तीन प्रकार के मृदंग—आलिंग्यक, आंक्य, ऊर्ध्वक। ३७ तंत्रीपटहिका। ३८ हंसाकृति नूपुर। ३९ फहराता हुआ उत्तरीय। ४० बघनख का कठुला।





काकपक्ष

भांतभतीली चूनड़ी

मकरमुखी टोंटी





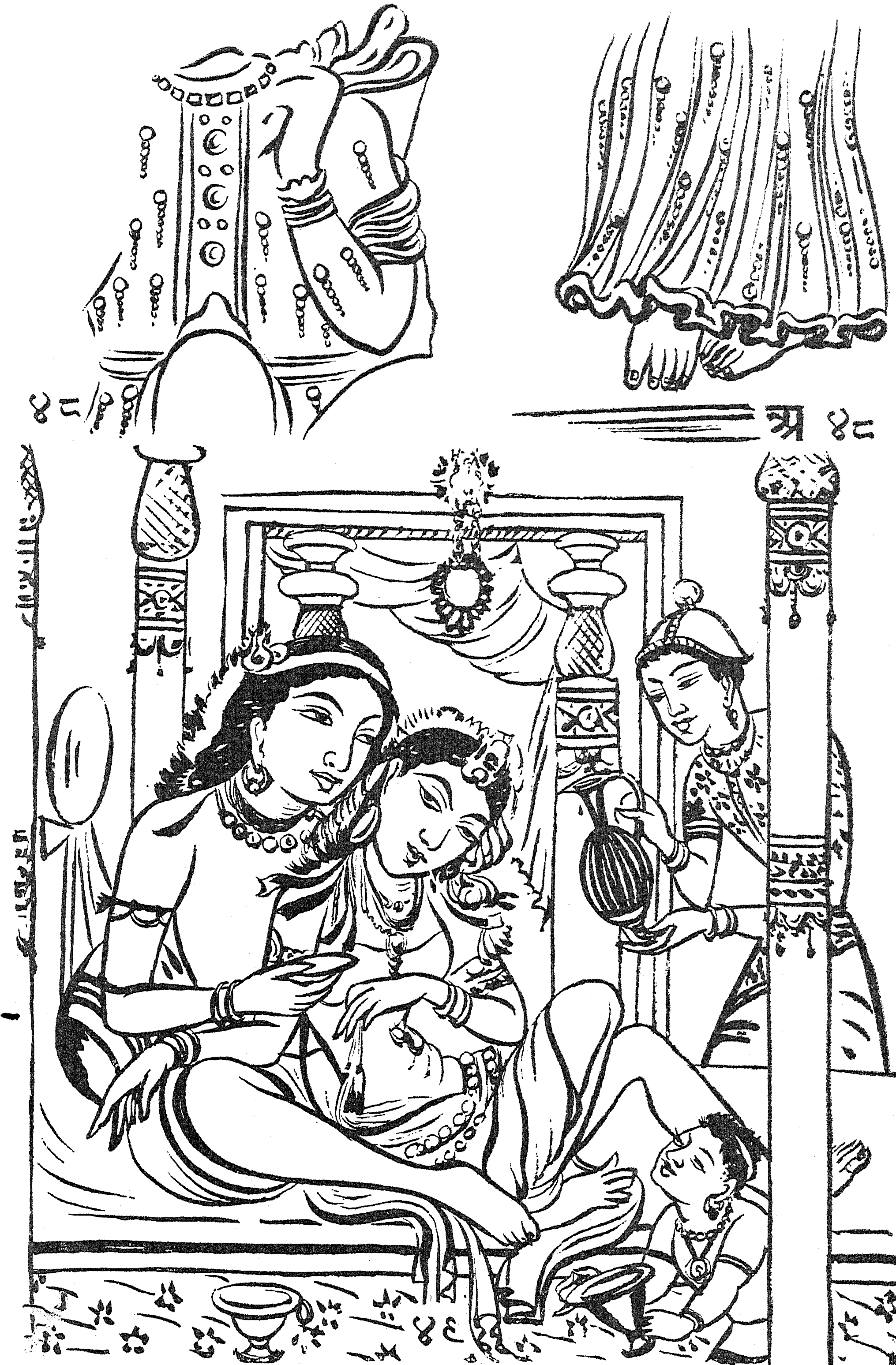




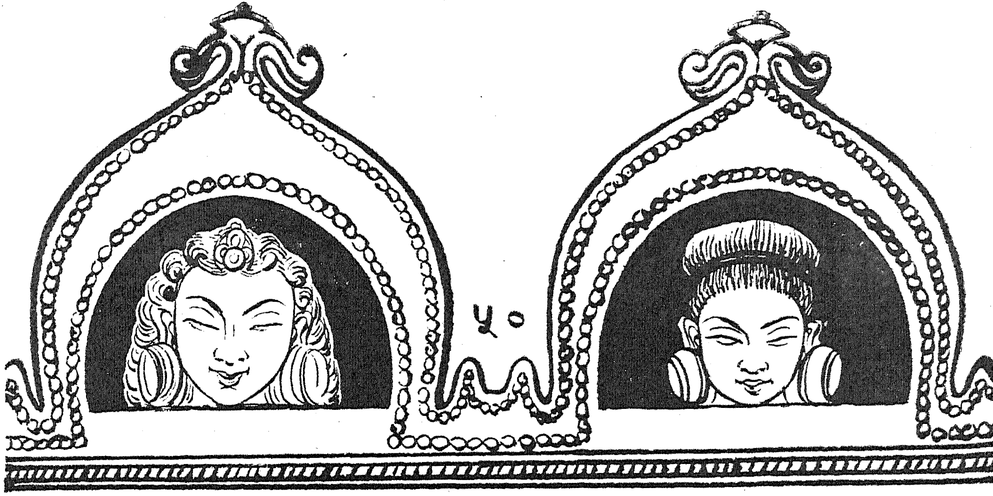




मथुरा से प्राप्त गुप्तकालीन विष्णु । सिरपर मकरिका, गले में एकावली, कटि में बंधा हुआ नेत्रसूत्र, और खराद पर चढ़े हुए के जैसा गोल कटि प्रदेश (तनुवृत्तमध्य)।



४८ स्तवरक वस्त्र का कोट। ४८ (अ) स्तवरक वस्त्र का लंहगा पहने नर्तकी। ४६ वासगृह में वर-वधू।



५१

५० गवाक्षों से झांकते हुए स्त्रीमुख। ५१ धवलगृह की वीथी में त्रिगुण तिरस्करिणी या तिहरी कनात।



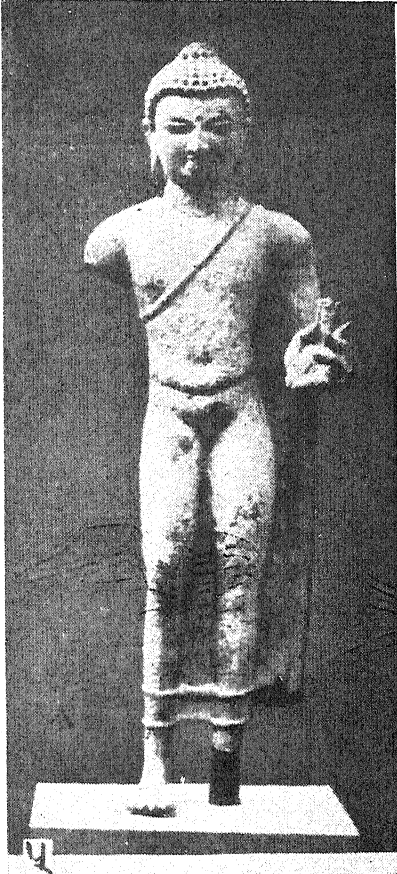




५१ (अ) राजभवन में पक्ष द्वार। ५२ तरंगित उत्तरीयांशुक। ५३ सिर पर धम्मिल्ल या इकट्ठा जूड़ा।

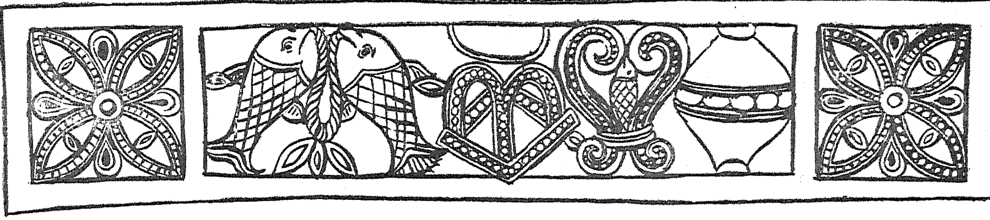




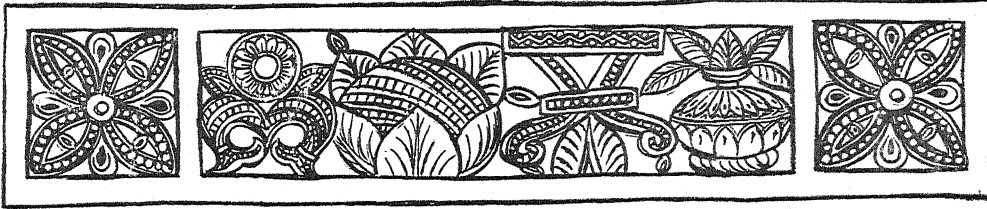




५४ पताका युक्त प्रासयष्टि। ५५ हंसाकृति "राजहंस" पात्र। ५६ "मग्नांशुक" झीना वस्त्र और बारीक किनारी। ५७ कुब्जिका नामक अल्पवयस्क परिचारिका।



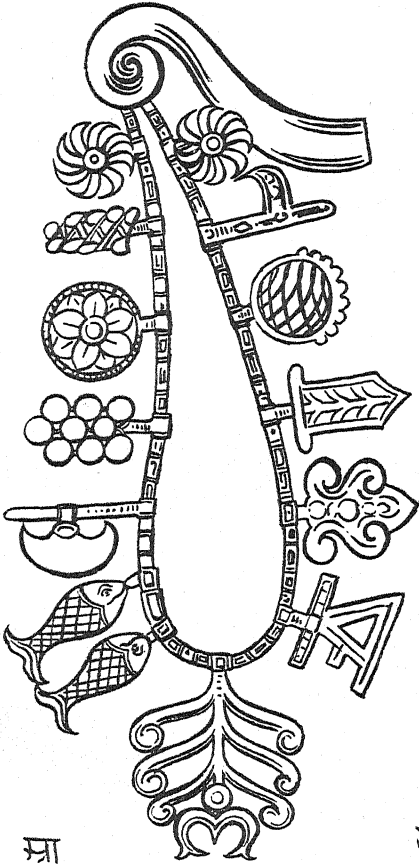
मथुरा



अ

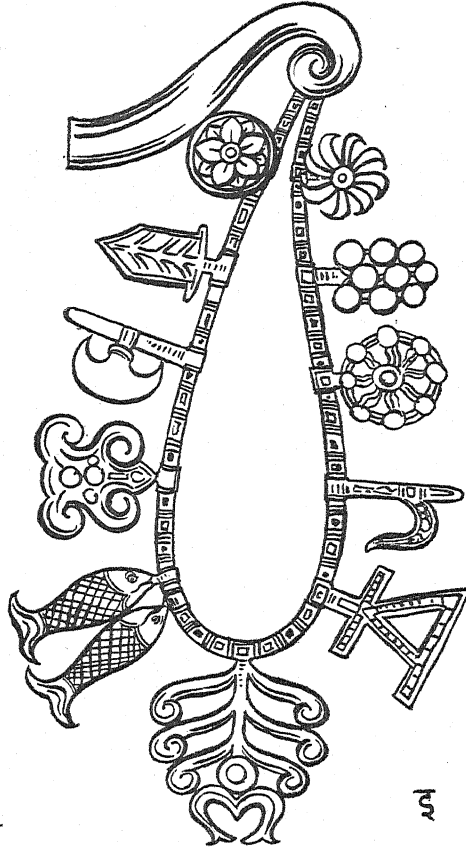
अष्टमंगलक माला

५६



आ

सांची



इ

अ--मथुरा से प्राप्त अष्टमंगलकमाला। आ--इ, सांची के तोरणस्तम्भ पर अंकित मांगलिक चिह्नों के कठुले।



५८ शशांक की मुद्रा



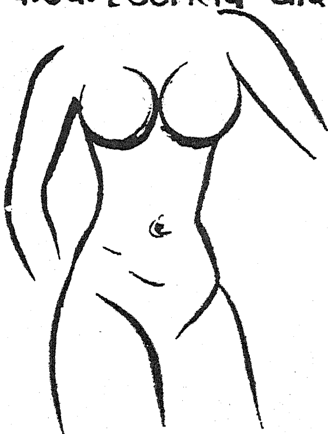
बाहु या भुजाली ६०



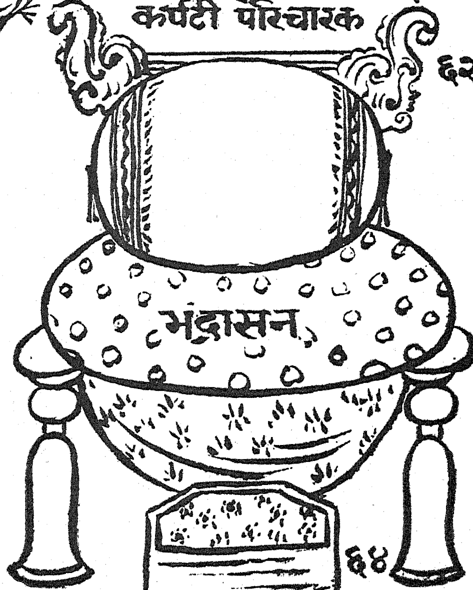
६१ कटक [डंडा लिये प्यादा]



कर्पटी परिचारक ६२



६३ कोटवी देवी



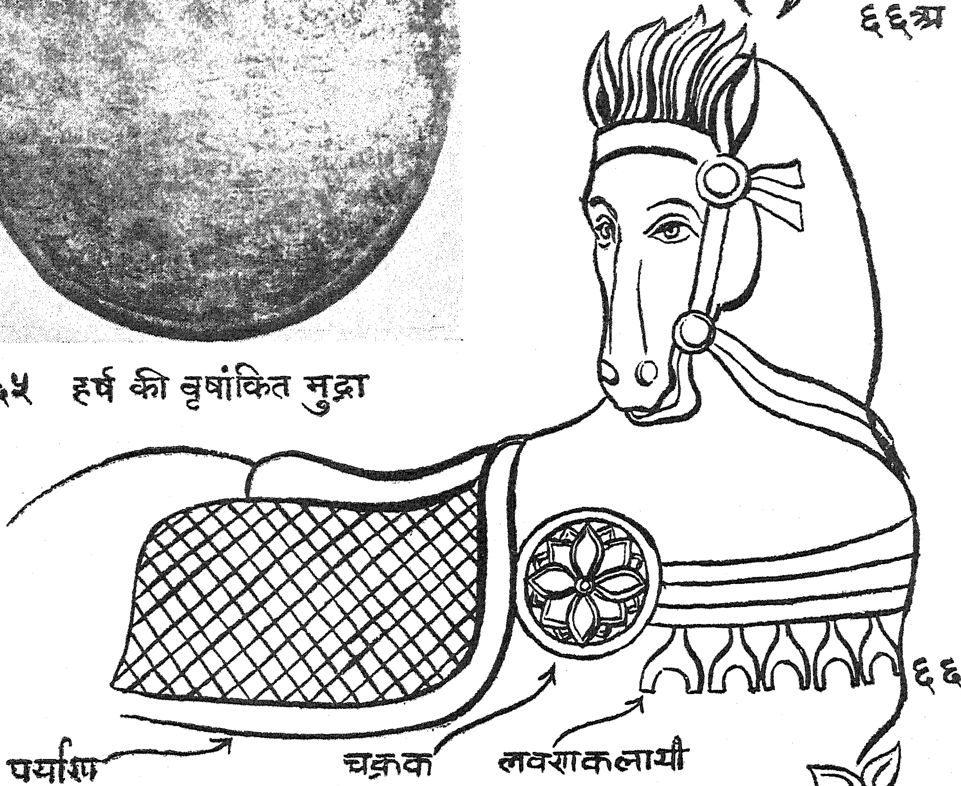
भद्रासन ६४



६५ हर्ष की वृषांकित मुद्रा



६६ अ

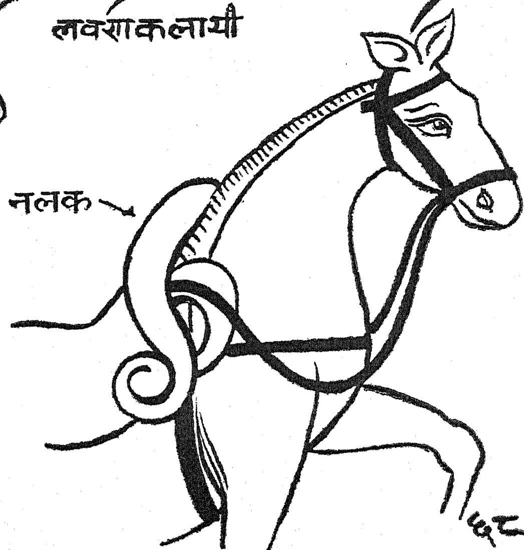


६६



[धौंकनी नुमा तरकश]

६७



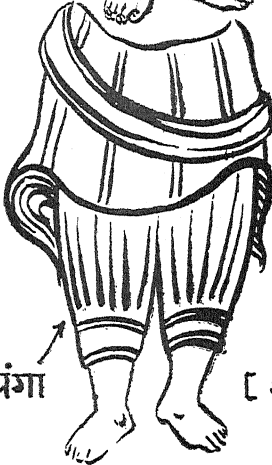
६८



६९ स्वस्थान



वारबारा ७३

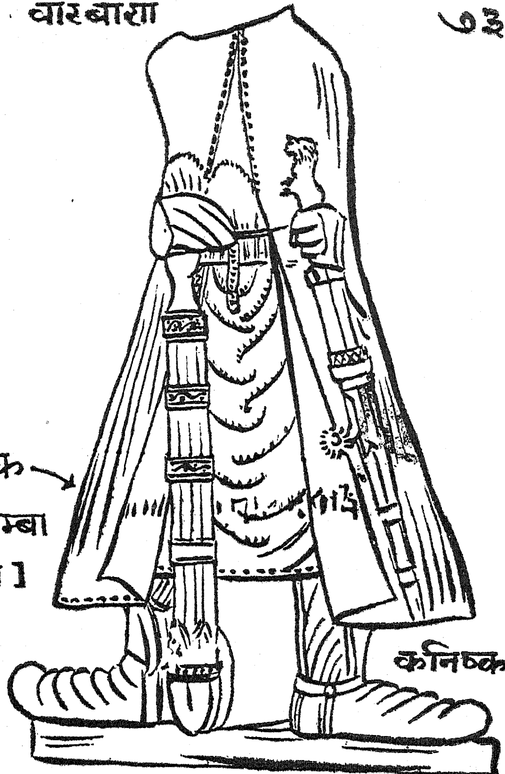


७०



चष्टन

७४



कनिष्क

७४ अ


बिना बाँह
आधी बाँह
पूरी बाँह
७५
अ ७५ कूर्पासक
७५ब


आच्छादनक
बालपाश
७६
[हल्का उपरना]
७७


कर्णोत्पल
खोल
[ईरानी कुलह]
कुंडल
पत्रांकुर कर्णपूर
७८
७९



८१



अ ८१



८२



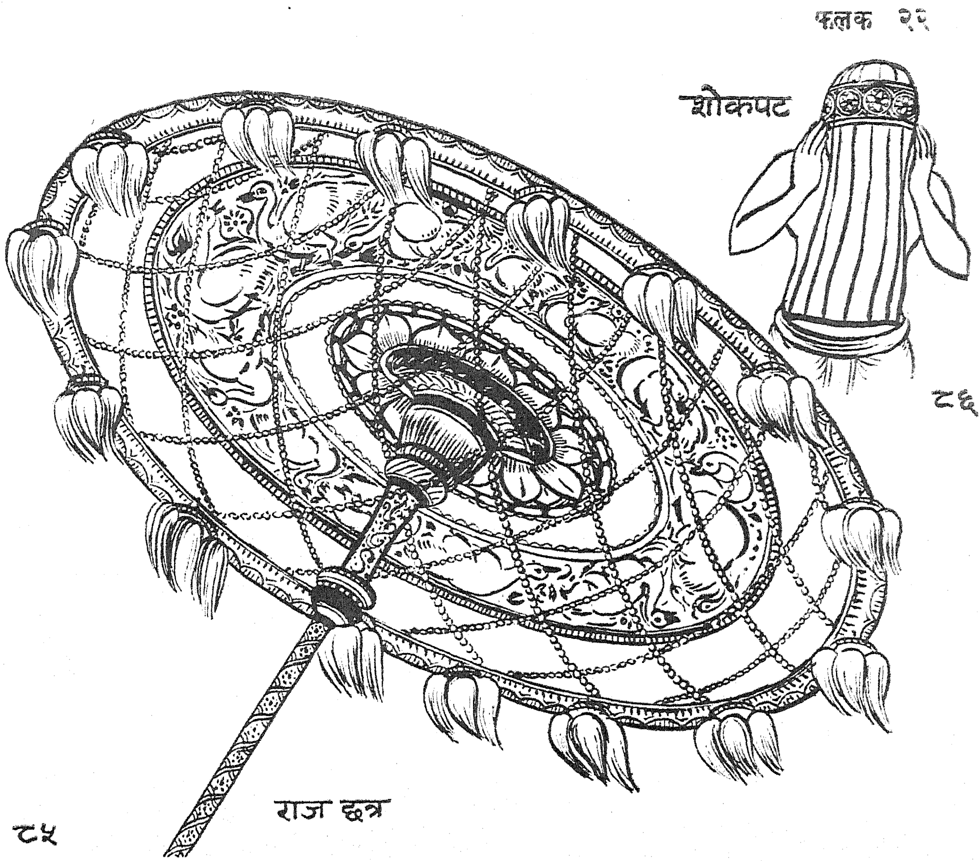
८२ अ



८३

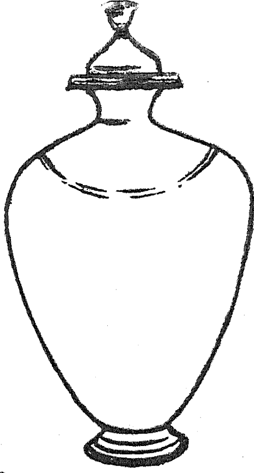


८४





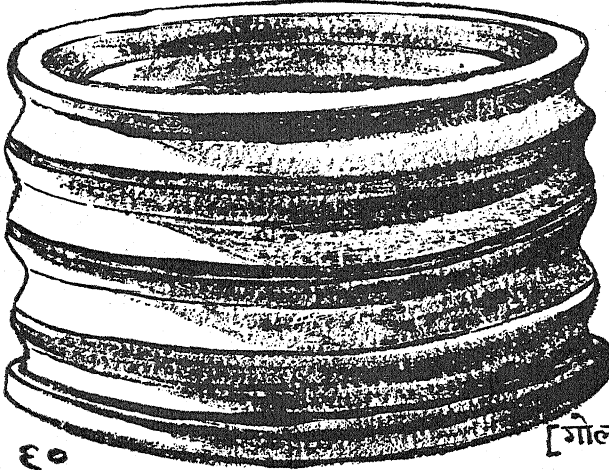
८७ कटहल के फल जैसी गगरी, पत्तों से ढकी हुई, हस्तिनापुर से प्राप्त। दूसरी कंटकित कर्करी, अहिच्छत्रा से प्राप्त।



८८ घीटकुट [अमृतबान]



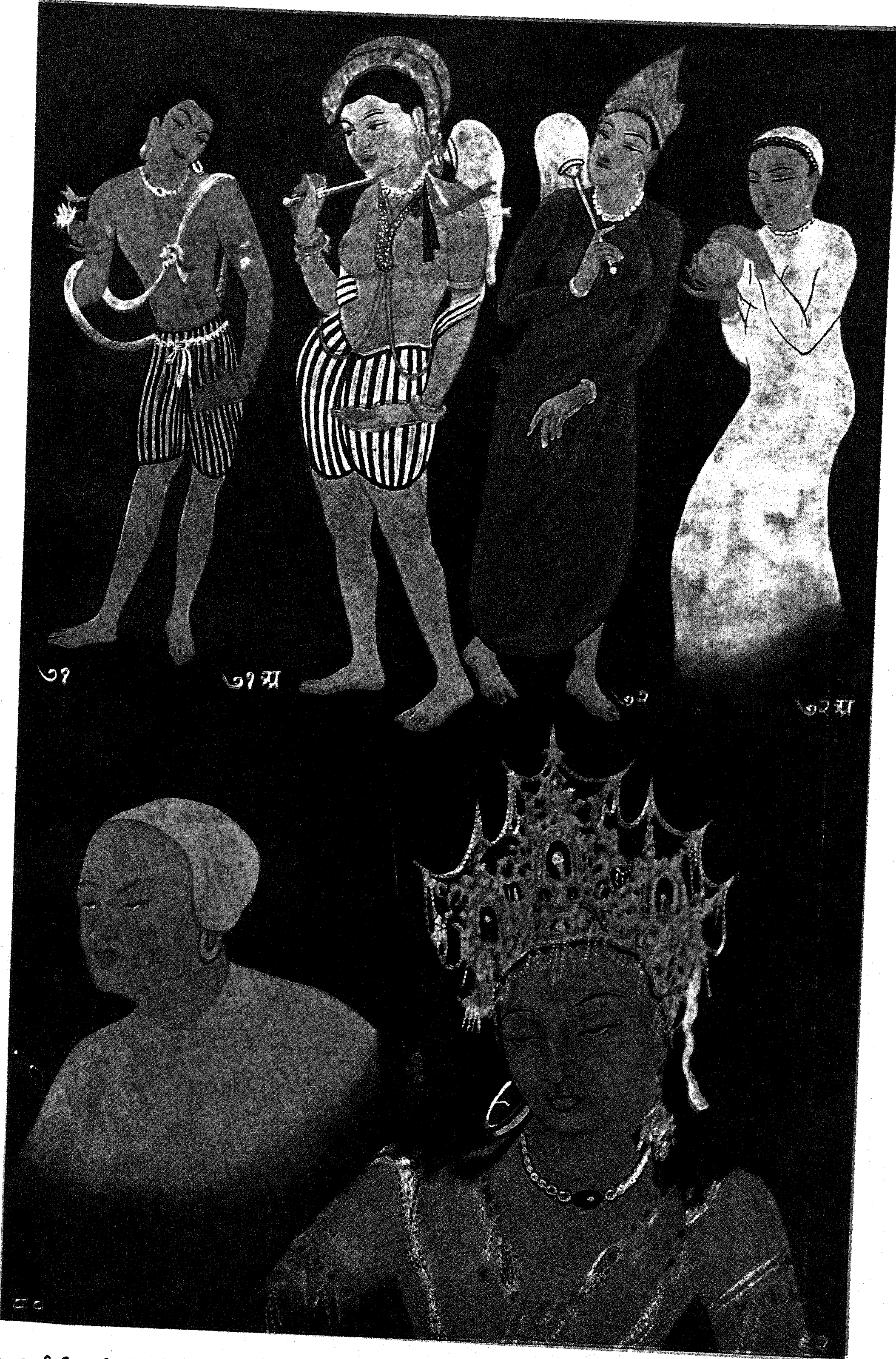
शबर युवा ८९



गंडकुसूल ९० [गोल चकरियों से बना कुठला]



९१ चैत्यांकित मुद्रा



•७१ नीली धारी की सतुला । ७१अ सफेद रंग पर नीली धारी की सतुला । ७२ लाजवर्दी रंग का कंचुक पहने चामरग्राहिणी । ७२ अ श्वेतकंचुक । ८० केसरिया उत्तरीय का शिरोवस्त्र । ६२ गले में मोतियों की एकावली ।

स्कन्धावार

अजिर

राजकुल

अजिर

राजद्वार

एकान्तोपविष्ट साधु

शिबिर

सर्व देशों के जनपद जन

देशान्तरागत दूतमंडल

समुद्रतटवासी म्लेच्छ राजा

शिबिर

नाना देशज महीपाल

वाररोन्द्र

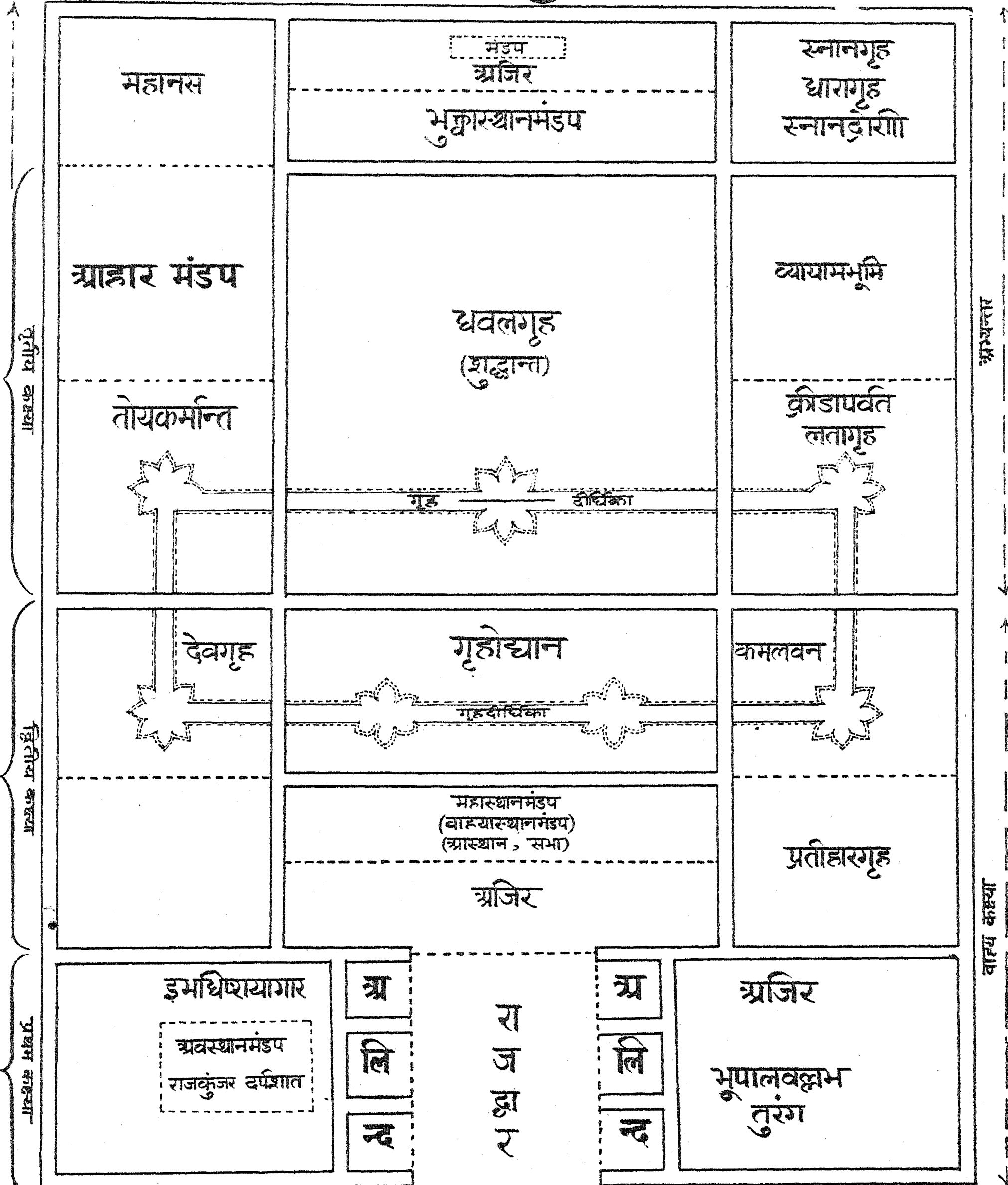
(गजशाला)

तुरंग

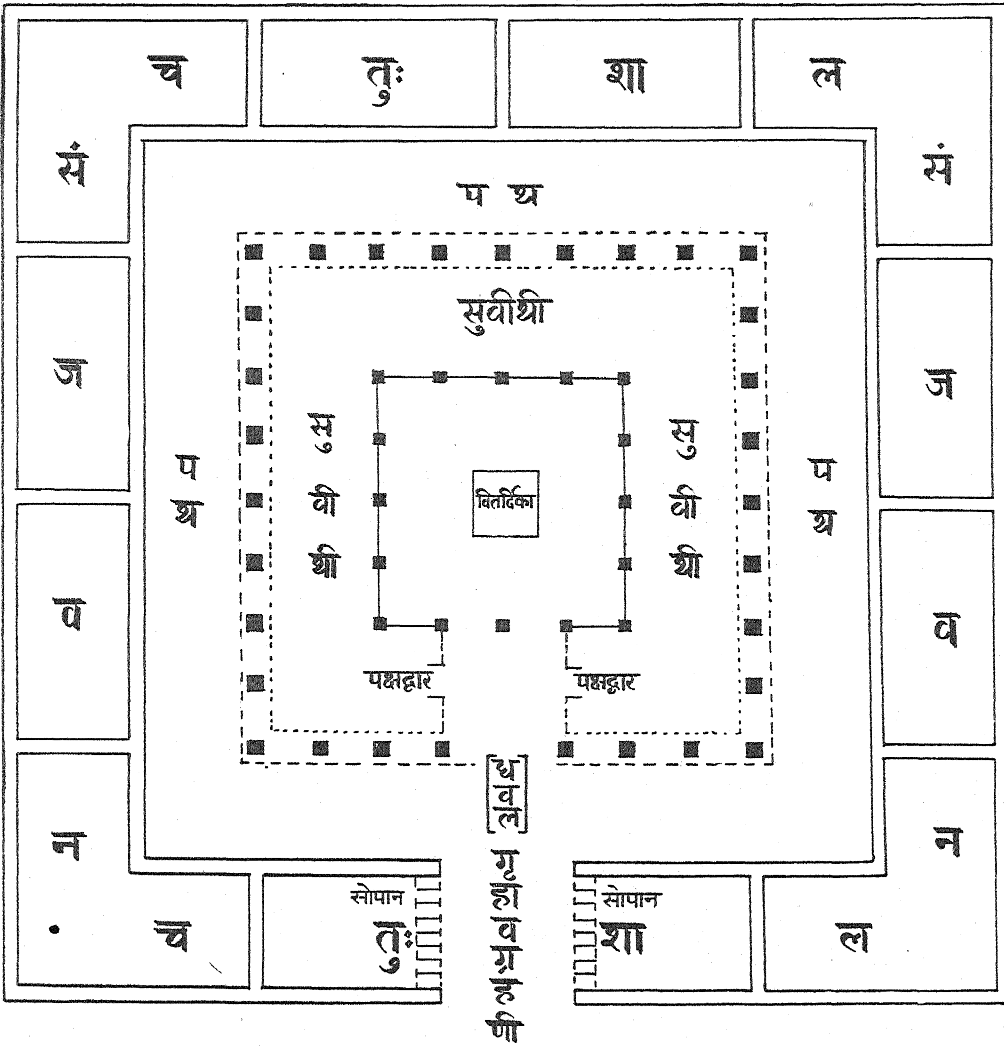
मंदुरा

क्रमेलक

राजकुल


मंडप
अजिर
भुक्तास्थानमंडप
स्नानगृह
धारागृह
स्नानद्रोणी
महानस
आहार मंडप
धवलगृह
(शुद्धान्त)
व्यायामभूमि
तोयकर्मान्त
क्रीडापर्वत
लतागृह
गृह दीर्घिका
देवगृह
गृहोद्यान
कमलवन
गृहदीर्घिका
महास्थानमंडप
(बाह्यास्थानमंडप)
(आस्थान, सभा)
प्रतीहारगृह
अजिर
इभधिष्ण्यागार
अवस्थानमंडप
राजकुंजर दर्पशात
अ
लि
न्द
राजद्वार
अ
लि
न्द
अजिर
भूपालवल्लभ
तुरंग
तृतीय कक्ष्या
द्वितीय कक्ष्या
प्रथम कक्ष्या
अभ्यन्तर
बाह्य कक्ष्या

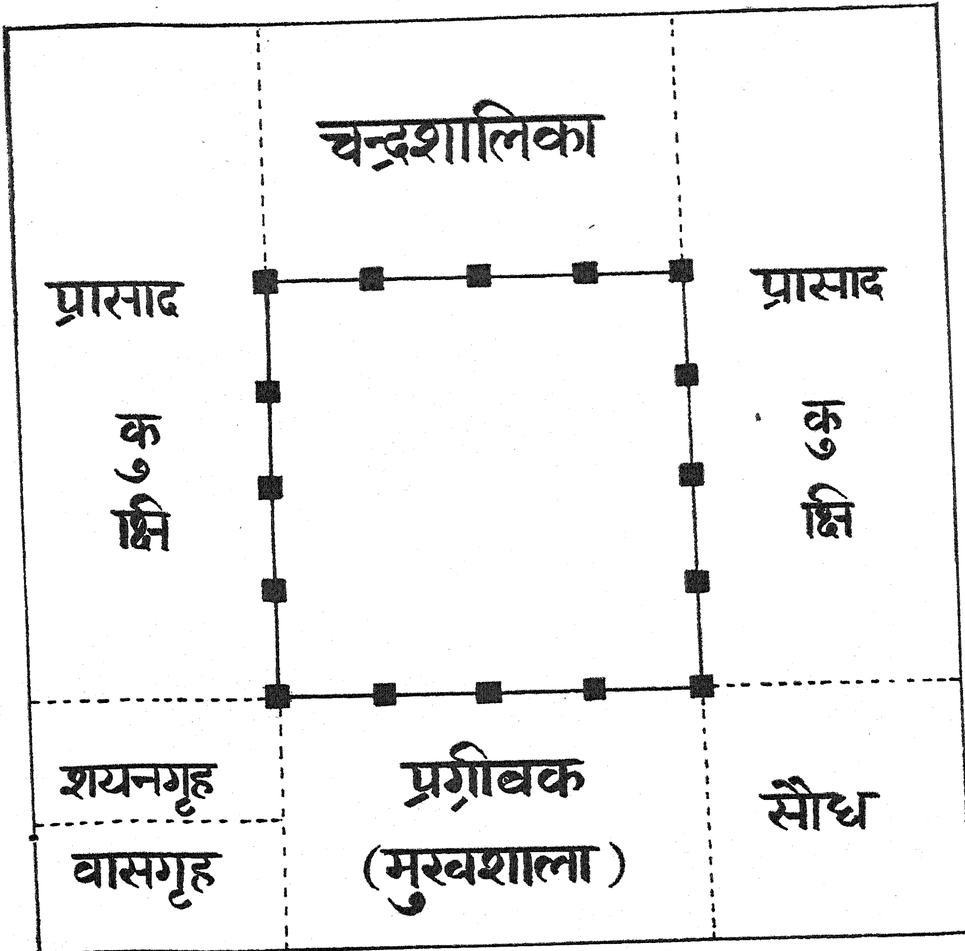
धवलगृह


च
तुः
शा
ल
सं
सं
ज
ज
व
व
न
न
च
तुः
शा
ल
प थ
प थ
प थ
सुवीथी
सु वी थी
सु वी थी
वितर्दिका
पक्षद्वार
पक्षद्वार
धवल
गृहावग्रहणी
सोपान
सोपान

भूमितल ।

धवलगृह का

ऊपरी तल



अनुक्रमणी